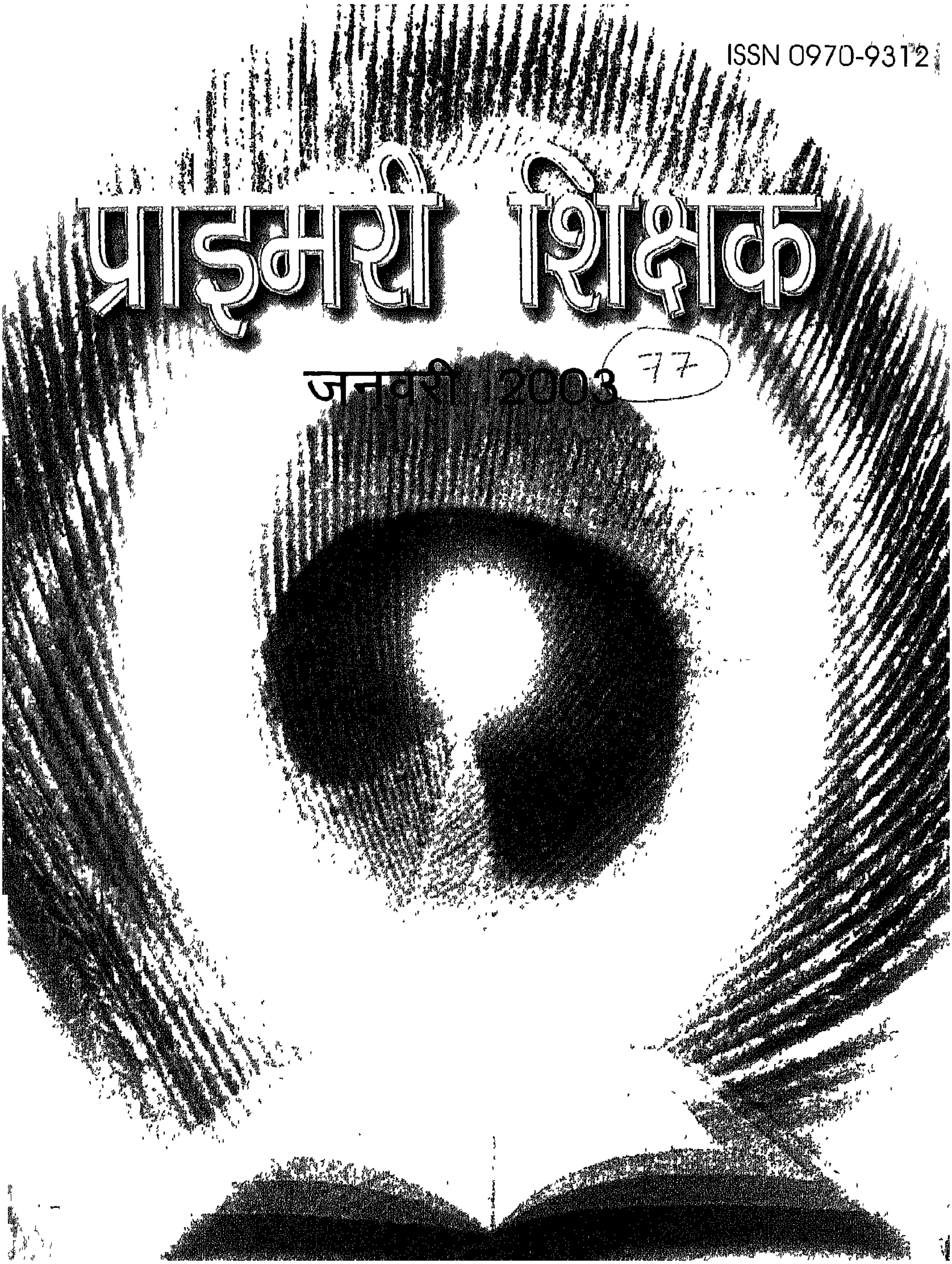
ISSN 0970-9312

प्राइमरी शिक्षक

जनवरी 2003 (77)



'प्राइमरी शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबधित जानकारिया पहुचाना, उन्हे कक्षा मे प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक व सबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा जगत मे होने वाली गतिविधियों पर विचारो के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों मे व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने होते हैं। अत॰ यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन मे परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो, इसलिए परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नही है।

मूल्य एक प्रति : 4 रुपए   वार्षिक · 16 रुपए

प्राइमरी शिक्षक

77

वर्ष · 28 | अक : 1 | जनवरी 2003

इस अंक में

शिक्षकों ने लिखा है

विचार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद् की ओर
से आप सभी को
नव वर्ष की
शुभकामनाएं!

□ जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक

खेल-खेल में जीवन-मूल्यों का विकास क्या? कहां?

❑ भारती राउत

अध्यापकीय जीवन के 38 वर्षों मे बार-बार यह अनुभव किया कि बालकों के जीवन-मूल्य स्तर में निरतर गिरावट आ रही है। मन चिंतित होता रहा— एक छटपटाहट अनुभव होती रही— कुछ करने के लिए।

गुजरात के विद्यालयों की शैक्षिक यात्रा करने पर कुछ ऐसे आदर्श सस्थानों के अवलोकन का सुअवसर मिला, जिन्हे देखकर मन मे इस विषय को लेकर छात्रो के लिए कुछ करने की ललक बनी रही।

प्राचार्य बनने पर वर्ग-2 अधिकारियो के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण के दौरान भोपाल स्थित राज्य शिक्षा सस्थान के संचालक द्वारा प्रदत्त कार्य मानस को हिलोर गया। यही अनुभव हुआ कि हम केवल शिक्षा देते हैं, बालकों के मन की स्लेट तो कोरी ही रह जाती है। तभी से मन मे विचार प्रबल होता रहा कि बालकों के मानसिक विकास के लिए अवश्य ही कुछ करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मे असंज्ञानात्मक पक्ष अथवा मूल्यपरक शिक्षा पर बल देते हुए अंकित किया गया है कि— "शिक्षा-क्रम में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त माध्यम वन सके"। राष्ट्रीय स्तर की इस समस्या ने मन को प्रेरित किया कि जीवन-मूल्यों की शिक्षा के लिए खेल विकसित किए जाएं।

दक्षताएं तो छात्रो में ऐसे विद्यमान हैं जैसे धरती में छिपी अनगिनत अकुरण क्षमताएं। शिक्षक यदि उन्हे खेल रूपी जल से अभिसिंचित करें तो वे अंकुर अवश्य ही प्रस्फुटित हो सकते हैं और खेलों के माध्यम से ही बालको में जीवन-मूल्यो का अकुरण किया जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में असंज्ञानात्मक पक्ष अथवा मूल्यपरक शिक्षा पर बल देते हुए अंकित किया गया है कि— "शिक्षा-क्रम में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त माध्यम बन सके"। राष्ट्रीय स्तर की इस समस्या ने मन को प्रेरित किया कि जीवन-मूल्यों की शिक्षा के लिए खेल विकसित किए जाएं।

सत्र 1992-93 मे हमारे सस्थान मे प्राथमिक शिक्षकों ने सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त किया। उनके प्रशिक्षण काल में होती रही परिचर्चाओ मे यही बात उभर कर आई कि अभी तक भी बालकों के असंज्ञानात्मक पक्ष के विकास के लिए कोई गतिविधि किसी भी प्राथमिक विद्यालय में नहीं होती। इसलिए यह दृढ़ निश्चय किया कि खेलों के माध्यम से जीवन-मूल्यो की शिक्षा देने हेतु शिक्षकों को प्रेरित करने की योजना को अब तो कार्यान्वित करना ही चाहिए।

चूंकि जीवन-मूल्यो का विकास किसी भी विषय-विशेष के साथ नही जोडा जा सकता। छात्र विद्यालय मे जो भी अधिगम अनुभव प्राप्त करता है उनसे ही असंज्ञानात्मक पक्ष के विकास की ओर अग्रसर होता है इसलिए खेलों द्वारा बालको को बार-बार अनुभव दिए जा सकते है। उनकी सहायता की जा सकती है कि वे सद्गुणो का चयन कर सके, उन्हे आत्मसात् कर सकें और व्यक्तिगत जीवन-शैली का अग बना सकें।

निदान की आवश्यकता

- ❑ बालको मे जीवन-मूल्यो के घटते हुए स्तर के कारण उनके व्यापक मूल्यांकन की गुंजाइश कम दिखाई देती है। अतः पहले मूल्यपरक शिक्षा आरंभ करे तभी व्यापक मूल्यांकन में सहायता मिल सकेगी।
- ❑ शिक्षण कार्य की रोचकता दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है इसलिए भी जरूरी है कि शिक्षा को खेलों

द्वारा आनददायी बनाया जाए।

- बाल-केन्द्रित शिक्षा देने की समझ शिक्षकों मे तभी आसानी से बढ़ाई जा सकेगी जब उन्हे खेल-खेल में बालकों में जीवन-मूल्य के विकास के खेल बताए जाएं। इन खेलो पर चितन उन्हे बाल-केन्द्रित शिक्षा की ओर अग्रसर करेगा।
- मानसिक कौशल-अर्जन के साथ बालको मे व्यक्तिगत व सामाजिक गुण जैसे– स्वच्छता, सहयोग, कर्मठता, अच्छी आदते आदि भी साथ-साथ विकसित किए जा सकते हैं।
- बाल्यावस्था जैसी लचीली उम्र में खेलो से बालक जो अधिगम करता है उसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण पर पड़ता है। वे अधिगम अनुभव बालक के जीवन के स्थाई अग बनेंगे।
- बालक की अभिरुचियों, अभिवृत्तियों का विकास इस प्रकार हो कि बालक में जीवन-मूल्यों के प्रति विश्वास का बीज अकुरित हो सके।

कार्य-कारण संबंध

- बालको में जीवन-मूल्यों के विकास के लिए कुछ खेलो का बार-बार आयोजन करने से बालकों के व्यवहार मे वांछनीय परिवर्तन लाया जा सकता है।
- खेलों द्वारा जीवन-मूल्यों की शिक्षा उसे अधिगम भार या बोझ नहीं अनुभव होगी। अधिगम स्वतः होता रहेगा। अनायास ही वह जीवन-मूल्यो की सार बातों को ग्रहण करता रहेगा।
- बालकों का विद्यालय के प्रति आकर्षण बढ़ेगा।
- खेलो का आकर्षण उसे विद्यालय मे नियमित रूप से उपस्थित रहने की प्रेरणा देगा।
- खेल माध्यम अपनाने से पुस्तकीय भार नहीं होगा न नैतिक शिक्षा, न कोई पाठ्यपुस्तक ही पाठ्य-सामग्री के रूप में सम्मिलित करनी होगी।
- विभिन्न खेल प्रत्येक बालक को अभिव्यक्ति का अवसर देंगे। इससे बालक को आत्मतुष्टि होगी। वह विद्यालय मे अपने महत्व को, उपस्थित रहने की अनिवार्यता को समझ सकेगा।
- खेल-सामग्री निर्माण में छात्रों का सहयोग बालकों की रचनात्मक प्रवृति को तुष्ट करेगा।
- अब तक बालक के अध्ययन काल मे असंज्ञानात्मक पक्ष के विकास की जो उपेक्षा होती रही है उसे दूर किया जा सकता है और खेल-खेल में ही सरल तरीके से जीवन-मूल्यो के अधिगम का अवसर बालको को प्राप्त होगा।
- जीवन-मूल्यो का विकास न केवल परिवार और समाज की जिम्मेदारी है वरन् शिक्षक की भी है क्योंकि वह भी उसी समाज अथवा परिवार की एक इकाई है। अतः जीवन-मूल्यो के विकास मे वह सशक्त भूमिका निभा सकता है।
- जीवन-मूल्यों सबधी खेल बार-बार खेलने से बालक के कोमल मन पर वैसे ही प्रभाव डालेंगे जैसे– "रसरी आवत जात से, सिल पर परत निसान"।

उद्देश्य

- छात्र जीवन-मूल्य सबंधी शब्दो को समझने लगें। पाठ्यपुस्तक में पढ़ने के पूर्व ही सद्गुणार्थी शब्दो से उसकी पहचान हो जाए।
- जीवन-मूल्य संबंधी खेल बार-बार खेले जाने से छात्र के व्यवहार में वाछनीय परिवर्तन होने लगे।
- जीवन-मूल्यों के प्रति उसमे स्वमेव विश्वास उत्पन्न हो, मूल्यो को समझने की क्षमता उत्पन्न हो।
- चारित्रिक दृढता के लिए छात्रो को कोई उदाहरण और उपदेश की आवश्यकता न हो। वे स्वय एक उदाहरण देने योग्य व्यक्ति बनते जाएं।
- इस तरह के और भी अनेक खेलो का प्रभाव ऐसा हो कि जीवन-मूल्य बालक के अवचेतन मन पर अमिट छाप अंकित कर सकें।

क्षेत्र

प्रथम स्तर– छात्र

रशीदिया शासकीय माध्यमिक विद्यालय

कक्षा स्तर– चौथी 25	आयु-वर्ग 10 से 12 वर्ष
कक्षा स्तर– पाचवी 25	अवधि– 15 जौलाई, 94
कुल छात्रों की संख्या– 50	से 10 नवम्बर, 94 तक

चौथी कक्षा के छात्रो मे दो सवर्ण, दो अनुसूचित जाति व इक्कीस छात्र पिछड़े वर्ग के थे। इनके पालक मजदूरी, लकडी की टाल व टेट हाउस मे नौकरी, दर्जी, ठेला चालक, चपरासी, ठेकेदारी, लोहे या कोयले का व्यवसाय करने वाले थे। पाच मे तीन सवर्ण, पांच अनुसूचित जाति व सत्रह पिछडे वर्ग के छात्र थे। इनके पालक मिस्त्री, नाई, ट्रक व ऑटो ड्राइवर, मजदूर, पक्चर सुधारक, दुकानदार, बढ़ई व नौकरी आदि करने वाले थे।

- बालको के पालको के पेशे से यह स्पष्ट होता है कि ये छात्र सुविधा संपन्न वर्ग के नही थे।
- इस अभिनव प्रयोग में सम्मिलित बालकों मे से अधिकाश पिछडे वर्ग के बालक थे।
- 10 से 12 वर्ष की आयु के इन बालकों का अबोध मन जीवन-मूल्यो के खेलो से प्रभावित हो सकता है, इस दृष्टि से उनका चयन किया गया।
- गतिविधियो मे कुल 170 शिक्षक सम्मिलित हुए। इनमें से मूल्यांकन-पत्रक मात्र 50 (22 पुरुष, 28 महिला) भरवाए।
- प्रधानाध्यापक तथा जिला शाला निरीक्षको से जीवन-मूल्यो पर एक दिन और प्राथमिक शिक्षकों से तीन दिन परिचर्चा के साथ गतिविधियां कराई गई।
- सभी प्राथमिक शिक्षको ने खेल स्वय खेले।

परिकल्पना

- सेवाकालीन शिक्षकों को पारदर्शियों, परिचर्चाओ और चार्टो द्वारा जीवन-मूल्यों से परिचित कराया जाए। जीवन-मूल्यो की शिक्षा को शिक्षा मे सम्मिलित करने की बात शिक्षकों को विश्वास में लेकर ही की जा सकती है।
- बालकों मे जीवन-मूल्यों के बीजारोपण का कार्य जो प्राथमिक स्तर पर ही किया जा सकता है, उसमें शिक्षक का सहयोग प्राथमिकता के आधार पर अनिवार्य व आवश्यक है।
- शिक्षक उसी समाज मे रहता है, जहां मूल्यों मे गिरावट

द्वितीय स्तर– सेवाकालीन शिक्षक

समूह	*कार्य स्तर*	*अवधि*			*लिग*			*कार्यक्षेत्र*	
क्रमाक		*दिन*	*से*	*तक*	*स्त्री*	*पु.*	*उपस्थिति*	*शहर*	*ग्राम*
1.	सहा जि शा निरीक्षक	1	8-7-98	—	1	9	10		
2.	प्राथ शिक्षक	12	25-7-94	6-8-94	19	19	38	15	13
3	प्राथ प्रधान अध्यापक	7	17-8-94	24-8-94	11	2	13	5	8
4	सहा. शिक्षक	12	19-9-94	1-10-94	19	10	29	16	13
5	सहा शिक्षक	12	7-10-94	29-10-94		11	11	11	—
6	सहा. शिक्षक	12	7-10-94	29-10-94 ग्रामीण क्षेत्र मे	25	21	46	—	46
7	प्राथ. प्रधान अध्यापक	7	10-11-94	17-11-94	3	20	23	23	—
	कुल सख्या				78	92	170	70	80

एक चिन्ता का विषय है। अतः मूल्यों का विकास शिक्षक के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

- छात्र जीवन-मूल्य शब्दों को पहचाने, समझें और आत्मसात् करें।
- बालकों मे जीवन-मूल्यो के प्रति आस्था खेल-खेल में ही उत्पन्न की जा सकती है।
- बाल-मन पर खेल जो छाप छोड़े, उनसे जीवन-मूल्य पुष्ट और सुदृढ़ बनाए जा सकते हैं।
- बालको मे जीवन-मूल्यो का विकास चरित्र-निर्माण में सहायक हो सकता है।

रूपांकन

- सद्गुण समेटो
- सत्य वचन, गुरु सत्य वचन है
- तेरे नाम अनेक, तू एक ही है
- दीवारो से दिल तक पहुचे
- हमारी सस्कृति के प्रतीक
- बहुरंगी है धरती हमारी

रूपाकन 1

विधा का नाम— गीत और खेल

उद्देश्य

- जीवन-मूल्यो के प्रति खेल द्वारा चेतना उत्पन्न करना।
- पाठ्यक्रम मे पढने के पूर्व ही खेलों द्वारा बालक शब्द के भाव को ग्रहण करने हेतु ज्ञान प्राप्ति की सहमति प्रकट करे।
- बाल-मन मे सद्गुणो के प्रतिग्रहण की भावना प्रबल हो तथा तद्नुसार सदाचरण की अभिप्रेरणा उत्पन्न हो।
- बालक के मन को यह बात प्रभावित करे कि सद्गुण विकास के अवसर बार-बार प्राप्त होते है। अत. वह एक बार की असफलता से निराश न हो, बल्कि सदैव यत्नशील और आशान्वित रहें।
- बालक खेल का आनद उठाए।

सदगुण समेटो

सहायक सामग्री 1

आओ बच्चो खेल खेलें—2
आओ हिल मिल खेल खेलें—2
आओ सब मिल खेल खेलें—2
एक अनोखा खेल खेले—2
एक निराला खेल खेलें—2

आओ, सद्गुण लेते जाए—2
आओ अवगुण त्यागते जाएं—2
अपना जीवन हम ढालेगे—2
अपनी राहें हम चुन लेंगे—2
आओ बच्चो खेल खेले—2

खेल-खेल में अच्छी बाते
हम सीखेगे, हम सीखेंगे, हम सीखेगे।

सद्गुण समेटो सहायक सामग्री 2
सद्गुणो की सूची

सच बोलना	मीठा बोलना	ईमानदारी
भाईचारा	मित्रता	आदर करना
प्रेम/प्यार	सहयोग	दयालुता
सहनशीलता	भरोसा करना	सेवा भावना
समानता	याद रखना	नियमितता
समय की पाबदी	समय का सदुपयोग	अनुशासन
आज्ञापालन	साहस	वीरता
निडरता	देश भक्ति	राष्ट्रीय एकता
त्याग	श्रद्धा	सादगी
सफाई	मानवता	एकाग्रता

अवगुणों की सूची

झूठ बोलना	कड़वा बोलना	बेईमानी
निराश	शत्रुता	अपमान
ईर्ष्या	असहयोग	कठोरता
असहनशीलता	अविश्वास	उद्‌ण्डता
भेदभाव बरतना	भूल जाना	अनियमितता
मंदवुद्धिता	समय गंवाना	अनुशासनहीनता
अवज्ञा	आलस्य	अभद्रता
डरपोकपन	देशद्रोही	घृणा
स्वार्थ	अश्रद्धा	दिखावटीपन
गदगी	जगलीपन	मन भटकना

शिक्षकों के लिए खेल-निर्देश और पूर्व तैयारी

- पोस्टकार्ड आकार के कार्डो पर शिक्षक सूची मे अंकित सद्‌गुण लिखकर रखें।
- वालको को गीत का प्रत्येक शब्द स्पष्ट और सही उच्चारण के साथ ऊंचे स्वर में गाने के लिए तैयार करे और गीत कंठस्थ करवाए।
- बालकों को खेल के नियम समझाए।
- कार्ड पर अकित प्रत्येक सद्‌गुण तथा अवगुण के बारे मे शिक्षक प्रत्येक बालक के साथ संवाद बनाए रखे।
- मैदान में चूने से एक इतना बडा गोला खिचवाएं, जिस पर कक्षा के सभी बालक खड़े होने के वाद आसानी से गोलाकार मे दौड सकें।
- गोले के बीचों-वीच एक मेज रखी जाएगी, जिस पर एक मजबूत-सा डिब्बा रखा जाएगा। सद्‌गुण और अवगुण वाले कार्ड अच्छी तरह मिलाकर इस डिब्बे मे एक के ऊपर एक उल्टे करके रखे जाएंगे।

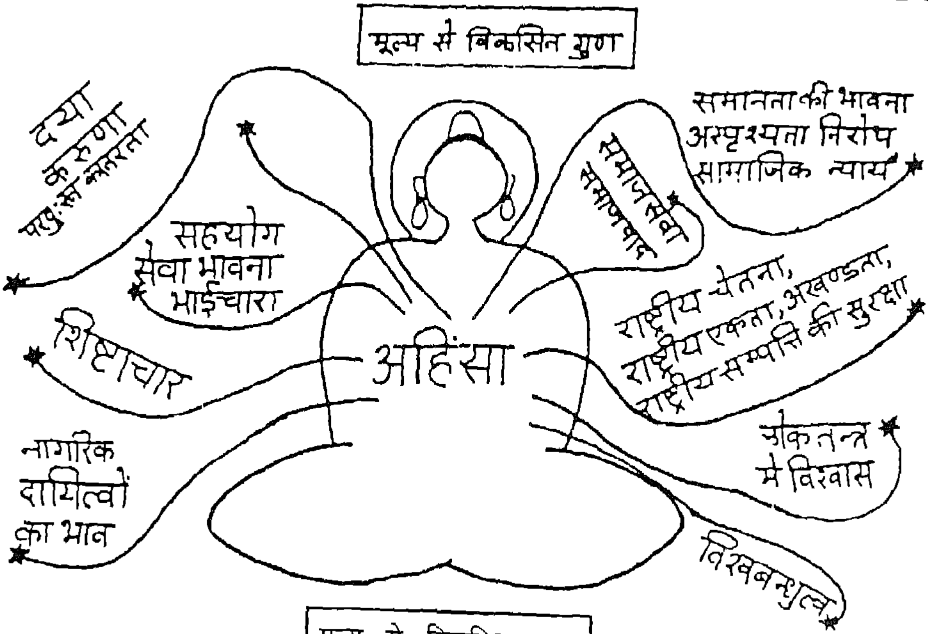
गतिविधि का क्रियान्वयन

मैदान मे एक बडा-सा गोला खींचें जिस पर खड़े होकर बालक गोलाकार में दौड लगाएंगे और दौडते हुए गीत गाएगे। गोले के वीच में एक मेज पर सद्‌गुण और अवगुण अंकित कार्ड अच्छी तरह मिलाकर उलटकर रखें। मेज के पास खडे होकर शिक्षक बच्चों के साथ-साथ ही गीत गाएगे और जब गीत की अंतिम पंक्ति तीन बार दोहराएगे, तब गीत थम जाएगा। गीत रुकते ही बच्चे दौड़कर मेज के पास जाकर एक-एक कार्ड उठाकर गोले मे अपनी जगह जाकर खड़े होगे। अब प्रत्येक बालक अपनी बारी आने पर उसके पास का कार्ड जोर से पढ़ेगा, तव शिक्षक बालक से उस शब्द का भावार्थ पूछेंगे और स्वयं भी स्पष्ट करेगे। यदि बालक के पास सद्‌गुण वाला कार्ड होगा तो शिक्षक और सभी वालक 1-2, 1-2-3 के क्रम में पाच बार ताली बजाकर शाबाशी देंगे और यदि अवगुण वाला कार्ड होगा, तो बालक को आउट तो कर देगे लेकिन कोई बात नहीं, अगली बार सद्‌गुण पाओ, यह वाक्य तीन बार गाकर उसे सान्त्वना देंगे। अब बालको से अवगुण वाले कार्ड लेकर अलग रखे जाए और सद्‌गुण वाले कार्ड मेज पर बचे कार्डो मे अच्छी तरह मिलाकर पुनः उलटकर रखे जाए और खेल पुनः शुरू होगा। दूसरी बात गीत रुकने पर आउट हुए बालको को भी कार्ड उठाने का अवसर दिया जाए और सद्‌गुण कार्ड मिलने पर खेल मे पुन. शरीक किया जाए।

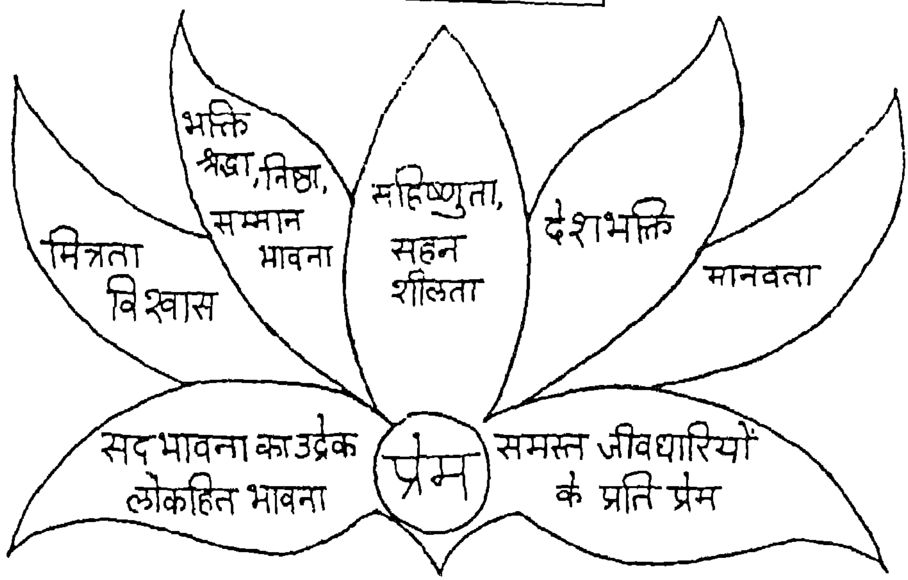
यह खेल तब तक चलता रहे, जब तक तमाम छात्रों को सद्‌गुण कार्ड प्राप्त न हो जाए।

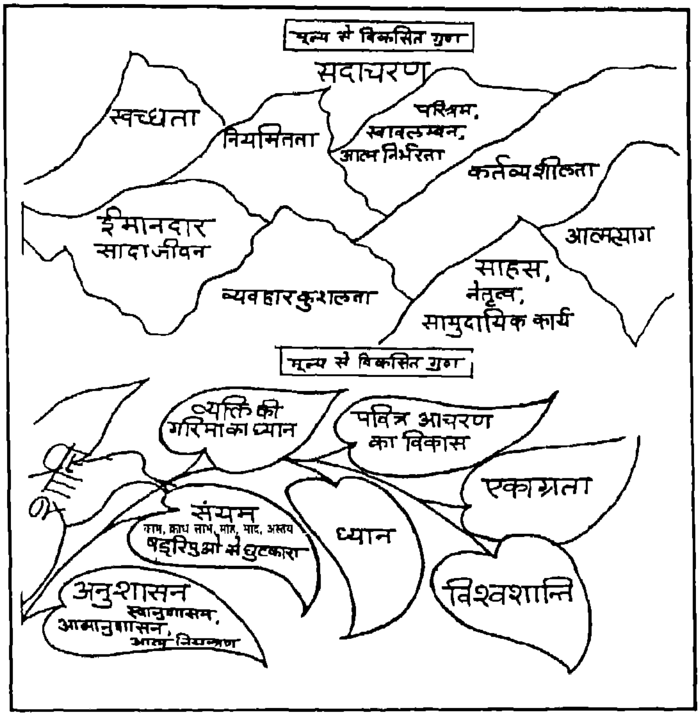
बालकों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन

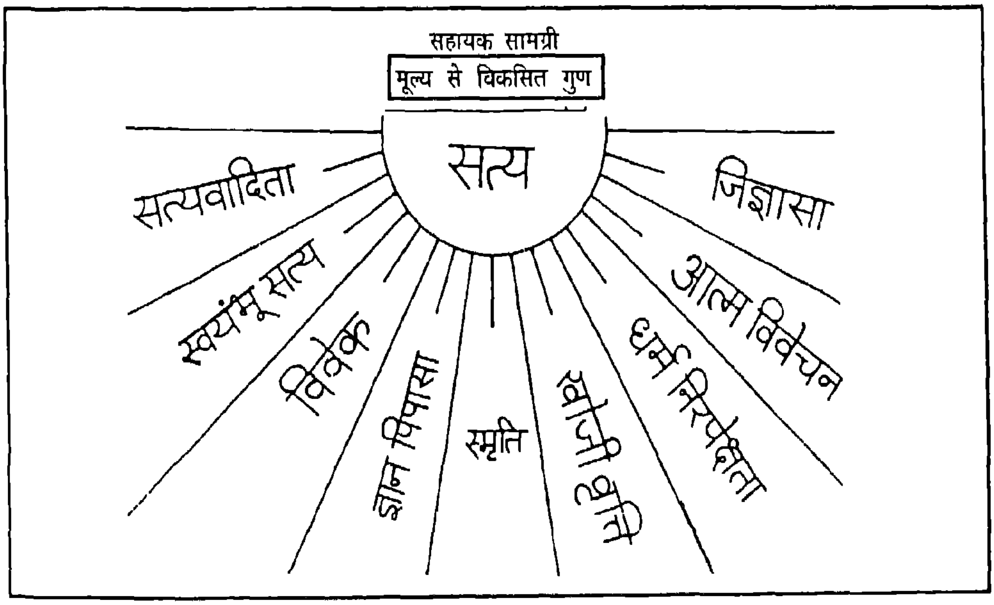
सद्‌गुणों-अवगुणो के कार्ड बार-बार पढने, देखने, सुनने का अवसर दिए जाने से वालकों मे शब्दो के भावार्थ समझने की क्षमता विकसित हुई और हर बार सद्‌गुण कार्ड पाने


मूल्य से विकसित गुण
दया
करुणा
सहयोग
सेवा भावना
भाईचारा
शिष्टाचार
नागरिक
दायित्वों
का भान
अहिंसा
समानता की भावना
अस्पृश्यता निरोध
सामाजिक न्याय
समाजसेवा
राष्ट्रीय चेतना,
राष्ट्रीय एकता, अखण्डता,
राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा
लोकतन्त्र
में विश्वास
विश्वबन्धुत्व

मूल्य से विकसित गुण


भक्ति
श्रद्धा, निष्ठा,
सम्मान
भावना
सहिष्णुता,
सहन
शीलता
देशभक्ति
मानवता
मित्रता
विश्वास
सद भावना का उद्रेक
लोकहित भावना
प्रेम
समस्त जीवधारियों
के प्रति प्रेम


मूल्य से विकसित गुण
सदाचरण
स्वच्धता
नियमितता
परिश्रम,
स्वावलम्बन,
आत्म निर्भरता
कर्तव्यशीलता
ईमानदार
सादाजीवन
व्यवहारकुशलता
आत्मत्याग
साहस,
नेतृत्व,
सामुदायिक कार्य
मूल्य से विकसित गुण
व्यक्ति की
गरिमा का ध्यान
पवित्र आचरण
का विकास
एकाग्रता
संयम
काम, क्रोध लोभ, मोह, मद, अस्तय
षड्रिपुओं से छुटकारा
ध्यान
विश्वशान्ति
अनुशासन
स्वानुशासन,
आत्मानुशासन,
आत्म नियन्त्रण


सहायक सामग्री
मूल्य से विकसित गुण
सत्य
सत्यवादिता
स्वयंभू सत्य
विवेक
ज्ञान पिपासा
स्मृति
खोजी वृत्ति
धर्म निरपेक्षता
आत्म विवेचन
जिज्ञासा

की इच्छा उनमे प्रवल हुई। वालक पूरे खेल गे निरंतर सक्रिय रहे क्योंकि सद्गुण कार्ड प्राप्त होने पर साथियो की लयबद्ध तालिया उन्हे अवर्णनीय आनद देती थी और वे ऐसा एक भी मौका चूकना नहीं चाहते-से लगे। अवगुण कार्ड पाने वाले बालक आउट हो जाते किन्तु साथियो की सस्वर सान्त्वना से अवगुण त्यागने और सद्गुण पाने की उनकी ललक द्विगुणित होती प्रतीत हुई।

छात्रों द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ बालको ने सद्गुण शब्दो के भावों को गर्वपूरक ऊचे स्वर में अभिव्यक्त किया।
- ☐ बालक आनदपूर्वक यहां-वहां गीत-पंक्तियां गाते-गुनगुनाते रहे।
- ☐ सद्गुण कार्ड पाते ही बालकों का चेहरा दमक उठता।
- ☐ कार्ड उठाने में बालकों मे तत्परता देखी गई। वे पूर्ण सजग रहकर परस्पर भाव समझने का प्रयास करते रहे।
- ☐ वालको ने कार्ड वनाने में भी पूरा-पूरा सहयोग दिया।

शिक्षकों द्वारा प्रतिक्रिया

स्वयं खेलकर देखते समय सद्गुण समेटने मे शिक्षकों में भी बालको जैसा ही उत्साह, तत्परता और खुशी पाई गई। शिक्षको ने अपने-अपने विद्यार्थियो के लिए भी कार्ड बनाए, गीत लिखे और याद किए। शिक्षको ने खेल को प्रभावोत्पादक अनुभव किया और कहा बालको को खेल द्वारा सद्गुण अपनाने को प्रेरित किया जा सकता है।

रूपांकन 2

सत्य वचन, गुरु सत्य वचन है

विधा का नाम— कक्ष का खेल

उद्देश्य

- ☐ बालको में सत्य और उचित उक्ति के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना तथा सत्य और उचित का अनुमोदन करने की समझ और आदत उत्पन्न करना।
- ☐ बालको में उचित और अनुचित के अवसर को समझने की सुमति उत्पन्न करना।
- ☐ वालक को जीवन-मूल्य युक्त वाक्यो को ध्यान से सुनने-समझने और भाव ग्रहण का अवसर देना।
- ☐ गृहकार्य के माध्यम से बालको तक खेल के प्रभाव पहुचाना।

सत्य वचन, गुरु सत्य वचन है

सहायक सामग्री

सत्य वचन	*असत्य वचन*
1 फूल सुगधित होते हैं।	1 नाखूनों को हम बढ़ने दे।
2. मोर के पख रंग-बिरगे है।	2. पशुओं को हम खूब मारे।
3. हवा हमेशा शुद्ध रहे।	3 वगिया के सारे फूल तोड़ें।
4. जल हमारा जीवन है।	4. बात-बात पर सबसे झगड़े।
5 आगन में एक पेड़ लगाएं।	5. शाला जाना गंदी बात है।
6. रोज-रोज नहाना चाहिए।	6. मैले कपड़े पहनने चाहिए।
7. शाला मे समय पर जाएं।	7. दूसरे की चीजे छीनते जाएं।
8. सभी धर्मो का आदर करे।	8. यहा-वहां थूकते रहे।
9 दोस्तों पर भरोसा करें।	9. बडो के बीच में बोलना चाहिए।
10 अपंगों की सदा मदद करे।	10. पानी का नल खुला रखें।

11. खाने के पहले हाथ धोए।
12 घर का काम नियमित करे।
13. सभी की बात ध्यान से सुने।
14 मा के काम मे मदद करे।
15. पुस्तको पर जिल्द चढाएं।
16. खाना खूब चबाकर खाएं।
17 सुबह सैर का नियम बनाए।
18 बच्चे मन के सच्चे होते हैं।
19 प्रार्थना मे कतार बनाकर जाए।
20 बीमारी से बचने के टीके लगाए।
21. शाला को हम साफ रखें।
22 राष्ट्रगान के समय खड़े रहे।

11 कचरा बगीचे मे फेंका जाए।
12 कापी के पन्ने फाडते रहे।
13 दात से नाखून काटते जाएं।
14. खाने पर मक्खी बैठने दे।
15 कक्षा में खूब शोर मचाएं।
16 बीच सड़क मे चलते जाएं।
17. सुबह देर तक सोये रहे।
18 अधिक समय तक टी वी देखे।
19 बडों की बात अनसुनी करे।
20 पढने से हम जी चुराएं।
21 साथियो की चुगली करें।
22 भाई-बहन को मुह चिढाए।

शिक्षकों के लिए खेल-निर्देश और पूर्ण तैयारी

- ☐ शिक्षक सत्य और उचित उक्तियो की तथा असत्य और गलत बातों की अलग-अलग सूचिया बनाए।
- ☐ वाक्य छोटे, भावार्थी और स्पष्ट हो, खेल मे उन भावो की आवृत्ति न हो।
- ☐ छात्रों को खेलने से पहले नियम समझा दे।

गतिविधि का क्रियान्वयन

खेल के लिए छात्रो को कक्ष या पेड के नीचे छाया मे गोल घेरे में बैठाया जाए। अब शिक्षक एक उक्ति जोर से बोले। बालक उसका अर्थ समझे और उक्ति यदि सही है, तो दाया हाथ ऊपर उठाकर अनुमोदन प्रकट करें, साथ ही जोर से बोले– "सत्य वचन, गुरु सत्य वचन है।" किन्तु यदि उक्ति अनुचित है, तो दोनो हाथों से मना करने का संकेत करे, साथ ही जोर से बोले– "नहीं, नही। कभी नही।" जो बालक गलत सकेत या गलत अभिव्यक्ति दे, उसे गोले के भीतर बुलाकर दो सही उक्तिया बनाने को कहें। यदि वह उक्तिया सही बना लें, तो उसे खेल मे पुनः शामिल करें। यदि इसमें वह गलती करें तो उसे उसके पालक की मदद से पांच सही उक्तियां और पाच गलत उक्तियां बनवाकर लाने का गृहकार्य दे। बड़े बालको को खेल का नेतृत्व करने दिया जा सकता है।

बालकों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन

- ☐ सही और गलत उक्तियो के अंतर को पहचानने की समझ बढ़ी।
- ☐ सही और सत्य का अनुमोदन करने से सही काम करने की चाह बढ़ी।
- ☐ अपने से छोटे को सही काम करने की सलाह देने लगे।
- ☐ बालकों ने सही बात सोचने के लिए पालको से भी चर्चा की।
- ☐ गलत काम के लिए इन्कार करने का साहस जुटा सके।

छात्रों द्वारा प्रतिक्रिया

बालको ने औरो को सही काम के लिए टोककर याद दिलाई जैसे– "नल बंद करो।" "कुत्ते को मत मारो।"

शिक्षको द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ सेवाकालीन शिक्षकों ने इस खेल को बहु-कक्षा-शिक्षण के लिए भी उपयोगी समझा।
- ☐ शिक्षको ने व्यक्त किया कि स्थानाभाव में छात्रो का मनोरंजन और अच्छी बातो की समझ एक साथ बढ़ाई जा सकती है।

रूपांकन 3

तेरे नाम अनेक, तू एक ही है

विधा का नाम– माचिस का खेल

उद्देश्य

- वालकों को देश में प्रचलित विभिन्न धर्मों के विषय में जानकारी देना।
- बालकों मे सब धर्मो के प्रति आदर व्यक्त करने की सर्व-धर्म समभाव की भावना का विकास हो।
- विभिन्न धर्मो के पर्वों के बारे में जानने की बालकों में उत्सुकता जागृत हो।
- बनाने को अभिप्रेरित करे।

बालकों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन

- छात्रो ने मिश्रित धर्मो की जानकारी प्राप्त की।
- धार्मिक महापुरुषो, प्रसिद्ध धर्म स्थलों, तीर्थ स्थानो के चित्र संकलन की चाह हुई।
- विभिन्न धर्म चिन्हो की अनुकृतिया बनाकर प्रदर्शित की गई।

तेरे नाम अनेक, तू एक ही है

सहायक सामग्री

धर्म	*धर्म-ग्रन्थ*	*धर्म-पुरुष*	*धर्म-स्थल*
हिन्दू	वेद-पुराण	ईश्वर	मंदिर
इस्लाम	कुरान शरीफ	हज़रत मुहम्मद	मस्जिद
सिक्ख	गुरु ग्रंथ साहिब	गुरु नानकदेव	गुरुद्वारा
ईसाई	बाइबिल	ईसा मसीह	गिरजाघर
बौद्ध	त्रिपिटक	भगवान बुद्ध	चैत्य
जैन	गणिपिण्डक	महावीर स्वामी	मंदिर
पारसी	ज़िंदा-अवेस्ता	अहुर मज्द	अगियारी

शिक्षकों के लिए खेल-निर्देश और पूर्व तैयारी

- संलग्न सहायक सामग्री की तालिका एक बडे-से रोल बोर्ड पर बनाकर रखें।
- माचिस की खाली बत्तीस डिब्बियां लेकर उन पर सफेद कागज चिपकाए और तालिका के एक-एक खाने की जानकारी एक-एक डिब्बी पर लिखें। ऐसे अनेक सेट बनाए। इस कार्य में छात्रों का भी सहयोग ले।

गतिविधि का क्रियान्वयन

रोल-बोर्ड को खोलकर दीवार पर टांग दें और तालिका के प्रत्येक खाने की जानकारी पक्तिश' पहले शिक्षक जोर से पढ़े, फिर छात्रों से ऊंचे स्वर मे दोहराने को कहें। ऐसा कम-से-कम पांच बार करे / करवाएं। इसके बाद रोल-बोर्ड को लपेटकर रख दें। अब छात्रों के समूह बनाकर प्रत्येक समूह को माचिसो का एक सेट देकर तालिका के अनुसार माचिसो को ठीक से रखने को कहे। इस प्रकार छात्रों की स्मरण शक्ति को प्रखर

- विभिन्न धर्म-पुरुषों, धर्म-पर्वों को जानने की जिज्ञासा हुई।

छात्रों द्वारा प्रतिक्रिया

- छात्रों ने सामग्री बनाने मे बेहद रुचि ली।
- खेल से प्रेरित होकर, प्रभावित होकर धर्मो संबंधी अतिरिक्त सामग्री यथा चित्र आदि स्वमेव एकत्र किए।
- छात्रो ने अन्य धर्मो के पर्वो के बारे मे पूछा यथा जाहिद, गुल मोहम्मद ने शिवरात्रि, इरफान, इलियास ने बड़ा दिन, कालूराम, शोभाराम ने ईद के बारे मे।

शिक्षकों द्वारा प्रतिक्रिया

- शिक्षको की मुख्य प्रतिक्रिया यह रही कि विभिन्न जानकारियां स्मरण रखने के लिए खेल की यह विधा बालको के सर्वाधिक उपयोग की है। अतः देश की प्रादेशिक जानकारी जैसे– नदी, पर्वत, प्रदेश, भाषा, तीर्थस्थान, वेशभूषा, कलाएं, साहित्य, महापुरुष आदि

बढाने के लिए भी इस विधा का उपयोग किया जाए।

- कुछ शिक्षको ने इस दिशा मे पहल भी की।

रूपांकन 4

दीवारों से दिल तक पहुंचे

विधा का नाम– समस्या पूर्ति

उद्देश्य

- श्रेष्ठ उक्तियो के प्रति छात्रो का आकर्षण बढ़ाना तथा वे उन्हें कंठस्थ कर सकें इस हेतु सहयोग देना।
- भाषा विकास के साथ बालक को भाव ग्रहण तथा चिंतन का अवसर देना ताकि उन्हें जीवन मे उतारने का वे प्रयास कर सके।
- नए तरीके से काम करने का प्रयास करना।
- सुन्दर लेखन के लिए छात्रों को प्रेरित करना।
- बालको की याददाश्त को प्रखर करने में सहयोग देना।

सहायक सामग्री
दीवारों से दिल तक पहुंचे

सांच	बराबर	तप नही
झूठ	बराबर	पाप
जाके	भीतर	सांच है
ताके	भीतर	आप

दुर्बल को न सताइए
जाकी मोटी हाय
मुई खाल की सांस सों
लोह भस्म हुई जाय

ऐसी बानी बोलिए
मन का आपा खोय
औरन को सीतल करे
आपौ सीतल होय।

जहा दया तहं धर्म है
जहां लोभ तह पाप
जहा क्रोध तह काल है
जहा क्षमा तह आप

निन्दक नियरे राखिए
आगन कुटी छवाय
बिन साबुन पानी बिना
निर्मल करत सुभाय

मधुर वचन है औषधि
कटुक वचन है तीर
श्रवण द्वार है सचरे
साले सकल सरीर

सहायक सामग्री

- अंधानुकरण से आत्मविश्वास कम होता है– भगवान बुद्ध
- वास्तविक स्नेह प्रशसा से नही, सेवा में व्यक्त किया जाता है– महात्मा गाधी
- सत्य वह है जिससे प्राणियो का हित हो– योगशास्त्र
- सत्य पीडाकारक हो, तो मौन अच्छा– योगशास्त्र
- फल की प्राप्ति लक्ष्य न हो, किन्तु अकर्मण्यता मे आसक्ति भी न हो– भगवत्‌गीता।
- स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे प्राप्त करके ही रहूगा– लोकमान्य तिलक
- तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हे आजादी दूगा– नेताजी सुभाष
- आराम हराम है– जवाहरलाल नेहरु
- जय जवान, जय किसान– लालबहादुर शास्त्री
- पालने से लेकर कब्र तक ज्ञान प्राप्त करते रहो– कुरान

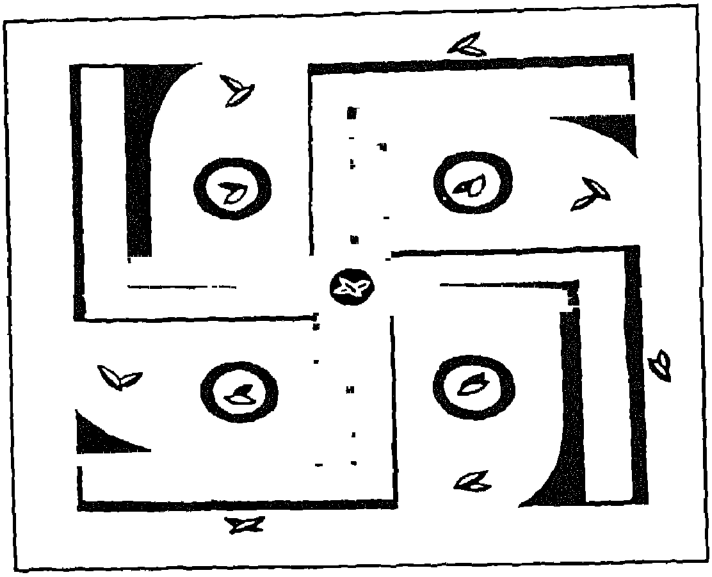
शिक्षकों के लिए खेल-निर्देश और पूर्व तैयारी

- विद्यालय की दावारों पर सुभाषित/दोहा पट्ट लगाए।
- छात्रों को अपनी संकलन-पुस्तिका में सुन्दर अक्षरों मे दोहे और सुभाषित लिखने तथा याद करने को कहें।
- उन्हें प्रतियोगिता के नियम समझाए।

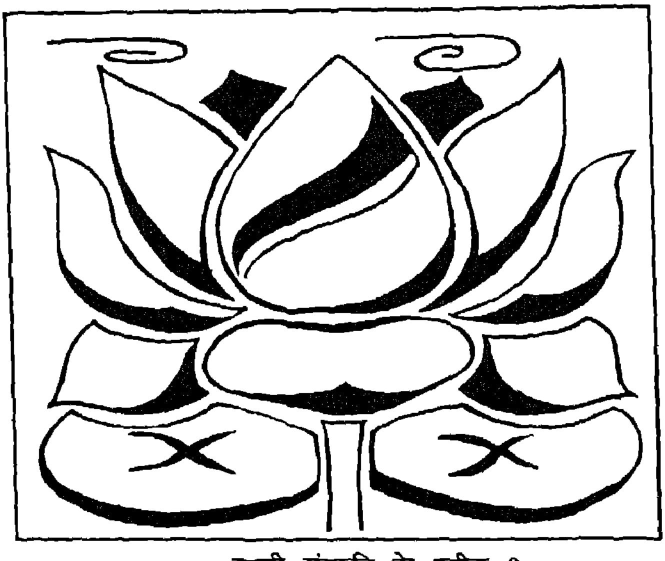
गतिविधि का क्रियान्वयन

बालसभा आयोजित कर बालको की दो टीमें बनाएं। शिक्षक सुभाषित अथवा दोहे का सकेत देने वाला एक शब्द उच्चारित करे, यथा "अन्धानुकरण" (सुभाषित-1, "दुर्बल", दोहा-2)

सहायक सामग्री

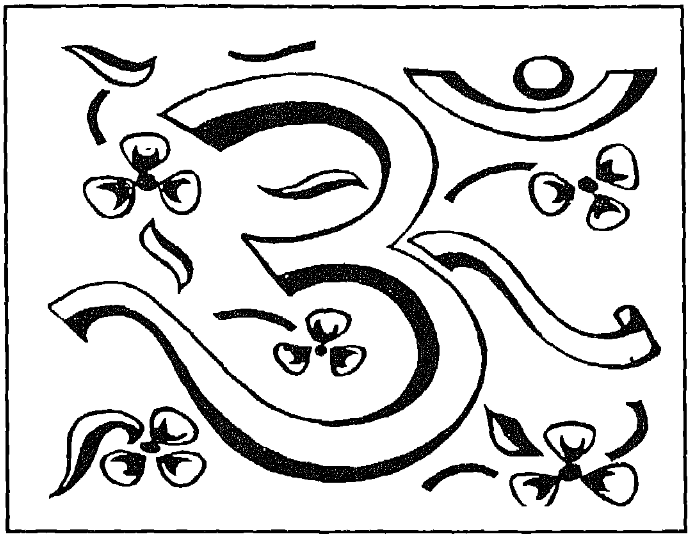


हमारी संस्कृति के प्रतीक 1

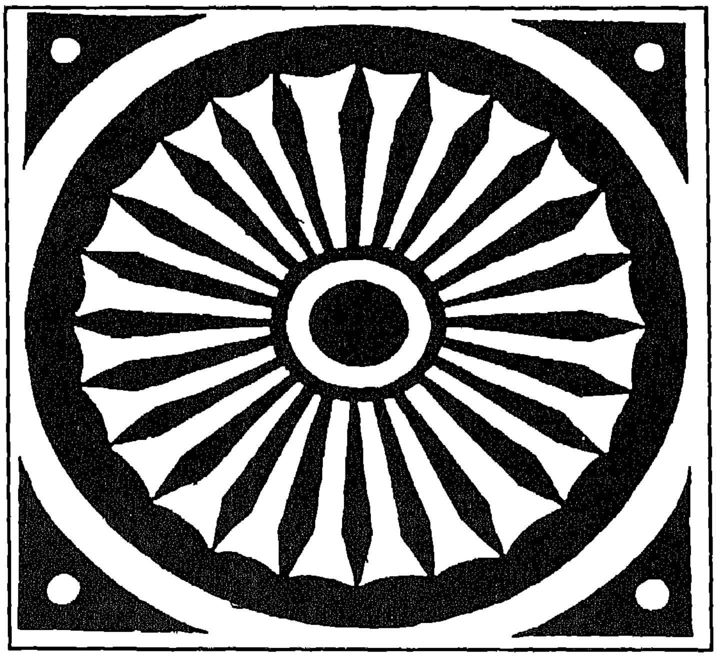


हमारी संस्कृति के प्रतीक 2

सहायक सामग्री

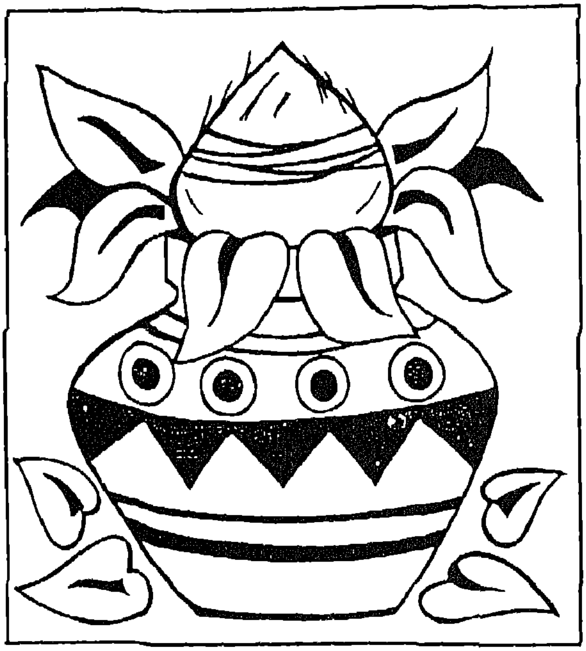


हमारी संस्कृति के प्रतीक 3

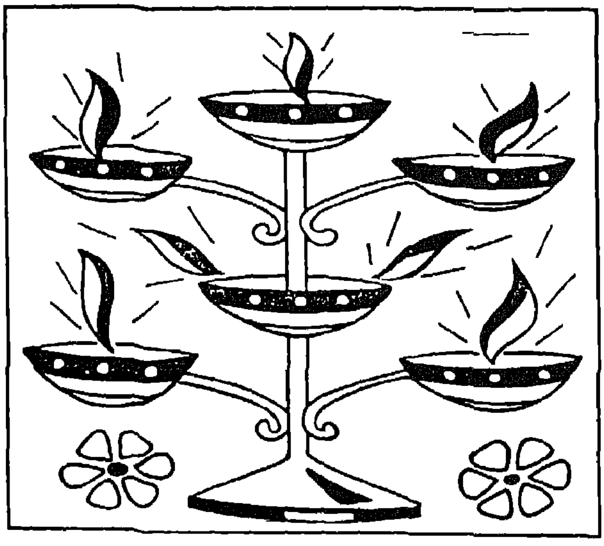


हमारी संस्कृति के प्रतीक 4

सहायक सामग्री



हमारी संस्कृति के प्रतीक 5



हमारी संस्कृति के प्रतीक 6

जिस टीम का बालक शब्द सुनकर सबसे पहले संबधित सुभाषित/दोहा सुना दे, उस टीम को अक दिए जाए। उपविजेता टीम से उक्त सुभाषित/ दोहे का अर्थ पूछें। यदि उपविजेता टीम का कोई बालक ठीक-ठीक अर्थ बता दे, तो उसकी टीम को भी अक दिए जाए। उपविजेता टीम अर्थ न वता पाए तो शिक्षक बताए। यह क्रम पर्याप्त समय तक जारी रखे।

बालकों के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन

- ☐ कक्षा की सजावट मे छात्रो का सहयोग और उत्साह देखने लायक था।
- ☐ उनका भाषा विकास हुआ। ज्ञान बढ़ा। जीवन-मूल्यो के प्रति उनकी समझ बढ़ी।
- ☐ नए-नए दोहे, सुभाषित संकलित करने, सुन्दर अक्षरों मे उन्हे लिखने, प्रदर्शित करने और याद करने के प्रति उनका रुझान बढा।
- ☐ बालको में सौन्दर्य-बोध विकसित हुआ।

छात्रो द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ छात्रो ने सुन्दर लेखन मे संकलन-पुस्तिका तैयार की।
- ☐ दोहे/सुभाषित याद कर प्रतियोगिता मे उत्साह बरकरार रखा। खूब बढ-चढ़ कर भाग लिया।

शिक्षकों द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ शिक्षकों ने बालको द्वारा दोहे/सुभाषित याद करने को भाषा-विकास के लिए आवश्यक बताया।
- ☐ बालसभा कार्यक्रम की रोचकता बढाने वाला खेल है।
- ☐ दोहे/सुभाषित एकत्र करने, लिखने, प्रदर्शित करने मे रुचि ली।

रूपांकन 5

हमारी संस्कृति के प्रतीक

विधा का नाम– चित्राकन खेल

उद्देश्य

- ☐ भारत की प्राचीन कला, पुरातत्व चित्रकला, वास्तुशिल्प में अंकित विशेष चिन्हो को पहचानने की क्षमता बालको मे उत्पन्न करना।
- ☐ कला के प्रति आकर्षण बढ़ाना तथा सौन्दर्य-बोध विकसित करना।
- ☐ बालको की रचनात्मक प्रवृत्ति को उभारना।

शिक्षकों के लिए खेल-निर्देश और पूर्व तैयारी

- ☐ सलग्न सहायक सामग्री के चित्र तथा इस तरह के और भी चित्र 6 इंच × 6 इच आकार मे बनाए/बनवाएं।
- ☐ उनमे रग भरे/भरवाएं और 6 इच × 6 इंच आकार की दफ्ती (पुष्ठा) पर चिपकाएं।
- ☐ अब प्रत्येक चित्र पर 2 इंच × 2 इच पर पेंसिल से लाइनें खीचें। इस तरह समान आकार के नौ खाने बनेंगे।
- ☐ इसके बाद पेंसिल की लाईन पर से चित्र काट लें। इससे प्रत्येक चित्र के समान आकार के नौ टुकडे बनेंगे।
- ☐ ऐसे अनेक सेट बनाएं। एक सेट मे कुल चौवन कार्ड रहेंगे।

गतिविधि का क्रियान्वयन

प्रत्येक सेट के सभी चौवन कार्डो को अच्छी तरह मिलाएं। छ-छः बच्चों का समूह बनाकर एक सेट के सभी कार्ड उनमे समान सख्या में बाट दे। अब प्रत्येक अपनी बारी से एक-एक कार्ड खोलता जाए और जमीन पर (या टेबल पर) इस तरह रखता जाए कि सस्कृति चिन्हों के सभी नौ टुकडे यथास्थान लगकर चित्र पूरा बन जाए। शिक्षक प्रत्येक चिन्ह की जानकारी छात्रो को दें तथा बारी-बारी से छात्रो से पूछें। जिस छात्र से जितनी जानकारी मिले, उसे उतने अक दे।

बालकों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन

- ☐ एक साथ छ-छः आकृतियां पूरी करने के लिए आवश्यक मनोयोग प्रत्येक बालक में देखने को मिला।
- ☐ चिन्हों के बारे में जानकारी प्राप्त करने को बालक उत्सुक रहे।

छात्रों द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ "अरे, ये कार्ड यहां का है, वहां का नहीं।"
  "मेरे पास तो एक ही चित्र के कितने सारे कार्ड।"
  "वाह वा! मेरा तो चित्र बन गया।"
  छात्रों के सभी समूहो में ऐसा जोशीला शोर था।
- ☐ उन्हें चित्रो में रग भरने मे मजा आया।

शिक्षकों द्वारा प्रतिक्रिया

शिक्षकों ने बड़े ध्यान से संपूर्ण सहायक सामग्री बनाई। उन्होने

इसी खेल के लिए अन्य विषय भी सुझाए यथा– प्राकृतिक दृश्य, महापुरुष, तीर्थस्थल आदि। अपने-अपने विद्यालयों मे ऐसा खेल शुरू करने की वात कही।

रूपांकन 6

बहुरंगी है धरती हमारी

विधा का नाम– कार्ड का खेल

उद्देश्य

- ☐ खेल द्वारा पर्यावरण में प्रगाढता बढाना।
- ☐ राष्ट्रीय प्रतीको को पहचानना और उनके विषय मे जानकारी प्राप्त करना।
- ☐ वालकों की रचनात्मकता को बढाना।
- ☐ उनमे सौन्दर्य-बोध का बीजारोपण करना।

शिक्षको के लिए खेल-निर्देश और पूर्व तैयारी

- ☐ सहायक सामग्री की तालिका मे दर्शाए चित्र बनाए या छपे हुए एकत्र करें।
- ☐ कार्ड शीट में से ताश के पत्ते के आकार के टुकड़े बनाए या सस्ती-सी ताश की गड्डी ले।
- ☐ एक-एक कार्ड पर एक-एक चित्र चिपकाएं। ऐसे अनेक सेट बनाएं।

गतिविधि का क्रियान्वयन

छ.-छ. के समूह मे बालको को अलग-अलग बैठाकर कार्ड या एक-एक सेट उन्हे खेलने को दें। यहां खेलों के तीन प्रकार अंकित हैं– ● चित्र मिलाओ– कार्ड बराबर सख्या मे बच्चो मे बाटें। अपनी बारी आने पर प्रत्येक बालक कार्ड चलेगा। जैसे ही किसी फूलवाले कार्ड पर अगला बच्चा भी फूलवाला ही कार्ड डाले, तो नीचे डले सभी कार्डो का ढेर उसे उठाना होगा। ऐसा ही पक्षी वाले कार्ड पर पक्षी का वृक्ष वाले पर वृक्ष का पशु वाले पर पशु का आदि कार्ड पडने पर होगा। ● राष्ट्रीय प्रतीक पहचानो– प्रत्येक सेट में राष्ट्रीय प्रतीक कार्डो को सर्वश्रेष्ठ माना जाएगा। कार्ड बांटने के बाद अपनी बारी पर जो बालक राष्ट्रीय प्रतीक कार्ड चलेगा, उसे कार्ड मिल जाएंगे। ● पच-पंच-सरपच– सारे कार्ड दे। शेष कार्ड

बहुरंगी है धरती हमारी
सहायक सामग्री

पशु	*पक्षी*	*फल*	*फूल*	*वृक्ष*
बाघ	मोर	आम	कमल	बरगद
गाय	तोता	अमरूद	गुलाब	नीम
भैस	मैना	जामुन	गेन्दा	पीपल
बकरी	कोयल	संतरा	चमेली	गूलर
कुत्ता	कबूतर	अनार	मोगरा	बबूल
बिल्ली	कौआ	केला	चम्पा	अशोक
सूअर	मुर्गा	सीताफल	जूही	खजूर
घोडा	बगुला	पपीता	कनेर	महुआ
गधा	बत्तख	मौसमी	गुलदाऊदी	सागौन
ऊंट	चील	बेर	सूरजमुखी	कचनार
हिरण	बुलबुल	चीकू	पारिजात	गुलमोहर
हाथी	तीतर	सेब	पलाश	शीशम
खरगोश	टिटहरी	नाशपाती	बेला	चिनार

उलटकर बीच मे रखे। प्रत्येक बालक अपनी बारी से एक-एक कार्ड उठाकर पशु या पक्षी या फल, फूल या वृक्ष वाले पाच कार्डो का सेट बनाए। इस दौर में अनावश्यक अतिरिक्त कार्ड बीच के ढेर मे उलटकर रखते जाएं।

जो बालक सबसे पहले पांच सेट बनाए, उसे 25 अक मिलेगे। जो बालक अपने सेट मे राष्ट्रीय प्रतीक वाला कार्ड पाए, उसे 5 अक अतिरिक्त मिलेगे। कोई बालक भले ही सेट न बना पाए, किन्तु यदि उसके पास राष्ट्रीय प्रतीक वाले कार्ड हों, तो उसे प्रत्येक ऐसे कार्ड के अक 5 मिलेगे। लेकिन पांचों प्रतीक है, तो कुल 5 अंक मिलेगे।

बालकों के व्यवहार मे वांछित परिवर्तन

- ☐ बालक मिल-जुलकर खेलते रहे। इससे उनमे सहयोग की भावना बढ़ी।
- ☐ राष्ट्रीय प्रतीकों को स्पष्ट पहचानने लगे।
- ☐ फलो, फूलों, वृक्षो के बारे मे जान कर पर्यावरण और प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण बढा।
- ☐ पशु-पक्षियो की आदतो, खान-पान, रहन-सहन, उपयोगिता आदि के बारे मे जानने को उत्सुक हुए।

छात्रो द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ छात्रों को सभी खेल रोचक, मनोरंजक, जानकारीपूर्ण लगे।
- ☐ खेल पूरा होने पर वर्गश. कार्ड छाटने और सेट जमाने का एक स्वस्फूर्त खेल वे खेलते रहे।

शिक्षको द्वारा प्रतिक्रिया

- ☐ शिक्षकों ने इस विधा को बहु-कक्षा शिक्षण के लिए अत्यन्त उपयोगी बताया।
- ☐ उन्होने चित्र खोज लाने मे बडी मेहनत की और रुचि ली।
- ☐ इस विधा के खेलो के लिए "भाषा-लेखक-रचनाए-प्रान्त अथवा प्रदेश-नदी-पर्वत-प्रसिद्ध स्थान" जैसे सेट बनाने का सुझाव दिया।

विशेष अभिलक्षण

प्रथम स्तर– छात्रों के

विभिन्न खेल गतिविधियो के क्रियान्वयन के समय वालको के व्यवहार मे विशेष अभिलक्षण परिलक्षित हुए–

- ☐ बालकों ने अभिव्यक्ति दी–
  "मजा आ रहा है।"
  "अच्छा लग रहा है।"
  "और खिलाइए।"
  "अभी घर नहीं जाना है।"
- ☐ अन्य कक्षाओं के छात्र भी खेलों में सम्मिलित होने को लालायित दिखाई दिए।
- ☐ छात्रो ने खेल-सामग्री बनाने मे सहयोग दिया– वे खाली माचिस की डिब्बिया लाए। कार्डो पर कागज, चित्र आदि चिपकाते रहे। कार्डो मे रग भरते रहे। उन्होने सुभाषित लिखे। कार्डो पर सद्‌गुण लिखे।
- ☐ बालको को जीवन-मूल्यो सवधी खेल रोचक लगे।
- ☐ उन्होने खुलकर गीत गाए और याद किए।
- ☐ बालको ने "सद्‌गुण समेटो" अभिनय गीत भी याद किया।
- ☐ उन्होने उत्साहपूर्वक अभिनय किया।
- ☐ वालक, शिक्षकों के निर्देशो को ध्यानपूर्वक सुनते रहे और कहना मानते रहे।
- ☐ जीवन-मूल्यों संबधी खेल गतिविधियों मे अभिप्रेरित हो छात्रगण स्वेच्छा से धार्मिक महापुरुषो के चित्र ले आए और उन्हें प्रयोगकर्ता तथा सहपाठियो को दिखाते रहे।
- ☐ बालकों मे नागरिक दायित्व के भाव उत्पन्न हुए। उन्होने सहपाठियो को टोका– "नल बद करो", "कुत्ते को मत मारो"।

द्वितीय स्तर– सेवाकालीन शिक्षकों के

जीवन-मूल्य संबंधी विभिन्न खेल गतिविधियों के क्रियान्वयन के समय सेवाकालीन प्रशिक्षण मे उपस्थित शिक्षकों मे परिलक्षित विशेष अभिलक्षण–

- ☐ शिक्षको ने जीवन-मूल्य सबंधी परिचर्चाओं में उत्साह से भाग लिया।
- ☐ शिक्षकों ने जीवन-मूल्य संवधी खेलो मे स्वय खेलकर भाग लिया।
- ☐ शिक्षको ने सदगुण कार्ड बनाए, सुभाषित कार्ड बनाए।
- ☐ शिक्षकों ने माचिस की डिब्बियो से खेल-सामग्री का निर्माण किया।
- ☐ शिक्षको ने चित्र सकलित किए, गीत याद किए।

- ☐ शिक्षकों ने प्रतिवेदन में अपनी प्रतिक्रियाएं अंकित करते हुए इन खेलों को आनददायी, उपयोगी, सरल, उद्देश्य मे सफल आदि बताया।
- ☐ अपने-अपने विद्यालयो में जाकर शिक्षको ने ये खेल खिलवाए और बालकों पर उनके प्रभाव की सूचना पत्रों द्वारा भेजी।

मूल्यांकन

प्रथम स्तर

- ☐ जीवन-मूल्यों के संबध मे खेलो द्वारा बालको मे कितनी समझ विकसित हुई है इसे जाचने के लिए रशीदिया शासकीय माध्यमिक शाला के प्राथमिक वर्ग के 50 छात्रों को आलेख में रूपाकित ये सभी खेल खिलाए गए।
- ☐ इन खेलो मे प्राय. वे ही 50 छात्र सम्मिलित होते रहे जिन्हे इस अभिनव प्रयोग के लिए चुना गया था।
- ☐ जैसे-जैसे खेल रूपाकित होते रहे वैसे-वैसे उनका प्रयोग छात्रो पर किया जाता रहा।
- ☐ सहभागी छात्रों का मूल्यांकन करने के लिए उनसे "सार-सार को गहि रहे" नामक मूल्याकन पत्रक भरवाया गया।
- ☐ तीस मिनट की अवधि में छात्रो ने प्रश्न पढ़े, उन पर विचार किया और उत्तर अंकित किए।

छात्रों के लिए मूल्यांकन-पत्रक

"सार-सार को गहि रहे"

☐ सही भाव ग्रहण हेतु सही विकल्प पर निशान लगाएं।

- त्याग–
  - ★ जब हम चीजे वराबर बांट देते हैं।
  - ★ जब छोटे बच्चो को अधिक हिस्सा देते है।
  - ★ जब हम हमारे हिस्से को दूसरों को देते है।
- मानव प्रेम–
  - ★ पालको का बालकों से।
  - ★ अमीरों का गरीबों से।
  - ★ गुरु का शिष्य से।
  - ★ मनुष्य का मनुष्य से।
- सहयोग–
  - ★ वच्चों का एक साथ पढ़ना।
  - ★ वच्चों का साथ-साथ शोर मचाना।
  - ★ वच्चों का साथ-साथ काम करना।
- नियमितता–
  - ★ सड़क पर चलने के नियमों का पालन करना।
  - ★ प्रतिदिन अपने सभी काम ठीक समय पर करना।
  - ★ शासन के नियमों का विरोध न करना।
- एकाग्रता–
  - ★ किसी वस्तु को एकटक देखना।
  - ★ तन और मन सहित किसी बात मे ध्यान देना।
  - ★ एक के बाद एक किसी वस्तु को देखना।
- उत्तरदायित्व–
  - ★ किसी बात का उत्तर देना।
  - ★ उत्तर दिशा मे जाना।
  - ★ किसी बात की जिम्मेदारी उठाना।

☐ निम्नलिखित सद्गुणों में से तुम्हें सबसे अच्छे लगने वाले तीन गुणों पर निशान लगाएं–

- सच बोलना
- स्वच्छता पसद
- सहनशीलता
- निर्भीक
- दयालुता
- परिश्रमी
- ईमानदारी
- मानव प्रेम
- मधुर भाषी
- सादगी पसंद

☐ अपने मित्र में कौन से गुण चाहोगे? सही विकल्प पर निशान लगाएं–

- देश प्रेम और श्रद्धा
- साहस और निर्भीकता
- प्रेम और विश्वास
- स्मृति और जिज्ञासा

☐ सद्गुण अपनाने से जीवन पर कौन-सा प्रभाव पड़ेगा? सही विकल्प पर निशान लगाएं–

- हम धनवान बनेंगे।
- हम अच्छे इन्सान वनेंगे।
- हम स्वस्थ रहेगे।

● हम उत्तीर्ण होगे।

☐ तुम अपने परिवार के लोगों मे कौन-से सद्गुण पाते हो? खाली स्थान पर दो-दो सद्गुण लिखो–

माता– (1) . (2) .. . .
पिता– (1) .... (2) . . ..
भाई– (1) . . .... (1) .. ..
बहन–(1) ... . . . (1) .. ..

छात्र का नाम .. ..
कक्षा . . . .
कक्षाध्यापक का नाम . . . .
विद्यालय का नाम . . . .

छात्रों के लिए मूल्यांकन-पत्रक के सही उत्तर

अ– क-3, ख-4, ग-3, घ-2, ड-2, च-3

आ– छात्र अपनी पसंद के कोई भी तीन गुण इस तरह (✓) चिन्हित करेगे।

इ–3

ई–2 सद्गुण अपनाने का प्रभाव– हम अच्छे इन्सान वनेंगे।

उ– माता, पिता, भाई, वहन मे विद्यमान सद्गुणो को पहचान कर छात्र अपने मन से उनके दो-दो गुणों को अकित करेंगे।

द्वितीय स्तर

☐ सेवाकालीन शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु जुलाई 1994 से नवम्बर 1994 तक 8 प्रशिक्षण शिविर हुए। उनमे सम्मिलित 170 शिक्षको ने क्रमश· विकसित होती आलेख की खेल-गतिविधियों में भाग लिया।

☐ अतिम समूह के 50 प्राथमिक शिक्षको को सभी खेलो का परिचय दिया गया तथा विधिया समझाई, जाकर खेल सिखाए गए।

☐ "जीवन-मूल्यो का खेलो द्वारा विकास" सम्भव है, इस अवधारणा के प्रति शिक्षको का नजरिया जानने के लिए "किसने कितना समझा" नामक मूल्यांकन-पत्रक भरवाए गए। इन पत्रकों के अंत में शिक्षको ने अपने अभिमत भी अंकित किए है।

सेवाकालीन शिक्षकों के लिए मूल्यांकन-पत्रक

शिक्षक का नाम .. ..
विद्यालय का नाम .. . .

उचित विकल्प ढूंढ़ कर सही का निशान लगाए–

☐ सभी धर्मो का सार
- ईश्वर के समीप पहुचना है।
- मनुष्य मे मानवीय मूल्यों का विकास करना है।
- मनुष्य को विरक्त बनाना है।

☐ बालको को मूल्य-विकास के खेल खिलाने से
- शिक्षण-कार्य में कठिनाई होगी।
- शिक्षण-कार्य आनंददायी बनेगा।
- शिक्षण का उपयोग नही होगा।

☐ असंज्ञानात्मक पक्ष के विकास कार्यक्रम को शाला की अनिवार्य गतिविधि बनाना चाहिए, क्योकि वे
- शिक्षण कर सकते है।
- परिवार पर निर्भर है।
- समाज की जिम्मेदारी है।

☐ जीवन-मूल्यों की समझ छात्र शीघ्र ग्रहण कर सकेंगे–
- नियमित खेलों से।
- सामाजिक कार्यक्रमों से।
- कक्षा-शिक्षण से।

☐ मूल्य-परक शिक्षा में शिक्षक सहयोग दे सकते हैं, क्योंकि
- उनके पास छात्र है।
- उनके पास समय है।
- उनके पास समझ है।

☐ मूल्य-विकास सबंधी गतिविधियों से
- शाला का समय नष्ट होगा।
- शाला-समय कम पडेगा।
- शाला-समय का सदुपयोग होगा।

☐ जीवन-मूल्यों के खेल खिलाने से
- छात्र शाला से भाग जाएगे।
- छात्र उत्साह से भाग लेगे।
- छात्र अनियन्त्रित हो जाएगे।

☐ विद्यालय में मूल्य-विकास की गतिविधियों का आयोजन करने से
- छात्रों का व्यापक मूल्याकन सरलता से किया जा सकेगा।
- छात्र अच्छे खिलाडी बनेंगे।
- छात्रों का पढ़ने में मन लगेगा।

☐ बालको में जीवन-मूल्यों का विकास करने के लिए
- गतिविधियों का बार-बार आयोजन आवश्यक है।
- पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर रहना उचित है।
- वार्षिक स्नेह-सम्मेलन ही काफी है।

☐ मूल्य-विकास के खेलों से दक्षता आधारित शिक्षण में सहायता मिल सकती है। क्योंकि
- इन खेलों से बालको में कई दक्षताएं बढ़ाई जा सकती है।
- दक्षताएं पुस्तको से बढ़ाई जा सकती हैं।
- दक्षताएं केवल कक्षा-शिक्षण से ही बढ़ाई जा सकती हैं।

☐ मूल्य-संबंधी खेल बाल-केन्द्रित शिक्षण के लिए भी सहयोग देगे क्योंकि
- इसमे सभी वालक सहभागी होते हैं।
- खेलो से बालक ऊब जाते है।
- खेलो से परीक्षा देना सरल होगा।

☐ शिक्षक का अभिमत
- ....
- ....
- ....

आदि

शिक्षक का नाम ....

विद्यालय का नाम ....

सेवाकालीन शिक्षकों के लिए मूल्यांकन-पत्रक के सही उत्तर

1-ख, 2-ख, 3-क, 4-क, 5-ग, 6-ग, 7-ख, 8-क, 9-क, 10-क, 11-क।

आंकड़ों का विश्लेषण

प्रथम स्तर– सार-सार को गहि रहे

एक प्रश्न मे सद्गुणों के प्रति बालकों की विकसित रुचि का मूल्याकन करने के लिए दस सद्गुणों की सूची उन्हें दी गई। उनमें से अपनी पसंद के तीन गुणों का चयन छात्रो को करना था। परिणाम निम्नांकित रहे–

अनुक्रम	*सद्गुण*	*कुल छात्र*	*छात्र प्रतिशत*
1	सच बोलना	48	96%
2	ईमानदारी	46	92%
3	दयालुता	13	26%
4	मधुरभाषिता	11	22%
5	परिश्रम	10	20%
6	सहनशीलता	10	20%
7	मानव प्रेम	9	18%
8	स्वच्छता पसदगी	2	4%
9	निर्भीकता	–	0%
10	सादगी पसंदगी	–	0%

पीछे की तालिका से स्पष्ट होता है कि सद्गुणो के चयन मे छात्रो ने ''सच बोलना'' को प्राथमिकता के आधार पर पसद किया तथा ''ईमानदारी'' को द्वितीय वरीयता दी।

- इन आंकडों से सिद्ध होता है कि ''सच बोलना'' और ''ईमानदारी'' इतने प्रमुख गुण है कि बालकों ने उनके भाव को सहज ही ग्रहण किया।
- अन्य प्रश्न में ''मित्र मे कौन-से गुण चाहोगे'' यह पूछे जाने पर 66% बालको ने ''प्रेम और विश्वास''गुणो को अंकित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि बालकों मे एक अच्छे दोस्त के सही गुणो की पहचान विकसित हुई।
- सद्गुणों का जीवन पर क्या प्रभाव पडता है इस प्रश्न के विकल्प मे 66% बालको द्वारा ''अच्छा इसान बनेगे'' का चयन यह स्पष्ट करता है कि बालको को अच्छाइयां समेटने की प्रेरणा प्राप्त हुई है।
- प्राय. सभी बालको में अपने परिजनो के गुणो को परखने की समझ पाई गई। वे अपनी अटपटी और त्रुटिपूर्ण भाषा में भी माता-पिता, भाई और बहन मे देखें गए गुणो को अंकित कर सके जैसे– प्यार, स्नेह, ममता, झूठ न बोलना, मीठा बोलना, ईमानदारी, परिश्रमी, निडर, सफाई पसंद, मानव-प्रेम, आदर, मेहनती आदि।
- बालको मे असज्ञानात्मक पक्ष के विकास हेतु सद्गुण-शब्दो का सही भाव ग्रहण करने की क्षमता को जाचने पर छात्रो ने जो उत्तर दिए उनके आकडे यह विश्लेषण प्रस्तुत करते है कि बालको के अबोध मन पर जीवन-मूल्य सबंधी खेलों का ऐसा प्रभाव पडा है कि उन्होने मानव-प्रेम, सहयोग, एकाग्रता, नियमितता, उत्तरदायित्व और त्याग जैसे गभीर शब्दो के भावों को भी सहजता से ग्रहण कर लिया है।
- ''खेल-खेल में जीवन-मूल्यो का विकास'' का मूल्याकन और आंकड़ों का विश्लेषण यही स्पष्ट करते है कि बार-बार अभ्यास के दोहराने पर जडमति तक सुजान हो सकता है, तो फिर अबोध बालक भी खेलो के बार-बार दोहराए जाने से अवश्य ही सद्गुणों को अपनाने की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

द्वितीय स्तर–किसने कितना समझा

सेवाकालीन शिक्षको को जीवन-मूल्यो के खेलो के बारे मे सही विकल्प पर (✓) चिन्ह अंकित करने हेतु 11 प्रश्न दिए गए। उनके परिणाम निम्नानुसार रहे–

तालिका से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक अर्थात् शत-प्रतिशत उत्तर प्रश्न 2 तथा प्रश्न 10 के रहे।

- प्रश्न 2 के उत्तर के सदर्भ मे यह स्पष्ट हुआ कि सभी शिक्षक वर्तमान शिक्षण-पद्धति में आनंद

सद्गुणों की तालिका

अनुक्रम	सद्गुण	सही विकल्प	छात्र सख्या	प्रतिशत
1	मानव प्रेम	मनुष्य का मनुष्य से	44	88%
2	सहयोग	बच्चो का साथ-साथ काम करना	42	84%
3	एकाग्रता	तन और मन सहित किसी बात में ध्यान देना	42	84%
4	नियमितता	प्रतिदिन अपने सभी काम ठीक समय पर करना	38	76%
5	उत्तरदायित्व	किसी बात की जिम्मेदारी उठाना	37	74%
6	त्याग	जब हम हमारे हिस्से का दूसरो को देते है	36	72%

अनुक्रम	प्रश्न क्रमांक	शिक्षक सख्या	प्रतिशत
1	2	50	100%
2	10	50	100%
3	7	49	98%
4	9	48	96%
5	3	47	94%
6	4	46	92%
7	6	45	90%
8	5	40	80%
9	8	40	80%
10	1	38	76%
11	11	30	60%

की कमी अनुभव करते है और शिक्षण को आनददायी बनाने के लिए मूल्य सबधी खेलो को अत्यन्त उपयुक्त समझते है।

- इसी तरह प्रश्न 10 के शत-प्रतिशत सही उत्तरों से इस बात की पुष्टि होती है कि बालको में दक्षताए विकसित कराने मे फिलहाल जो कठिनाई अनुभव होती है उसे जीवन-मूल्यों के खेल एकदम आसान बना देते है।
- प्रश्न 7 के 98 प्रतिशत सही उत्तरो से शिक्षकों के इस विश्वास की अभिव्यक्ति होती है कि जीवन-मूल्यो के खेल बालकों में उत्साह का संचार कराएगे।
- बालको मे जीवन-मूल्यो के विकास के लिए गतिविधियो का बार-बार आयोजन होना प्रश्न 9 के 96 प्रतिशत उत्तरों ने आवश्यक माना है।
- प्रश्न 3 सें 94 प्रतिशत सही जवाबो मे शिक्षकों के उस आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति है, जिससे वे असंज्ञानात्मक पक्ष के विकास कार्यक्रमो को शाला की अनिवार्य गतिविधि इसलिए वनाना चाहते हैं क्योंकि उन्हे वे स्वय कर सकते है।
- छात्रो में जीवन-मूल्यों की समझ के विकास के लिए प्रश्न 4 के 92 प्रतिशत सही उत्तरदाता शिक्षक नियमित खेल खिलाते रहना आवश्यक समझते है।
- जीवन-मूल्य विकास सबंधी गतिविधियो से शाला-समय का सदुपयोग होगा, यह मान्यता है, प्रश्न 6 के 90 प्रतिशत सही उत्तरदाता शिक्षको की।
- प्रश्न 5 के 80 प्रतिशत सही उत्तर शिक्षकों के उस आत्मविश्वास को पुनः व्यक्त करते है कि मूल्यपरक शिक्षा में शिक्षक इसलिए सहयोग दे सकता है क्योंकि उसके पास समझ है।
- छात्रो का व्यापक मूल्याकन सरलता से कर पाने के लिए प्रश्न 8 के 80 प्रतिशत सही विकल्पदाता शिक्षक जीवन-मूल्य विकास गतिविधियों की आवश्यकता महसूस करते हैं।
- प्रश्न 10 के 76 प्रतिशत सही उत्तर यह स्वीकारते है कि सभी धर्मों का सार मानवीय मूल्यो का विकास करना है।
- अन्य प्रश्नो की तुलना मे प्रश्न 11 का 60 प्रतिशत सही विकल्प (यद्यपि प्रथम श्रेणी की उपलब्धि है, फिर भी) न्यूनतम होना इस बात की ओर इशारा करता है कि बाल-केन्द्रित शिक्षा मे बालकों के सहयोग और सहभागिता की बात स्पष्ट नहीं हो सकी है। शिक्षक बाल केन्द्रित शिक्षा की अवधारणा ग्रहण नही कर सके हैं।

शिक्षकों का अभिमत

छात्रो का खेलो द्वारा जीवन-मूल्यों के प्रति आकर्षण बढ़ाने के लिए, खेल-खेल मे ही मूल्यों को समझने व आत्मसात् करने के लिए और खेल-माध्यम से ही मूल्यो के लिए लगाव बढ़ाते हुए उन्हे बालको में पुष्ट करने के लिए शिक्षको के विचार जाने गए। साथ ही जीवन-मूल्यो सबंधी खेलों के अनुभव से शिक्षक किस तरह प्रभावित हैं इसकी जानकारी प्राप्ति हेतु उन्हें अपने अभिमत अंकित करने के लिए कहा गया।

प्रस्तुत है उनमे से कुछ अभिमत—

- बालको को ये खेल खिलाकर पढ़ाने से उनका मनोरजन भी होगा साथ ही तनाव, गम, चिन्ता,

ईर्ष्या, बैर आदि तमाम दुर्गुणो को वे भूल सकेगे। (निर्मला पचौरी)

- ☐ सभी खेलो मे सद्‌गुण समेटो खेल सबसे अच्छा लगा। सद्‌गुणों की पहचान इस खेल से आसानी से कराई जा सकती है। (पुष्पलता कुलकर्णी)
- ☐ मूल्य-शिक्षा के लिए बालकों को सीख देने के बजाय इन रोचक खेलो के माध्यम से उनकी समझ को शीघ्र बढाया जा सकेगा। यह तरीका प्रभावपूर्ण है। (सरोज भारद्वाज)
- ☐ चूंकि खेल बच्चो को भाते है, अत खेल-खेल मे जो भी शिक्षा बच्चों को दी जाएगी, उन्हे अच्छी तरह याद रहेगी। खेलो द्वारा मूल्यपरक शिक्षा ज्यादा उपयोगी होगी। (सरिता जाधव)
- ☐ मूल्य-शिक्षा प्राप्त कर बालक सर्वागीण रूप से विकसित होकर एक पूर्ण व्यक्तित्व एव इसान बनकर समाज में पहुचेगा। (मोहम्मद सोहेल सिद्दिकी)
- ☐ गीत के, खेल के माध्यम से बालको को अच्छे-बूरे की पहचान सरलता से करा सकते है। (राम प्रकाश लहरिया)
- ☐ ये खेल कुछ अलग है। इन खेलो से बच्चे चरित्रवान और सद्‌व्यवहारी बनेंगे। उनमें महत्वपूर्ण मूल्य जैसे सदाचार, प्रेम, शाति आदि गुणो का विकास होगा (सुधा तिगनाथ)
- ☐ मूल्य संबंधी खेलो से चारित्रिक और नैतिक मूल्यों की बालको में वृद्धि होगी। पाठ्‌यपुस्तक का भार कम होगा। शिक्षक-छात्र दोनों ही एक-दूसरे के निकट आएगे। (दुर्गा दुवे)
- ☐ जीवन-मूल्यों के इन खेलो से बालकों का विद्यालय की ओर आकर्षण बढ़ेगा। (चन्द्रलता जैन)
- ☐ जीवन-मूल्यो के इन खेलों से बालक अच्छी वाते जल्दी ग्रहण करेगे। (गणेशकुमार श्रोत्रिय)
- ☐ आज के नैतिक पतन के जमाने में जीवन-मूल्यो की शिक्षा देना नितांत आवश्यक है। (मंगला नाईक)
- ☐ जीवन-मूल्यो का छात्रों मे विकास करने के लिए शिक्षक को सतत् प्रयत्नशील रहना आवश्यक है और ये खेल शिक्षक के प्रयत्नो को सरल बनाएंगे। (मनोहरलाल पाण्डेय)
- ☐ मैं अपनी शाला मे सद्‌व्यवहार और अनुशासन की शिक्षा पहली बार इन खेलो द्वारा ही दूगी। (हेमलता सिन्धी)
- ☐ मै इन खेलों के माध्यम से बालको मे स्फूर्ति-संचार करने का प्रयास करूंगा। (रामचरण गोयल)
- ☐ हम अपने विद्यालय में मूल्य-शिक्षा के खेलो में सभी धर्मो के उद्देश्य और अच्छी बाते बताएगे। (किरण सक्सेना)

उपलब्धियां

खेल-खेल मे जीवन-मूल्यों के विकास के लिए प्रस्तुत अभिनव प्रयोग की उपलब्धि इस प्रकार रही—

- ☐ छात्र खेल गतिविधियो मे इतने आत्मविभोर हो गए कि उनके मुख से अनायास ही ये उद्‌गार निस्तृत होते रहे—

  "मजा आ रहा है।"
  "अच्छा लग रहा है।"
  "और खिलाइए।"
  "अभी घर नहीं जाना।"

उनकी इन आडम्बरहीन, उन्मुक्त अभिव्यक्तियो से प्रतीत हुआ कि अपनी शाला के प्रति उनका आकर्षण वढ़ा।

- ☐ "सद्‌गुण समेटो" खेल खेलते समय सद्‌गुण कार्ड मिलते ही बालको के चेहरे पर सहसा ही उभर उठती चमक हर बार स्पष्ट कर देती कि वे शब्द के भावार्थ को पूरी तरह ग्रहण कर रहे हैं।
- ☐ खेल-गतिविधियां मात्र चौथी और पांचवी कक्षाओं के छात्रों से कराई गईं जिन्हें देखकर अन्य कक्षाओ के छात्र भी इन गतिविधियों मे सम्मिलित होने के लिए अभिप्रेरित हुए।
- ☐ अभिनय-गीत और खेलों के माध्यम से बालकों को आत्मप्रकाशन का अवसर मिला और आत्मप्रकाशन से उनका आत्मविश्वास बढ़ा।
- ☐ बालकों ने खेल सामग्री वनाने में जो सहयोग दिया उससे उनकी रचनात्मक तुष्टी हुई और इस कार्य में उनकी तल्लीनता देखकर स्पष्ट हुआ कि बालकों

में एकाग्रता विकसित करने का यह एक उत्तम माध्यम है।

- बालको का अपने से छोटे बालक को यह कहकर टोकना कि –"कुत्ते को मत मारो", "नल बंद करो" आदि –उनमें विवेक जागृति का, पशु के प्रति दयालुता का, नागरिक दायित्व के विकास का परिचायक कहा जा सकता है जो उनमें "सत्य वचन, गुरु सत्य वचन" खेल मे उनकी सहभागिता से जागृत हुए।
- "तेरे नाम अनेक, तू एक ही है" खेल से बालकों मे जगी सर्व-धर्म समभाव की भावना की झलक तब मिली, जब वे विभिन्न धर्मो के महापुरुषो के चित्र स्वय ही संकलित कर लाए। इसी तरह विभिन्न धर्मो के महत्वपूर्ण पर्व कैसे मनाए जाते हैं, यह जानने की जिज्ञासा व्यक्त की।
- "बहुरंगी है धरती हमारी" यह खेल बालकों मे राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का प्रथम पायदान बना। उन्हे राष्ट्रीय संपदा, राष्ट्रीय प्रतीकों की जानकारी मिली। फलों, फूलों, वृक्षो, पशुओ और पक्षियो मे उनकी पहचान बढी।
- बालकों में सौन्दर्य बोध का विकास करने में "हमारी संस्कृति के प्रतीक" खेल बड़ा उपयोगी रहा। इन प्रतीक-चिन्हों के चित्रों में रंग भरने मे बालको ने मिलकर विभिन्न रंगों से भरा। इससे उनमें परस्पर मित्रता, विश्वास और भाईचारे की भावना प्रकट हुई।
- "दीवार से दिल तक पहुंचे" खेल ने बालको को सुभाषितो से कक्ष-सज्जा में शिक्षकों को सहयोग दिया। सुभाषित और सूक्ति वाक्य उन्होंने याद भी किए अर्थात् बालको में सूक्तियों के भावार्थ ग्रहण करने की क्षमता, सहयोग और सौन्दर्य-बोध तथा स्मृति की प्रखरता विकसित करने मे यह खेल उपयोगी है।

इन उपलबिधयों से यह विश्वास होता है कि बालकों में जीवन-मूल्यों का विकास खेलों द्वारा अधिक आसान, अधिक स्वाभाविक है।

विद्यालयो मे शिक्षक बन्धु यदि ऐसे खेलो द्वारा प्रयोग करते रहें, क्रियान्वयन द्वारा बालको को अवसर देते रहें, ऐसी गतिविधियों का नियमित आयोजन करते रहें, तो बालकों को जीवन-मूल्यों को समझने, ग्रहण करने, उन पर विश्वास कर सकने, उन्हे परिपुष्ट करने का अवसर मिलेगा और वे जीवन-मूल्यों के प्रति आस्था रखते हुए उन्हे आत्मसात् करने की ओर अग्रसर होगे।

शैक्षिक उपादेयता

- खेल-खेल में जीवन-मूल्यो का विकास एक सही विधा है। इन खेलो द्वारा बालक पर बस्ते का बोझ बढ़े विना भी नैतिक मूल्यो की शिक्षा उन्हे दी जा सकती है।
- ये खेल सीमित स्थानों में भी खेले जा सकते है। कुछ खेल तो बच्चे कक्षा में भी खेल सकते हैं।
- इन खेलों की अधिगम सामग्री बनाने मे छात्रो की मदद लेने से उनकी रचना-प्रवृत्ति तुष्ट होती है।
- इन खेलों की साधन-सामग्री के निर्माण में अनुपयोगी हो चुकी अतिरिक्त वस्तुओं यथा– कापियों के कवर के गत्ते, गत्ते के डिब्बे, कलैण्डर, पत्र-पत्रिकाओं आदि से विविध विषयों के रंगारंग चित्र, खाली माचिस की डिब्बियां आदि का उपयोग करते हुए अल्पतम व्यय करते हुए "निर्मूल्य से निर्मित" का गुर सिखाया जा सकता है।
- ये खेल बालको की न्यूनतम दक्षताए जैसे–सुनना, बोलना, पढना, लिखना आदि के विकास में सहायक होगे।
- चूंकि इन सभी खेलों मे कक्षा के सभी वच्चो की सहभागिता एक साथ होती है। अत: इन खेलो से शिक्षको पर बाल-केन्द्रित शिक्षा का मूलभाव भी स्पष्ट होगा।
- इन खेलो से शाला की गतिविधियां अत्यन्त रोचक बन सकती है। शिक्षा की एकरसता अथवा नीरसता समाप्त की जा सकती है। फलस्वरूप शाला मे नियमित उपस्थित रहने में वालक की रुचि बढ़ेगी। शाला के प्रति उसका आकर्षण बढ़ेगा।

- पारस्परिक खेलो मे एक बार में कुछ ही बच्चे भाग ले पाते है और शेष अपेक्षित रह जाते है। जीवन-मूल्य विकास के खेलो मे एक भी बालक ऐसी उपेक्षा का शिकार नही होता। इसलिए सभी बच्चे समान रूप से उत्साहित बने रहते है।
- वालको मे उत्साह, उत्सुकता उत्फुल्लता, स्फूर्ति का सचार कराने वाले ये खेल जीवन-मूल्यों को समझने, ग्रहण करने, उनके प्रति विश्वास रखने और उन्हें आत्मसात् करने की प्रेरणा बनेंगे।

सुझाव

- बालको मे खेल-खेल मे जीवन-मूल्यों का विकास करने के लिए इस आलेख में रूपांकित मात्र सात खेल ही पर्याप्त नहीं ऐसे और भी खेल विकसित किए जाने चाहिए।
- जीवन-मूल्यो के विकास के लिए खेल सही क्रिया है। इसके साथ ही गीत, अभिनय, रूपक आदि को सबद्ध कर वालको के स्तर के अनुसार उन्हे और भी रोचक बनाते रहना चाहिए।
- ऐसे अनेक खेल विकसित करने के लिए मूल्य संबधी न्यूनतम दक्षताओ का भी निर्धारण आवश्यक है। इस क्षेत्र मे चिन्तन और साथ ही कार्य भी करते रहना जरूरी है।
- विचारको, शोधकर्ताओ द्वारा जैसे ही खेलो का विकास किया जाए, वैसे ही तुरन्त ही उसकी जानकारी शिक्षकों को दी जाए।
- जीवन-मूल्यों के विकास हेतु कार्यशालाओ का आयोजन सतत् होता रहे।
- सेवाकालीन प्रशिक्षण में शिक्षको को मूल्यों के विकास हेतु बनाए गए खेलों से अवश्य परिचित कराया जाए, उन्हें उन खेलो को स्वयं खेलकर और खिलाकर देखने का अवसर दिया जाए ताकि उनकी प्रासंगिकता और प्रायोगिकता को शिक्षक स्वयं भी ग्रहण कर सकें।
- सेवाकालीन शिक्षकों से जीवन-मूल्यो के विकास की खेल सामग्री बनाए जाने का प्रायोगिक कार्य भी अनिवार्य रूप से करवाया जाए।
- वालकों में जीवन-मूल्यो के विकास हेतु नए-नए खेल बनाने मे प्रतियोगिता शिक्षकों के शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम मे रखी जाए। इससे शिक्षको को इस दिशा में चिन्तन और कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी।
- बालकों मे जीवन-मूल्यों के विकास के लिए ऐसी गतिविधियां आयोजित करते रहने हेतु शिक्षकों को सतत् प्रयत्नशील रहना होगा।
- शिक्षक इन खेलों की पूर्व तैयारी भी करे और इन गतिविधियो के काल-खंडो मे समय व्यर्थ न गवाएं।
- नैतिक शिक्षा की पुस्तको के सहारे बालकों का नैतिक विकास करने के बजाए इन खेलों द्वारा नैतिक विकास के सोपानो पर बढ़ा जाए। इसके लिए जीवन-मूल्यो सबधी इन खेलो को समय-विभाग चक्र में अनिवार्य स्थान दिया जाए। ❑❑

डाइट, जहांगीराबाद
भोपाल, मध्य प्रदेश

मोर गणित विधि

❑ विनोद साहू 'ब्रिलियन्ट'

गणित रुचिकर विषय है, जिसे बच्चों के लिए रोचक बनाना कठिन कार्य है। मगर थोड़े प्रयासो से इसे आसान व रोचक बनाया जा सकता है। गणित का सबसे महत्वपूर्ण आधार गिनती या अक हैं। अक ज्ञान के बिना छोटे-से-छोटे गणित को हल करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अत सर्वप्रथम बच्चो को अंक ज्ञान कराना अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य को लेकर मोर गणित विधि तैयार की गई है। आशा है कि इस विधि के अध्ययन से छात्र अत्यधिक लाभान्वित होगे।

उद्देश्य

★ छात्रों का अकों से रोचक परिचय व जिज्ञासा उत्पन्न करना और गणित का भय दूर करना।
★ अंको का क्रमबद्ध ज्ञान कराना।
★ अंक और सख्या में अतर स्पष्ट करना।
★ सख्याओ की पूर्व एव पश्च संख्याओं का ज्ञान कराना।
★ अंकों के बढ़ते व घटते क्रम का ज्ञान कराना।
★ गणित की विभिन्न संक्रियाओ का ज्ञान देना।
★ इकाई, दहाई, सैंकडा का परिचय देना।

समस्या

★ अको (संख्याओ) की पहचान न होना।
★ सख्याओ की पूर्व एव पश्च संख्याओ को न लिख पाना।
★ स्थानीय मान का ज्ञान न होना।

मौखिक शब्द भण्डार

एक, दो, तीन, चार.... एक सौ तक मुखाग्र बोलना।

मोर गणित विधि का उपयोग (प्रदर्शन एवं शिक्षण)

मोर गणित विधि बच्चो मे जिज्ञासा उत्पन्न करने की दृष्टि से रोचक बनाने का प्रयास है। पखो की सख्या 10 के आधार पर बनाई गई है जो अत्यन्त सरल व रुचिकर है। इसमे उपयोग में लाई जाने वाली सामग्री को तीन भागो में बांटा गया है।

गणित रुचिकर विषय है, जिसे बच्चों के लिए रोचक बनाना कठिन कार्य है। मगर थोड़े प्रयासों से इसे आसान व रोचक बनाया जा सकता है। गणित का सबसे महत्वपूर्ण आधार गिनती या अंक हैं। अंक ज्ञान के बिना छोटे-से-छोटे गणित को हल करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अतः सर्वप्रथम बच्चों को अंक ज्ञान कराना अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य को लेकर मोर गणित विधि तैयार की गई है। आशा है कि इस विधि के अध्ययन से छात्र अत्यधिक लाभान्वित होंगे।

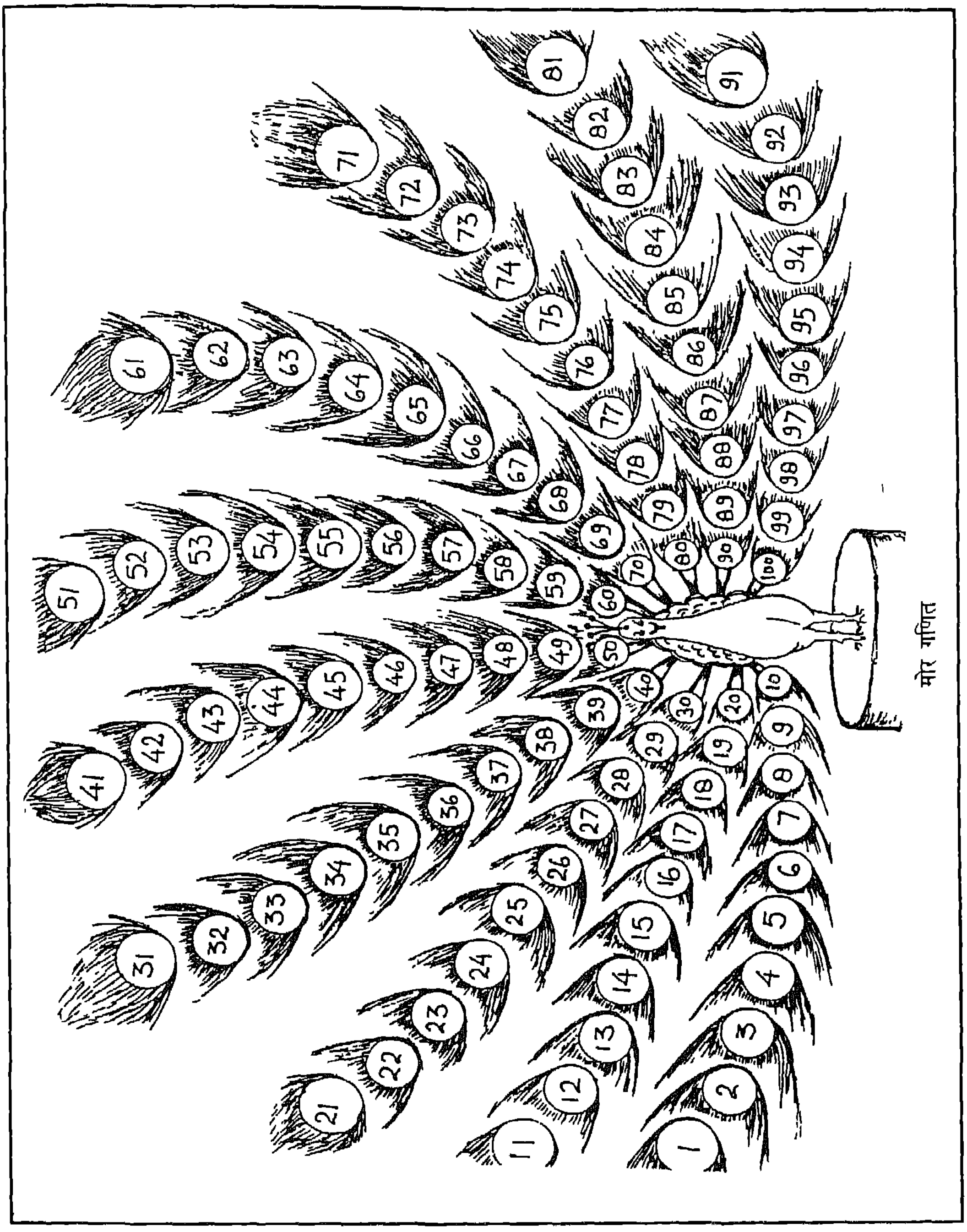
सामग्री भाग A व B का उपयोग

सर्वप्रथम उपकरण मोर गणित में थर्माकोल शीट A के नीचे कार्ड बोर्ड B रखकर सारे गोले को बिल्ले (ढक्कन) से बंद कर देते है। केवल पहला मोर पख जिसमें 1 से 10 तक गिनती लिखी गई है, को बिल्लों रहित रखेगे। अब मोर पख, में 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10 तक अंक दिखाई देंगे।

मोर गणित का पहला मोर पंख– (1 से 10 तक अक परिचय, पढ़ना-लिखना और समझना) छात्र से मोर पंख की पहली लाइन मे 1 से 10 तक सीधी गिनती पढ़वाएं। अच्छी तरह समझने के बाद 10 से 1 तक उल्टी गिनती पढ़वाएं। फिर 1 से 10 तक सीधी गिनती लिखने हेतु बार-बार अभ्यास करवाए।

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10

अभ्यास करने के बाद 10 से 1 तक उल्टी गिनती लिखने हेतु बार-बार अभ्यास करवाए।



मोर गणित

10, 9, 8, 7, 6, 5, 4, 3, 2, 1

अध्यापक छात्रों को बताए कि गिनती के इन चिन्ह या सकेतो को "अंक" कहते है। एक अंक की सबसे छोटी संख्या 1 है। एक अक की सबसे बड़ी सख्या 9 है। दो अंक की सबसे छोटी सख्या 10 है। पहला मोर पख पूर्ण होने पर छात्रो से मौखिक प्रश्न किया जाना चाहिए।

परीक्षण 1

- ☐ 3 और 7 के मध्य कौन-सी सख्याए है? उत्तर— 4, 5, 6
- ☐ 5 के बाद कौन-सी संख्या है? उत्तर— 6
- ☐ 7 के बाद कौन-सी संख्या है? उत्तर— 8
- ☐ 9 के पहले कौन-सी संख्या है? उत्तर— 8
- ☐ संख्या 10 मे कितने अंक हैं? उत्तर— 2

सामग्री भाग C का उपयोग

अंको की पहचान— उपकरण का कार्ड बोर्ड B अलग कर, कार्ड बोर्ड C लगा दें, जिससे अब उपकरण मे 1 से 10 तक काले रग के गोले दिखाई देगे। अंको की पहचान (परीक्षण) हेतु अंक 4 एव 7 का स्थान किस गोले मे होगा? यह बताने हेतु छात्र को बिल्ले 4 और 7 दीजिए। छात्र द्वारा 1 से 7 तक पढ़कर क्रमश चौथे और सातवें गोले में बिल्ले लगाने पर यह परीक्षण सफल हो जाएगा।

अभ्यास— 1 से 10 तक गिनती छात्र से लगातार पांच वार लिखवाए।

श्यामपट्ट कार्य— शब्दों को पढ़कर अको में लिखवाए।

एक	—	1
दो	—	2
तीन	—	3
चार	—	4
पाच	—	5
छ:	—	6
सात	—	7
आठ	—	8
नौ	—	9
दस	—	10

9 +1
10

दहाई (10)	इकाई (1)
	9 +1
1 10 दहाइयां	10 इकाइयां या 1 दहाई
1	0

मूल्याकन— निम्न प्रश्नों के उत्तर उनके सामने लिखिए।

- ☐ 3 और 8 के बीच कौन-कौन-से अक आते है?
  उत्तर— 4, 5, 6, 7
- ☐ 4 के बाद कौन-सी सख्या है? उत्तर— 5
- ☐ 7 के वाद कौन-सी सख्या है? उत्तर— 8
- ☐ 1 से 10 तक गिनती लिखिए।
  उत्तर— 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10
- ☐ 10 से 1 तक गिनती लिखिए।
  उत्तर— 10, 9, 8, 7, 6, 5, 4, 3, 2, 1
- ☐ 5, 7 और 9 को शब्दों मे लिखिए।
  उत्तर— 5 = पांच, 7 = सात, 9 = नौ

मोर गणित का दूसरा मोर पख— (11 से 20 तक गिनती पढना, लिखना, समझना)

पुन: शीट A के नीचे कार्ड बोर्ड B को रखकर दूसरे मोर पख के सभी बिल्लो को निकाल ले। अब उपकरण मे— 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20 तक गिनती लिखी दिखाई दे रही हैं।

शिक्षण संकेत

जब दहाई मे अक 1 आए, तब छात्रो को नियम— रह आए 1 पर समझाएं।

मोर पख मे 11 से 20 तक सीधी गिनती पढवाए।

1 पर 1, 11 (ग्यारह), 1 पर 2, 12 (बारह), 1 पर 3, 13 (तेरह), 1 पर 4, 14 (चौदह), 1 पर 5, 15 (पन्द्रह), 1 पर 6, 16 (सोलह), 1 पर 7, 17 (सत्रह), 1 पर 8, 18 (अठारह), 1 पर 9, 19 (उन्नीस), 2 पर 0, 20 (बीस)।

शिक्षण संकेत

अक अच्छी तरह समझने के बाद अध्यापक छात्र से 20 से 1 तक उल्टी गिनती पढवाए। फिर 1 से 20 तक गिनती लिखने हेतु बार-बार अभ्यास करवाए। इसके पश्चात् 20 से 1 तक उल्टी गिनती लिखने हेतु बार-बार अभ्यास करवाए। इसके पश्चात् अक और संख्या मे अन्तर समझाए।

अंक

- अंकों की संख्या दस निश्चित है।
- 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, और 9 गिनती के इन अकेले चिन्ह या सकेतो को अक कहते है।

संख्याएं

- सख्याए असीमित होती हैं।
- अको की सहायता से संख्याएं बनती हैं जैसे 10, 11, 25, 80, 99, 100 .. . . आदि को सख्याए कहते हैं।
- संख्याए बनाने के लिए अको की पुनरावृत्ति हो सकती है जैसे– 22, 222, 55, 555 आदि।
- सख्याएं अंकों द्वारा प्रदर्शित हो सकती है, किन्तु अक सख्या नहीं हो सकती।

परीक्षण 2– (दूसरा मोर पख पूर्ण होने पर मौखिक प्रश्न करे।)

- 12 के बाद कौन-सी संख्या है? उत्तर– 13
- 15 के बाद कौन-सी संख्या है? उत्तर– 16
- 13 के पहले कौन-सी संख्या है? उत्तर– 12
- 14 के पहले कौन-सी सख्या है? उत्तर– 13
- 18 के बाद कौन-सी सख्या है? उत्तर– 19
- 20 मे कितने अंक हैं? उत्तर– 2
- 12 से 17 के बीच कौन-कौन-सी सख्याए हैं? उत्तर– 13, 14, 15, 16
- अंक और संख्या मे क्या अतर है?

उत्तर– 0 से 9 तक गिनती के संकेतों को अक कहते है और अको की सहायता से संख्या बनती है।

संख्याको (11 से 20 तक) की पहचान

अध्यापक पुन: उपकरण का बोर्ड B अलग कर, बोर्ड C लगा दे। अब उपकरण में 1 से 20 तक काले रग के गोले दिखाई देगे। संख्यांकों की पहचान हेतु संख्या 13, 17, और 19 का स्थान किस गोले में होगा यह बताने हेतु छात्र को बिल्ले 13, 17 और 19 दीजिए। छात्र द्वारा 11 से 19 तक पढ़कर क्रमश· तेरहवे, सत्रहवें और उन्नीसवे गोले मे बिल्ले लगाने पर यह परीक्षण सफल हो जाएगा।

अभ्यास– 11 से 20 तक गिनती छात्रो से लगातार पाच बार लिखवाएं।

श्यामपट्ट कार्य– (शब्दो को पढकर अकों मे लिखवाएं।)

ग्यारह	–	11
बारह	–	12
तेरह	–	13
चौदह	–	14
पन्द्रह	–	15
सोलह	–	16
सत्रह	–	17
अठारह	–	18
उन्नीस	–	19
वीस	–	20

19 +1
20

दहाई (10)	इकाई (1)
1	9 +1
+1 2 दहाइयां	10 इकाईयां या 1 दहाई
1	0

मूल्यांकन— निम्न प्रश्नों के उत्तर उनके सामने लिखिए।

- 11 के वाद कौन-सी सख्या आती है लिखिए?
  उत्तर— 12
- 15 के बाद कौन-सी सख्या आती है?
  उत्तर— 16
- 18 के बाद कौन-सी सख्या आती है?
  उत्तर— 19
- तेरह और सत्रह को अंको में लिखिए।
  उत्तर— तेरह = 13, सत्रह = 17
- 1 से 20 तक गिनती लिखिए।
  उत्तर— 1, 2, 3, ...18, 19, 20

शिक्षण सकेत— अध्यापक इसी तरह संख्याओं का विस्तार 10 से 20, 20 से 30, 30 से 40, 40 से 50, 50 से 60, 60 से 70, 70 से 80, 80 से 90 और 90 से 100 तक क्रमवार संख्याओ को बोल-बोल कर पढने और लिखने का अभ्यास छात्रों से कराएं।

मोर गणित विधि के उपकरण का निर्माण— आवश्यक सामग्री— थर्माकोल शीट, कार्ड बोर्ड, प्लास्टिक के बिल्ले (ढक्कन) पोस्टर कलर, थर्माकोल कटर और कलैण्डर के अक आदि।

तैयार करने की विधि

- ☐ सर्वप्रथम थर्माकोल सीट A पर उपकरण के चित्रानुसार 100 गोले वनाएं।
- ☐ सभी गोलो के अन्दर का भाग काटकर गोल-गोल गड्ढे बनाएं। इस प्रकार यह जालीनुमा शीट बन जाएगी।
- ☐ एक अन्य कार्ड बोर्ड B पर उपरोक्त उपकरण की तरह 100 गोले इस प्रकार वनाएं कि कार्ड बोर्ड B पर शीट A रखने पर सारे गोले स्पष्ट दिखाई दे सके।
- ☐ शीट A को अलग कर कार्ड वोर्ड B में वने प्रत्येक गोले में उपकरण के अनुसार 1 से 100 तक गिनती लिखने हेतु कलैण्डर के अकों को गोल-गोल आकृति मे काटकर बोर्ड B में (उपकरण के अनुसार) बाई तरफ से बाहर से अन्दर की ओर चिपकाए।
- ☐ अब पुन: कार्ड वोर्ड B पर शीट A रखने पर सारे अक स्पष्ट दिखाई देगे।
- ☐ उपकरण के चित्रानुसार शीट A पर मोर बनाकर मोर पंखों की तरह रंग कर दे।
- ☐ अव प्रत्येक गोले को बन्द करने के लिए कैरम की गोटी की तरह जिसमें हैडिल लगा हो प्लास्टिक के विल्ले (ढक्कन) इस प्रकार बनाएं जिसे गोले मे आसानी से लगा व निकाल सके।
- ☐ प्रत्येक 100 बिल्लों के तल वाले भाग पर भी कलैण्डर के छोटे-छोटे आकार वाले अकों को भी गोल-गोल आकृति में काटकर चिपका दे।
- ☐ परीक्षण हेतु अन्य अवस्था में कार्ड बोर्ड B को अलग कर कार्ड बोर्ड C (काले रंग का) लगा दें। इस स्थिति मे उपकरण में केवल काले रंग के गोल-गोल गड्ढे दिखाई देंगे।

इस प्रकार उपरोक्त विधि से मोर गणित उपकरण तैयार कर लीजिए।

अंक घर

अको का स्थानीय मान एवं अंकों को शब्दों में लिखने व पढ़ने हेतु विषय की सरल, रोचक तथा विषय पूर्ण प्रस्तुति हो, इसी उद्देश्य को लेकर अंक प्रणाली को समझने हेतु "अंक घर" की कहानी तैयार की गई है। आशा है, कि इस कहानी से छात्र पूर्ण रूप से लाभान्वित होंगे।

उद्देश्य

- ☐ छात्रो को इकाई/दहाई/सैकडा का रोचक परिचय देना व उनमे जिज्ञासा उत्पन्न करना।
- ☐ छात्र इकाई/दहाई/सैंकडा में अतर समझ सके।
- ☐ इकाई/दहाई/सैंकडा से बनी सख्या को लिख व पढ़ सकें।
- ☐ संख्याओ मे निर्माण को तर्कपूर्ण तथा स्थाई रूप से समझ सकें।
- ☐ अकों का स्थान (स्थानीय मान) समझ सके।
- ☐ 1 से 999 तक की सख्याओं को लिखना व पढ़ना समझ सकें।

समस्या

- ☐ इकाई/दहाई/सैकडा की संख्या का ज्ञान न होना।

- ☐ इकाई/दहाई/सैकडा तीनों मे आपसी सम्बन्ध का ज्ञान न होना।
- ☐ स्थाई मान का ज्ञान न होना।

मौखिक शब्द भण्डार— मकान, हॉल (कमरा), मेहमान (अतिथि), गांव, सुखी, धनी, दिशा, अक की पहचान, अंकों का क्रम, अक व संख्या में अंतर।

अंक घर विधि का उपयोग (प्रदर्शन एवं शिक्षण)

आवश्यक सामग्री— अंक घर का उपकरण, अंकों के कटआउट, बिल्ले (ढक्कन)।

उपकरण का चित्र

मकान दिखाई दिया। इस मकान मे तीन समान आकार में तथा प्रत्येक हॉल के दरवाजे क्रमश. दाई से बाई ओर बड़े बने दिखाई दिए। उस मकान की खूबियां जानने हेतु उसने दरवाजे पर दस्तक दी।

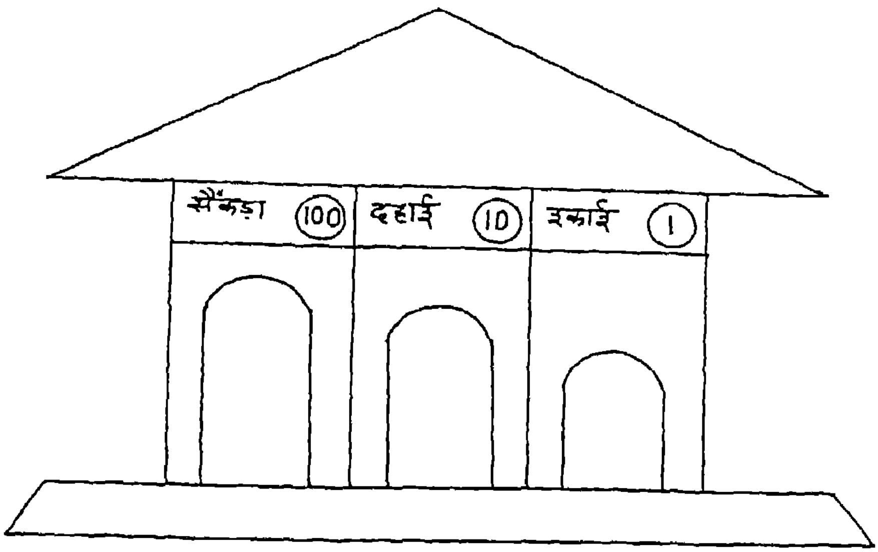
(इकाई, दहाई, सैकडा का परिचय)।

अतिथि ने पूछा— आपका नाम क्या है?

इकाई— मेरा नाम इकाई है।

अतिथि ने पूछा— आपके नाम में क्या रहस्य है?

इकाई— इकाई का अर्थ एक होता है, इसलिए मुझे 1 अक रूपी धन मिला है।



विधि का प्रदर्शन

(अध्यापक छात्रों को निम्न कहानी के आधार पर इकाई, दहाई, सैंकडा का परिचय कराएं।)

एक गाव में ऐसा मकान (घर) था, जिसमें रहने वाले लोग बहुत प्रसन्न, सुखी और धनी थे। गांव मे इस मकान की खूबिया और रहस्य (विशेषताएं) चारो दिशाओ में फैलने लगीं। दूसरे गाव के लोग इसका पता लगाने पहुंचे। एक अतिथि इस इच्छा को लेकर "अंक घर" पहुचा। गांव के मुख्य द्वार पर पहुंचते ही उसे एक

अतिथि— आपका इस मकान मे क्या स्थान है?

इकाई— मैं इस मकान के पहले हॉल (कमरा न. 1) में रहता हूं।

अतिथि— आपके कमरे मे कितने व्यक्ति रहते हैं?

इकाई— एक अंक के रूप में मेरे कमरे में अकेले नौ मेहमान (9 अंक या 9 इकाइया) आ सकते है।

शिक्षण संकेत— (1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 और 9 अंक है। गिनती के इन अकेले संकेतों को "अक" कहते हैं। अध्यापक छात्रो को "एक अंक" का बोध कराएं

जैसे– हमारे शरीर मे दो हाथ होते है अर्थात् हाथों की सख्या दो को अकेला एक अक 2 द्वारा प्रदर्शित कर सकते है।)

(अतिथि ने उत्सुक होकर दूसरे हॉल के मुखिया से परिचय पूछा)

अतिथि– आपका नाम क्या है?

दहाई– मेरा नाम दहाई है।

अतिथि– आपकी क्या विशेषताए है?

दहाई– दहाई का अर्थ दस होता है, इसलिए मुझे भाग्य से 10 अंक रूपी धन मिला है अर्थात् मेरा मान इकाई से 10 गुना ज्यादा है।

अतिथि– इस मकान मे आपका क्या स्थान है?

दहाई– मै इस मकान के दूसरे हॉल (कमरा नं. 2) मे रहता हू।

अतिथि– क्या आप अकेले रहते हैं?

दहाई– अक के रूप में मेरे हॉल में केवल दो-दो अंको के समूह मे नौ जोड़ी मेहमान अर्थात् 9 दहाई के रूप में आ सकते हैं।

शिक्षण संकेत– अध्यापक छात्र का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कर समझाएं कि एक जोड़ी मे 2 वस्तुएं होती है जैसे– एक साइकिल मे दो पहिए होते है, अर्थात् दो पहियो के एक समूह को एक जोड़ी पहिए कहेगे। उसी प्रकार 2 अकों के समूह (जोडी) मे केवल बाईं ओर का एक अंक (मेहमान) दहाई हॉल मे आ सकेगा तथा दायीं ओर का अक इकाई हॉल में आ सकेगा। जैसे– 10, 11, 15, 18, 23, 36, 45, 60, 71, 82, 91, 99 आदि सख्याओं में दो-दो अंक हैं। किन्तु ये अक 1-1 जोड़ी का बोध कराते हैं।

(अतिथि ने उत्सुक होकर तीसरे हॉल के मुखिया से परिचय पूछा)

अतिथि– आपका नाम क्या है?

सैकड़ा– मुझे सैकडा कहते हैं।

अतिथि– आपके नाम मे क्या रहस्य है?

सैकड़ा– सैंकडा का अर्थ एक सौ होता है। इसलिए भाग्य से मुझे 100 अंक रूपी धन मिला है अर्थात् मेरा मान दहाई से 10 गुना ज्यादा है।

अतिथि– आपका इस मकान मे क्या स्थान है?

सैकडा– मैं इस मकान के तीसरे हॉल (कमरा न. 3) मे रहता हू।

अतिथि– क्या आप अकेले रहते हैं अथवा जोडी मे रहते है?

सैकडा– अक के रूप मे मेरे हॉल मे केवल तीन-तीन अंको की जोडी में नौ जोड़ी अक (मेहमान) अर्थात् 9 सैकडा के रूप मे 900 आ सकते हैं।

शिक्षण संकेत– अध्यापक छात्र को यह समझाए कि एक रिक्शा मे तीन पहिए होते है। जिस प्रकार ये तीन पहियों का एक समूह एक जोडी का बोध कराते हैं, उसी प्रकार तीन अंको के समूह मे (एक जोड़ी के रूप मे) एक अंक (मेहमान) सैकडा में आ सकेगा, जिसका संख्यात्मक मान 100 होगा।

इन तीनों (इकाई, दहाई, सैंकड़ा) में यह समझौता है कि प्रत्येक हॉल मे नौ-नौ मेहमान को ही ठहराएंगे। इकाई मे नौ से अधिक अक (मेहमान) आने पर सभी मेहमानो को दहाई वाले बड़े हॉल में ठहराएगे और दहाई मे 9 से अधिक मेहमान आने पर सभी मेहमानो को सैकडा वाले बड़े हॉल में ठहराएगे। निर्धारित संख्या से अधिक होने पर हम हमेशा बाए वाले हॉल मे ही जाते है।

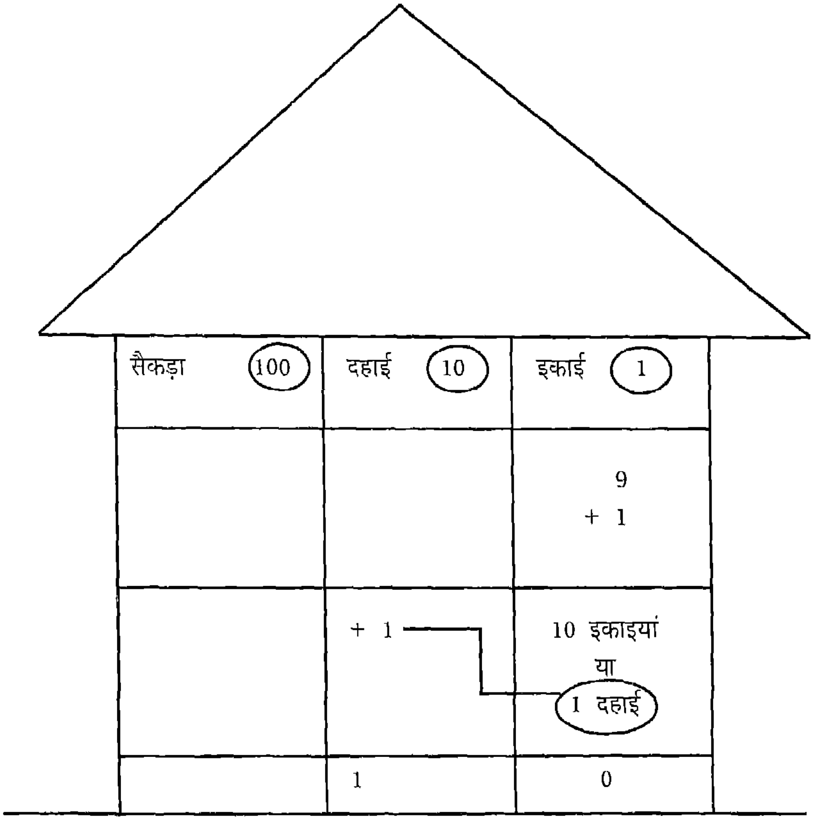
जैसे– इकाई वाले हॉल मे 9 इकाई से अधिक अर्थात् 9 + 1 = 10 मेहमान आने पर सारे मेहमानों को दहाई वाले हॉल मे ठहराएंगे। अर्थात् 9 इकाई और 1 इकाई मिलकर कुल 10 इकाइया होती है। इसलिए 10 इकाइयों का अर्थ 1 दहाई है।

इस स्थिति में दहाई मे 1 तथा इकाई मे 0 अर्थात् खाली हॉल रहेगा।

अध्यापक छात्रो को समझाएं कि 10 इकाइयां = 1 दहाई होता है। यहां 10 मे 1 दहाई के स्थान पर तथा 0 इकाई के स्थान पर है।

अध्यापक "अंक घर" द्वारा इकाई मे 9 से कम मेहमान समझाने हेतु एक अंक वाले कट आउट का उपयोग करें जैसे– इकाई हॉल में 5 मेहमान आने पर (5 इकाई को प्रदर्शित करने हेतु) 5 अक लिखा एक

9   + 1
10



कट आउट लेकर उसे इकाई हॉल में लगा दें। तब छात्र से प्रश्न करें कि इकाई हॉल मे कितने अंक (मेहमान) है? जब छात्र उत्तर दे दे तब कहिए– इकाई हॉल में अंक 5 है।

इसी प्रकार नौ से अधिक अर्थात् 9 इकाई + 1 इकाई = 10 इकाईयां (मेहमान) आने पर समझौते के अनुसार 10 मेहमानो को इकाई हॉल में नही ठहराया जा सकता। यह समझाने हेतु अध्यापक सख्यांक 10 लिखा वाला एक ऐसा कट आउट लेकर इकाई हॉल मे लगा दे कि छात्रों को इकाई में केवल 0 से तथा दहाई मे 1 दिखाई दे। तब छात्र से प्रश्न किया जाना चाहिए कि अब इकाई हॉल में कितने अक दिखाई दे रहे हैं? जब छात्र प्रश्न का उत्तर दे दे तब कहिए कि 10 इकाइयो मे से 1 अंक दहाई मे चला गया और इकाई में 0 अर्थात् खाली हॉल रहेगा। यहा 1 दहाई का अर्थ 10 के बराबर है। दहाई से वनी संख्या एक-एक जोडी को दर्शाती है। यहा सख्या 10 मे दहाई में एक जोड़ी के रूप मे 1 और 0 आया है।

दहाई	इकाई
1	0

(एक जोडी अक) इसे दस पढ़ेंगे।

एक दहाई से अधिक (10 + 1) 11 मे, एक जोड़ी के रूप में 1 और 1 आया है।

दहाई	इकाई
1	1

(एक जोड़ी अंक) इसे ग्यारह पढेगे।

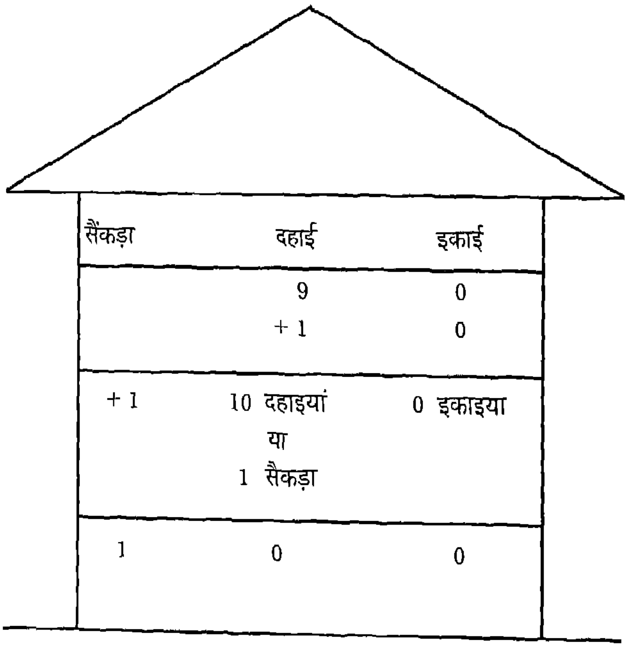
शिक्षण संकेत–अध्यापक छात्र को यह समझाएं कि मान लो 1 जोड़ी (संख्या 14) में 1 और 4 अंक आने पर 10 इकाई वाली एक जोड़ी ही दहाई हाल में 1 दहाई के रूप में आ सकेगी तथा 4 का अक इकाई हाल में तब तक रहेगा, जब तक उसका मान 1 दहाई अर्थात् 10 इकाइयो के बराबर नही हो जाता। इस प्रकार जब 4 इकाई में 6 इकाई और आने पर इसे हम दो दहाई की जोड़ी के रूप मे दहाई हॉल मे प्रवेश करा सकेंगे।

शून्य का महत्व– ● अंक 1 के दाई ओर एक शून्य रखने से अंक का मान 10 हो जाता है। (अर्थात् 1 से 10 गुना अधिक मान हो जाता है) ● अक 1 के दाई ओर दो शून्य रखने से अंक का मान 100 हो जाता है। (अर्थात् 10 से 10 गुना अधिक मान हो जाता है)

इसी आधार पर अध्यापक 10 के आगे 1 दहाई लेकर या बताकर तथा इकाई के स्थान पर क्रमश 1 से 9 अंक रखकर क्रमशः 11, 12, 13, 14,. . 19, 20 सख्या को समझाएं। संख्या 20 में दहाई के स्थान पर 2 तथा इकाई के स्थान पर 0 है। अध्यापक 20 के आगे इकाई के स्थान पर पुन· 1 से 9 अंक रखकर क्रमश. 21, 22, 23, . .29, 30 सख्या को समझाएं। इसी प्रकार नई संख्या बनाने हेतु क्रमशः 1 से 9 दहाई लेकर (बताकर) तथा इकाई के स्थान पर क्रमशः 1 से 9 अंक रखकर 20 से 30, 30 से 40, 40 से 50, 50 से 60, 60 से 70, 70 से 80, 80 से 90, 90 से 100 तक संख्याओ को समझाए।

जब दहाई वाले हॉल में 9 दहाई से अधिक अर्थात् (90 + 10 = 100) मेहमान आने पर सारे मेहमानो को सैंकडा वाले हॉल में ठहाराएगे अर्थात् 9 दहाई (90) और 1 दहाई (10) मिलकर कुल 10 दहाइया होती हैं। इसलिए 10 दहाइयां का अर्थ 1 सैंकडा है। इस स्थिति मे सैंकड़ा मे 1, दहाई में 0, तथा इकाई मे भी 0 मेहमान अर्थात् दहाई व इकाई के हॉल खाली रहेंगे। अध्यापक छात्रो का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कर समझाए कि 10 दहाइयां होने पर 1 सैंकडा को 100 लिखते हैं। 10 दहाइया = 1 सैकड़ा होता है तथा सैंकड़े का स्थान दहाई के बाई ओर लिखवाए।

90 + 10
100



परीक्षण– इस एकक को पूर्ण करने के पश्चात् छात्रों से प्रश्न करें।

- इकाई का मान क्या है? उत्तर– 1
- दहाई का मान क्या है? उत्तर– 10
- सैंकड़े का मान क्या है? उत्तर– 100
- संख्या 100 मे कितने अंक है? उत्तर– 3
- संख्या 25 में कौन-सा अंक दहाई में है? उत्तर– 2
- संख्या 23 मे 2 का स्थानीय मान क्या है? उत्तर– 20

मूल्यांकन– निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर उनके सामने लिखिए–

- 1 दहाई में कितनी इकाइयां होती हैं। उत्तर– 10 इकाइया
- 10 इकाई में कितनी दहाई होती है। उत्तर– 1 दहाई
- 9 इकाई और 1 इकाई मिलकर कितनी इकाइया होती हैं? उत्तर– 10 इकाइया
- 5 दहाई में कितनी इकाइयां होती हैं? उत्तर– 50 इकाइयां
- 10 दहाई मे कितने सैकडा होते हैं? उत्तर– 1 सैकडा
- 10 दहाई मे कितनी इकाइयां होती है? उत्तर– 100 इकाइयां

(इस प्रकार अक घर के तीनो मुखिया इकाई/दहाई/सैंकड़ा अपने हॉल में रहकर अतिथियों को अंक का रहस्य समझाते है।)

उपकरण (अंक घर) का निर्माण

आवश्यक सामग्री– खाली गत्ते का खोखा, लाल, हरे, और पीले रग के कागज, कलैण्डर के अंक, गोंद, पेंसिल, आदि।

निर्माण

- ☐ सर्वप्रथम एक खाली खोखे पर आकृति के अनुसार तीन समान आकर में हॉल बनाकर प्रवेश द्वार बनाएं।
- ☐ अब प्रत्येक हॉल में अलग-अलग रग के कागज लगाकर खोखे को घर के समान आकृति दे दें।
- ☐ हॉल के प्रवेश द्वार पर अंकों के कट आउट लगाने व निकालने हेतु इस प्रकार कट आउट स्टैण्ड बनाए कि कट आउट को स्टैण्ड में लगाने पर मध्य में लिखा अंक स्पष्ट दिखाई दे सके।
- ☐ कट आउट पर कलैण्डर के अंक चिपका दें।
- ☐ प्रत्येक हाल का नाम (दाई से बाई ओर) क्रमशः इकाई/दाहई/सैंकड़ा लिख लीजिए।

इस प्रकार यह अक घर उपकरण तैयार कर लीजिए।

जोड़ चक्र पद्धति

गणित विषय के शिक्षण को सरल, सुबोध, रुचिकर वनाने हेतु प्राथमिक कक्षाओ के लिए अंकों का जोड कराना अत्यावश्यक है। इसी उद्देश्य को लेकर गणित मे एक अकों का जोड़ समझने हेतु यह जोड़ चक्र विधि तैयार की गई है। आशा है, कि इस जोड़ चक्र विधि के अध्ययन से छात्र पूर्ण रूप से लाभान्वित होगे।

उद्देश्य

- ☐ छात्र जोड़ का अर्थ समझकर एक अंक का जोड़ कर सकें।
- ☐ दो संख्याओ को जोड सके, जिनमे योगफल अठारह से अधिक न हो।
- ☐ दो समूहों मे रखी वस्तुओ को गिनकर या जोड़कर कुल वस्तुओं की संख्या बता सकें।
- ☐ छात्र बिना गिने यह बता सकें कि तीन और दो, पांच होते हैं।
- ☐ दो विभिन्न अको का योग एक समान अंक के रूप में समझ सके।
- ☐ इकाई मे इकाई जोडकर कुल इकाइयां बता व समझ सके।

समस्या

- ☐ अकों को जोड़ न पाना।
- ☐ दो समूहो से तीसरे समूह का निर्माण कर वस्तुओं को न गिन पाना।
- ☐ विभिन्न समूहों में रखी वस्तुओं की कुल सख्या न बता पाना।

मौखिक शब्द भण्डार–

- ☐ 1 से 100 तक की संख्याओं को पढ़ना-लिखना।

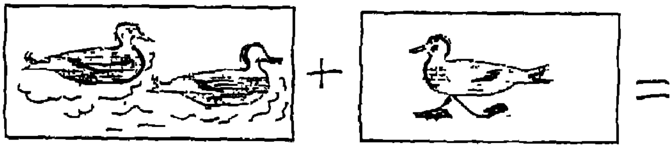
- एक, दो, तीन......... एक सौ तक शब्दो में लिखना।
- इकाई/दहाई/सैंकड़ा का प्रयोग।

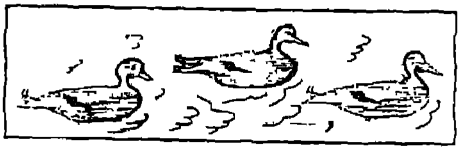
जोड़ चक्र विधि का उपयोग प्रदर्शन एवं शिक्षण

जोड़ प्रदर्शन हेतु प्रारम्भिक क्रिया—

प्रथम जोड़ पद्धति— वस्तुओं के दो समूह को मिलाकर व गिनकर जोड़ना।

एक समूह में चार वस्तुएं हैं तथा दूसरे समूह में दो वस्तुएं हैं। सभी वस्तुओं को मिलाने पर कुल कितनी वस्तुएं हो जाएंगी? छात्र का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए कि प्रथम समूह में चार वस्तुए हैं तथा दूसरे समूह में दो वस्तुओं को मिलाकर जोड़ने पर कुल कितनी वस्तुएं होंगी?





सर्वप्रथम छात्रों का ध्यान उपरोक्त चित्र की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए कि पहली आकृति में दो बत्तखें तालाब में तैरती हुई दिखाई दे रही है, तथा दूसरी आकृति में एक बत्तख उन दोनों बत्तखो की ओर जाती हुई दिखाई दे रही है। तीसरी बडी आकृति में सभी बत्तखे साथ-साथ तैर रही है।

छात्रों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए कि दो बत्तखे तथा एक बत्तख मिलकर कुल 2 + 1 बत्तखे हैं। अर्थात् जब दो बत्तखो के समूह मे एक बत्तख सम्मिलित हो जाती है, तब कुल कितनी बत्तखें समूह में होंगी? जब छात्र उक्त प्रश्न का उत्तर दे दें, तब कहिए दो और एक तीन होते हैं। अर्थात् 2 धन 1 बराबर 3। छात्रों को यह बताएं कि संख्याक 2 प्रथम समूह की बत्तखो के लिए आया है। संख्यांक 1 द्वितीय आकृति में बत्तख के लिए आया है तथा संख्यांक 3 तृतीय आकृति में बत्तखों की कुल सख्या के लिए आया है।

श्यामपट्ट कार्य 2 + 1 = 3

श्यामपट्ट चक्र पद्धति (प्रदर्शन एवं शिक्षण)

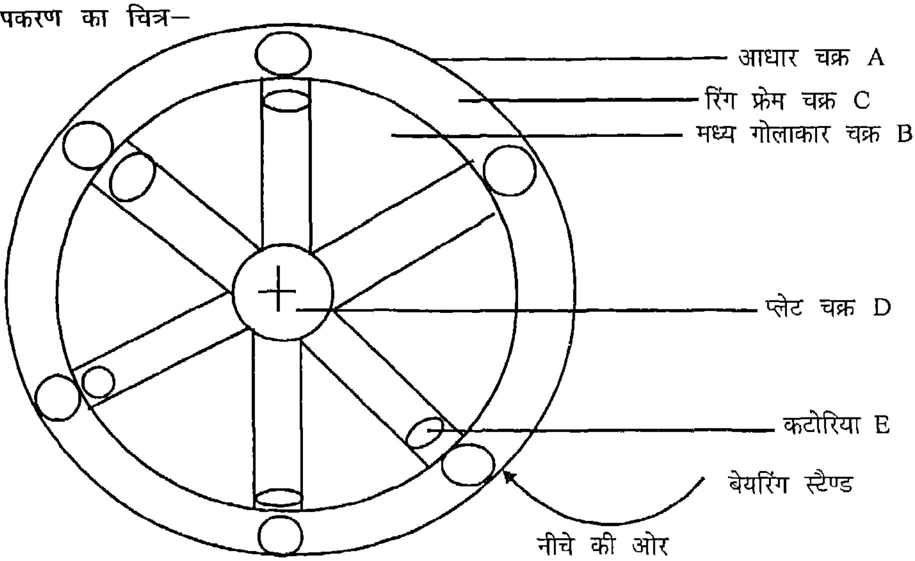
इस चक्र में तीन प्रकार के जोड़ पद्धतियों का प्रयोग कर जोड़ क्रिया का प्रदर्शन किया जा सकता है। सर्वप्रथम अध्यापक छात्रो को जोड़ चक्र का प्रयोग करने से पहले यह समझाएं कि इस चक्र के मध्य मे एक छोटी-सी प्लेट जिस पर + (धन) चिन्ह, तथा चिन्ह के चारों ओर 6 आरेख बने हुए हैं।

छात्र से प्रथम समूह में वस्तुओं की संख्या 4 को चिन्ह के ऊपर वाले आरेख में लिखवाए तथा उसी आरेख में बनी कटोरी में चार मणियां गिनकर रखवाए। छात्र से द्वितीय समूह में वस्तुओं की संख्या 2 को धन चिन्ह के ठीक नीचे वाले आरेख में लिखवाएं तथा उसी आरेख मे बनी कटोरी में दो मणियां गिनकर रखवाएं। अब कुल अंको का योग करने से पहले दोनों समूहों की मणियो को क्रम से गिनवाकर धन चिन्ह की प्लेट पर सभी मणियो को रखवाए और कुल मणियों की संख्या को, चक्र C मे बने खाली गोले मे लिखवाएं।

अध्यापक छात्र से प्रश्न करें। जब छात्र प्रश्न का उत्तर दे दे, तब कहिए चार और दो = छः होते हैं 4 + 2 = 6। छात्रों को यह बताएं कि संख्यांक 4 प्रथम समूह की वस्तुओं के लिए आया है। संख्याक 2 द्वितीय समूह की वस्तुओ के लिए आया है तथा संख्यांक 6 तृतीय समूह की कुल वस्तुओं के लिए आया है। इस प्रकार 4 और 2 का योग 6 है।

द्वितीय जोड़ पद्धति— अंकों की संख्या के बराबर लाइनें खींचकर जोडना।

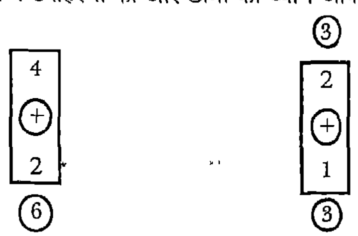
उपकरण का चित्र—



इस विधि में अध्यापक छात्रो को यह समझाएं कि जितने अंक जोड़ने है पहले उतनी लाइने खीचे फिर धन (+) चिन्ह बनाकर उसी के नीचे अगले अक के बराबर लाइने खीचें। सभी लाइनो को क्रमशः लिखकर कुल जोड बाहरी गोले (चक्र C) मे लिखवाए। छात्र लाइन खीचने की क्रिया का प्रयोग चक्र C में खाली जगह पर कर सकते हैं तथा लाइनों को सरलता से मिटा भी सकते हैं।

प्रश्न 4 और 2 को जोडिए।

छात्र से चक्र में खाली जगह पर पहले 4 लाइन खिचवाएं फिर + चिन्ह बनवाकर उसके नीचे 2 लाइन खिचवाएं अब सभी लाइनों को क्रमश· गिनवाकर कुल जोड 6 को गोले में लिखवाए। जब छात्र नौ तक के जोड़ तथ्यों को चक्र मे लिखकर पूरा कर लें उसके पश्चात् निम्न उदाहरणो की ओर छात्रो का ध्यान आकर्षित कीजिए—



2 + 1 = 3	या	1 + 2 = 3
3 + 1 = 4	या	1 + 3 = 4
5 + 1 = 6	या	1 + 5 = 6
5 + 2 = 7	या	2 + 5 = 7
4 + 2 = 6	या	2 + 4 = 6
4 + 3 = 7	या	3 + 4 = 7
6 + 2 = 8	या	2 + 6 = 8
7 + 2 = 9	या	2 + 7 = 9
5 + 4 = 9	या	4 + 5 = 9
4 + 4 = 8	या	4 + 4 = 8

शिक्षण संकेत— अध्यापक जोड़ चक्र मे उपरोक्त अक लिखवाकर जोड़ करवाए तथा छात्रो को यह समझाएं कि— संख्याओ का स्थान परिवर्तित करने पर भी जोड़ वही रहता है। इस प्रकार नए अकों का जोड़ छात्रो से कराएं। छात्रो को यह समझाएं कि भिन्न-भिन्न संख्याओं को जोड़ने पर उसका योगफल एक समान ही प्राप्त होता है।

4 + 2 = 6

5 + 1 = 6

3 + 3 = 6

2 + 4 = 6

1 + 5 = 6

चक्र के सभी आरेख अंक से लिखे जाने के बाद चक्र के चारो ओर छात्रो को बैठाकर पुनः जोड़ करवाने हेतु चक्र C को साफ कर, चक्र B को घुमा दें। प्रत्येक छात्र के सामने आरेख रुकेगा। अब प्रत्येक छात्र से आरेख में लिखे अंको को जोड़ने के लिए कहे। जैसे

3 + 4 = 7

4 + 3 = 7

6 + 7 = 13

7 + 6 = 13

2 + 5 = 7

5 + 2 = 7

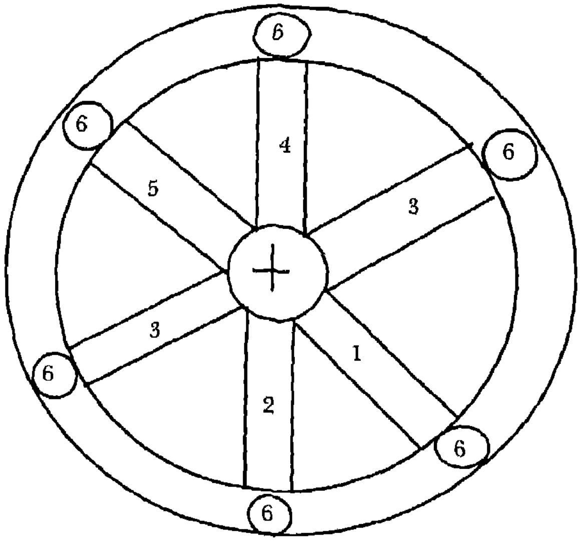
सही जोड़ करने पर छात्रों को प्रोत्साहित करें। इस प्रकार भिन्न-भिन्न दो अंकों का जोड़ अभ्यास कराएं।

तृतीय जोड़ पद्धति

अध्यापक इस पद्धति मे लूडो खेलने की दो गोटियो का प्रयोग कर जोड़ करवाएं जैसे– दो गोटियों को एक छोटी-सी डिब्बी में रखकर छात्रों द्वारा गोटिया उड़ेलवाएं (मान लो दो गोटियां उडेलने पर 5 व 8 अंक आए। अब उन अंकों को चक्र में लिखवाकर जोड़ कराएं। इस एकक को पूर्ण करने के पश्चात् निम्न प्रश्न करवाएं।

अभ्यास जोड़ करो

- 3 और 1 को जोड़ो। उत्तर– 3 + 1 = 4
- 5 गाय और 2 गाय मिलकर कितनी गायें होगी? उत्तर– 5 + 2 = 7
- 5 इकाई और 9 इकाई को जोड़ो। उत्तर– 5 + 9 = 14
- 9 + 4 को जोड़ो। उत्तर– 9 + 4 = 13
- 7 + 5 को जोड़ो। उत्तर– 7 + 5 = 12



खाली स्थान भरो।

- 3 + 1 = (4)
- 2 + 4 = (6)
- 5 + 3 = (8)
- 7 + 2 = (9)
- 6 + 4 = (10)

जोड़ चक्र विधि के उपकरण का निर्माण

आवश्यक सामग्री– हार्ड बोर्ड, सनमाइका, रंग (पेंट), बेयरिंग स्टैण्ड

तैयार करने की विधि– ● आधार चक्र A, ● मध्य गोलाकार चक्र B, ● रिंग फ्रेम चक्र C, ● प्लेट चक्र D, ● बेयरिंग स्टैण्ड

चक्र A का निर्माण

☐ सर्वप्रथम एक हार्डबोर्ड लेकर उपरोक्त आकृति की तरह एक गोलाकार चक्र बनाकर काट लीजिए यह आधार चक्र है।

☐ **चक्र B का निर्माण**

1 उपकरण का दूसरा भाग गोलाकार चक्र B काटकर *उपरोक्त आकृति E की तरह छः गड्ढे बनाए जिनमें* एक-एक छोटी-छोटी कटोरिया फिट कर सके। इसी चक्र पर सफेद रंग का सनमाइका भी गोल आकार

में काटकर इस प्रकार चिपका दें कि हार्डबोर्ड (चक्र B मे किए गड्ढे भी) दिखाई दे सकें।

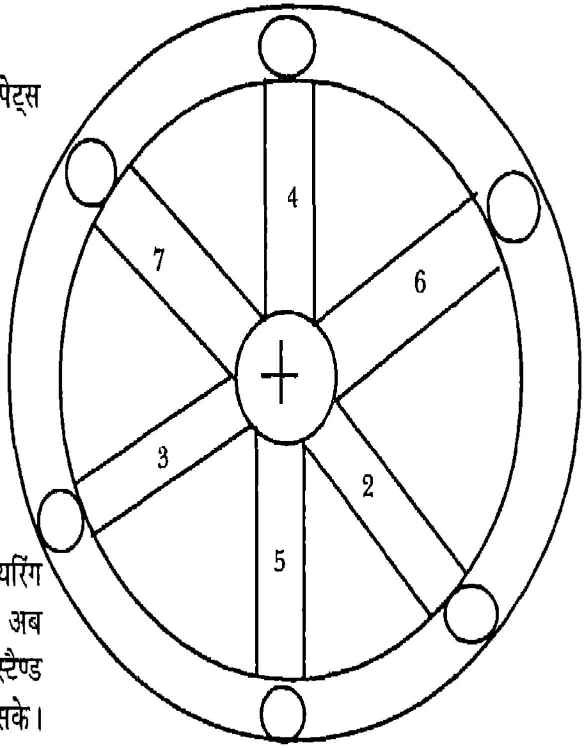
- चक्र B के मध्य में प्लेट चक्र D लगाएं।
- चक्र B पर आकृति के अनुसार आरेख कलर पेट्स खींच लीजिए।
- प्रत्येक आरेख के बीच बने गड्ढो मे एक-एक कटोरियां फिट कर दें।

चक्र C का निर्माण–

चक्र B के बाहरी ओर तथा चक्र A के ऊपर एक रिंग फ्रेम चक्र C बनाकर, सनमाइका लगाकर उसे आधार चक्र A के ऊपर रखकर उसे कस दें फिर उस पर छः वृत्त बना लीजिए।

(चारो चक्र तैयार होने के बाद) सबसे पहले आधार चक्र A जिसमें चक्र C भी सलग्न है, को बेयरिंग स्टैण्ड में इस तरह कस दे कि यह चक्र स्थिर रहे। अब B को चक्र A के मध्य में रखकर उसे भी बेयरिंग स्टैण्ड में इस तरह लगा दें कि यह चक्र B गति कर सके। चक्र B के ऊपर चक्र D लगा दें। इस प्रकार चक्र B और C एक समतल मे दिखाई देंगे। इस स्थिति में चक्र A+C स्थिर तथा चक्र B गतिशील होगा।

जोड़ चक्र को पूर्ण करो



इस प्रकार यह उपरोक्त विधि से जोड़ चक्र उपकरण तैयार कर लीजिए। ❑❑

ब्रिलियंट प्राइमरी एवं माध्यमिक विद्यालय
अमला, जिला बैतूल
मध्य प्रदेश

अनुस्वार खुराफ़ात

❑ यतीश कानूनगो



बात तो सही है, किन्तु दोनो अनुस्वार मे अर्थ भेद है।

शकर = शङ्कर = शंकर

(याने अनुस्वार का अर्थ है– ङ्)

बंद्री = ब न् द् री = बन्द्री

(याने अनुस्वार का अर्थ है– न्)

ऐसा क्यों, आओ जाने!
अनुस्वार की खुराफ़ात पहचाने!!

अक्षर– ध्वनि की वह छोटी इकाई, जिसका उच्चारण एक झटके से होता है अक्षर कहलाती है। जैसे– आ, पी, स्त्री आदि, सभी स्वर अक्षर हो सकते हैं, परन्तु स्वतंत्र उच्चारण की क्षमता न रखने के कारण व्यंजन अक्षर नहीं होते। वे अक्षर तभी बनेंगे जब उनके साथ कोई स्वर मिला होगा। (अक्षर का शाब्दिक अर्थ अ + क्षर अर्थात् जिसका क्षरण न हो। जो कभी क्षरित न हो वह अक्षर।)

सामान्य अनुस्वार नियम

सयुक्त व्यजन के रूप मे जहा पचमाक्षर (अनुनासिक) के बाद समवर्गीय शेष चार वर्णो मे से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए, जैसें— गगा, चचल ठडा, सस्था, संपादक आदि मे पचमाक्षर के बाद उसी वर्ग का वर्ण आगे आता है। उदाहरण—

□ शब्द जिसमें अनुस्वार लगे अक्षर के आगे का व्यजक क- वर्ग का सदस्य है अत उच्चारण ङ् का होगा—

क- वर्ग	क	ख	ग	घ	ङ अनुनासिक

कक = कड्क = कङ्क
अक = अड्क = अङ्क
दिनांक = दिनाड्क = दिनाङ्क
अग = अड्ग = अङ्ग
संघ = सड्घ = सङ्घ

इसी प्रकार इन शब्दों मे अनुस्वार को ङ् पढ़ा जाएगा।

□ अनुस्वार लगे व्यजक के आगे च- वर्ग का सदस्य होने पर अनुस्वार का उच्चारण 'ञ्' होगा।

च– वर्ग	च	छ	ज	झ	ञ अनुनासिक

चचल = चञ्चल
पाचजन्य = पाञ्चजन्य
अजली = अञ्जली
व्यजन = व्यञ्जन
संचय = सञ्चय

□ अनुस्वार लगे व्यजन के आगे ट- वर्ग का सदस्य होने पर अनुस्वार का उच्चारण 'ण्' होगा।

ट- वर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण अनुनासिक

खड = खण्ड = खण्ड
कठ = कण्ठ = कण्ठ
अंडा = अण्डा = अण्डा

□ अनुस्वार लगे व्यजक के आगे त- वर्ग का सदस्य होने पर अनुस्वार का उच्चारण न् होगा।

त- वर्ग	त	थ	द	ध	न अनुनासिक

मद = मन्द चद = चन्द
दत = दन्त कात = कान्त
संधि = सन्धि फदा = फन्दा
गदा = गन्दा कद = कन्द

□ अनुस्वार लगे व्यंजन के आगे प- वर्ग का सदस्य होने पर अनुस्वार का उच्चारण म् होगा।

प- वर्ग	प	फ	ब	भ	म अनुनासिक

पंप = पम्प संपादक = सम्पादक
तबू = तम्बू दंभ = दम्भ
कंपन = कम्पन लबू = लम्बू

कब अनुस्वार नही?

कुछ शब्दों को अनुस्वार की सहायता से नही लिखा जा सकता इनमें हल वर्ण ही लिखना पड़ता है। कब? जब पचमाक्षर दोबारा आए तब पचमाक्षर अनुस्वार के रूप में नही बदलेगा। जैसे— वाङ्मय, सम्मेलन, सम्मति, उन्मुख, जन्म, सन्मति, उन्नति, पन्ना, निम्न, जन्मान्ध या जन्माध।

अब अनुस्वार के लिए कुछ संधि नियम

- ☐ यदि म् से परे क् से भ तक का कोई व्यंजन हो तो म् उसी वर्ग के अंतिम वर्ण (ङ् ञ ण् न् म्) अथवा अनुस्वार मे बदल जाता है यथा– किम् + चित = किञ्चित (किंचित) सम + कल्प = सङ्कल्प (संकल्प) सम् + चय = सञ्चिय (संचय) सम् + तोष = सन्तोष (संतोष) सम् + वध + सम्बंध (संबंध) सम् + पूर्ण = सम्पूर्ण (संपूर्ण) परम् + तु = परन्तु (परंतु) अहम् + कार = अहङकार (अहंकार)।
- ☐ म से पूर्व म् का द्वित्व हो जाता है। यथा– सम् + मति = सम्मति, सम् + मान = सम्मान, सम् + मोह = सम्मोह।
- ☐ जब पहले पद के अन्तिम वर्ण म् के आगे दूसरे पद का प्रथम अंतःस्थ (य, र, ल, व) या ऊष्म (श, ष, स, ह) वर्णो मे से कोई व्यंजन हो तो "म" के स्थान पर अनुस्वार हो जाता है जैसे– सम् + लग्न = संलग्न

अंतःस्थ– **य र ल व**
ऊष्म– **श ष स ह**

सम् + वेदना = संवेदना	संवृत संवृद्धि संवेग
सम् + वाद = संवाद	संविदा संवहन संवृत्त
सम् + लाप = संलाप	संलक्ष संलेख
सम् + रक्षण = संरक्षण	संरोध संरचना
सम् + योग = संयोग	संयम
सम् + हार = संहार	संहत
सम् + शय = संशय	
सम् + सूचक = संसूचक	
सम् + सार = संसार	
सम् + विधान = संविधान	

> परन्तु सम् + राट = सम्राट में अनुस्वार नहीं होता, यह अपवाद है।

कब लिखें हल पंचम अनुनासिक?

यदि शब्द में आगे का वर्ण अंतःस्थ (य, र, ल, व) या ऊष्म (श, ष, स, ह) वर्णों मे से कोई हो, तो?

तो हल पंचम अनुनासिक ही लिखें जैसे– अन्य, साम्य, कन्या, समन्वय

संधि नियम

पहले वर्गीय व्यजन के बाद "न" या "म" हो तो उस अघोष स्पर्श व्यंजन का पांचवे वर्ग मे परिवर्तन हो जाता है।

अघोष स्पर्श	नासिक्य– पंचमवर्ण
वाक् + मय	= वाङ्मय
षट् + मास	= षण्मास
जगत् + नाथ	= जगन्नाथ
सत् + मार्ग	= सन्मार्ग
सम + युक्त	= संयुक्त

संकेत

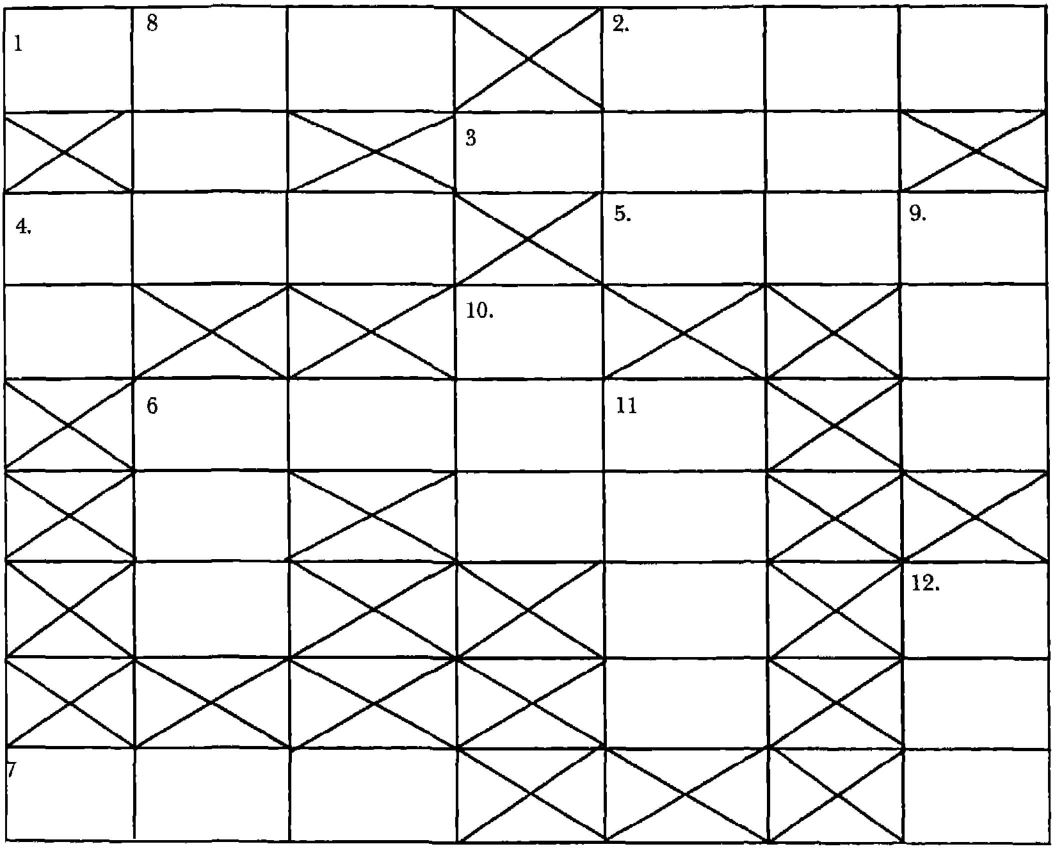
बांए से दांए	ऊपर से नीचे
1. अस्थिपंजर	8. काम मे अंधा
2. अस्थिर	4 जिसमें से पक्षियों के बच्चे निकले
3. सहारा	2. म.प्र. की प्रमुख नदी, पन-बिजली केन्द्र
4. दिखाई न देना	9 विद्युतधारा
5 भागफल	10. चन्दन
6. एडिटर	6. परिवार का दर्पण
7. आश्चर्य	11. साधुओं का भिक्षा-पात्र
	12 अणु को तोड़ना

सोचकर उत्तर लिखो

☐ अनुस्वार से क्यों नहीं लिखे जा सकते?

शब्द	कारण
● जन्म	....
● सम्मति	....
● सन्मति	....

शब्द पहेली (अनुस्वार (.) पर)



- अन्य, वन्य, धन्य, जन्य, कन्या ....
- समन्वय . ...
- अन्न, पन्ना, धन्ना, खन्ना ....
- अण्णा . ...
- चम्मच ....

☐ अनुस्वार हटाकर लिखो–

मद	गंध	चंपा . .. .
चचल	चिपाजी	अकन ....
अश	डंडा	अंडा ....
कडा	चंपक	लका ....
डका	दिनाक	सुगंध ....
पंडा	पंड्या	संचय ....
टंकन	दभ	जजाल ....

☐ ऐसे शब्द लिखो जिनमें दो अनुस्वार हो किन्तु उनके अर्थ भिन्न-भिन्न हो–

जैसे– संबंध = सम्बन्ध?

... . = ---------- ---------- = --------

.... = ---------- ---------- = --------

--------- = ---------- ---------- = --------

--------- = ---------- ---------- = --------

"र" करामात

☐ **स्वर संयोग**

"र" मे "उ" और "ऊ" की मात्रा–
सामान्यत· "उ" की मात्रा "ु" व्यजक के पाद मे लगाई जाती है।
अर्थात् (क् + उ = कु)
जैसे– कु, जु, नु, टु, लु, खु आदि।
इसी प्रकार "ऊ" की मात्रा "ू" व्यंजक के पाद मे ही लगाई जाती है।
अर्थात् (न् + ऊ = नू)
जैसे– कू, जू, नू, टू, लू, खू आदि।
किन्तु "र्" मे "उ" और "ऊ" की मात्रा पाद में न लगा कर पेट मे (मध्य में) लगाई जाती है। मध्य में लगाने के कारण "उ" और "ऊ" मे सामान्यत· भेद नहीं कर पाते जो उच्चारण त्रुटि व लेखन त्रुटि का मूल कारण भी है।

र् + उ = रु
र् + ऊ = रू

र + उ = रु से बनने वाले शब्द
रुग्ण, रुदन, रुतबा, रुकना, रुचि, रुख, रुद्राक्ष, रुधिर, रुनझुन, रुपया, रुमाली, रुष्ट आदि।
र + ऊ = रू से बनने वाले शब्द
रूप, रूई, रूक्ष, रूखा, रूट, रूटीन, रूठना, रूढ़ि रूढ़, रूम, रू-बरू, रूपान्तर, रूसी आदि।

☐ **व्यंजन सयोग–("र" का व्यजनों से संयोग)**
"र" व्यंजनो मे यह सबसे निराला वर्ण है। इसके संयोग मे प्राय असावधानी होती है। अत· इसके सयोग के नियमों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

वाह! वाह!!
गुरुजी ने कमाल दिखाया,
मुर्खजी को मुखर्जी बनाया।

रफार लगे कब?

र्म = र् + म

हल् र् अपने परवर्ती वर्ण के सिर पर सवार हो जाता है–

र् + म = र्म (कर्म) र् + ष = र्ष (वर्षा)
कर्‌जा = कर्जा धर्‌म = धर्म
गर्‌म = गर्म गर्‌त = गर्त

सामान्य रूप से गलत लिखे जाने वाले "र्" मिलन के शब्द	
गलत	सही
आर्शीवाद	आशीर्वाद
अन्तराष्ट्रीय	अन्तर्राष्ट्रीय

निर्‌मल = निर्मल चर्‌म = चर्म
टर्‌र = टर्र खर्‌र = खर्र

"र" डण्डा बने कब?

प्र = प् + र

☐ र से पूर्व कोई भी हल् व्यंजन हो तो वह उसके पैरों मे पड़ जाता है और दूसरा रूप हो जाता है–

प् + र = प्र(प्रेम) क् + र = क्र (क्रम)
प्रभा, प्रकाश, प्रवीण क्रोध, क्रीड़ा, क्रिया

☐ इस प्रक्रिया मे यह रूप बदल कर भी आता है–

ट् + र = ट्र (ट्रेन)   ड् + र = ड्र (ड्रम)
द् + र = द्र (दरिद्र)   त् + र = त्र (त्रेता)
श् + र = श्र (श्रम) या श्र (श्रम)

स् + र = स्र ~~स्त्र~~

स् + र = स्र और स् + त्र = स्त्र
के रूप में लिखे जाते है। "स्र" और "स्त्र" में प्रायः भ्रम के कारण "शस्त्र" के अनुकरण पर कुछ "सहस्र" को भी सहस्त्र (स ह स् त् र्) लिखते और पढ़ते है। यह ध्यान रखना चाहिए कि "सहस्र" मे त् वर्ण नहीं है। इसी प्रकार "स्रोत" (स्रोत) शब्द है "स्त्रोत" (स् त्रोत) नही। (यहा स् त् रोत नहीं त् वर्ण नहीं है।)

विसर्ग संधि में "र" का प्रकट होना

विसर्ग से पूर्व अ, आ को छोड़ कर कोई दूसरा स्वर हो और परे कोई स्वर, वर्ग के तीसरे, चौथे, पांचवे वर्ण या य्, र्, ल्, व्, ह् में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का "र" हो जाता है, जो आगे स्वर होने पर उसमें मिल जाता है।

यथा—
नि + आहार = निराहार
नि + आशा = निराशा
निः + धन = निर्धन
दुः + आचार = दुराचार
दुः + जन = दुर्जन
आशीः + वाद = आशीर्वाद
पुनः + मिलन = पुनर्मिलन
पुनः + जन्म = पुनर्जन्म

अंतः (उपसर्ग) संधि से बने शब्द

अंतर्राष्ट्रीय	अंतर्कथा
अंतर्जातीय	अंतर्गत
अंतर्देशीय	अंतर्गति
अंतर्निहित	अतर्द्वंद्व
अंतर्बोध	अंतर्ध्यान
अंतर्मुखी	अंतर्नाद
अंतर्यामी	अंतर्वती

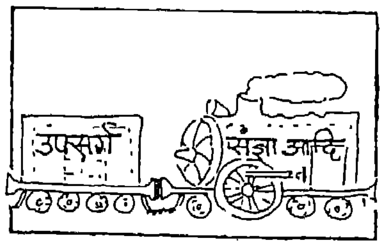
- **विसर्ग के बाद "र" हो तो**
  विसर्ग संधि में "र" का प्रकट होना लुप्त हो जाता है और स्वर दीर्घ हो जाता है।
  जैसे—
  निः + रोग = नीरोग
  निः + रस = नीरस

ऋ और य संधि

"ऋ" संधि मे र की उत्पत्ति होती है।
जैसे— (उ + ऋ = अर, आ + ऋ = अर)
राज + ऋषि = राजर्षि
सप्त + ऋषि = सप्तर्षि
महा + ऋषि = महर्षि
(ऋ + आ = रा)
पितृ + आज्ञा = पित्राज्ञा
(रि + उ = र्यु)
उपरि + उक्त = उपर्युक्त

"र" के मेल से बने उपसर्ग

उपसर्ग संज्ञा आदि

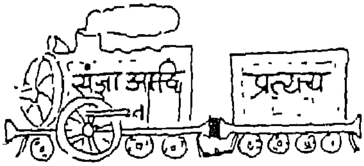


उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
प् + र=प्र	अधिक	प्रबल, प्रभाव, प्रचार
प्ररा	उल्टा, पीछे	पराजय, पराधीन पराभव

निर्	बिना	निर्दय, निर्गुण, निरादर
दुर्	कठिन, बुरा	दुर्गम, दुर्घटना, दुर्दशा
प्रति	विरुद्ध	प्रत्येक, प्रतिकूल, प्रतिकार, प्रतिदिन, प्रतिवर्ष, प्रतिशत, प्रतिमाह, प्रतिव्यक्ति
परि	चारो ओर	परिक्रमा, परिणाम, परिपूर्ण पर्यावरण (परि + आवरण)

"र" के मेल से बने तद्धित प्रत्यय

संज्ञा आदि प्रत्यय



- ☐ **सबंध वाचक– (सम्बन्ध बोध हो)**
  एरा– चचेरा, ममेरा, मौसेरा
- ☐ **कर्तृ वाचक– (कर्तृत्व का बोध हो)**
  कार– पत्रकार, साहित्यकार, कलाकार
  एरा– सपेरा, ठठेरा, चितेरा
  आर– सुनार, लुहार
  दार– ईमानदार, दुकानदार, करजदार
  गर– जादूगर, सौदागर, कामगर
- ☐ **लघुता वाचक– (छोटापन का बोध हो)**
  री– कोठरी, छतरी, बांसुरी
- ☐ **क्रमवाचक– (क्रम का बोध हो)**
  सरा– दूसरा, तीसरा
- ☐ हिन्दी में– कुछ तद्धित प्रत्यय उर्दू– फारसी स्रोत से भी आए है। उनका प्रयोग प्राय· उन्हीं शब्दो मे होता है जो उन स्रोतों में आए हैं। जैसे– दार– मालदार, जमीनदार, करजदार, समझदार।

श श + ऋ = शृ ~~श्रृ~~

शब्द– शृग, शृगार, शृंखला सही है। या शृग, शृंगार, शृंखला श्रृंग, श्रृगार, श्रृंखला गलत है।

सकेत

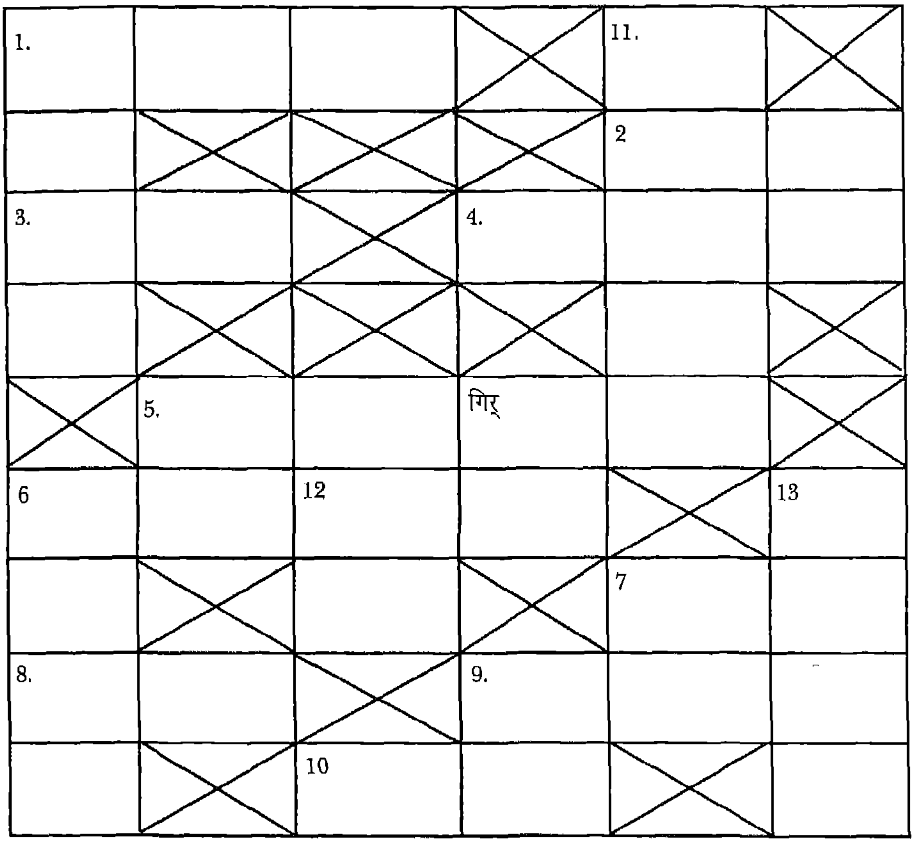
बाए से दांए

1. विनीत (हलंत वर्ण से)
2. श्रृंग (रफार सहित)
3. हिन्दुतीर्थ (डण्डे से)
4. काम (हल सहित)
5. आसपास (रफार सहित)
6. हमला (डण्डे से)
7. मेंढक की आवाज (रफार सहित)
8. मिठाई या पान पर लगाने की पन्नी (रफार सहित)
9. मुम्बई का प्रसिद्ध पुराना सिनेमा घर (रफार सहित) जिसमें रफार गलत वर्ण पर हो।
10. सीरियल आर्डर (डण्डे सहित)

ऊपर से नीचे

1. देवास जिले से बहने वाली एक नदी (हल सहित)
11. आशीष (हल सहित)
6. भारत (रफार सहित)
12. भेद (रफार सहित)
7. बारी (रफार सहित)
13. जिसे सामान्यत· गलत कार्यवाही लिखा जाता है (रफार सहित)

शब्द पहेली "र" व "र्" पर



और कुछ, जानने योग्य!

- **भाषा**— जिस साधन द्वारा मनुष्य अपने भावो और विचारो को बोलकर या लिखकर प्रकट करता है, उसे भाषा कहते हैं।
- **लिपि**— मौखिक ध्वनियों को लिखकर प्रकट करने के लिए निश्चित किए गए चिह्नों को लिपि कहते है।
- **वर्ण**— मौखिक भाषा की मूल ध्वनियो को व्यक्त करने वाले चिह्नों को वर्ण कहते है। वर्ण भाषा की सबसे छोटी इकाई है अत यह भी कह सकते हैं कि वर्ण वे ध्वनि-चिह्न हैं जिनके और खण्ड नही हो सकते।
- **वर्णमाला**— मूल ध्वनियों के क्रमबद्ध समूह को वर्णमाला कहते है। हिन्दी वर्णमाला इस प्रकार है।
  - स्वर— अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ
  - अनुस्वार और विसर्ग— अं अः
  - व्यंजन—

व्यंजन—	क— वर्ग	क	ख	ग	घ	ङ
स्पर्श	च— वर्ग	च	छ	ज	झ	ञ
	ट— वर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण
	त— वर्ग	त	थ	द	ध	न
	प— वर्ग	प	फ	ब	भ	म
	अंतःस्थ	य	र	ल	व	
	ऊष्म	श	ष	स	ह	
	संयुक्त व्यजन		क्ष	त्र	ज्ञ	

- **स्वर**— जिन वर्णो के उच्चारण के समय बिना किसी रुकावट के मुख से हवा निकलती है, स्वर कहलाते हैं। प्रथम ग्यारह वर्ण स्वर है।
- **व्यंजन**— जिन वर्णो का उच्चारण करते समय मुख से निकलने वाली वायु मे रुकावट पड़ती है उन्हे व्यजन कहते हैं।
- **विसर्ग**— विसर्ग का उच्चारण "ह्" व्यजन के समान है। जैसे मन. स्थिति, अत., प्राय', छि' अ , हाः, ह. हा., दु.ख।

" ं " अनुस्वार और " ँ " अनुनासिक

चन्द्र बिन्दु के बिना प्रायः अर्थ भ्रम की गुंजाइश रहती है, जैसे— हस, हॅंस, अगना, ऑंगना मे। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्र बिन्दु का प्रयोग किया जाना चाहिए। किन्तु जहां विशेषकर शिरो रेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के स्थान पर चन्द्र बिन्दु के स्थान पर बिन्दु (अनुस्वार चिह्न) का प्रयोग करे। वहा चंन्द्र-बिन्दु के स्थान पर बिंदु (अनुस्वार चिह्न) की छूट दे दी गई है जैसे— नही, में, मै।

अनुनासिक— भॉति, ऊॅट, नदियॉ, ऑखे, सॅभालना।

अनुनासिक पर स्वरूप अनुस्वार का— छींट, छींक, सेक, ऐंठन, भौरा, नीद

भेद जाने इस वाक्य से— सीता हस को देख कर हॅंस रही है।

ड़ ढ़ के शब्द

नीचे की बिन्दी, हिन्दी की दो ध्वनियां— ड़ और ढ़

ड़— गाड़ी, लड़ाई, घोड़ा और झाड़–झंखाड़

ड— डमरू, डलिया, डम-डम

ढ़— बूढ़ा, बाढ़, पढ़ाई, बढ़ई

ढ— ढेला, ढोर, ढाल, ढोलक, ढम ढमाढम

(स्मरण रहे कि ड और ढ़ शब्द आदि में नहीं आते।)

अक्षर

ध्वनि की वह छोटी से छोटी ईकाई जिसका उच्चारण एक झटके से होता है अक्षर कहलाती है। जैसे— आ, पी, स्त्री आदि, सभी स्वर अक्षर हो सकते है, परन्तु स्वतंत्र उच्चारण की क्षमता न रखने के कारण व्यंजन अक्षर नहीं होते। वे अक्षर तभी बनेंगे जब उनके साथ कोई स्वर मिला होगा। (अक्षर का शाब्दिक अर्थ अ+क्षर अर्थात् जिसका क्षरण न हो। जो कभी क्षरित न हो वह अक्षर है।)

अक्षरों के अमानक और मानक रूप

मानकता

अमानक रूप	मानक रूप
ग्र	अ
रव	ख
झ	झ
भ	भ
रा	ण
क्ष	क्ष
ल	ल
श	श
ध	ध

मानक संयुक्ताक्षर

मानक सही	अमानक गलत
क् + त = क्त (संयुक्त)	
श् + र = श्र (श्रम)	
ह् + य = ह्य (ग्राह्य)	
द् + य = द्य (विद्या)	
ट् + ट = ट्ट (लट्टू)	
ट् + ठ = ट्ठ (लट्ठ)	
ठ् + ठ = ठ्ठ (मिठ्ठू)	
द् + ध = द्ध (शुद्ध)	शुध्द
द् + व = द्व (द्वय)	द्वय
ह् + न = ह्न (चिह्न)	चिन्ह
ह् + म = ह्म (ब्रह्म)	ब्रम्ह
द् + भ = द्भ (अद्भुत)	अभ्दुत
ह् + ल = ह्ल (प्रह्लाद)	प्रल्हाद
ब् + द = ब्द (शब्द)	शब्द
ह् + व = ह्व (जिह्वा)	जिव्हा

कुछ व्यंजन संयुक्त होने पर पूरी तरह अपना रूप बदल लेते है और कुछ व्यंजन थोड़ा परिवर्तन कर लेते है।

पूरा रूप बदलने वाले तीन व्यजन हैं—

क् + ष = क्ष (क्षमा, क्षेत्र)

त् + र = त्र (सर्वत्र, त्रिलोक)

ज् + ञ = ज्ञ (ज्ञान, यज्ञ)

थोड़े परिवर्तन को स्वीकार करने वाले निम्नलिखित वर्ण हैं—

क् + त = क्त (वक्ता)

त् + त = त्त (पत्ता)

द् + य = द्य (विद्या)

संयुक्त अक्षर के प्रचलित रूप—

श् + न = श्न	प्रश्न या प्रश्न
द् + द = द्द	उद्दम
श् + र = श्र	श्रम, श्री
श् + ऋ = शृ	शृग, शृखला
स् + र = स्र	स्रोत

दो-दो अर्धव्यंजन वाले शब्द

उ + ज् + ज् + व + ल = उज्ज्वल

त + त् + त् + व = तत्त्व

स् + त् + र = स्त्र (स्त्री)

दु. + स्वप्न = दुस्स्वप्न = दु + स् + स् + व + प् + न

वाक्य

सार्थक शब्दो का व्यवस्थित समूह, जिससे अपेक्षित अर्थ प्रकट हो वाक्य कहलाता है।

जैसे—

- ☐ राम भोजन कर रहा है।
- ☐ आज मै इन्दौर जाऊंगा।
- ☐ तुम, कल क्यो नहीं आए?
- ☐ ओ, हो! तुम भी यही हो।

बलाघात

बोलते समय किसी अक्षर के उच्चारण पर जो बल दिया जाता है उसे बलाघात कहते है।

अर्थ की दृष्टि से बलाघात बहुत महत्वपूर्ण होता है। इससे वाक्य का अर्थ ही बदल जाता है। एक उदाहरण लें। (आज मै रामायण पढूंगा) गहरे शब्द पर बलाघात बढा कर पढें।

- ☐ **आज** मै रामायण पढूंगा।
  यहां बल "आज" पर है। अर्थात् कल मै घूमा-फिरा या सोया था, आज रामायण पढूंगा।
- ☐ आज **मैं** रामायण पढूंगा।
  यहा बल **"मै"** (कर्ता) पर है। अर्थात् कल तो किसी और ने रामायण पढ़ने का काम किया था, आज उसे मै करूंगा।
- ☐ आज मै **रामायण** पढूंगा।
  यहां बल "रामायण" (कर्म) पर है। अर्थात् कल तो कोई दूसरी पुस्तक पढी, आज रामायण की बारी है।
- ☐ आज मै रामायण **पढूंगा।**
  यहां बल "पढूंगा" (क्रिया) पर है। अर्थात् कल तो सुनी थी या खरीदी थी, पर आज रामायण पढ़नी है।

बलाघात का प्रभाव लिखने पर नहीं पडता।

☐☐

बी 22, प्रभु मार्ग
तिलक नगर, जयपुर
राजस्थान

राष्ट्र निर्माण एवं शिक्षा

❑ महेश कुमार गंगल
❑ सुमनलता

राष्ट्र निर्माण का लक्ष्य अनिवार्य रूप से एक आदर्श या राष्ट्रीय व्यक्तित्व का निर्माण करना है जो तमाम भिन्नताओं को दरकिनार कर हर प्रकार से, हर व्यवसाय, हर धर्म, हर जाति, हर समुदाय को एकता के सूत्र में पिरोकर एक समग्रता का निर्माण कर सके। राष्ट्र के समक्ष कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं जो राष्ट्र निर्माण में वाधक बन रही हैं यथा–अलगाववाद, आतंकवाद, अत्यधिक जनसंख्या, पर्यावरणीय असंतुलन, द्रुत मूल्य क्षरण एवं समाज में बढ़ती संवेदनहीनता।

राष्ट्र निर्माण एक ऐसी जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है जो सुव्यवस्थित रूप से तैयार की गई विकास नीतियों के रूप मे राजनैतिक इच्छा शक्ति को रेखाकित करती है। इसके लिए एक ऐसे आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक बुनियादी ढांचे का होना बहुत आवश्यक है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपनी क्षमता का अधिकाधिक उपयोग करे बल्कि उसमे वृद्धि भी कर सके। जन सामान्य की खुशहाली और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करके मानव विकास का मूलभूत लक्ष्य हमारी राष्ट्र निर्माण की क्रिया का अत्यन्त आवश्यक अंग है। चूकि युद्ध की शुरुआत मनुष्य के मस्तिष्क से होती है इसलिए शान्ति एव सुरक्षा के उपायों की शुरुआत भी वहीं से होनी चाहिए। राष्ट्र निर्माण के लिए सिद्धान्तों के निर्माण वाले दृष्टिकोण की आवश्यकता के बजाय ऐसे दृष्टिकोण की आवश्यकता पडती है जो सद्भावना, समता और एकता की भावना पर आधारित हो और साथ ही केन्द्रापसारी व पृथकतावादी ताकतो और सकीर्ण जातिवादी, विघटनकारी प्रवृति से उत्पन्न समस्याओ का सामना करने मे भी सक्षम हो।

सम्पूर्ण मानव इतिहास में राष्ट्रीयता की भावना जनता को प्रेरित करने वाला सशक्त आन्दोलन रहा है। राष्ट्रीयता की इसी भावना के इर्द-गिर्द हमारी अन्य भावनाएं और परम्पराएं तथा साझा जीवन, साझा ध्येय के आदर्श स्थित हैं। इससे ऐसे शक्तिशाली और सुसभ्य लोगों का बोध होता है, जो राजनैतिक रूप से भी संगठित है। राष्ट्र शब्द से हमें राष्ट्रीय सम्मान, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय ध्वज आदि के प्रति उदात्त अवधारणाओ का बोध होता है। एडमण्ड बर्क के अनुसार राष्ट्र साथ-साथ रहने वाले लोगो का समूह मात्र नही बल्कि एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है जिसका एक विशिष्ट राजनैतिक एव सामाजिक ढांचा होता है जो अन्तर्निहित सहमति के आधार पर एकता के सूत्र में बधा रहता है। यह राष्ट्रीय परम्पराओं को प्रतिबिम्वित करता है। विश्व के विभिन्न देशों में हाल ही मे हुए जातीय एव वैचारिक संघर्षो के परिणामस्वरूप हुई अनेक हिसक घटनाओं के बावजूद भी राष्ट्रीयता अपने प्रभाव और लोकप्रियता में अब भी न केवल सर्वव्यापी है वरन् राष्ट्रवादी भावनाए कमोबेश अधिक गहरी और सुदृढ भी हुई प्रतीत होती है।

वस्तुत: राष्ट्रीयता एक जटिल और अमूर्त अवधारणा है। राष्ट्रीयता एक तरह की मनोवृत्ति है जो कि सामाजिक अधिग्रहण का परिणाम है। इस तरह की राष्ट्रीयता एक अन्तर्दृष्टि के विकास के साथ-साथ ही विकसित होती है। इसके लिए कई बाधाओं, निहित स्वार्थो और प्रतिद्वन्द्वी भावनाओं को पार करना पडता है। राष्ट्र निर्माण का लक्ष्य अनिवार्य रूप से एक आदर्श या राष्ट्रीय व्यक्तित्व का निर्माण करना है जो तमाम भिन्नताओ को दरकिनार कर हर प्रकार से, हर धर्म, हर जाति, हर समुदाय को एकता के सूत्र में पिरोकर एक समग्रता का निर्माण कर सके।

एक आदर्श या राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण का

पुनीत दायित्व शिक्षा के कंधो पर है क्योकि भावी राष्ट्र का निर्माण नि संदेह देश की कक्षाओं में हो रहा है इसलिए शिक्षको को राष्ट्र निर्माता की सज्ञा प्रदान की जाती है।

मूलत· शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वागीण विकास करना है जिसके अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, चारित्रिक, आध्यात्मिक विकास व समायोजनशीलता आदि के उद्देश्य शामिल है। लेकिन वर्तमान मे बदली हुई परिस्थितियों मे राष्ट्र के समक्ष कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं जो राष्ट्र के निर्माण में बाधक बन रही है यथा— अलगाववाद, आतंकवाद, अत्यधिक जनसंख्या, पर्यावरणीय असतुलन, द्रुत मूल्य क्षरण एव समाज में बढ़ती सवेदनहीनता। सभी विचारशील लोग अलगाववाद, आतकवाद, अत्यधिक जनसख्या, पर्यावरणीय असंन्तुलन, मूल्य क्षरण एव समाज मे बढ़ती संवेदनहीनता इन सबके परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन मे व्याप्त विविध प्रकार के प्रदूषण से बहुत विक्षुब्ध है। वास्तव में मूल्यों की यह समस्यात्मक स्थिति जिस प्रकार जीवन के अन्य अंगों मे व्याप्त है उसी प्रकार स्कूलों, कॉलेजो एवं विश्वविद्यालय के छात्रो तथा शिक्षको मे भी व्याप्त है। इसे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया मे एक बाधा के रूप मे माना जा सकता है। वर्तमान मे आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के अन्य उद्देश्यों के साथ-साथ देश के भावी कर्णधारो (छात्रों) में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में बाधक बन रही समस्याओ के प्रति प्रारम्भ से ही उचित दृष्टिकोण एव इससे निपटने के तरीको से उन्हे परिचित कराया जाए। साथ ही पाठ्यक्रम मे ऐसी विषय-वस्तु का समावेश हो जिससे आज का शिक्षार्थी उक्त संकटरूपी समस्याओं से जूझने में सक्षम हो सके अन्यथा राष्ट्र निर्माण मे शिक्षा की भूमिका अधूरी-सी लगती है।

सरदार वल्लभभाई पटेल सरीखे राष्ट्र नायको के राष्ट्रीय एकीकरण के अथक प्रयासो के बाद देश आज भी अलगाववाद से जूझ रहा है। क्षेत्रीयता, पृथक् सस्कृति, सकीर्ण धार्मिकता, भाषावाद या ऐसे ही निहित स्वार्थो से प्रेरित होकर राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक् स्वतंत्र राज्यों की प्राप्ति के लिए आतंकवादी गतिविधियो पर आधारित पृथकतावादी विचारधारा ही अलगाववाद है। यही अलगाववाद हमारे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन को खोखला करता जा रहा है जिससे हमारी राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व समरसता विखण्डित होने लगी है। उक्त स्थिति से निपटने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों मे प्रारम्भ से ही ऐसे दृष्टिकोण के विकास की जो सद्भावना, सहकारिता (सर्वसहयोग), समन्वयता, समता और एकता पर आधारित हो। जिसके माध्यम से राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को बाधित करने वाली अलगाववादी प्रवृतियों के विरोध हेतु विघटनकारी प्रवृतियो, केन्द्रापसादी व पृथकतावादी ताकतो और सकीर्ण मनोवृतियों की चुनौती से निपटना होगा। समग्र रूप मे अलगाववाद से निपटने के लिए हमे शिक्षा के द्वारा ऐसे राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण की जरूरत है जो उक्त समस्याग्रस्त परिस्थितियो से जूझने मे सक्षम हो।

वर्तमान में आतकवाद विश्वव्यापी समस्या बन चुका है। विश्व के अधिकाश देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे किसी न किसी प्रकार के आतकवाद का सामना कर रहे है। हमारा देश विगत लगभग 15 वर्षो से आतंकवाद व उग्रवाद की समस्या से जूझ रहा है। मुख्यत. जम्मू-कश्मीर व कुछ अन्य क्षेत्रो में व्याप्त आतंकवाद व उग्रवाद के कारण राष्ट्रीय जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। मानवीय मूल्यो एव आदर्शो को तहस-नहस कर देने वाली गतिविधियों को आतंकवाद की श्रेणी में रखा जाता है। आज जब हम राष्ट्र निर्माण की बात कर रहे हैं तो यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि छात्रों मे आतकवाद से जूझने की मनोवृति के विकास हेतु प्रारम्भ से ही पाठ्यक्रम में ऐसी पाठ्य-सहगामी क्रियाओ को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए जिनके द्वारा आतकवाद के विरोध हेतु छात्रो मे सकारात्मक सोच विकसित की जा सके। साथ ही शिक्षा द्वारा ऐसे राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण की जो वर्तमान समस्याओं का सामना करने में सफलतापूर्वक समर्थ हो।

आज भारत, संसार को दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 35 करोड़ से 2002 मे एक अरब से अधिक जनसंख्या का होना एक भयावह भविष्य का चित्र प्रस्तुत करता है जो गम्भीर चिन्ता का विषय होना स्वाभाविक ही है। आज विश्व

का प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय है। अपार जनसख्या एव विकास की धीमी गति के कारण जनसख्या की समस्या इतनी गम्भीर बन गई है कि इसका निदान करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में प्रयत्न किए जाने चाहिए। अब भी आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जनमानस के मस्तिष्क मे स्पष्टत. यह स्थापित किया जाए कि अतिरिक्त जनसख्या का अर्थ है शिक्षा एव चिकित्सा सुविधाओं, भोजन व आवास तथा रोजगार के अतिरिक्त प्रावधान करना जो कि किसी भी सरकार के लिए आसान काम नहीं है और एक सीमा के वाद तो लगभग असम्भव ही है। वैसे जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से एक हद तक तो उक्त स्थिति पर काबू पाया है लेकिन अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। साथ ही जनमानस को यह भी समझाना होगा कि राष्ट्र निर्माण एंव विकास को वांछित गति देने के लिए जनसख्या का स्थिरीकरण आवश्यक है। अत. शिक्षार्थियो मे प्रारम्भ से ही ऐसी मनोवृति विकसित की जाए जिससे वे समझ सके कि जनसंख्या को सीमित करना न केवल वैयक्तिक वल्कि सामाजिक व राष्ट्रीय विकास हेतु परम् आवश्यक है।

प्राचीन काल से ही भारतीयो का पर्यावरण के मूलभूत घटक एव प्राकृतिक ससाधनो के प्रति सम्मानजनक एव सकारात्मक वृष्टिकोण रहा है। इस वात के प्रमाण वैदिक साहित्य में पर्याप्त रूप से विद्यमान हैं। जिसके परिणामस्वरूप अपनी आवश्यकता भर उपयोग कर यह भी ध्यान रखा जाता था कि आने वाली पीढियों को भी उचित मात्रा मे प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध हो सके। लेकिन वर्तमान भौतिकवादी युग में 'यूज एण्ड थ्रो' की मनोवृति से ग्रसित तथा कथित आधुनिक लोगो ने प्राकृतिक ससाधनों का अनावश्यक रूप से उपयोग कर दोहन का प्रयास अधिक किया है। परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि आने वाली पीढ़ियो को उनकी आवश्यकतानुसार प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध हो सकेंगे, इसमे सदेह है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षार्थियो में प्रारम्भ से ही ऐसी सोच विकसित की जाए जिससे कि वह प्राकृतिक ससाधनों का समुचित उपयोग करें दुरुपयोग अथवा दोहन नही जिससे कि आने वाली पीढ़ियो को न केवल पर्याप्त रूप से प्राकृतिक ससाधन उपलब्ध हो सकें बल्कि पर्यावरणीय असंतुलन की स्थिति से बचा जा सकें। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षार्थियों में प्रारम्भ से ही सुस्थिर विकास की अवधारणा को विकसित किया जाए जिससे कि वह सुस्थिर विकास को समझकर इसकी अवधारणा को अपने जीवन में उतार सके एवं अन्य को ऐसा करने के लिए प्रेरित कर सकें।

सम्पूर्ण भारतीय समाज मूल्य क्षरण की स्थिति से त्रस्त और संकट ग्रस्त-सा महसूस करता है। आज समाज में आम आदमी की यह धारणा वन चुकी है कि मेहनत कश और ईमानदार व्यक्ति पिस रहे है और झूठ व फरेब का कारोबार करने वाले लोग फल-फूल रहे हैं। ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ सीधे व्यक्ति को लगभग मूर्ख समझा जाता है। इस धारणा ने जीवन के सभी क्षेत्रों में अनुशासनहीनता, श्रम के प्रति अनास्था, स्वकर्म के प्रति उदासीनता, अनुत्तरदायित्व आदि अनेक प्रवृतियों को जन्म दिया है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया बुरी तरह प्रभावित हुई है। आज हम अलगाववाद, आतंकवाद, अत्यधिक जनसंख्या, पर्यावरण असंतुलन जैसी राष्ट्र निर्माण में वाधक समस्या की बात कर रहे हैं तो यह जान लेना आवश्यक है कि इन सबके मूल में भी मूल्यों मे आई गिरावट ही है। यही कारण है कि सभी प्रकार के विचारशील लोग मूल्यो मे तेजी से हो रहे क्षरण के परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण से वहुत विक्षुब्ध है।

उक्त स्थिति मे मूल्यो की पुनर्स्थापना के गुरुतर लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक है कि प्रशासको, अभिभावको एव शिक्षकों मे पारस्परिक सहयोग की भावना विकसित हो एवं उनकी कार्यप्रणाली तथा जीवन शैली मूल्यपरक होनी चाहिए।

मानव का अमानवीय प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होना समाज में बढती हुई सवेदनहीनता का ही परिचायक है। भोगोन्मत मानव जाति आज विवेक शक्ति से वचित होकर इन्सान के साथ क्रूरतापूर्वक, पशुवत व्यवहार कर रही है। इन्सान होते हुए इन्सानियत का अभाव, हम के स्थान पर 'मैं' का बोलबाला, सामाजिक व राष्ट्रीय हितों की

अनदेखी, प्राकृतिक ससाधनो का उपयोग के स्थान पर दुरुपयोग एवं सुस्थिर विकास की अवधारणा को न समझना, मानवीय मूल्यो का तेजी से होता हुआ क्षरण इत्यादि क्रमशः इन्सान के प्रति, व्यापक सोच के प्रति, वैयक्तिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय हितो के प्रति, पर्यावरणीय सन्तुलन के प्रति, मानवीय मूल्यो के प्रति, समाज में बढ़ती संवेदनहीनता का ही द्योतक है। शिक्षा का संवेदना से गहरा सम्बन्ध है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ही मानव को सवेदनशील बनाना है। यदि कोई शिक्षा प्रणाली, किसी स्तर पर सवेदना से नहीं जुडी तो वह अवश्य ही दूषित शिक्षा प्रणाली है। मानवीय संवेदनाओं के आधार पर ही कहा जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य पुस्तकीय ज्ञान बढ़ाना नहीं बल्कि उन्हें अच्छे नागरिक वनाना व उनमें मानवीय मूल्यो के प्रति सवेदना उत्पन्न करना आदि है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि राष्ट्र निर्माण को वाछित गति व दिशा देने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्र निर्माण में उत्पन्न समस्याओ को शिक्षा द्वारा हल किया जाए क्योंकि शिक्षा मानव विकास का मूल आधार है और मानव विकास से जुडा है—राष्ट्र निर्माण एव राष्ट्र का विकास। अलगाववाद व आतकवाद ने हमारे सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन मे निहित एकता, अखण्डता तथा समरसता को विघटित किया है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षार्थियो मे प्रारम्भ से ही ऐसे दृष्टिकोण को विकसित किया जाए जो सद्भावना, समता, सहभागिता, समन्वयता और एकता के अनुरूप हो, साथ ही पढाए जाने वाले पाठ्यक्रम मे सद्भावना, समता, सहभागिता, समन्वयता और एकता पर आधारित शिक्षण क्रियाओं को न केवल सम्मिलित किया जाए बल्कि उनकी मूल भावना वास्तविक स्वरूप मे छात्रो के विद्यार्थी जीवन मे उतारने का पूरा-पूरा प्रयास शिक्षकों, प्रशासको द्वारा किया जाना चाहिए। तीव्र गति से बढती जनसंख्या ने देश के सभी विकास कार्यो पर एक अदृश्य दबाव बना रखा है। सरकार जितने स्कूल, चिकित्सालय एवं आवास बनाने की योजना लागू करती है, योजना पूर्ण होने से पहले ही उतने से भी कही अधिक की माग फिर खड़ी हो उठती है। इसके लिए आवश्यकता है कि दूरदराज के ग्रामीण इलाको के व्यक्तियो को यह समझाने की कि बढती जनसंख्या की गति को रोके विना हम वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास के वाछित लक्ष्यों तक नही पहुच सकते है। बढ़ती जनसंख्या एवं परिवर्तित जीवन शैली के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय असतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई है इससे निपटने हेतु आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही शिक्षार्थियो के मानस पटल में यह बात स्पष्ट रूप से स्थापित की जाए कि वे प्राकृतिक ससाधनों के उपयोग एवं दोहन में अन्तर करना सीखें जिससे कि वे प्राकृतिक संसाधनो का आवश्यकतानुसार उपयोग तो करे परन्तु दुरुपयोग कदापि नही। यह भी ध्यान रखे कि आने वाली पीढियों को पर्याप्त रूप से ससाधन उपलब्ध हो सकें। इन सब उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु मूल्यों की पुनर्स्थापना एव शिक्षा को अधिक सवेदनशील बनाना अति आवश्यक है। इस हेतु आवश्यक है कि शिक्षार्थियो को प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष विधियो द्वारा दी जाने वाली मूल्य शिक्षा को अधिक व्यावहारिक रूप प्रदान कर प्रभावी वनाया जाए। जिससे कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को वाछित गति व दिशा मिल सके और इसमें शिक्षा की भूमिका को और अधिक सार्थक बनाया जा सके। ❑❑

(1) श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय
केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर, राजस्थान
(2) आचार्य नरेन्द्र देव महिला डिग्री कॉलेज
कानपुर, उत्तर प्रदेश

वाक्-वाचन और लेखन कौशल का विकास

❑ फ़ीरोजा मुजफ्फर

समस्या

विद्यार्थी गलत हिन्दी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं।

निदान की आवश्यकता

हिन्दी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और शिक्षण का माध्यम अनेक शालाओं मे है। अत सही हिन्दी बोलने, पढ़ने, लिखने का बहुत महत्व है।

विभिन्न भाषाई कौशल का विकास बालक के बहुमुखी विकास मे सहायक होता है। सही, सशक्त ढंग से आत्माभिव्यक्ति करने से बालक का आत्मविश्वास बढ़ता है। सही आत्मविश्वास प्रगति का पथ प्रशस्त करता है।

कार्य-कारण संबंध

गलत हिन्दी बोलने, पढने, लिखने के अनेक कारण है–

- ❑ परिवार का प्रभाव
- ❑ परिवेश का प्रभाव
- ❑ शाला में शिक्षक द्वारा गलत बोलना, पढाना, लिखना।
- ❑ बालको के गलत बोलने, पढ़ने, लिखने पर शिक्षक द्वारा सुधार न करना।
- ❑ उदासीनता और उपेक्षा की मनोवृति।
- ❑ अपनी मातृभाषा है इसलिए कैसे भी बोले, पढें, लिखें, यह मनोवृति।
- ❑ 30-35 मिनट के कालखड में 50 बच्चो पर व्यक्तिगत ध्यान देना असभव।
- ❑ वैयक्तिक भिन्नताएं
- ❑ शिक्षकों की यह मनोवृति है कि केवल भाषा शिक्षक का ही उत्तरदायित्व है कि बच्चो के भाषा सुधार पर ध्यान दे।

उद्देश्य

प्रस्तुत प्रायोजना के उद्देश्य है–

- ❑ शिक्षार्थियो को सही बोलने, पढ़ने, लिखने के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन और पथ प्रदर्शन करना।
- ❑ आत्मप्रकाशन के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कर बच्चों का आत्मविश्वास बढाना।

भाषाई कौशल का सही दिशा मे विकास करके अन्य विषयो के शैक्षिक स्तर मे भी गुणात्मक सुधार करना।

परीक्षा शिक्षार्थी और प्रशिक्षार्थी दोनों के मन-मस्तिष्क पर हावी रही। शिक्षक-प्रशिक्षक ने उनको यह दृष्टि दी कि वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होना साधन है– साध्य नहीं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ना, सफलता प्राप्त करना तब ही संभव है जब हमारा बोलना, पढ़ना और लिखना प्रभावपूर्ण हो।

क्षेत्र

- ❑ शाला–शासकीय माध्यमिक शाला, पुलिस लाइन जहांगीराबाद, भोपाल
- ❑ कक्षा– पचम
- ❑ आयु– 11 - 13 वर्ष
- ❑ लिग– वालक, वालिकाए
- ❑ सख्या– पचास 19 + 31 = 50
- ❑ सामाजिक स्थिति– अनेक विद्यार्थी अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति के है।

हिन्दू-मुस्लिम वालक, वालिकाए हैं। अधिकाश बच्चे पुलिस वालों के है। कुछ झुग्गी-झोपड़ी के बच्चे भी हैं।

आर्थिक दृष्टि से ये बालक मध्यम और निर्धन वर्ग

के है। माता-पिता दोनों काम करते है।

पिता थोडे-बहुत पढ़े हुए है। माता कुछ पढ़ी-लिखी या निरक्षर हैं।

प्रक्रिया

उपकरण / सामग्री /विधि

- ☐ बाल केन्द्रित शिक्षा
- ☐ वैयक्तिक भिन्नता— बालक की योग्यता, क्षमता, संभावनाओं और रुचियो को ध्यान में रखकर विद्यार्थियो को प्रेरणा, प्रोत्साहन और पथ प्रदर्शन का कार्य किया गया।
- ☐ विद्यार्थियों की सामाजिक, भावनात्मक आवश्यकता को ध्यान मे रख कर उन्हे समुचित मान्यता, सम्मान और स्नेह दिया गया।
- ☐ दब्बू, संकोची और आत्महीनता से ग्रस्त हताश बालको को प्रोत्साहित करने का विशेष प्रयास किया गया।
- ☐ प्रत्येक बच्चे को उसका नाम लेकर बुलाने का प्रयास किया गया। फलत बालको मे आत्मीयता के सूत्र जुडे। इस आत्मीयता की उष्मा से ही बच्चो की सुप्त प्रतिभा जाग्रत करने का प्रयास किया गया।
- ☐ बच्चों की प्रगति, सफलता, उपलब्धियो का उल्लेख कक्षा में किया गया। फलतः अन्य बच्चो को भी प्रोत्साहन मिला और प्रगति करने वाले छात्र मे आत्मविश्वास बढा, रुचि बढ़ी और उसने द्विगुणित उत्साह के साथ प्रगति के पथ पर तीव्र गति से डग बढ़ाए।

परिकल्पना

शिक्षार्थियों में भाषाई कौशल विकास हेतु सतत् कार्य-निर्धारित योजनानुसार करना ताकि अतत· बालक के शैक्षिक स्तर मे गुणात्मक सुधार हो और बालक के बहुमुखी विकास का पथ प्रशस्त हो। बालक के व्यवहार मे वाछनीय परिवर्तन हो जाए।

रूपांकन – कार्य योजना

- ☐ शिक्षको से चर्चा करना— भाषाई कौशल विकास।
- ☐ शिक्षको का सही बोलने, पढ़ने, लिखने के लिए समुचित मार्गदर्शन देना श्यामपट पर लिखकर समझाना।
- ☐ शिक्षार्थियो के वाक्, वाचन और लेखन कौशल विकास मे शिक्षको से सहयोग लेना।
- ☐ बालको की अभ्यास-पुस्तिकाए पुन चेक करना।
- ☐ बालकों के पांच टेस्ट लेना।
- ☐ शिक्षकों को सही बोलने पर विशेष बल देना ताकि बच्चे सही सुनेगे (श्रवण कौशल विकास) तभी सही बोलेंगे, पढ़ेंगे, लिखेगे।

क्रियान्वयन

अवधि— दो जुलाई, 1993 से अक्तूबर 1993 तक। दो जुलाई, 1993, से प्रस्तावित योजना का कार्यक्रम प्रारंभ किया गया।

प्रथम सोपन

सर्वप्रथम शिक्षको के भाषा कौशल विकास और भाषा शिक्षण के विषय मे समुचित मार्गदर्शन दिया गया।

द्वितीय सोपान

शिक्षार्थियो को समुचित मार्गदर्शन दिया गया। उन्हे अपना नाम, कक्षा, विषय और शाला का नाम सही, सुस्पष्ट, सुडोल अक्षर और सुव्यवस्थित ढग से लिखना सिखाया गया।

तृतीय सोपान

शिक्षार्थियों के लेखन कार्य को शिक्षको द्वारा जाचा हुआ पुन जाचा गया। सही वर्तनी पर विशेष बल दिया गया।

चतुर्थ सोपान

समय-समय पर कक्षा में जाकर श्यामपट पर लिखकर, पढकर, बोलकर वाक्, वाचन और लेखन कौशल विकास हेतु सतत् मार्गदर्शन दिया और प्रोत्साहित किया। इन अक्षरों को सुडोल बनाने का विशेष अभ्यास कराया गया—

इ, ड, ह, द/ क, फ, व, ब / म, य, त, ट।

वर्तनी की शुद्धि

बिंदु और चद्र बिन्दु सही, सुस्पष्ट रूप मे सही अक्षर पर लगाना।

'र' की मात्रा सही स्थान पर लगाना।

इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ औ की मात्राए सही लगाना।

टेस्ट उत्तर पुस्तिकाओ का सकलन, जांचना और आंकडो का विश्लेषण।

आंकड़ो का विशलेषण

आकड़ों की तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम पांच स्थान पाने वाले विद्यार्थी ग्यारह है।

प्रथम स्थान तीन छात्रों ने, द्वितीय स्थान एक, तृतीय स्थान तीन, चतुर्थ स्थान दो और पंचम स्थान भी दो छात्रो ने प्राप्त किया।

बालक, बालिकाओ की दृष्टि से देखे तो प्रथम पाच स्थान पाने वालों मे बालिकाएं छ· और बालक पांच हैं।

वर्ग अतराल तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक छात्र—सत्रह ने 31-35 अक प्राप्त किए।

सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्र—चार ने 41-45 अंक प्राप्त किए। सबसे कम अक पाने वाले छात्र—चार ने 16-20 अक प्राप्त किए।

प्रगति की रफ्तार की तालिकाओं से स्पष्ट है कि 96 प्रतिशत विद्यार्थियो ने आशातीत प्रगति की है। विद्यार्थियो के प्राप्ताक, उनकी उपलब्धि, गुणवत्ता, व्यवहार मे वाछनीय परिवर्तन के साक्षी हैं। 4 प्रतिशत छात्रो की ही प्रगति बहुत धीमी रही।

वाचन, लेखन कौशल का सहसंबंध

विद्यार्थियों के पाच टेस्ट के प्राप्ताको के आधार पर उनके लेखन कौशल के विकास का विश्लेषण किया गया।

बच्चो का वाचन टेस्ट भी लिया गया। तदंतर वाचन और लेखन कौशल का सहसंबध देखा गया जो इस प्रकार है।

बालिका— 31

बालक— 19/50

विश्लेषण	छात्र संख्या
पूर्ण सबध	12
उत्कृष्ट संबंध	20
सतोषपूर्ण संबध	8
असंतोषपूर्ण सबध	8
निम्न सहसबंध	2
	50

वाचन और लेखन के सहसंबंध को एक अन्य दृष्टि से भी देखा जा सकता है।

अधिकांश बच्चो के लेखन के प्राप्ताक अधिक हैं तथा वाचन के प्राप्ताक तुलनात्मक दृष्टि से कम हैं।

केवल चार-पांच छात्र ही ऐसे रहे जिनके वाचन मे अधिक अक और लेखन में प्राप्तांक कम रहे।

विशेष

वाचन टेस्ट की एक विशेषता यह भी रही कि बच्चो से जब कक्षा के सब छात्रों के समक्ष वाचन को कहा गया तो वे धीमे, अस्पष्ट बोले।

शिक्षक-प्रशिक्षक ने अपने निकट खड़ा कर पीठ थपथपाकर जब बोलने को कहा तो इन्ही शिक्षार्थियों ने बड़े आत्मविश्वास के साथ स्पष्ट, शुद्ध उच्चारण के साथ जोर से पढ़ा।

विशेष अभिलक्षण

विद्यार्थियों मे उत्साह और आत्मविश्वास बढ़ा। बोलने, पढ़ने और लिखने मे सुस्पष्टता और शुद्धता परिलक्षित हुई।

- ☐ विभिन्न प्रतिस्पर्द्धाओ मे भाग लेने हेतु अधिक सक्रिय हो गए।
- ☐ अनेक बच्चे अपना नाम और शाला का नाम सही लिखने लगे।
- ☐ अनुच्छेद (पैराग्राफ) बनाकर लिखने लगे।
- ☐ अक्षर बड़े-बड़े, दूर-दूर लिखना प्रारंभ कर दिया है।
- ☐ शिरोरेखा लगाने पर ध्यान देने लगे है।
- ☐ सुडोल अक्षर नहीं बना पाते है।

निष्कर्ष

वाक्, वाचन, लेखन कौशल विकास के लिए समस्त विषयों के शिक्षको का सामूहिक रूप से अपना उत्तरदायित्व निष्ठा के साथ निरतर पूर्ण करना है सभी बच्चों की उपलब्धि, शैक्षिक गुणवत्ता को अस्थाई बनाना सभव है।

शिक्षक/शिक्षार्थी अभिमत प्रतिक्रियाएं

प्रस्तुत प्रयोग के संदर्भ मे शिक्षार्थियों की मौखिक प्रतिक्रियाएं इस प्रकार रहीं—

- ☐ सही, सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित लेखन से परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।
- ☐ हमारी पढ़ाई में रुचि बढ़ी है।

- ☐ शिक्षक हम मे से प्रत्येक छात्र पर ध्यान दें, उसे प्रोत्साहित करे।
- ☐ हम अच्छा लिख ही नही सकते, ऐसा विश्वास था पर अब हमारा आत्मविश्वास बढ़ा है।

धर्मेश कुमार सिंह
छात्र– कक्षा पांच

कुछ छात्र/छात्राओं की लिखित प्रतिक्रियाए उल्लिखित कर दी गई है।

सुझाव

- ☐ शैक्षिक गुणवत्ता हेतु निरंतर कार्य करना आवश्यक है।
- ☐ वैयक्तिक भिन्नता व्यक्तिगत संपर्क और आत्मीयता की उष्मा के स्पष्ट होने से शैक्षिक उन्नयन निश्चित रूप से होता है।
- ☐ आत्मप्रकाशन से आत्मविश्वास बढता है तदर्थ बच्चों को आत्मप्रकाशन के अधिकतम अवसर उपलब्ध किए जाएं।
- ☐ प्रेरणा, प्रोत्साहन, पथ प्रदर्शन, तीन शब्द सफलता/सार्थकता के मूलमंत्र है।
- ☐ जो बच्चे पुस्तक देखकर भी पढ नही पाते, श्यामपट पर लिखे हुए की सही नकल नहीं कर पाते उनके लिए विशेष परिश्रम, पथ प्रदर्शन आवश्यक है।
- ☐ शिक्षार्थियो के साथ सही लिखने की आदत, धीमी गति को तीव्र गति करने का सतत् प्रयास करना होगा।

शैक्षिक उपादेयता

शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार क्रियात्मक अनुसधान की योजनाए निश्चित ही शैक्षिक उन्नयन और गुणवत्ता का पथ प्रशस्त करती है।

वाक्, वाचन, लेखन भाषीय कौशल विकास

समस्या 2

छात्राध्यापको द्वारा अशुद्ध अस्पष्ट बोलना/लिखना।

निदान एवं उपचार की आवश्यकता

सही बोलना, सही पढना और सही लिखना जीवन मे सफलता की अनिवार्य शर्ते है।

छात्राध्यापकों के लिए तो वाक्, वाचन, लेखन कौशल का सही दिशा मे विकास नितात आवश्यक है। यदि शिक्षक मे भाषा के इन कौशलों– वाक्, वाचन, लेखन का सही विकास नहीं होगा तो भविष्य मे असंख्य विद्यार्थियो के भाषा कौशल विकास पर इसका दुष्प्रभाव होगा।

कार्य-कारण सबंध

छात्राध्यापकों के गलत बोलने, पढ़ने, लिखने के अनेक कारण हैं–

- ☐ परिवार का प्रभाव
- ☐ पास-पड़ोस, क्षेत्रीयता का प्रभाव
- ☐ पाठशाला मे सही बोलने, पढने, लिखने पर ध्यान न देना।

उद्देश्य

प्रस्तुत क्रियात्मक अनुसंधान का उद्देश्य छात्राध्यापकों को सही बोलने, पढ़ने और लिखने की ओर प्रवृत्त करना।

सही बोलने, पढ़ने और लिखने का निरतर अभ्यास कराना है।

वाक्, वाचन कौशल सही सुस्पष्ट सस्वर-वाचन, गति के साथ वाचन भाषानुरूप वाचन।

लेखन कौशल

सही सुस्पष्ट लेखन, सुडोल अक्षर, शिरोरेखा, विराम-चिन्ह, अक्षर-अक्षर, शब्द-शब्द के बीच उचित दूरी, सही वर्तनी पर बल देना।

उपरण/सामग्री/विधि

प्रतिदिन प्रार्थना और उसके बाद अनमोल वचन सही सुस्पष्ट उच्चारण के साथ पढें और बोलें।

- ☐ अनमोल वचन सही, सुस्पष्ट उच्चारण मे बोले जाए।
- ☐ प्रार्थनाए सही, सुस्पष्ट, सुव्यवथित लिखें।
- ☐ विभिन्न विषयों का कार्य सही,सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित लिखा जाए।
- ☐ अभ्यास पाठ के समय सही बोलें, पढें, लिखे।

परिकल्पना

छात्राध्यापकों को सही बोलने, पढने, लिखने के लिए सतत् मार्गदर्शन दिया जाए तो निश्चित ही अभीष्ट परिणाम प्राप्त होंगे।

कार्य-योजना

सूत्र

- प्रेरणा, प्रोत्साहन और पथ प्रदर्शन।
- आत्मप्रकाशन से आत्मविश्वास बढ़ता है।

सही बोलने, पढ़ने, लिखने के लिए प्रतिदिन के क्रियाकलाप और अनुभव से सामग्री जुटाई जाए। जैसे–

- ☐ दैनिक प्रार्थनाएं, अनमोल बचन
- ☐ शिक्षा मनोविज्ञान पाठ्यक्रम, पाठ्य-वस्तु (शिक्षक-प्रशिक्षक यही विषय पढ़ाती है।)
- ☐ अभ्यास पाठ–सामाजिक विज्ञान
- ☐ विभिन्न पर्वो पर आयोजित साहित्यिक/सास्कृतिक कार्यक्रम
- ☐ आतरिक मूल्याकन हेतु समगत कार्य के अतर्गत छात्राध्यापको से कराई जाने वाली विभिन्न गतिविधियो जैसे पोस्टर लेखन, टेस्ट, समाचार संकलन, लेखन प्रस्तुति।

क्रियान्वयन

वाक्, वाचन, लेखन कौशल विकास के लिए शिक्षक-प्रशिक्षक–के कथन को सूत्र वाक्य बनाया गया।

'उपदेश से उदाहरण भला'

तदनुरूप स्वय सही बोलने, पढ़ने, लिखने हेतु कक्षा में, कक्षा से बाहर, सस्था परिसर में सतत् जागरूक रहने का प्रयास किया।

- ☐ प्रतिदिन संस्थान मे की जाने वाली प्रार्थनाएं छात्राध्यापकों से लिखवाई। अशुद्धिया सुधार कर पुनः लेखन कार्य करवाया।
- ☐ अनमोल वचन का वाचन, लेखन सही, सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित करने के लिए सतत् रूप से मार्गदर्शन दिया।
- ☐ शिक्षा मनोविज्ञान का पाठ्यक्रम लेखन करवाया।
- ☐ शिक्षा मनोविज्ञान प्रश्नोत्तर लेखन करवाया।
- ☐ श्रुत लेखन टेस्ट।
- ☐ वाचन टेस्ट।
- ☐ अभ्यास पाठ मे वाक्, वाचन और लेखन पर निरतर निगाह रखी गई।
- ☐ विभिन्न साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रमो के आयोजन, प्रस्तुति मे सही, सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित वाचन, लेखन पर सदैव ध्यान दिया गया।
- ☐ पोस्टर लेखन, विविध प्रायोजनाओं के कार्य मे भी भाषा कौशल विकास हेतु सदैव सही मार्गदर्शन दिया।
- ☐ आतरिक मूल्यांकन के विविध कार्यो/गतिविधियो में भी भाषा कौशल विकास को वांछनीय दिशा देने का भरसक प्रयास किया गया।

इस प्रकार अनुकूलित शैक्षिक वातावरण छात्राध्यापको के लिए बनाए रखने का प्रयास शिक्षक-प्रशिक्षक ने अपनी क्षमतानुसार निरतर किया।

विश्लेषण

आंकडों के विश्लेषण से स्पष्ट है सर्वाधिक छात्र (नौ) ने 26-30 अंक प्राप्त किए। पूर्णाक– 50।

सबसे कम छात्र (एक) ने 0-10 अंक प्राप्त किए। (यह छात्र बहुधा अनुपस्थित रहा। केवल श्रुत लेखन टेस्ट ही दिया।)

प्रतिशत मे अंकों का विश्लेषण इस प्रकार से है–

छात्र सख्या	अंक प्रतिशत
6	70% से ऊपर
7	60-66% अंक से ऊपर
7	50-58% अंक से ऊपर
2	40-48% अक से ऊपर
1	20% से कम अक

(पूर्णाक 50) (पाच टेस्ट, दस-दस अक के)

लेखन टेस्ट प्राप्तांक तालिका से स्पष्ट है कि दस छात्राध्यापकों के लेखन + वाचन के प्राप्ताकों मे 100 प्रतिशत पूर्ण सहसबंध पाया गया।

पांच छात्रो के लेखन + वाचन सहसबंध में बहुत कम अतर पाया गया।

चार छात्रो ने दोनों में वाचन, लेखन मे कम अक प्राप्त किए, किन्तु सहसबंध 100% पूर्ण है।

एक छात्रा कु रशिम जैन अपवाद रही जिसने लेखन में (1) कम, वाचन (10) में अधिक अंक पाए।

एक छात्र (क्रमांक 23) इस पूरी परियोजना मे सम्मिलित नहीं हुआ। केवल श्रुतलेख + वाचन टेस्ट में सम्मिलित हुआ। उसके लेखन-वाचन के सहसंबंध में भिन्नता सबसे अधिक पाई गई।

मूल्याकंन

आंकडों के विश्लेषण से प्रस्तुत प्रायोजन का मूल्याकन इस प्रकार किया जा सकता है।

छात्राध्यापको के भाषाई कौशल का विकास निश्चित ही वाछनीय दिशा में हुआ है।

उपलब्धियां

व्यवहार मे वांछनीय परिवर्तन का प्रदर्शन।

- ☐ छात्र प्रार्थना, अनमोल वचन, सही, सुस्पष्ट बोलने, लिखने लगे।
- ☐ विभिन्न गतिविधियों मे सही, सुस्पष्ट बोलने लिखने लगे।
- ☐ अभ्यास पाठ मे प्रत्येक छात्र ने श्यामपट पर सही, सुव्यवस्थित कार्य किया।

विशेष अभिलक्षण

छात्र सही, सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित कार्य हेतु सजग, सक्रिय हुए।

निष्कर्ष

समर्पित भाव और धैर्य के साथ सतत् कार्य करने से प्रेरणा, प्रोत्साहन पथ प्रदर्शन से निश्चित ही विद्यार्थियों के व्यवहार मे वांछनीय परिवर्तन होता है।

छात्रो मे उदासीनता, उपेक्षा तथा निराशा के दुश्चक्र के भाव को तोड़ने के लिए शिक्षक को समर्पित भाव के सुदर्शन चक्र से काम लेना पडता है।

आत्मीयता की उष्मा से छात्रों की सुप्त प्रतिभा कुंठित/लुंठित योग्यता क्षमता संभावनाओं को उभारने, निखारने के लगातार प्रयास से सफलता अवश्य मिलती है।

सुझाव

किसी भी योजना की सफलता के लिए सतत् कार्य करना अनिवार्य है। सूझ-बूझ, कल्पनाशीलता, कठोर परिश्रम, एकाग्रता और धैर्य से शिक्षार्थियों के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन अवश्य ही परिलक्षित होता है।

वाक्, वाचन, लेखन कौशल विकास तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत अभिनव प्रयोग शिक्षार्थी और छात्राध्यापक (प्रशिक्षणार्थी द्वितीय वर्ष) दोनो पर किया गया है। शिक्षार्थी कक्षा पाच के थे। छात्राध्यापक भावी शिक्षक के रूप मे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे है। (ये जिला शिक्षा एव प्रशिक्षण सस्थान, भोपाल में द्वितीय वर्ष के छात्र है।)

छात्राध्यापको को गलत वोलना, पढ़ना, लिखना, चिता, चिन्तन और चुनौती बन गया है।

फलत शिक्षक-प्रशिक्षक ने इस चुनौती को स्वीकार किया। छात्राध्यापको के वाक्, वाचन और लेखन कौशल मे सुधार का अनवरत प्रयास किया।

नई पीढी मे शुद्ध, सुस्पष्ट बोलने, पढ़ने, लिखने की आदत परिपुष्ट हो— इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कक्षा पाच को निरतर पढाया गया और पथ प्रदर्शन किया।

दोनों प्रयोग के तुलनात्मक परिणाम इस प्रकार रहे—

- ☐ कक्षा पाच के शिक्षार्थियो ने उत्साह के साथ द्रुत गति से कार्य मे सुधार किया।
- ☐ छात्राध्यापकों ने भी सजगता और सक्रियता के साथ भाषाई कौशल विकास पर ध्यान दिया।
- ☐ विद्यार्थी विभिन्न प्रतिस्पर्धाओ में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित हुए।
- ☐ छात्राध्यापकों ने सोचा कि अभ्यास पाठ में सही बोलने, पढने और लिखने से पाठ प्रभावी हो सकेगा।
- ☐ सही, सुस्पष्ट और सुव्यवस्थित कार्य से हमे आंतरिक मूल्याकन और वाह्य परीक्षा मे अच्छे अंक प्राप्त हो सकेंगे।
- ☐ इन्ही, विद्यार्थी और भावी शिक्षक (छात्राध्यापक), दोनो का मतव्य था कि सही, सुस्पष्ट और सुव्यवस्थित कार्य से हमे वार्षिक परीक्षा मे अच्छे अक प्राप्त होने की संभावना बढ़ जाएगी।
- ☐ दोनों का यह दृढ विश्वास था कि सही, सुस्पष्ट कार्य जीवन में सफलता का द्वार खोलता है और दूसरो पर हमारा अच्छा प्रभाव पडता है।

निष्कर्ष

परीक्षा शिक्षार्थी और प्रशिक्षार्थी दोनों के मन-मस्तिष्क पर हावी रही। शिक्षक-प्रशिक्षक ने उनको यह दृष्टि दी कि वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होना साधन है— साध्य नहीं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में आगे बढ़ना, सफलता प्राप्त करना तब ही संभव है जब हमारा बोलना, पढ़ना और लिखना प्रभावपूर्ण हो। ☐☐

डाइट, भोपाल
मध्य प्रदेश

गुरु-शिष्य परम्परा और जीवन-मूल्य

❑ सत्यनारायण शुक्ल

उपर्युक्त दोनों शव्द वसुन्धरा की धरोहर है। हजारो साल पहले जब मानव मे ज्ञानांकुर फूटे होंगे और ज्ञान के अंकुरण ने प्यास का अनुभव किया होगा तो उसे किसी ने उसकी उस पिपासा को शान्त किया होगा. ., तभी से गुरु-शिष्य परम्परा का बीजारोपण हुआ . ।

सृष्टि के उषा काल मे जब आदि मानव ने अपने नेत्र खोले होंगे तो उसको सर्वप्रथम प्रकृति का ही सहचर्य और सहयोग प्राप्त हुआ होगा।

"दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक चक्रवाल की तरह घेरे रही है। प्रकृति के विविध कोमल पुरुप सुन्दर, विरूप, व्यक्त-रहस्यमय रूयो के आकर्षण विकर्पण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य, प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा। वस्तुत' संस्कार क्रम मे मानव जाति का भाव जगत् ही नहीं उसके चिन्तन की दिशाएं भी प्रकृति से विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उसकी उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित हैं"।

—महादेवी वर्मा

मनुष्य ने पठनीय सकेतो का आविष्कार आदिम उपत्यकाओं में किया था। प्रकृति मनुष्य की विराट पाठशाला थी। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, पर्वत-नदी, कीट-पतंग और जड वस्तुएं तक मनुष्य की शिक्षा की वर्णमाला के समान थे। इसलिए चाहे वेदों की रचना हो या विश्व की किसी भी सभ्यता के आदिम ग्रन्थो की, मनुष्य ने समूचा ध्वनि-मंत्र, उच्चारण-तत्र प्रकृति से प्राप्त कर वाणी मे उतारा था। हमारी वाचिकता ने एक वैभवशाली लोक शिक्षण रचा था, जिसे आज की भाषा मे आनन्दमयी लोक शिक्षण का प्रथम प्रतिमान कहा जा सकता है। लिपि सकेतो के आविष्कार से वाणी और ध्वनि वायुमण्डल मे व्याप्त होकर तिरोहित होने से बच गए और मनुष्य ने अक्षरो की बीज रूप मे रचना कर उन्हें शाश्वत रूप से सुरक्षित कर दिया।

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति में एक बात तो विशेष रूप से अवधेय है कि छात्र ही गुरु से शिक्षा प्राप्त करने उसके पास जाते थे। पश्चिम के देशों की ट्यूशन की तरह की पद्धति तब यहां प्रचलित नहीं थी जिसमें कि अध्यापक को पढ़ाने के लिए घर-घर भटकना पड़ता है। अध्यापक के एक अन्य पर्यायवाची शब्द उपाध्याय का यही रहस्य है।

अक्षर की वीजसत्ता स्वीकृत हो जाने के पश्चात् अनेक संरचनात्मक माध्यमों का उदय हुआ और शब्द वाक्य, सरचना, व्याकरण आदि ने अक्षर की सत्ता को विराट कर दिया। इसी से आगे चलकर सीखने की प्रणाली का जन्म हुआ जिसे आज के शिक्षाशास्त्र में शिक्षण प्रणाली या 'टीचिंग-लर्निंग मैथड' कहा जाने लगा। शिक्षा का यही माध्यम विभिन्न ज्ञान और कौशल विषयों के अनुशासन का आधार बनकर औपचारिक शिक्षा का माध्यम बना, फिर चाहे वह आश्रम प्रणाली का भारतीय शिक्षा प्रतिमान हो या ग्रीस की घाटियों मे जन्मी सभ्यताओं का प्रतिमान। भाषा के आविष्कार ने ही शिक्षा को औपचारिक तथा संस्थागत वनाया और आगे चलकर उसे श्रेणीबद्ध किया तथा उसके नए-नए मानदण्ड रचे।

प्राचीन भारत की गुरुकुलीय पद्धति, जिसमें छात्र गुरु के घर अथवा आश्रम में जाकर कतिपय उसी के सरक्षण मे रहकर विद्या अध्ययन करता था। उसकी समस्त दिनचर्या पर गुरु का अंकुश होता था। उन्ही के अनुशासन में रहकर छात्र विद्योपार्जन करता। जहां बहुत कड़ा

अनुशासन होता। गुरु का आदेश छात्र के लिए सर्वोपरि होता था। गुरु भी अध्यापक की ही भूमिका नही निभाते वरन् छात्रो की देखभाल, उनके भोजनादि की व्यवस्था और उन्हे सम्यक् शिक्षा प्रदान करने का दायित्व होता था। अपने सम्यक् आचार द्वारा छात्र के लिए अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते आचार्य। आचार्य की परिभाषा भी यही है— आचार्य कस्मात? आचारं ग्राह्यति, आचार्य को आचार्य क्यो कहा जाता है? इसलिए कि वह आचार (सदाचार) सिखाता है। जिसके लिए आवश्यक है कठोर अनुशासन, स्वयं का आचारवान होना, जो स्वय आचारवान नहीं वह दूसरे को क्या आचार सिखाएगा? उसे तो स्वय आदर्श उपस्थित करना है। आचार्य का सारा जीवन कठोर अनुशासन में बधा होता था। यही कारण था कि समाज में उसके लिए विशेष आदर था— इतना आदर कि उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश यहा तक साक्षात् परब्रह्म तक मान लिया गया था—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

यह वह गुरु था जो ब्रह्मचारी को, जो उसके पास पढ़ने के लिए आता था, अपने गर्भ के रूप मे समाविष्ट कर लेता था— 'आचार्यो ब्रह्मचारिण गर्भ कृणुतेडन्तः' यहां छात्र की गुरु के गर्भ के रूप में इस तरह की परिकल्पना सर्वथा अनूठी है। शायद ही किसी अन्य परम्परा में इस तरह की परिकल्पना हो। जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु माता के शरीर का, न केवल शरीर का अपितु उसके सम्पूर्ण अस्तित्व का अभिन्न अग होता है, उसी से वह रस ग्रहण करता है, उसी से उसका पोषण होता है, उसी प्रकार की स्थिति गुरु के लिए ब्रह्मचारी की थी। छात्र के रूप में स्वीकार कर लिए जाने पर वह उसका हो जाता था। जिसका समस्त दायित्व उस पर आ जाता था जिसमें अपनी समस्त विद्या, अपना समस्त ज्ञान सक्रान्त कर वह, ऋषि-ऋण से मुक्ति पा लेना चाहता था। इस ज्ञान के संक्रमण के लिए यह आवश्यक था कि इतने अपनेपन के साथ जो छात्र गुरु के पास आए वह इसका अधिकारी हो। इसलिए अच्छी तरह जांच-परख कर ही विशेषकर उच्च अध्ययन के लिए गुरु बालक को अंगीकार करता था। प्राचीन भारत का गुरु इस विषय में विशेष जागरूक था। यह जागरूकता प्राचीन काल से ही उसमे थी।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजमाम गोपाय मा शिवधिष्टेऽहयस्मि।
असूय काया नृजवेडयताय तस्मै मा बूयानिधिपाय ब्राह्मण।।

—सहितोपनिषद् ब्राह्मण-3

अर्थात् 'विद्या ब्राह्मण के पास आई और कहने लगी— तुम मेरी रक्षा करो (अक्षरार्थ मुझे छुपा लो), मै तुम्हारी निधि हूं। ईर्ष्यालू कुटिल प्रवृति के एवं इन्द्रिय सयम रहित व्यक्ति को तुम मुझे मत देना, उसे ही देना जो निधि की रखवाली कर सके।

अनेक बार यह शका प्रस्तुत की जाती है कि क्या कारण है कि हमारा बहुत-सा ज्ञान जिसका अनुमान प्राचीन ग्रन्थो से लगता है, आज लुप्त है। राम को अपने आश्रम की ओर ले जाते समय गुरु वशिष्ठ ने मार्ग में मंत्र सिखाए थे जिनमे न थकान होती थी, न ज्वर, न ही चेहरे का रग बदलता था और न ही भूख, प्यास लगती थी—

मन्त्र ग्राम गृहाणत्व बलामनिबला तथा।
न श्रमो न ज्वरो वाते न रूपस्य विपर्यय.
क्षत्विपासे न ते राम भविप्येते कथञ्चन।।

—रामायण बालकाण्ड 22, 13 18

ये बला और अतिबला क्या थीं, यह आज कोई नहीं जानता। सजीवनी बूटी क्या है इसकी भी जानकारी नही है। विशल्यकारणी जिसमें धसा हुआ वाण स्वय से बाहर आ जाता था और सन्धानकरणी, जिससे घाव तत्काल भर जाता था, औषधियां सम्प्रति हमारे ज्ञान की परिधि से बाहर हैं। यही स्थिति कायाकल्प, पर-काया-प्रवेश एव उन रसायनों की है जिनके द्वारा धातु का स्वरूप बदल दिया जाता था या गगन-मण्डल मे विचरने वाले उन विमानो की है जिनके भूमि पर उतरने के समय की स्थिति के ठीक समान थी, जिसका वर्णन कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में किया। यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि आखिर यह ज्ञान गया कहा .? इस जिज्ञासा का समाधान उपरिनिर्दिष्ट मन्त्र ही करता है। विद्या पात्र को ही दी जाए— 'पात्रप्रतिगता विद्या पात्र प्रतिगतं धनम्'— इस पर इतना आग्रह रहा कि उपयुक्त पात्र न मिलने पर विद्या दी ही नही गई और वह गुरु के साथ ही चली

गई। विद्यार्थी से गुरु को कुछ लेना तो होता नही था, सब कुछ देना ही होता था, अत' वह उसके ज्ञानार्जन की तीव्र उत्कण्ठा की परीक्षा कर उसे शिक्षा देता था।

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्यति केवल ज्ञानोपार्जन पर ही बल नही देती थी, अपितु नैतिक गुणों की ओर भी उसका ध्यान रहता था। विद्याध्ययन की परिसमाप्ति पर गुरु जो अन्त.वासी को उपदेश देता था– 'आचार्योऽन्तेवासिन मनुशान्ति' और जिसे आज की भाषा में दीक्षान्त भाषण कहा जा सकता है उसमे इसी पर विशेष वल है। गुरु को शिष्य का उपदेश था– सच वोलना, धर्म का पालन करना, माता को देवता मानना, पिता को देवता मानना, आचार्य को देवता मानना, अतिथि को देवता मानना, विद्याध्ययन मे प्रमाद न करना। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव– (तैत्तरीयोपनिषद् शिक्षा पल्ली 1.11) पुन. इस ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए गुरु निपेध माध्यम से (शास्त्र में विधि और निपेध दोनों रहते हैं– (विधि निषिधात्मक शास्त्रम्) शिप्य से कहता है– 'सत्यान्न प्रमदितव्यम् धर्मान्न प्रमदितव्यम्'– सत्य मे प्रमाद न करना, धर्म में प्रमाद न करना।

अन्त'वासी होना छात्रो के लिए लाभप्रद था कि औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ उसकी अनौपचारिक शिक्षा भी हो जाती थी। चलते-फिरते, उठते-बैठते, बहुत-सी वातें गुरु शिष्य को वता देता था जो बहुत काम की होती थीं। मैने स्वय अपने जीवन में बहुत सारी शिक्षा इसी क्रम मे अर्जित की है।

मेरे गुरुदेव मेरे घर के पास ही रहा करते थे और मै प्राय उनके यहां दस्तक दिया करता था। उनके दैनिक कार्यो में हाथ वटाया करता था और क्रम मे गुरुदेव कुछ-न-कुछ शिक्षा दिया करते थे। उस दिन पता नहीं क्यो पाकिस्तान पर चर्चा होने लगी। उन्होंने कहा देखो जी। इस जन्म का किया कराया सव इसी जन्म में भोगना पडता है। मौ. जिन्ना का नाम तुमने सुना है– जी गुरुदेव' मैंने कहा। गुरुदेव बोले– "पाकिस्तान बनने के क्रम में उसने वाणी से विषवमन किया था जिससे बहुत सारे लोगो की हत्या हुई थी। भाई-भाई में द्वेप उपजा जिस कारण सहस्रो लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोने पडे। पाकिस्तान वना पर उसके बनाने वाले की आवाज प्रभु ने छीन ली। कहा जाता है जिन्ना को अन्त समय मे जिह्वा का कैंसर हो गया था, जिस कारण वे वोलने मे असमर्थ हो गए थे। गुरु जी ने इस पर एक श्लोक भी बोला था–

त्रिमिर्वषै स्त्रिमिर्मासैस्त्रिभि पक्षेस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटै' पापपुण्यैरि है व फलमश्नुते।।

– हितोपदेश, 1.84

अर्थात् 'अत्युग्र पाप और पुण्यो का फल व्यक्ति इस जन्म में ही पा लेता है। वह तीन वर्ष, तीन मास, तीन पखवाड़े, तीन दिन में कभी भी हो सकता है।' एक भोले-भाले, सीधे-सादे गुरु की उक्ति मे कितना सार है।

आचार्य की प्रार्थना थी कि विद्यार्थी चलकर उसके पास आए– 'आमे युन्तु व्रह्मचारिण स्वाहा'– ताकि जो ज्ञान उसने स्वयं के परिश्रम से या परम्परा से प्राप्त किया है वह उसे उसमे सक्रमित कर सके।

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति में एक बात तो विशेप रूप से अवधेय है कि छात्र ही गुरु से शिक्षा प्राप्त करने उसके पास जाते थे। पश्चिम के देशो की ट्यूशन की तरह की पद्धति तव यहां प्रचलित नही थी जिसमें कि अध्यापक को पढाने के लिए घर-घर भटकना पड़ता है। अध्यापक के एक अन्य पर्यायवाची शब्द उपाध्याय का यही रहस्य है। इसका अर्थ है–

'उपेत्याधीयतेऽस्मात्' जिसके पास जाकर पढ़ा जाता है। वह ट्यूशन पढाने वाला मास्टर नही है।

कतिपय गुरुकुल अथवा आश्रम इतने वड़े होते थे कि उनमे हजारो विद्यार्थी पढते थे। कुलपति शब्द की परिभाषा इसी तथ्य को उजागर करती है–

मुनीनां दशसाहस्रा थोऽन्नदाना हिषोषणात्।
अध्यापति विप्रर्षिरसौ कुलपति स्मृत.।।

(टीकाकार मल्लिनाथ द्वारा कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् की टीका उद्धृत)

जो दस सहस्र मुनियों का खानपान के द्वारा पालन-पोषण कर अध्यापन करता है उसे कुलपति कहा जाता है। जो अपने अन्त वासी छात्रो के लिए, जो उसके पास यानी आसपास ही रहने वाले है इतना करता है। उसके प्रति छात्रों के मन में सम्मान होना स्वाभाविक ही था।

धीरे-धीरे परिस्थितियां वदली। गुरुकुलों, महाविद्यालयो

का स्थान अधिकाश में आधुनिक पद्धति के स्कूलों, कॉलेजो और विद्यालयों-विश्वविद्यालयों ने लिया। छात्र अब अन्त.वासी नहीं रहा। न गुरु अब उनकी सब प्रकार की व्यवस्था करने वाला रहा। दोनो मे दूरी आ गई। आचार्य को अपने आचार्यत्व के गुणों पर कसे जाने की आवश्यकता न रही। उसका भी चारित्रिक ह्रास हुआ। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, संघर्ष आदि मानव सुलभ दुर्गुण उसमें प्रस्फुटित होने लगे। अध्यापन मात्र एक साधन (व्यवसाय का) बनकर रह गया। एक कवि ने कहा था–

'यस्यागमः केवलजीविकायै त ज्ञानपण्यं वाणिअ वदन्ति' अर्थात् जिसका ज्ञान केवल जीविका का साधन है वह बनिया कहलाता है, ज्ञान जिसकी विक्रय सामग्री है। यदि विक्रय सामग्री से आय कम हो तो बनिये की हालत का अनुमान लगाया जा सकता है। फलत· उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभाओ को आकृष्ट करने में और यदि वे आकृष्ट हुई भी तो उन्हे अपने से अलग न होने देने मे यह व्यवसाय असफल सिद्ध हुआ। आर्थिक आवश्यकताओं और सामाजिक परिवेश के अर्थ प्रधान दृष्टिकोण से दबा आज का अध्यापक धरनों, प्रर्दशनो, भूख हड़तालों पर जाने को विवश होने के कारण ज्ञान का उपार्जन तथा उसके प्रचार-प्रसार में अपेक्षित रुचि नहीं लेने लगा। उधर छात्र भी, परीक्षा ही योग्यता का मापदण्ड होने के कारण उसमे सफलता प्राप्त करने को ही चरम लक्ष्य समझ कर नकल, नोटबुक परीक्षा भवन में ले जाना, परीक्षकों का पता लगाकर आर्थिक प्रलोभन अथवा धमकी से अक बढ़वाने आदि अनेक अनैतिकताओ की ओर उन्मुख हुआ। परीक्षा भवन मे चाकू दिखाने और छुरा घोपने की घटनाए आम बात हो गई। फलतः सारा का सारा शिक्षा का ढाचा ही चरमरा उठा। इसे और अधिक धक्का पहुंचा अध्यापको की नियुक्तियों में होने वाले भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद से।

इधर देश में मानवीय मूल्यो का तीव्र गति से ह्रास हुआ है। धर्म की चर्चा तो बहुत है पर उस पर आचरण नही हो रहा है। भ्रष्टाचार का बोलबाला है। किसी भी तरह से स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए यही मनोवृत्ति बनती जा रही है। 'उद्देश्य के साथ-साथ उसकी पूर्ति के साधन भी समीचीन होने चाहिए गाधीजी के इस सिद्धान्त को लोगों ने विस्मृति के गर्भ मे धकेल दिया है। उपभोक्तावाद की संस्कृति के कारण नैतिकतावाद की संस्कृति पर काली छाया मडराने लगी है। जो धर्म सारी सामाजिक व्यवस्था का आधार है, (धर्म का लक्षण ही यही है– धारणाद्धर्भ इत्याहुधर्मो धारयते प्रजाः) उसे ही लोग भूलते जा रहे हैं। उस धर्म की जिसकी पहचान धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना) शौच, इन्द्रिय, निग्रह, बुद्धि (सम्यग्बोध), विद्या, सत्य और अक्रोध के रूप मे बताई गई थी–

धृति· क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह·।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम्।।

(मनुस्मृति 6 92)

इन दस को पाच मे संक्षिप्त कर दिया गया है– अहिसा, सत्य अस्तेय, शौच और इन्द्रिय निग्रह। जिसे चारों वर्णो के लिए आवश्यक माना गया है–

अहिसा सत्य स्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
एत सामासिक धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु·

मनुस्मृति 10 63

इन पांचों का भी अन्त में एक मे ही उपसंहार कर दिया गया और वह एक था– जो अपने लिए हानिकारक है वह दूसरे के साथ न करें–

आत्मन प्रतिकूलामि परेषा न समाचरेत्

सारा उत्कर्ष अपकर्ष मे बदल सकता है यदि जीवन मूल्यो की ओर ध्यान न दिया गया। इसलिए एक प्राचीन चिन्तक ने कहा था कि साक्षर को उल्टा पढा जाए तो राक्षस बन जाता है। 'साक्षरो विपरीतश्चेद् राक्षसो भवति ध्रुवम्' सवेदना शून्य मानव को सारी की सारी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति किस गर्त मे धकेल देगी उसकी कल्पना मात्र से सिहरन हो उठती है।

नई सदी की सबसे बड़ी चुनौती नैतिकता को प्रतिष्ठित करने की है। व्यष्टि से समष्टि की दृष्टि अपनाने की है। केवल अपने लिए न जीकर सम्पूर्ण समाज, देश और जाति के लिए जीने की इच्छा अपने में जगाने की है। 'मा गृध· कस्यस्विद्धनम्' किसी के धन का लालच न कर उद्घोष फिर से करने की है। ❑❑

राजकीयकृत मध्य विद्यालय
तेलारी, रोहताश, बिहार

व्यावहारिक प्रयोगों द्वारा विद्यार्थियों में जीवन-मूल्यों का विस्थापन

❑ प्रमिला भटनागर

एक दिन एक बच्चे ने कहा—मैडम, शास्त्रीजी बहुत गरीब थे। अपने विद्यालय जाने के लिए तैरकर नदी पार करते थे क्योकि उनके पास नाव के किराए के पैसे नही थे फिर उनमे ऐसा क्या था कि वे भारत के प्रधानमत्री बने?

इसी प्रश्न से प्रेरित होकर इस नवाचार का प्रारम्भ हुआ क्योकि बालक मे नकल करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है यदि वो अच्छा साहित्य पढ़ेगे तो उनका मानसिक, बौद्धिक व चारित्रिक विकास अच्छा होगा और वे स्वयं सही व गलत का भेद कर सकेंगे और अच्छे आचरण का अनुकरण कर सकेंगे।

सफल व्यक्ति और अच्छा इन्सान बनने के लिए विभिन्न महापुरुषों के जीवन की प्रमुख घटनाओ से प्रेरणा लेकर विनम्रता, ईमानदारी, सच्चाई, उदारता, क्षमाशीलता, कृतज्ञता, धैर्य, प्रेम, भ्रातृभाव, अहिसा आदि गुणो का विकास स्वप्रेरणा से कर सके तथा क्रोध, आक्रामकता, अहकार, दुर्विचार आदि दुर्गुणो का त्याग कर सके।

वच्चो की विभिन्न जिज्ञासाओ को शान्त कर तथा उनमें जीवन-मूल्यो के महत्व को समझाया जाए लेकिन कैसे—

- ❑ अच्छी पुस्तकें उपलब्ध कराकर
- ❑ अनुभव हस्तातरण द्वारा
- ❑ अच्छे दृष्टिकोण तथा अच्छे व्यवहार को प्रोत्साहित करके
- ❑ विभिन्न प्रकार के शैक्षिक खेलो से
- ❑ स्वय अनुभव से सीख सके ऐसी परिस्थितियों का सृजन करके।

काफी विचार-विमर्श व सोच-विचार कर यह निर्णय लिया गया कि बच्चों के सामने ऐसी परिस्थितियो का सृजन किया जाए कि वे अपने स्वय के अनुभव से ही जीवन-मूल्यों को समझ सके और अपने जीवन मे उतार सकें।

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है लेकिन प्रगतिशीलता के नाम पर किताबी संस्कार और ऊबाऊ दिनचर्या के मायाजाल में मानवीय मूल्य घायल होते जा रहे हैं। अतः उनमें आत्मविश्वास जगाने, अच्छे संस्कार देने का प्रयास इसी समय किया जाना चाहिए ताकि वह आज के दूषित वातावरण से स्वयं को बचा सके और गलत प्रवृतियों से छुटकारा पा सके।

नैतिक मूल्यों के विस्थापन की आवश्यकता

भारतीय सस्कृति के आधारभूत जीवन-मूल्यो के कारण ही भारत को विश्व मे जगत गुरु कहलाने का श्रेय प्राप्त है। लेकिन आज विद्यार्थी में बात-वात मे झूठ बोलना, दूसरो की बातों मे टाग अडाना, जी चाहे जहां थूक देना, स्वय को गन्दा रखना, आपस मे मारपीट करना, गालिया देना, काम से जी चुराना, चोरी करना, चुगली करना आदि बुराइयो की जड़ें जमती जा रही है। कहते है कि बालक गीली मिट्टी के समान होता है उसे जैसा चाहे आकार दे सकते है।

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है लेकिन प्रगतिशीलता के नाम पर किताबी सस्कार और ऊबाऊ दिनचर्या के मायाजाल मे मानवीय मूल्य घायल होते जा रहे है। अत' उनमे आत्मविश्वास जगाने, अच्छे संस्कार देने का प्रयास इसी समय किया जाना चाहिए ताकि वह आज के दूषित वातावरण से स्वयं को बचा सके और गलत प्रवृतियो से छुटकारा पा सके।

जीवन-मूल्य क्या हैं?

ऐसी आधारभूत बाते जो बालक के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त

व विकसित कर सकें तथा जीवन के सभी कार्यो व व्यवहारो को उचित मूल्यो की कसौटी पर परखते हुए मानव कल्याण व मानव एकता में सहभागी बन सकें।

प्रमुख जीवन मूल्य

☐ अनुशासन	☐ समयपालन
☐ कर्तव्यपालन	☐ आत्मविश्वास
☐ आत्मनिर्भरता	☐ एकता
☐ निर्भयता	☐ क्रोध न करना
☐ अहिसा	☐ सहिष्णुता
☐ सत्य वोलना	☐ शिष्टाचार
☐ ईमानदारी	☐ सहयोग की भावना
☐ मित्रता	☐ सयम
☐ प्रसन्नता	☐ उत्साह
☐ स्वाभिमान	☐ परिश्रम करना
☐ निर्भयता	☐ बडों का आदर करना
☐ नि स्वार्थ भावना	☐ स्वय प्रेरित होकर कार्य करना

केन्द्रीय विद्यालय व मूल्य

राष्ट्र के भावी निर्माताओ के चारित्रिक विकास के लिए केन्द्रीय विद्यालय कई प्रकार के आयोजन करता है तथा बालकों के कच्चे मन पर अमिट स्याही से कई सद्गुणों को लिखने का प्रयास करता है। सामान्य क्रियाए–

- ☐ प्रार्थना सभा
- ☐ कक्षा-कक्ष पठन
- ☐ सास्कृतिक कार्यक्रम
- ☐ शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम
- ☐ पुस्तकालय की विभिन्न प्रक्रियाओ द्वारा

शिक्षक यहा मार्गदर्शक है जो बालकों में छिपे हुए गुणों को उभारने मे तथा अवगुणों के निराकरण मे मदद करते है। एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर स्व-प्रेरणा से सीखने को प्रेरित करते हैं।

प्रयोग के समय मन में उपजे सवाल

- ☐ वच्चे झूठ क्यों बोलते है?
- ☐ बालक आपस मे लड़ते क्यों हैं?
- ☐ बालकों मे टालमटोल की प्रवृति क्यों है?
- ☐ बालक चोरी क्यो करते हैं?
- ☐ अनुशासनहीनता क्यों है?
- ☐ बडो की आज्ञा का पालन क्यों नही करते?
- ☐ बालक गालिया क्यों देते है?
- ☐ बालक सहनशील क्यों नहीं हैं?
- ☐ बालक परिश्रम क्यो नही करते?
- ☐ बालक स्वच्छता का ख्याल क्यो नहीं रखते?

समस्या कथन

व्यावहारिक प्रयोगो द्वारा बालकों मे जीवन-मूल्यों का विस्थापन।

निहित उद्देश्य

- ☐ बालक में चारित्रिक गुणों का विकास करना।
- ☐ बालकों को भारतीय सस्कृति के आधारभूत जीवन-मूल्यो से परिचित करवाना।
- ☐ बालको के व्यक्तित्व का निर्माण करना।
- ☐ अच्छी आदतो का विकास करना।
- ☐ सही दृष्टिकोण का विकास करना।

परिकल्पना

- ☐ स्वप्रेरणा से जीवन-मूल्य सीखेगे।
- ☐ चारित्रिक गुणो का विकास करेगे।
- ☐ सही दृष्टिकोण विकसित कर पाएंगे।
- ☐ अच्छी आदते सीख सकेगे।
- ☐ आदर्श विद्यार्थी तथा बाद में आदर्श नागरिक बन सकेगे।

यह शोध कार्य क्यों?

भविष्य में एक अच्छे समाज का निर्माण करने तथा बालकों के जीवन को सकारात्मक दृष्टिकोण से ओत-प्रोत कर भावी राष्ट्र के नव-निर्माण में सहायक होने के लिए यह एक छोटा-सा प्रयास किया गया है।

सीमा

कक्षा छ., सात व आठ के विद्यार्थी ही इन प्रयोगों में लिए गए हैं।

प्रयुक्त तकनीकी

- ☐ सर्वेक्षण
- ☐ साक्षात्कार
- ☐ प्रश्नावली

मूल्यांकन योजना

- ☐ हां/ना रूप में
- ☐ प्रतिशतवार
- ☐ तुलनात्मक → लडके / लडकिया / लडके + लडकियां

प्रयोग संकल्पना

प्रयोग 1. मूल्यगत कहानी लेखन

वालकों के समूह बनाए गए फिर उन्हे एक-एक जीवन-मूल्य दिया तथा उनसे कहा गया कि एक ऐसी कहानी लिखो जिसमे इस मूल्य को बताया गया हो तथा इसकी शिक्षा दी गई हो। ये जीवन-मूल्य थे–

- ☐ सत्य
- ☐ परिश्रम
- ☐ एकता
- ☐ आत्मविश्वास

प्रयोग 2. मूल्यगत संवाद लेखन

बालको को पहले मूल्य समझाए गए फिर उन्हें चार समूहों मे बाटा और प्रत्येक समूह को एक जीवन-मूल्य दिया। उनसे कहा गया कि आपस में वातचीत करो और ऐसे संवाद लिखो कि ये जीवन-मूल्य उसमे आ जाएं जैसे कि–कर्तव्यपालन करने से सभी हमें प्यार करते हैं। कर्तव्यों का पालन न करने से हमें दण्ड मिलता है। इन्हें दिए गए जीवन-मूल्य थे–

- ☐ अहिसा
- ☐ कर्तव्यपालन
- ☐ सहनशक्ति
- ☐ निर्भयता

प्रयोग 3. मूल्यगत प्रेरक प्रसंग संग्रह

बच्चों को पहले जीवन-मूल्यो के बारे में वताया फिर उनसे कहा कि तुम पत्र-पत्रिकाए हमेशा पढ़ते रहते हो; ऐसे प्रेरक प्रसंगों का संग्रह करो जिनमें निम्न मूल्य के बारे मे हो, ये थे–

- ☐ मदद करना
- ☐ आदर्श विद्यार्थी
- ☐ सफलता के रहस्य
- ☐ ईमानदारी

प्रयोग 4. मूल्यगत कहानी का नाट्य रूपान्तर

बालको को एक कहानी का चुनाव करने को कहा जिसमें स्वच्छता के बारे में बताया गया था। फिर जो भी कहानी चुनी उसका नाट्य रूपान्तर करने को कहा। इन्हें जीवन-मूल्यो के महत्व तथा आवश्यकता लाभ-हानि के बारे में विस्तार से समझाया गया था। इनके जीवन-मूल्य थे–

- ☐ स्वय की सफाई
- ☐ घर की सफाई
- ☐ पास-पड़ोस की स्वच्छता
- ☐ पर्यावरण स्वच्छता

प्रयोग 5. मूल्यगत स्लोगन रचना

वालकों को जीवन-मूल्य दिए, उनका महत्व समझाया और कहा कि यदि तुम्हे इनका प्रचार करना हो तो कैसे करोगे? क्या तुम स्लोगन लिख सकते हो जैसे– ● पेड़ लगाओ, पर्यावरण बचाओ ● बूद-बूंद पानी बचाइए

इन्हें दिए गए जीवन-मूल्य थे–

- ☐ आत्मनिर्भरता
- ☐ बडों की आज्ञा
- ☐ समय का पालन
- ☐ निंदा करना

प्रयोग 6. मूल्यगत काव्य रचना

बालकों को मूल्य दिए और उनके आधार पर कविता लिखने को कहा गया ये मूल्य थे–

- ☐ सहायता करना
- ☐ शिष्टाचार
- ☐ प्रयत्न करना
- ☐ महत्वकाक्षा

सभी बच्चो ने बडी प्रसन्नता, उत्साह व उल्लास से इन प्रयोगो में भाग लिया।

निष्कर्ष

- ☐ स्वीकृति या अस्वीकृति की स्थिति मे जीवन-मूल्यों के विस्थापन और प्रयोग मे छात्राओं की स्वीकृति और सस्कार छात्रो की अपेक्षा अधिक पाए गए।
- ☐ छात्र/छात्राओ दोनों की जीवन-मूल्यो के प्रति आस्था, हाव-भाव प्रदर्शन, दृष्टिकोण, उदारता, विश्वास और मत लगभग समान रहे।
- ☐ तुलनात्मक दृष्टिकोण मे छात्राओ की सक्रियता व अधिकतम भार निम्न जीवन-मूल्यों पर अधिक रहा–

जीवन-मूल्य– → परिश्रम, समयपालन, कर्तव्यपालन, सहनशक्ति, स्वयं व घर की स्वच्छता, ईमानदारी, शिष्टाचार, अहिंसा, प्रयत्न

- ☐ छात्रो का सकारात्मक व्यवहार निम्न जीवन-मूल्यों के प्रति अधिक था–

जीवन-मूल्य– → आत्मविश्वास, निर्भयता, सफलता के रहस्य, पर्यावरण स्वच्छता, आत्मनिर्भरता, समय पालन, वड़ो का आदर, महत्वकाक्षा, सहायता करना

अन्य उपलब्धियों पर प्रभाव

- ☐ स्वाध्याय के प्रति रुचि जाग्रत होगी।
- ☐ मानसिक, बौद्धिक, चारित्रिक विकास होगा।
- ☐ रचनात्मकता, सृजनात्मकता तथा क्रियात्मकता मे वृद्धि होगी।
- ☐ चिन्तन शक्ति, तर्क शक्ति, निर्णय शक्ति का विकास होगा।
- ☐ सामाजिक जीवन मे सफलता प्राप्त होगी।

वालको को आरम्भ से ही समझदार बनाना आवश्यक है ताकि भावी जीवन मे उनका आचरण स्वस्थ एवं विशुद्ध रह सके तथा वे अपने कार्यकलापो मे निष्पक्ष बुद्धिमानी व समझदारी का प्रयोग कर सके। अत. वालको के अच्छे भावी जीवन की बुनियाद खडी हो सके।

सुझाव

इस विषय पर अभी और भी कार्य करने की आवश्यकता है। न्यादर्श बहुत ही छोटा है अत' निष्कर्षो की व्यापकता के सम्वध मे भविष्यवाणी नही की जा सकती, किन्तु इतना अवश्य है कि भविष्य मे अनुसधान हेतु यह एक प्रारम्भिक प्रयास है।

उपसंहार

प्रस्तुत प्रयोगो का उद्देश्य माध्यमिक कक्षाओ मे पढने वाले छात्र/छात्राओं को भारतीय सस्कृति के आधारभूत जीवन-मूल्यो को समझाना तथा उनके महत्व को सिखाना था।

21वी सदी की ओर बढ़ती हुई इस नई भारतीय पीढी को भविष्य के लिए भारतीय सस्कृति के अनुसार तैयार करना जिससे वह नव निर्माण में नवजाग्रति के साथ नया समाज बना सके और अपने चारित्रिक, मानसिक व बौद्धिक विकास के साथ ही स्वयं व राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर कर सकें। ❑❑

केन्द्रीय विद्यालय
एकलिंग गढ़, उदयपुर
राजस्थान

गीता और उसका शिक्षा दर्शन

❐ सत्यदेव सिंह

गीता एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमे दर्शन, धर्म व नीतिशास्त्र का समन्वय मिलता है। गीता एक ऐसी विधि का सूत्रपात करती है, जिसे अपनाकर जनसाधारण भी अपनी आत्मिक उन्नति के शिक्षर पर पहुंच सकता है—ऐसी विधि को यदि किसी नाम से जाना जाए तो वह **'भक्ति'** या **'ईश्वर के प्रति श्रद्धाभाव'** कहलाएगी।

गीता व्यक्ति के आत्मिक जीवन की एकता पर बल देती है। कर्म, ज्ञान और भक्ति एक-दूसरे के पूरक हैं। गीता में ज्ञान की एक सशरीर व्यक्ति के रूप मे कल्पना की गई है, जिसका शरीर तो जानकारी है और जिसका हृदय प्रेम है। ज्ञान और ध्यान, प्रेम और सेवा योग की विभिन्न अवस्थाएं है। योग का मार्ग अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर (तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतम् गमय) ले जाने वाला मार्ग है। गीता के शिक्षा दर्शन को अग्राकित बिन्दुओं द्वारा किचित स्पष्ट किया जा सकता है।

गीता और शिक्षा के सिद्धान्त

श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाओं और उसके शैक्षिक सिद्धान्तों पर विचार करे तो हमे उसके दो पक्ष प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। एक ओर जितना गीता का आध्यात्मिक पक्ष प्रबल है तो दूसरी ओर उसका व्यावहारिक पक्ष उतना ही सशक्त दृष्टिगोचर होता है।

गीता और शिक्षा के उद्देश्य

गीता दर्शन के अनुसार शिक्षा वह है, जो प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित परमात्मा (ब्रह्म) की अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध हो। गीता के अनुसार आत्मानुभूति शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। जिस व्यक्ति के ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं वे ही इस अन्तरात्मा को पहचान सकते हैं, अज्ञानी मोह के बधन मे पडकर (विमूढ) प्राणी अन्तरात्मा का दर्शन करने मे समर्थ नहीं हो सकते—

"उत्क्रामन्त स्थित वापि, भुञ्जान वा गुणान्वितम्
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष ।।"

अत. प्राणीमात्र का जीवमात्र मे विद्यमान 'परमात्मा' का दर्शन बिना ज्ञान के सम्भव नही है। 'परमात्मा' शब्द का आशय भगवान् ने स्वय इस प्रकार समझाया है– 'हे अर्जुन! मै सब भूतों के हृदय में स्थित सब का जानने वाला, भरण-पोषण करने वाला, अविनाशी तथा परमेश्वर और परमात्मा हूं।'

> **गीता व्यक्ति के आत्मिक जीवन की एकता पर बल देती है। कर्म, ज्ञान और भक्ति एक-दूसरे के पूरक हैं। गीता में ज्ञान की एक सशरीर व्यक्ति के रूप में कल्पना की गई है, जिसका शरीर तो जानकारी है और जिसका हृदय प्रेम है। ज्ञान और ध्यान, प्रेम और सेवा योग की विभिन्न अवस्थाएं हैं। योग का मार्ग अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर (तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतम् गमय) ले जाने वाला मार्ग है। गीता के शिक्षा दर्शन को अग्रांकित बिन्दुओं द्वारा किंचित स्पष्ट किया जा सकता है।**

अज्ञान से मुक्त करना— गीता की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उस अज्ञान से मुक्त कराना है जो कि भेद उत्पन्न करने वाला है और आत्मानुभूति के मार्ग मे बाधक है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को 'तमसो

मा ज्योतिर्गमय' का मार्ग सिखाना है। जो भेद में अभेद का दर्शन, प्रत्येक प्राणी मे एक आत्मदर्शन तथा जो सभी प्राणियों में विराजमान परमात्मा का दर्शन करवाता है, वस्तुतः वही सच्चा ज्ञान है, यही गीता की शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

मोक्ष का मार्ग दिखाना—गीता का मुख्य उपदेश व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना है, जिसके द्वारा मानव प्रकृति, दैवी प्रकृति बदलकर नैतिक आचरण की ओर अग्रसर होती है और व्यक्ति ईश्वर के साथ तन्मयता अनुभव करने लगता है। गीता-ज्ञान के अनुसार मोक्ष कोई असाध्य वस्तु नही है, अपितु व्यक्ति अपने व्यक्तित्व मे सकारात्मक परिवर्तन लाता हुआ तथा शरीर, इन्द्रिय, मन एवं वाणी से परिशुद्ध व परिष्कृत होता हुआ मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर सकता है। जब मानव की बाह्य एव आभ्यन्तर शुद्धि हो जाती है तभी वह ईश्वरीय परमज्योति के दर्शन करने मे सक्षम हो सकता है अर्थात् ईश्वर के परम ज्ञान की पराकाष्ठा ही मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष प्राप्ति के अनन्तर व्यक्ति चिर आनंद की अनुभूति करता है तथा जन्म-मरणादि, भव-बन्धन के फन्दे से उऋण हो जाता है।

वैयक्तिकता एवं सामाजिकता का पाठ पढ़ाना—गीता के अन्तर्गत अर्जुन को माध्यम बनाते हुए वैयक्तिकता एवं सामाजिकता का बड़ा ही सुन्दर विवेचन मिलता है। जब अर्जुन कुरुक्षेत्र के रणस्थल में दोनों सेनाओं (कौरव व पाण्डव) के मध्य अपने रथ को खडा करने के लिए श्रीकृष्ण को कहता है तो उस समय अर्जुन की मन· स्थिति व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सामाजिक कर्तव्य के बीच डगमगाती हुई-सी प्रतीत होती है, कुछ समय के लिए वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। वस्तुत अर्जुन की इसी स्थिति को देखकर श्रीकृष्ण ने गीतोपदेश किया और गीता-दर्शन का उदय हुआ।

अर्जुन चूकि तुम क्षत्रिय वंशोत्पन्न हो, इस कारण सामाजिक कर्तव्य बन पड़ता है। अत· तुम्हें युद्ध करना चाहिए। मै (परमात्मा) आत्मा हू तथा सम्पूर्ण भूतो का आदि, मध्य और अन्त भी मै ही हूं। परन्तु अर्जुन रणक्षेत्र में अपने सामने सगे-सबधियो को खड़ा देखकर सोच-विचार मे पड़ जाता है और उनसे लडकर इस प्रकार की मानसिक शान्ति प्राप्त करना नही चाहता। यद्यपि क्षत्रियोचित कर्तव्य का पालन करते हुए अर्जुन को मन·शन्ति मिल सकती थी, पर वह उसे ग्रहण न करके कष्ट भोगना पसन्द करता है जहां अर्जुन स्वयं को बिल्कुल एकाकी एव अद्वितीय पाता है। यदि सामाजिक कर्तव्य के प्रति वह अपने आपको समर्पित कर देता तो अन्तर्निहित अद्वितीय शक्तियों की अनुभूति उसे कैसे हो पाती? उसके व्यक्तित्व का विकास कैसे हो पाता? अतः गीता दर्शन में सामाजिकता से अधिक वैयक्तिक स्वतन्त्रता को महत्व दिया गया है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि सामाजिकता का कोई मूल्य ही न हो। आगे चलकर अर्जुन क्षत्रिय धर्म का पालन एवं सामाजिकता का निर्वाह भी करता है। हां बीच में कुछ मनोविकार अवश्य उत्पन्न होते हैं, जिनका निवारण श्रीकृष्ण बडी सुन्दर युक्तियो से कर देते हैं। अत. गीता के अन्दर वैयक्तिक एवं सामाजिक आदर्श के मध्य समन्वय स्थापित किया गया है।

करणीय कर्म की प्रेरणा देना—मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता है, पर इसका तात्पर्य यह नही कि वह अकरणीय कर्म करे, जिससे दूसरे लोग बाधित हो। अपितु कर्म न करने की अपेक्षा कर्मो का करना श्रेष्ठ है और कर्मो के बिना शरीर निर्वाह असम्भव है। अतः क्यों न नि·स्वार्थ एव अनासक्त भाव से विहित (करणीय) कर्म किए जाए अर्थात् करणीय कर्म अवश्य करने चाहिए। इसी तथ्य को श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार से स्पष्ट किया है 'हे अर्जुन! तू शास्त्र-विहित करणीय कर्म कर (नियतकर्म), क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा (अकर्मः) कर्म करना श्रेष्ठ (ज्याय.) है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह (शरीर यात्रा) भी सिद्ध नहीं होगा।

भगवद्गीता और पाठ्यक्रम

गीता में दो प्रकार के पदार्थो का वर्णन किया गया है—**क्षर** तथा **अक्षर**। इनका अर्थ सोलहवे अध्याय में स्पष्ट कर दिया है। इन्हीं दोनो पदार्थो को गीता के सत्रहवें अध्याय में 'अपरा', और 'परा' प्रकृति कहकर वर्णन किया गया है। शिक्षा दर्शन की दृष्टि से गीता के पाठ्यक्रम

को इन्हीं दो भागो में विभक्त किया गया है, जिनका नाम **'अपराविद्या'** और **'पराविद्या'** रखा है।

'अपराविद्या' के अन्तर्गत भौतिक जगत् में ज्ञान की चर्चा की गई है। यह ज्ञान देहेन्द्रियो की मदद से प्राप्त किया जाता है। दृश्यमान सम्पूर्ण सृष्टि 'अपराविद्या' के ज्ञान का ही एक अग है। इस संसार मे अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपराविद्या ही सर्वोपरि है, अपितु यह तो भौतिक जगत् में सफलतापूर्वक जीवन निर्वाह करने का एक माध्यम है। गीता में अपराविद्या को एक साधन के रूप में बताया गया है। वस्तुत 'अपराविद्या' जड़ प्रकृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना ही है और यह पराविद्या तक पहुंचने का साधन भी है। किन्तु यह सव कुछ होते हुए भी अपराविद्या, पराविद्या से बढकर नही है अपितु उससे हीन है। अतः 'अपराविद्या' के अन्तर्गत सभी प्रकार के वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन, मन तथा बुद्धि से प्राप्त अनुभूतिजन्य ज्ञान आता है।

'पराविद्या' को गीता मे अक्षर तत्व, आध्यात्म व क्षेत्र जैसे नामों से बताया गया है और 'पराविद्या' को अपराविद्या से उच्च स्तर का बताया गया है। 'पराविद्या' के अन्तर्गत आत्म ज्ञान आता है। यह ज्ञान नित्य, पूर्ण, सत्य तथा सनातन कहलाता है। वस्तुत पराविद्या भगवान की दूसरी 'प्रकृति' है।

केवल अविद्या के कारण यह तत्व (पराविद्या या परा प्रकृति) भिन्न दिखाई पड़ता है। अपरा प्रकृति के प्रत्येक रूप के पीछे परब्रह्म परमात्मा की सत्ता निहित है और यही 'पराविद्या' का सार है।

गीता और अध्यापन-विधि

अध्ययन-अध्यापन की भले ही कोई भी विधि क्यों न हो किन्तु हरेक विधि में मनोवैज्ञानिकता अवश्य होनी चाहिए। अध्यापन-विधि बालक को 'योग्यता, प्रवृतियों, रुचि व रुझान को केन्द्र बिन्दु मानकर प्रयुक्त की जानी चाहिए। गीता के अनुसार शिक्षण की कतिपय विधियां इस प्रकार हैं–

प्रश्नोत्तर विधि–गीता का श्रीगणेश प्रश्नोत्तर के द्वारा होता है, जब धृतराष्ट्र धर्मक्षेत्र (कुरुक्षेत्र के युद्ध विवरण) विषयक प्रश्न सजय से करता है और संजय पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है इसके अलावा गीता मे अर्जुन बार-बार अपने सारथी श्रीकृष्ण से प्रश्नोत्तर करता है और श्रीकृष्ण उसे समझाने की चेष्टा करते है। यदि देखा जाए तो गीता प्रश्नोत्तरी के रूप मे प्रस्तुत की गई रचना है। ये प्रश्न ही सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क मे उठते हैं, उनका उत्तर क्या हो सकता है या व्यक्ति को उन प्रश्नो के सम्बन्ध मे इस संसार मे रहते हुए क्या करना चाहिए? इस सबका सम्यक् रूपेण विवेचन बडी ही सरल भाषा में गीता के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

गीता के चौथे अध्याय के 34वें श्लोक मे इसी बात का समर्थन किया गया है कि हे अर्जुन! उस तत्व ज्ञान को (तू तत्वदर्शी ज्ञानियो के पास जाकर) समझ (विद्धि), भली-भांति दण्डवत्-प्रणाम् करने से, उनकी सेवा करने से (कष्ट छोडकर), सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म तत्व को भली-भाति जानने वाले ज्ञानी, महात्मा (तुझे उस) तत्व ज्ञान का उपदेश करेगे–

"तद्विद्धि प्रणिपातेनं परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिन· तत्व दर्शिन.।।(4/34)

करणीय कर्म विधि–गीता का मूल मन्तव्य मानव मात्र को अपने कर्तव्य/कर्म का बोध कराना ही है। गीता की उत्कृष्टता इसी में है कि व्यक्ति को कर्म विधान की शिक्षा दे। गीता के विभिन्न स्थलो पर करणीय कर्म करने की विधि का सूत्रपात किया गया है। द्वितीय अध्याय के 47 व 50वे श्लोक मे कहा गया है कि कर्म करने मे तेरा अधिकार है। समत्वरूप योग ही कर्मो मे कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है। तीसरे अध्याय में अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते है–'तू शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। तू निरन्तर आसक्ति रहित होकर कर्तव्य कर्म को भली-भाति करता रह; आगे चलकर भगवन् ने गीता के स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह सन्यासी है तथा योगी है। अर्थात् करणीय कर्म को अनासक्त भाव से करने वाले पुरुष को उत्तम व श्रेष्ठ वताया है। अन्त मे कर्म विधि की परिणति इस

रूप मे की गई है कि 'स्वधर्मरूप (करणीय) कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता—''सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्''। इस प्रकार करणीय कर्मो को ईश्वर परायण बुद्धि से करता हुआ कर्मयोगी (पुरुष) सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है।

अनुकरण विधि—गीता मे कुछ श्लोको मे इस प्रकार का वर्णन भी हुआ है कि जो आचरण श्रेष्ठतया महापुरुष करें, उनके आचरण के अनुरूप ही दूसरे लोग अपने आचरण को बनाएं अर्थात् अपने से बड़ों के आचरण का अनुकरण करना चाहिए। बडों से अपेक्षा की जाती है कि वे सदाचरण से सम्पन्न हो। इसे श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के तृतीय अध्याय के 21वें श्लोक मे इस प्रकार वर्णित किया गया है—

''यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन.।

स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। (3/21),

समर्पण विधि—गीता में जगह-जगह पर परमात्मा के प्रति समर्पण भाव को अत्यंत महत्व दिया गया है। श्रीकृष्ण ने स्वय अपने मुख से कहा है कि जो व्यक्ति एक बार भी मेरी शरण में आ जाता है, मैं उसका योग-क्षेम स्वयं (योग क्षेम वहाम्यहम्) वहन करता हूं। दूसरे अध्याय के श्लोक 7 मे अर्जुन कहता है—''मैं आपका (श्री कृष्ण) शिष्य हू, आपकी शरण आया हूं, अत मुझे शिक्षा दीजिए'' (शिष्यस्तेऽहंशाधि मॉ त्वा प्रपन्नम्।।'') तीसरे अध्याय के 30वें श्लोक मे श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सम्पूर्ण कर्मो को मुझ में अर्पण करके युद्ध कर—**'मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्म चेतसा**।' तत्वज्ञान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि तत्वज्ञान की प्राप्ति करने के लिए दण्डवत्-प्रणाम, सेवा भावना से ज्ञानवान तत्वदर्शी महापुरुषों की शरण में जाना चाहिए, जिससे आत्मकल्याण हो सके। नवें अध्याय मे अपने सभी कर्म भगवदर्पण करने का आदेश (अर्जुन को) दिया गया और स्पष्ट किया कि जो कर्म करता है, खाता है, हवन करता है, दान देता है, तप करता है वह सब मेरे (भगवान) अर्पण कर —'तत्कुरुष्वमंदर्पणम्' अर्थात् यहा पर भी समर्पण भावना के माध्यम से अर्जुन को शिक्षा दी गई है। इस प्रकार जो मनुष्य मुझ (भगवान) मे मन वाला होगा, वो भगवान को प्रणाम करेगा और अन्त मे आपकी आत्मा को भगवान मे नियुक्त कर भगवत्परायण होकर कर्म करेगा, वह अन्त में भगवत्स्वरूप को प्राप्त होगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने में सक्षम होगा। समर्पण विधि का उच्चतम स्वरूप हमे गीता के 18वें अध्याय के इस श्लोक में देखने को मिलता है—

''सर्वधमान्परित्यिज्य मामेकं शरण व्रज।

अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:।।

अर्थात् सम्पूर्ण धर्मो (सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मो) को त्यागकर एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण मे आ जा। मैं (भगवान्) सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूगा, तू (अर्जुन) शोक मत कर।

गीता और शिक्षक-शिष्य सम्बन्ध

गीता के अनुसार प्रत्येक प्राणी के अन्दर परमात्मा का निवास होता है। हर प्राणी परमात्मा की अखण्ड ज्योति से ज्योतित है। इस ज्योति को गीता में 'आत्मतत्व' कहा गया है, जिसमे अनेक विलक्षणताए है—

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। (2/23)

अछेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्य सर्वगत: स्थाणुरचलोऽय सनातनः।।(2/24)

इस प्रकार आत्मतत्व पर मृत्यु का भी कोई प्रभाव नही पड़ता और यह ज्योति (आत्मा) नित्य रहती है।

बालक (छात्र) ईश्वर का साक्षात् स्वरूप होता है, अत शिक्षक को बालक के इसी स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए, बालक के सर्वागीण विकास का उच्चतम प्रयास करना चाहिए। हर बालक में ईश्वरतत्व है किन्तु अमूर्त एवं अन्तर्निहित होने के कारण उसे देखा नही जा सकता जैसे—दूध मे मक्खन। अत' शिक्षक बालक को शिक्षा प्रदान करके उस तत्व को प्रकाशित कर सकता है।

जिस प्रकार छात्र की सत्पात्रता में विनय, श्रद्धा व समर्पण आदि के लक्षण देखे जाते हैं, वैसे ही(गीता के अनुसार) शिक्षण में अपेक्षित गुणों का होना परमावश्यक है। शिक्षक से अपेक्षा होती है कि बालको में ईश्वर का प्रतिबिम्ब देखे, उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करे, उनके

व्यक्तित्व का आदर करे, उन्हें चिन्ताओं से मुक्ति दिलाने और दुर्गुण व दुष्प्रवृतियों से दूर हटाए। इन्ही बातो को गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार बताया है–

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।(18/66)
भूय एव महाबाहो श्रुणु मे परम वचः।
यत्तेऽह प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हित काम्यया।।
सर्व गुह्यतम भूयः श्रुणु मे परमं वच'।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।(18/64)

इस प्रकार संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि गीता में शिक्षक-शिष्य सम्बन्धों का निदर्शन बडे ही उत्तम ढग से किया गया है। श्रीकृष्ण एक सच्चे गुरु या शिक्षक के रूप में उपस्थित हुए है तो अर्जुन मे शिष्य की सत्पात्रता के सभी गुण मौजूद हैं। अत गुरु-शिष्य सम्बन्ध अत्यन्त निकट के (घनिष्ठ), मित्रवत्', निश्छल, निष्कपट रूप के बताए गए हैं।

गीता के योगशास्त्र का मूल ब्रह्मविद्या अथवा आत्म-सम्बन्धी ज्ञान है। वस्तुत' गीता हमारे जीवन का विधान है, बुद्धि के द्वारा सत्य का अनुसंधान है और सत्य को मनुष्य की आत्मा के अन्दर क्रियात्मक शक्ति देने का प्रयत्न है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्तिम वाक्य–'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' से यह सिद्ध हो जाता है, कि यह एक योगशास्त्र है अर्थात् ब्रह्म-सम्बन्धी दर्शन-शास्त्र का धार्मिक अनुशासन है। ❑❑

किशोरी रमण शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय, मथुरा
उत्तर प्रदेश

पर्यावरण

❐ संध्या सुहाग

पर्यावरण बनाता जीवन,
यह है जीवन का आधार।
चाहे यह हो पेड-लताएं,
या हों सामाजिक विस्तार।।

पर्यावरण रहे जो निर्मल,
बनता जीवन उससे उज्जवल।
यह है कर्ण-कवच बच्चों का,
पलता शैशव इसमे हर पल।।

हरी-भरी सब पेड़ लताए,
हमको देतीं जीवन-दान।
हो समाज यदि सुन्दर अपना,
समझो हुआ जीव-उत्थान।।

पीछे भाग रहे है हम क्यो?
भारत मा की हम सन्तान।
कहा गई वह संस्कृति अपनी?
था जिस पर हमको अभिमान।।

माता-पिता, गुरु की सेवा,
था जिनका यह प्राणाधार।
वृद्धाश्रम की राह दिखाते,
अपने ही मां-बाप को आज।।

कैसी शिक्षा, कैसा पर्यावरण,
पनप रहे हैं कस क्यों आज?
यह तो देश था श्रवण, राम का,
फिर क्यो रावण करता राज?

यदि हो पर्यावरण ही निर्मल,
फिर क्यो पनपे विषधर, नाग।
हो चाहे यह हवा-वृक्ष का,
या हो सामाजिक प्रतिघात।।

शैशव सांचे मे है ढलता,
इनका जीवन निर्मल धार।
जैसा साचा हम बनाएगे,
पनपेगे वैसे उद्गार।।

करना है भविष्य जो उज्ज्वल,
पहले करो समाज-उत्थान।
एक लगाओ वृक्ष अवश्य तुम,
जीने का यह लक्ष्य महान।।

बनना है हमको भी गौरा,
चिपको-चिपको कर अभियान।
तभी बचेगे सखा हमारे,
होगा जन-जीवन कल्याण।।

तभी बचेगी संस्कृति अपनी,
तभी बनेगा देश महान।
होगा पर्यावरण भी उज्ज्वल,
कर पाएगे हम अभिमान।। ❐❐

136, सेक्टर-सी
पॉकेट 1, वसंत कुंज
नई दिल्ली

सत्य- अहिंसा

❑ आदित्य गोपाल
(सातवीं कक्षा का छात्र)

सत्य-अहिसा ये दो नाम,
बापू के जीवन के धाम।
उनके नयनों के तारे थे,
बापू के ये दो प्यारे थे।
जीवन मे साकार किया,
दोनो को ही प्यार किया।
मिला दिया वापू ने इनसे,
गीता और कुरान।
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
आपस मे है भाई-भाई।
यही राम-बलराम,
खुदा पैगम्बर का पैगाम।
सत्य-अहिंसा ये दो नाम,
बापू के जीवन के धाम।

जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान

मेरा देश है महान
गाती दुनिया जिसका गान
जिस पर हुए वीर बलिदान
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान
मेरा देश है महान
गांधी बाबा जिसकी शान
चाचा नेहरु जिसकी आन
खेतों का प्रहरी है किसान
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान
मेरा देश है महान
नदियां देतीं अमृत पान
पर्वत प्रहरी नहीं वीरान
नन्हे बच्चे हम हैरान
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान
मेरा देश है महान
नेहरु का नारा था जय जवान
शास्त्री को प्यारा था जय किसान
अटल नही हारा गाते जय विज्ञान
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान
मेरा देश है महान
मेरा देश है महान
हम नन्हे बच्चे देश के नादान
सीमाओं की रक्षा करते जय जवान
खेतों मे हरियाली लाए जय किसान
देश को आगे बढ़ाए जय विज्ञान
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान ❑❑

1-10 प्रसाद नगर
नई दिल्ली

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 28 अक . 2 अप्रैल 2003

इस अक में

फार्म 4

(नियम 8 देखिए)

प्राइमरी शिक्षक

1.	प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3	मुद्रक का नाम	चन्द्र मोहन मै गीता ऑफसैट प्रेस
	(क्या भारत का नागरिक है?)	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)	लागू नही होता
	पता	सी-90, ओखला इन्डस्ट्रीयल एरिया फेस-1, नई दिल्ली
4	प्रकाशक का नाम	पूरन चन्द
	(क्या भारत का नागरिक है?)	हा
	(यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110 016
5.	अकादमिक मुख्य संपादक का नाम	पूरन चन्द
	(क्या भारत का नागरिक है?)	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविद मार्ग नई दिल्ली 110 016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हो तथा समस्त पूजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविद मार्ग नई दिल्ली 110 016 (मानव संसाधन विकास मंत्रालय की स्वायत्त सस्था)

मैं, पूरन चन्द अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे विवरण सत्य हैं।

पूरन चन्द
प्रकाशक

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक मूल्यांकन एवं शिक्षा की गुणवत्ता– एक चुनौती

❑ सरला राजपूत
❑ अम्बा दत्त तिवारी
❑ संतोष कुमार

भारत जैसे विशाल एवं वृहत लोकतात्रिक देश की समस्याए भी वृहत है। इनमें से एक अत्यत महत्वपूर्ण और गंभीर समस्या प्राथमिक शिक्षा एव उसकी गुणवत्ता से जुड़ी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय नए संविधान के समक्ष प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण एवं शत-प्रतिशत साक्षरता का निर्धारित लक्ष्य 2002 मे भी प्राप्त नहीं किया जा सका। जिसने शिक्षा के प्रसार तथा इसकी संख्यात्मक वृद्धि पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। साथ ही इसका दूसरा पक्ष, जो इसकी गुणवत्ता से संबन्धित है, वह भी कमजोर बन कर उभरा है। शिक्षा के स्तर को निर्धारित करने में ये दोनों ही भागीदार एक प्रभावहीन परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं शिक्षा के स्तर से प्रभावित शिक्षा के दूरगामी परिणामस्वरूप उपलब्ध मानव संसाधन, शिक्षा की गुणवत्ता के विभिन्न आयामों मे प्रमाणित होता है। मानव ससाधन की गुणवत्ता का परिचय जिन तथ्यों से होता है वे हैं– उनके द्वारा निर्मित समाज, उनके अन्दर विकसित मानवीय गुण, उनका देश के विकास में योगदान तथा देश की समृद्धि मे उनकी भूमिका। मानव संसाधन के इन सभी पक्षों के विकास मे शिक्षा की भूमिका प्राथमिक स्तर की गुणवत्ता में ही परिलक्षित होनी प्रारंभ हो जाती है। यदि वह गुणवत्ता समुन्नत है तभी भावी शिक्षा की संरचना एव स्वरूप भी स्वस्थ एव समृद्ध होगे। इसीलिए प्राथमिक स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता को ध्यान मे रखते हुए शैक्षिक मूल्याकन पर जोर दिया गया है क्योंकि किसी भी वस्तु-स्थिति और व्यवस्था का स्तर जानने के लिए उसका मूल्याकन आवश्यक है। तदनुसार मानव ससाधन के विकास की दिशा, स्थिति व गुणवत्ता निर्धारित होती है। अतः उसका भी आकलन समय-समय पर करना आवश्यक होता है।

भारत विश्व में ही नहीं बल्कि दक्षिण एशिया क्षेत्र के देशों में भी मानव विकास सूचकांक पर कोई अच्छी स्थिति में नहीं है। जहां विश्व में वह 128वें स्थान पर है वही दक्षिण एशिया देशों में वह तीसरे स्थान पर है। अतः यह आवश्यक है कि इस प्रकार के प्रयास किए जाएं कि हमारा देश शीघ्रातिशीघ्र दक्षिण एशिया का अग्रणी देश बन जाए और फिर विश्व में एक अच्छा स्थान बनाने का प्रयास करे।

मानव संसाधन विकास

मानव ससाधन विकास के सन्दर्भ मे भी समय-समय पर विश्व स्तर पर मूल्याकन किया जाता रहा है। आज विश्व के सभी राष्ट्र मानव संसाधन विकास के प्रति जागरूक हैं क्योकि अब वे यह स्वीकारने लगे हैं कि सभी प्राकृतिक एव कृत्रिम संसाधनों से ऊपर मानव ससाधन हैं और इन संसाधनो का यथोचित दोहन मानव ही करता है।

मानव स्वय ही एक संसाधन है। अतः इसके विकास की निरन्तर आवश्यकता है। यहां पर संसाधन से तात्पर्य है– उत्पादन क्षमता। यह संसाधनो से भिन्न है क्योकि मानव संसाधन आर्थिक विकास की प्रक्रिया में एक भागीदार व लाभ प्राप्तकर्ता दोनों ही होता है। मानव ससाधन के विकास की दर मुख्यत: दो दिशाओ में आंकी जा सकती है वे हैं– मात्रात्मक एवं गुणात्मक। मात्रात्मक विकास के क्षेत्र में जनसंख्या नीति, जनसख्या सरचना, विस्थापन तथा कार्य करने योग्य उपलब्ध व्यक्तियों की भागीदारी को सम्मिलित किया जाता है जबकि गुणात्मक विकास मे शिक्षा एवं प्रशिक्षण, स्वास्थ्य और भोजन तथा समानता के अवसरो पर ध्यान दिया जाता है। अतः मानव संसाधन के गुणात्मक विकास में शिक्षा एवं प्रशिक्षण एक प्रमुख कारक है क्योंकि ये दोनो मानव के ज्ञान तथा कौशल

को प्रभावित करते है। इनमें लापरवाही से न तो मानव वर्तमान मे और न ही भविष्य मे बदलते परिवेश में स्वय को सुव्यवस्थित कर सकता है। जब मानव स्वयं के लिए सुचारू रूप से कुछ नहीं कर सकता तो वह समाज या राष्ट्र के विकास में अपनी भागीदारी को कैसे निभाएगा?

मानव विकास

विश्व के सभी राष्ट्रो के बुद्धिजीवी तथा चिंतको का मत है कि मानव विकास एक प्रक्रिया है, जिसमें मानव को उसकी रुचियों के विकास के अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है; जिससे उसकी कार्यक्षमता एव योग्यताओ मे वृद्धि हो सके तथा जो उसके द्वारा किए गए कार्यो में परिलक्षित हो और उसका लाभ वह स्वय तथा समाज दोनो उठा सकें। इस प्रकार मानव विकास एक प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों है। यह माना जाता है कि मानव विकास के लिए लम्बे जीवन, बुद्धिमत्ता या समझ की आवश्यकता के साथ-साथ मानव जीवन व्यतीत करने के लिए विभिन्न साधनो को उपयोग करने की पहुंच अर्थात् समान अवसर प्राप्त हों।

इनके अतिरिक्त कुछ उच्च मूल्य भी हैं जिनका मानव विकास में विशिष्ट महत्व होता है, वे है— भागीदारी, सुरक्षा, स्थायित्व, अधिकार आदि। ये मूल्य मानव को रचनात्मक कार्यो को करने तथा कुशल उत्पादक बनाने मे सहायक होते है। इन सबके बिना मानव में आत्म-सम्मान, बधुत्व तथा सशक्तिकरण के उच्च मूल्यों का विकास सभव नहीं है।

वास्तव मे गहन विश्लेषणों के उपरान्त सभी इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि मानव विकास, मानव द्वारा मानव के लिए मानव का विकास है। इसलिए विश्व के राष्ट्रों ने मानव विकास को मापने के लिए कुछ मानव विकास सूचकांक निर्धारित किए है।

मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक, मानव विकास के आधारभूत तीन आयामो के मूल्यों के औसत के आधार पर किसी राष्ट्र की उपलब्धि को दर्शाता है। ये मूलभूत आयाम हैं—

- ☐ जन्म के समय शिशु की भावी संभावित आयु
- ☐ शैक्षिक उपलब्धि
- ☐ सकल घरेलू उत्पाद

भारत विश्व मे ही नही बल्कि दक्षिण एशिया क्षेत्र के देशों में भी मानव विकास सूचकांक कोई अच्छी स्थिति मे नही है। जहां विश्व में वह 128वें स्थान पर है वही दक्षिण एशिया देशो मे वह तीसरे स्थान पर है। अत. यह आवश्यक है कि इस प्रकार के प्रयास किए जाए कि हमारा देश शीघ्रातिशीघ्र दक्षिण एशिया का अग्रणी देश बन जाए और फिर विश्व में एक अच्छा स्थान बनाने का प्रयास करे।

शिक्षा चूकि मानव विकास सूचकांक का एक मूलभूत आयाम है, अतः यह मात्र नाम लिखने की योग्यता न होकर गुणात्मक जीवन एवं भविष्य मे समय अनुसार ज्ञानार्जन कर जीवन को सुखद बनाने की योग्यता होनी चाहिए। तभी हम आशा कर सकते हैं कि व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकेगा तथा अपने दायित्वों को सुचारू रूप से निभा सकेगा। उसमें भी बालिकाओं को शिक्षित करना तो और अधिक आवश्यक है क्योंकि वह भावी जननी है तथा परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं का ध्यान रखती है। जब तक वह अपने अधिकारो तथा दायित्वो को निभाने मे सक्षम नही होगी तब तक परिवार, समाज व देश का विकास नही होगा। ये सभी शिक्षा के व्यापक व गुणात्मक होने से ही प्राप्त किए जा सकेगे। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ उसमे गुणवत्ता को अधिकतम बढ़ाने हेतु जी-जान से सभी को सतत् प्रयास करने पड़ेंगे। शिक्षा की गुणवत्ता की वृद्धि के सबध में किए जाने वाले प्रयासो से पूर्व शिक्षा के सरोकारों पर विचार करना आवश्यक है।

शिक्षा के सरोकार

शिक्षा के क्षेत्र मे अनेक कदम उठाने से पहले यह प्रश्न उठता है कि शिक्षा का स्वरूप या उसकी चिंताएं तथा सरोकार क्या है? तथा विभिन्न क्षेत्रो में उसकी भूमिका क्या है जो कि व्यक्ति एव समाज के विकास मे सहायक

हो सके। यह तो एक निर्विवाद तथ्य है कि शिक्षा ने मानव समाज के विकास मे सदैव एक धुरी की भूमिका निभाई है। शिक्षा व्यक्तियों के ज्ञान और समझ के विकास के साथ-साथ जीवन से जुडे अनेक कौशलों का विकास करती है तथा उनके दृष्टिकोण, मूल्य तथा अन्य क्षमताओ को परिमार्जित स्वरूप प्रदान करती है जिससे वे समाज मे रह कर अनेक चुनौतियो का सामना करने मे सक्षम होते है। यह क्षमता उन्हें सशक्त करती है तथा सामना करने का धैर्य एवं साहस देती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राष्ट्रो के विकास मे सर्वागीण रूप से विकसित व्यक्ति ही सहायक होते हैं। अतः शिक्षा का मुख्य कार्य मानव संसाधन का विकास करना है। भारत के सदर्भ मे राष्ट्रीय विकास की सीमा आर्थिक विकास से परे है और भारतीय शिक्षा वास्तव मे आत्मविश्वास से पूर्ण व्यक्तियों के विकास मे विश्वास करती है। इन व्यक्तियों की लोकतात्रिक मूल्यो मे निष्ठा, सांस्कृतिक विविधता मे एकता की भावना को बढ़ावा देती है। इसीलिए 1966 के शिक्षा आयोग ने शिक्षा को शातिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन का मुख्य उपकरण माना। इन्ही सब कारणो से शिक्षा मे निवेश वास्तव में मानव ससाधन मे निवेश माना गया है। राष्ट्र सदैव निष्ठाबद्ध है कि शिक्षा को राष्ट्र की प्राथमिकताओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक प्राथमिकताए निश्चित की गई जिनमे प्राथमिक शिक्षा को सर्वोपरि रखा गया। विद्यालयीन शिक्षा के यह प्रारम्भिक 8 वर्ष बच्चो के लिए अत्यत महत्वपूर्ण माने गए। इस स्तर पर किए गए प्रयास यदि सावधानी से, निष्ठा से एवं अर्थपूर्ण ढंग से किए जाएं तो विद्यार्थियों को अपने चहुंमुखी विकास के लिए पीछे मुड़ कर नही देखना पड़ेगा। शिक्षा के क्षेत्र मे किए गए अनेक अध्ययन इस बात की पुष्टि करते है कि प्राथमिक शिक्षा का निवेश सामाजिक विकास के लिए अत्यत उत्पादक सिद्ध होता है। शिक्षा का एक अन्य सरोकार समता एवं सामाजिक न्याय भी है। इनके अतिरिक्त शिक्षा में दो प्रमुख सरोकार और उभरते हैं, ये है– गुणवत्ता और प्रासगिकता। इन्हीं सरोकारों के कारण 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे प्राथमिक स्तर की शिक्षा मे गुणवत्ता के मुद्दे को बहुत गभीरता से लिया गया और महत्वपूर्ण सरोकार बनाया गया, क्योंकि गुणवत्ता की समीक्षा का यह निष्कर्ष था कि शिक्षा की गुणवत्ता काफी निम्न स्तर की थी। जहां तक प्रासंगिकता का प्रश्न है उसके लिए यह संस्तुति हुई कि शिक्षा ऐसी हो जो जीवन से जुडी हो, जीवन कौशलो का विकास कर सके तथा जीने के लिए अर्थोपार्जन के लिए सक्षम बना सके। इसीलिए शिक्षा की प्राथमिकताओ एवं सरोकारो के आधार पर समय-समय पर अनेक प्रयास किए गए।

प्रयास

देश की स्वतत्रता प्राप्ति के समय से ही जनमानस का शिक्षा के प्रति संकल्प सविधान के 45वे अनुच्छेद मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। जिसमें कहा गया है कि यह सरकार का दायित्व होगा कि 14 वर्ष तक की उम्र मे सभी बच्चो की अनिवार्य एवं नि शुल्क शिक्षा की व्यवस्था दस वर्षो के अन्दर की जाए। इसी महत्वपूर्ण सूत्र को ध्यान मे रखते हुए देश मे चहुंमुखी प्रयास किए गए। जिनका प्रभाव आगे दी गई तालिका में विभिन्न वर्षो मे प्राथमिक विद्यालयो, प्राथमिक अध्यापको एवं विद्यालयो में शिक्षा ले रहे बच्चो की संख्या तथा साक्षरता दर में वृद्धि के रूप मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

तालिका मे दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा हेतु सरचनात्मक/ढाचागत विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। जिसके अन्तर्गत अधिक से अधिक प्राथमिक विद्यालयो की स्थापना करना, अधिक अध्यापकों की नियुक्ति करना व बच्चो मे शिक्षा के प्रति जाग्रति पैदा करना प्रमुख रहा। परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा हेतु सुविधाओ का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यापक रूप मे हुआ।

जहा तक प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के प्रभावी विकास का सम्बन्ध है वह निसदेह हुआ है, इसमें दो राय नही हो सकतीं। पर जहा तक संविधान मे उल्लिखित 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था का सवाल है उसकी प्राप्ति आज भी एक छलावा-सी प्रतीत होती है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा 1986

तालिका 1
प्राथमिक शिक्षा का प्रसार एवं साक्षरता

वर्ष	*प्राथमिक विद्यालयों की संख्या (000)*	*प्राथमिक अध्यापकों की सख्या (000000)*	*प्राथमिक विद्यालयों में अंकित बच्चों की संख्या (000000)*	*साक्षरता दर %*
1950-51	209.7	0 54	19.20	16 02
1960-61	330 4	0.74	35.0	24.02
1970-71	408.4	1.06	57.0	29 45
1980-81	494.5	1.36	73.8	36.23
1990-91	558 4	1.67	99 1	52.11
2000-2001	626 7	1 90	111.0	65.14

मे किए गए एक देशव्यापी सर्वेक्षण से पता चला है कि 30 प्रतिशत बच्चे अभी भी पाच वर्ष तक की प्राथमिक शिक्षा को नही पूरा कर पाते है। 1990 के एक अन्य सर्वेक्षण मे साक्षरता की दर 50 प्रतिशत से कुछ ही ऊपर प्राप्त हुई। यह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि लक्ष्य अभी भी प्राप्त नहीं हो सका है। स्थिति यह है कि वर्ष 2002 में भी शत-प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त नही किया जा सका है।

ऐसा नही कि इस स्थिति से निकलने के लिए सार्थक प्रयास नही किए गए। 1958 से हमेशा शैक्षिक विकास के आवर्ती आकलन किए गए जिनमें विद्यालयो की संख्या में कमी पाई गई। आकलन के आधार पर सबसे पहला निर्णय अधिक विद्यालयों की स्थापना का लिया गया। तदुपरान्त किए गए आकलनो मे पाया गया कि मात्र स्कूल खोल देना समस्या का समाधान नही है। एक अन्य बड़ी समस्या जो लक्ष्य में बाधक है वह है शिक्षा में अपव्यय व अवरोधन की। इससे निपटने के लिए तमाम उपाय सुझाए गए जिनमें से औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था, वयस्क शिक्षा, अन्याय, प्रोत्साहन योजनाओ के बारे मे सोचा गया। लेकिन इन सभी उपचारो को शिक्षा क्षेत्र में प्रयोग में लाने के बाद भी विशाल देश की भौगोलिक, सास्कृतिक, सामाजिक तथा अन्य विभिन्नताओ के कारण शिक्षा की समस्या का समाधान संभव नहीं हो पाया।

प्राथमिक शिक्षा के सख्यात्मक विकास के साथ-साथ संविधान मे उल्लिखित लक्ष्य की प्राप्ति को ध्यान मे रखते हुए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा मे गुणात्मक विकास की बात सर्वप्रथम भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) के सुझावो मे परिलक्षित होती है। जिसे निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। "संख्यात्मक दृष्टि से, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के सभी स्तरो में देश ने आश्चर्यजनक विकास दर्ज किया है। इस विस्तार के बावजूद भी, शैक्षिक विकास के कई आयामों मे स्थिति संतोषजनक नहीं है।"

आयोग का यह भी मानना है कि "राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के महान कार्य की सफलता, जिसका प्रमुख उद्देश्य हर देशवासी के रहन-सहन के स्तर मे सुधार करना है, इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे विद्यालयों एव कॉलेजों से शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाले शिक्षित व्यक्तियों की संख्या व गुणवत्ता कैसी है?"

आयोग की दृष्टि में तीन प्रमुख मुद्दे है जो शैक्षिक परिवर्तन के लिए विशेष महत्व रखते हैं, वे है—

- ☐ आन्तरिक रूपान्तरण— ताकि शिक्षा को राष्ट्र के

जीवन, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओ से जोड़ा जा सके।

- ☐ गुणात्मक सुधार– ऐसा हो ताकि प्राप्त प्रतिमान पर्याप्त हो जो उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करते हो और कम से कम कुछ क्षेत्रो मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की तुलना के हों।
- ☐ शैक्षिक सुविधाओ मे विस्तार– इस प्रकार के हो जो मोटे तौर पर जनशक्ति की आवश्यकताओ के आधार पर और शैक्षिक अवसरों की समानता के पुट को लेते हुए हो।

इस बात के पर्याप्त सबूत नही होने के बावजूद भी अधिकतर लोगों का मत है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की संख्यात्मक वृद्धि यद्यपि सराहनीय है पर इससे शिक्षा की गुणात्मकता को आघात पहुचा है। दूसरी ओर सख्यात्मक वृद्धि के आलोचक शिक्षा की इस उपलब्धि को नकारते हुए विपक्ष में यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं कि यह प्रगति भी अति अल्प और आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है क्योकि देश मे आज निरक्षरो की सख्या स्वतत्रता प्राप्ति के समय के निरक्षरो की संख्या से कहीं अधिक है। इन सब आलोचनाओं से अप्रभावित संवैधानिक, अकादमिक और योजनात्मक स्तरो पर शिक्षा के प्रचार, प्रसार एव गुणवत्ता हेतु सतत् प्रयास किए गए जिनमे से प्रमुख है–

संवैधानिक प्रयास

- ☐ संविधान का 42वा संशोधन विधेयक (1976) जिसके तहत शिक्षा को राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची मे रखने का प्रावधान है।
- ☐ संविधान का 73वां व 74वां संशोधन विधेयक (1992) जिसके तहत पंचायती राज संस्थाओं का निकायीकरण और शिक्षा में उनकी सहभागिता की अनिवार्य बाध्यता सुनिश्चित करना है।
- ☐ सविधान का 93वा संशोधन विधेयक (2001) जिसके तहत शिक्षा को मौलिक अधिकार के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है।

अकादमिक प्रयास

- ☐ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना (1961) (विद्यालयी स्तर पर शिक्षा के विकास एव विस्तार हेतु गठित सर्वोच्च सस्था)
- ☐ शिक्षा आयोग (1966)
- ☐ आधारभूत शिक्षा संप्रत्यय हेतु समिति (1956)
- ☐ आधारभूत शिक्षा के मूल्याकन हेतु समिति (1956)
- ☐ आरम्भिक शिक्षा के आधारभूत शिक्षा के रूप में उन्मुखीकरण हेतु राष्ट्रीय सेमिनार (1959)
- ☐ राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968)
- ☐ *शिक्षा मे गांधी के मूल्य (1970)*
- ☐ परीक्षा सुधार हेतु समिति (1971)
- ☐ बच्चो के लिए राष्ट्रीय नीति (1974)
- ☐ दस वर्षीय विद्यालयी पाठ्यक्रम की रूपरेखा (1975)
- ☐ दस वर्षीय विद्यालयी पाठ्यक्रम के पुनर्मूल्याकन की समिति (1977)
- ☐ शिक्षा की चुनौती– एक नीति परिप्रेक्ष्य (1985)
- ☐ राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)
- ☐ राष्ट्रीय नीति क्रियान्वयन योजना (1986)
- ☐ बिना बोझ की शिक्षा (1987)
- ☐ आधारभूत एव माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (1988)
- ☐ राष्ट्रीय शिक्षा मिशन (1988)
- ☐ राममूर्ति मूल्यांकन समिति (1990)
- ☐ प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम अधिगम स्तर (1991)
- ☐ जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (1991)
- ☐ जनार्दन रेड्डी समिति (1992)
- ☐ परिष्कृत राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992)
- ☐ परिष्कृत राष्ट्रीय नीति क्रियान्वयन योजना (1992)
- ☐ राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा–विमर्श पत्र (1999)
- ☐ सबके लिए शिक्षा (1999)
- ☐ विद्यालयी शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2000)
- ☐ सर्व शिक्षा अभियान (2001)

☐ अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण (कक्षा एक से छ तक) (1957 से 1999)

योजनात्मक प्रयास

☐ स्वतन्त्रंता उपरान्त विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं, प्रथम पंचवर्षीय योजना (1953) से नवीं पचवर्षीय योजना (1999) तक मे शिक्षा के विभिन्न आयामों, स्तरों पर विकास हेतु विस्तृत चर्चा एव अनुदान नियोजन।

☐ समय-समय पर शिक्षामंत्रियो, मुख्यमत्रियों, शिक्षाविदो एव केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की शिक्षा विषयक विचार बिदुओ पर चिन्तन हेतु बैठकें आदि।

वस्तुस्थिति जो भी हो, इन सभी तथ्यों और परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे हर स्तर पर प्रयास किए गए हैं। शिक्षा के सभी क्षेत्रों से संबंधित आयामो में अपेक्षित विकास एव सवर्धन हेतु कई उच्च स्तरीय समितियो का गठन किया गया, सम्मेलनो का आयोजन किया गया तथा समस्याओं और अपेक्षाओं पर विशद् विवेचन करते हुए सुझाव प्रस्तुत किए गए। उनके क्रियान्वयन के लिए संभावनाए तलाश की गई और स्थिति को यथा सभव बेहतर बनाने के प्रयास किए गए। शिक्षा स्तर मे गुणात्मक सुधार उन महत्वपूर्ण मुद्दो मे एक सशक्त मुद्दे की तरह हर मंच पर उभरने लगा। फलस्वरूप शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा उसके परिमार्जित रूप (1992) मे निम्नवत् संस्तुति की गई।

"प्रारम्भिक शिक्षा की नवीन प्राथमिकता तीन आयामों पर विशेष जोर देती है, वे हैं– ● सबके लिए शिक्षा की उपलब्धता एव सबका नामाकन ● 14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों का विद्यालयों में रुके रहना, और ● शिक्षा के स्तर में समुचित सुधार ताकि सभी बच्चे अधिगम के अपेक्षित स्तर प्राप्त कर सकें।"

शिक्षा मे गुणात्मकता को इतने स्पष्ट और शक्तिशाली ढग से इससे पूर्व किसी भी नीति निर्देश में प्रस्तुत नही किया गया था। इसके अतिरिक्त शिक्षा के विभिन्न अवयवों द्वारा गुणात्मक सुधार लाने के जितने मुखर प्रयास इस शिक्षा नीति मे हुए वे भी अद्वितीय हैं। शिक्षण के एक महत्वपूर्ण तत्व मूल्यांकन द्वारा किस प्रकार से शिक्षा स्तर मे गुणात्मक सुधार लाया जा सकता है इसका दर्शन शिक्षा नीति के इस कथन से स्पष्ट होता है।

"उपलब्धि का आकलन किसी भी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अविभाज्य अग है। एक सुगठित शैक्षिक व्यूहरचना के रूप में, परीक्षा का प्रयोग शिक्षा के स्तर में गुणात्मक सुधार लाने के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए।"

शिक्षा नीति (1986) के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल्याकन जो अब तक मात्र बच्चे की उपलब्धि का आकलन करने, उसे पास या फेल घोषित करने तक ही सीमित था उसमें शिक्षा के स्तर में गुणात्मक सुधार लाने की असीम संभावनाए है। मूल्याकन को अब इन्हीं गुणात्मक सुधार लाने के संदर्भ में उपयोग में लाने का सही समय आ गया है।

इससे भी आगे शिक्षा नीति ने मूल्याकन को उन विशिष्ट रूपों में उपयोग में लाने की सबल संस्तुति की है जिससे न सिर्फ शिक्षण बल्कि अधिगम मे भी सशक्त ढंग से अपेक्षित परिवर्तन लाए जा सकते है। यह निम्न पक्तियो में स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

"इसका (मूल्यांकन का) उद्देश्य होगा कि परीक्षा प्रणाली को इस प्रकार से पुनर्नियोजित करना कि वह बालक के विकास के आकलन हेतु एक विश्वसनीय एव वैध मापक की विधि सुनिश्चित करे और शिक्षण तथा अधिगम में सुधार के लिए एक सशक्त उपकरण की तरह काम करे।"

मूल्याकन के द्वारा शिक्षा मे गुणात्मकता सुनिश्चित करने के लिए जिन विशेष बातो का प्रयोग करते समय ध्यान दिया जाना है उनके सदर्भ मे शिक्षा नीति का स्पष्ट दिशा-निर्देश है कि

☐ अत्यधिक व्यक्तिनिष्ठता में कमी लाना

☐ रटने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना

☐ सतत् एवं समग्र मूल्यांकन पर जोर जिसमे न सिर्फ शिक्षा के ज्ञानात्मक बल्कि ज्ञानेतर आयामो को पूरे शिक्षण अधिगम के दौरान समाहित करना।

☐ अध्यापकों के अतिरिक्त सहचर विद्यार्थियों, अभिभावकों द्वारा उपलब्ध मूल्यांकन का प्रभावी उपयोग करना।

- परीक्षा आयोजन में सुधार करना।
- मूल्याकन मे प्रयुक्त उपरोक्त परिवर्तनों को ध्यान मे रखते हुए अधिगम सामग्री व शिक्षण विधियों मे परिवर्तन करना।
- अंको के स्थान पर ग्रेडिंग का प्रयोग करना।

शिक्षा नीति (1986) के मूल्यांकन के अध्ययन से शिक्षा मे गुणवत्ता लाने की उपरोक्त स्पष्ट एव विस्तृत रूपरेखा के सदर्भ मे परिष्कृत शिक्षा नीति क्रियान्वयन योजना (1992) में मूल्यांकन मे सुधार संबधित व्यूहरचना को अधिक सूक्ष्म विवेचन के साथ प्रस्तुत किया गया। शिक्षा में, विशेपकर प्राथमिक स्तर पर मूल्याकन को अधिक प्रभावी ढग से गुणवत्ता सुनिश्चित करने के माध्यम के लिए जिन विशेष बिन्दुओ पर ध्यान देने की अनुशसा की गई, वे हैं–

- न्यूनतम अधिगम स्तर का उपयोग
- शिक्षण अधिगम एव मूल्यांकन मे निकटतम सामजस्य की स्थापना
- मूल्यांकन के विभिन्न स्वरूपो का समुचित प्रयोग
- मूल्याकन के विभिन्न प्रकारों का उचित समायोजन
- न सिर्फ ज्ञानात्मक बल्कि ज्ञानात्मकेतर व्यक्तित्व विकास के आयामों मे परिवर्तनों के मूल्याकन हेतु उपकरणों के उपयोग के बारे मे सोचना।
- मूल्याकन की विभिन्न प्रविधियो का प्रयोग (लिखित, मौखिक, प्रायोगिक, अन्य)
- मूल्यांकन परिणामों के पश्चपोषण के लिए प्रभावी प्रयोग
- मूल्यांकन की अनवरतता एवं उपादेयता का समुचित विचार
- निदानात्मक मूल्यांकन व सुधारात्मक शिक्षण एवं मास्टरी अधिगम
- मूल्यांकन में अंकों के स्थान पर ग्रेडिग का प्रयोग। विभिन्न स्तरों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार में ग्रेडिंग व्यवस्था का उपयोग

यदि शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास परस्पर जुड़े हुए है तो शिक्षा के स्तर और शिक्षा व्यवस्था की समय-समय पर समीक्षा करना राष्ट्र के विकास की दृष्टि से एक निरतर प्रक्रिया बन जाती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी शिक्षा व्यवस्था के लिए नीति निर्धारित करता है, उसके क्रियान्वयन के लिए प्रणाली की स्थापना करता है तत्पश्चात् प्रणाली एवं व्यवस्था का मूल्याकन करता है। यह मूल्याकन इस उद्देश्य से किया जाता है जिससे यह जाना जा सके कि व्यवस्था उन अपेक्षाओ को पूरा कर पा रही है या नही जो कि शिक्षा नीति ने रेखाकित की है। इसके अतिरिक्त यह भी करना होता है कि शिक्षा के क्षेत्र मे क्या कमिया रही, उनके क्या कारण थे तथा उनके आधार पर भावी नीति क्या बने? शैक्षिक योजना प्रशासक यह सुनिश्चित करें कि कितने ससाधनों की आवश्यकता है तथा राष्ट्रीय आय का कितना भाग शिक्षा के लिए निश्चित किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता से सबधित किए गए कुछ प्रयासो की समीक्षा इस प्रकार है।

समीक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक शिक्षा के अतर्गत दो पहलुओ पर विशेष जोर दिया गया– ● व्यापक प्रवेश एवं 14 वर्ष की उम्र तक के बच्चों का व्यापक नामांकन। ● शिक्षा मे निश्चित स्तर तक गुणवत्ता में सुधार। इस स्थिति के कारणों में जाच करने से पता चलता है कि मूल्यांकन व्यवस्था शिक्षा की समूची संरचना की सबसे कमजोर कडी है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा नीति के क्रियान्वयन पी.ओ.ए. 1992 मे परीक्षा सुधार के तहत यह संस्तुति की गई कि मूल्यांकन को अध्यापन एव अधिगम का अभिन्न एवं जुडा हुआ भाग माना जाए तथा शिक्षण एवं मूल्याकन की प्रक्रिया साथ-साथ चले। एक मजबूत शैक्षिक प्रक्रिया के अतर्गत परीक्षा को शैक्षिक गुणात्मक सुधार के लिए प्रयोग मे लाया जाए। 90 के दशक में प्राथमिक स्तर पर अनेक अध्ययन किए गए। 1990 से 1993 तक चला अध्ययन जिसका शीर्षक था 'अटेनमेन्ट ऑफ प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रन इन वैरियस स्टेट्स', इसके अन्तर्गत 25 राज्यों मे प्राथमिक स्तर के बच्चों पर भाषा एव गणित मे परीक्षण हुआ और निष्कर्ष निकला कि भाषा की समझ गणित से कमजोर थी।

दूसरा क्षेत्र था– पश्चिम बगाल, जहां प्राथमिक शालाओं के बच्चों पर कई अध्ययन किए गए। एक अध्ययन जिसमें 879 प्राथमिक विद्यालयों के 11,410 बच्चों ने बगाली भाषा एव गणित की परीक्षा मे भाग लिया। इनमें 20.3 प्रतिशत बच्चो ने न्यूनतम वाछित स्तर प्राप्त किया (1991)। दूसरा अध्ययन (1995) तीन जिलों के कुल 74 विद्यालयों में से 63 प्राथमिक विद्यालयो पर हुआ। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि करीब 34% प्रविष्ट बच्चों ने बंगाली भाषा और गणित मे 50% और उससे ऊपर अक प्राप्त किए। अध्ययन का दूसरा निष्कर्ष यह था कि 64 प्राथमिक विद्यालयों मे केवल 5 विद्यालय ही ऐसे थे जिनके 40% बच्चों ने 50% तथा उससे अधिक अंक प्राप्त किए।

इसके अतिरिक्त 90 के दशक मे शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर किए गए अनेक प्रयासों में से एक है– 'जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना'। इसके अंतर्गत कई सोपानो में मूल्याकन अध्ययन किए गए। सर्वप्रथम 1994 मे आधारभूत मूल्यांकन सर्वेक्षण कुछ राज्यो के कुछ जिलो मे किया गया। उदाहरण के लिए हरियाणा, मध्य प्रदेश एवं तमिलनाडु। जहां पर 5 वर्प तक की प्राथमिक शिक्षा है वहां कक्षा IV के बच्चो पर परीक्षण भाषा एवं गणित विषय मे किया गया। इस सर्वेक्षण के अंतर्गत हरियाणा प्रदेश के 4 जिलों के बच्चो पर किए गए परीक्षण के आधार पर भाषा की उपलब्धि 41% से 46% तक की दर्ज हुई। मध्य प्रदेश मे 17 जिलों में भाषा में उपलब्धि 21% से 40% तक प्राप्त हुई और तमिलनाडु के 4 जिलो में भाषा मे उपलब्धि 34% से 38% तक रही। इसी प्रकार गणित के क्षेत्र में हरियाणा के बच्चो की उपलब्धि 18% से 38% रही जबकि तमिलनाडु मे बच्चो की उपलब्धि 28% से लेकर 29% तक रही। उपरोक्त आंकडो का निष्कर्ष यह है कि भाषा और गणित दोनो में ही उपलब्धि स्तर 40% से कम पाया गया। केवल हरियाणा मे भाषा मे 40% से अधिक परन्तु 50% से कम आंका गया।

इस स्थिति के सदर्भ में इन राज्यों के जिलों मे विभिन्न प्रकार के नवाचार प्रयुक्त हुए जैसे भवन निर्माण, पुस्तक निर्माण, शिक्षक प्रशिक्षण आदि। फलतः यह आशा की गई कि इन सभी संसाधनो से छात्रों का उपलब्धि स्तर कम से कम 25% बढ़ेगा। इस सदर्भ में वर्ष 1997 में मध्य काल मूल्याकन सर्वेक्षण किया गया जिसके परिणाम इस प्रकार पाए गए। हरियाणा प्रदेश में भाषा मे छात्रो की उपलब्धि 2 जिलों में पूर्व उपलब्धि से 4% से 5% कम हो गई परन्तु अन्य दो जिलों मे 7% से 20% तक बढ़ गई। मध्य प्रदेश मे 5 जिलो में छात्रों की उपलब्धि भाषा मे लगभग 9% तक कम हो गई। शेष जिलो में उपलब्धि में बढ़ोतरी 1/2% से 17% तक हुई। तमिलनाडु की स्थिति भिन्न पाई गई। यहां पर सभी जिलों में भाषा में उपलब्धि स्तर में वृद्धि पाई गई जो कि 3% के आसपास आकी गई। जहां तक गणित का प्रश्न है हरियाणा प्रदेश के केवल एक जिले मे छात्रों की उपलब्धि में गिरावट आकी गई जो कि लगभग 11% थी। अन्य तीनों जिलो में इसमे बढ़ोतरी हुई जो कि 3% से 19% के मध्य रही। मध्य प्रदेश राज्य मे भाषा विषय के अनुसार ही परिणाम पाए गए अर्थात् 6 जिलों में छात्रों की उपलब्धि मे कमी आई जो कि 2% से 12% तक थी। अन्य सभी जिलों मे उपलब्धि स्तर मे वृद्धि हुई जो कि 1% से 13% तक रही। तमिलनाडु प्रदेश के जिलों में गणित में उपलब्धि भाषा की उपलब्धि के समान पाई गई अर्थात् सभी जिलों मे छात्रों की उपलब्धि मे वृद्धि पाई गई जो कि 2% से 24% तक थी।

इन उपलब्ध आकड़ो के आधार पर कमियों का विश्लेषण करके पुन उपचारात्मक प्रयोग किए गए। तत्पश्चात् पुन 3 वर्ष बाद 2001 में अतिम मूल्यांकन सर्वेक्षण किया गया जिसके परिणाम इस प्रकार पाए गए। हरियाणा प्रदेश मे भाषा विषय मे सभी जिलों में आधारभूत मूल्याकन सर्वेक्षण से उपलब्धि में वृद्धि 29% से 43% के मध्य हो गई। मध्य प्रदेश में यह वृद्धि आधारभूत मूल्याकन के सापेक्ष 18% से 197% तक हुई। तमिलनाडु में 90% से 151% के मध्य वृद्धि हुई। गणित विषय के अंतर्गत हरियाणा प्रदेश में केवल एक जिले को छोड़ कर शेष तीनो जिलों में आधारभूत मूल्यांकन सर्वेक्षण के सापेक्ष 10% से 54% के मध्य उपलब्धि में वृद्धि पाई

गई। परन्तु जींद जिले मे यह लगभग 9% से आधारभूत उपलब्धि सर्वेक्षण के आकंडे से घट गई। मध्य प्रदेश के सभी जिलों मे उपलब्धि स्तर आधारभूत मूल्याकन सर्वेक्षण के आकडे की तुलना में बढ़ा जो कि 18% से 165% के मध्य पाया गया। मध्य प्रदेश के समान ही तमिलनाडु प्रदेश के सभी जिलों मे आधारभूत उपलब्धि सर्वेक्षण की तुलना मे परिणाम यह दर्शाते हैं कि उपलब्धि मे वृद्धि हुई जो कि 119% से लेकर 216% के मध्य हुई।

इन सर्वेक्षणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि शिक्षा में गुणवत्ता के सुधार की दिशा मे सुनियोजित प्रयास किए जाएं तो वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। यहा ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस परियोजना के अंतर्गत संसाधनो को उपलब्ध कराना, पाठ्यपुस्तको का निर्माण एव उन्हे उपलब्ध कराना, शिक्षण प्रशिक्षण व नवाचारो का प्रयोग सम्मिलित था। समय-समय पर दिशा-निर्देश देना और क्रियान्वयन प्रक्रिया का पर्यवेक्षण करने के साथ समय रहते ही आवश्यक सुधार का प्रयास किया जाना परियोजना का अग था। सम्भवत यह इस योजना के मुख्य लक्षण थे जिससे गुणवत्ता को सुधारने का प्रयास एकागी रूप से किया गया।

वर्तमान शिक्षा और मूल्याकन व्यवस्था में इन संसाधनों एवं स्रोतो की अधिकतम कमी है। एक और बात ध्यान देने की यह है कि यह योजना सीमित राज्यो के सीमित जिलो में ही प्रयोग के रूप में क्रियान्वित हुई है। समूचे राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था को एक रूप सुधार के लिए इसी प्रकार के अथक एवं व्यापक प्रयासो की आवश्यकता है। सम्भवतः इसी पृष्ठभूमि मे केन्द्र सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान जैसी परियोजना 2001 से प्रारभ की है। इन विभिन्न सर्वेक्षणों से शैक्षिक मूल्यांकन की गुणवत्ता की समीक्षा हुई है जो शैक्षिक प्रयासों के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करती है। इनके परिणामो के आधार पर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारे शिक्षा मे गुणात्मकता सुनिश्चित करने हेतु योजनाएं बना सकती हैं।

शिक्षा की गुणात्मकता को जानने के लिए तीन प्रकार की मूल्यांकन प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है ये है– विद्यालय आधारित मूल्यांकन, सार्वजनिक परीक्षा (बोर्ड द्वारा) और राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण। इनमे से एक विद्यालय आधारित मूल्यांकन प्रणाली शिक्षा के सभी स्तरो पर गुणात्मक सुधार मे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसके निम्न प्रमुख कारण हैं–

- ☐ इसमे बाह्य ससाधनों की आवश्यकता नही होती
- ☐ यह व्यापक हो सकती है
- ☐ यह कम खर्चीली होती है
- ☐ इसे अध्यापक स्वयं कर सकते हैं
- ☐ यह स्थानीय सदर्भों से सीधा संबधित होती है।

इन्ही विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा मे गुणात्मकता व मूल्याकन की सतत् एव समग्र मूल्यांकन की प्रविधि के उपयोग की असीम संभावनाओं के आधार पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् के शैक्षिक मापन एव मूल्याकन विभाग ने एक परियोजना की संकल्पना की जिसका आधार सतत् एवं समग्र मूल्यांकन की धारणा थी। इस परियोजना का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है। यह कहना यहा पर अन्यथा नहीं होगा कि विद्यालयी शिक्षा के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2000) में वर्णित मूल्यांकन से संबन्धित विभिन्न मुद्दों का उत्तर खोजने का प्रयास इस विद्यालय आधारित मूल्यांकन प्रायोजना मे किया गया है।

विद्यालय आधारित मूल्यांकन योजना– एक रूपरेखा

मूल्यांकन की धारणा

मूल्याकन का क्षेत्र विस्तृत है इसके अन्तर्गत विद्यार्थियो की गुणात्मक प्रगति का मापन एवं व्यवहारजन्य परिवर्तनों की जाच की जाती है। मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत छात्रो की उपलब्धि के साक्ष्य एकत्र किए जाते है, उनका विश्लेषण किया जाता है और इनके आधार पर विभिन्न प्रकार के निर्णय लिए जाते है। उदाहरण के लिए शिक्षण तथा सीखने में क्या कमिया रही? विषय-वस्तु मे कौन-कौन से कठिन बिन्दु थे जिनको अधिकतर बच्चे पूर्व निर्धारित स्तर तक नहीं समझ सके? और उन्हें कहा और किस प्रकार के उपचार की आवश्यकता है? इस प्रकार मूल्यांकन के

द्वारा शिक्षण उद्देश्यों के अंतर्गत शिक्षा द्वारा विद्यार्थियो को कक्षा मे दिए गए सीखने के अनुभवो की जाच की जाती है। यह ज्ञात किया जाता है कि शिक्षण तथा सीखने में क्या-क्या कमिया रही है तथा उनको दूर करने के उपायों को खोजा जाता है, जिससे गुणात्मक शिक्षा प्रदान की जा सके। जैसा कि सर्वमान्य है, मूल्याकन शिक्षण एव सीखने की प्रक्रिया का एक अभिन्न अग है इसकी सहायता से शिक्षक समय-समय पर यह निश्चित करता है कि उसके द्वारा उपयोग मे लाई जा रही विधि से विद्यार्थियों ने क्या और कितना सीखा है। छात्र मूल्यांकन के द्वारा यह ज्ञात करते हैं कि दिए गए पाठ्यक्रम मे से उन्होंने क्या ज्ञान अर्जित किया है। दोनो ही इसके द्वारा कमियों को जानकर सुधारात्मक प्रक्रिया अपना कर सही दिशा प्राप्त करने का प्रयास कर उद्देश्य की प्राप्ति करते है। अत सीखने एवं सिखाने को प्रक्रियाओ के साथ मूल्याकन का चोली तथा दामन का साथ है। इस प्रकार शिक्षा में गुणवत्ता के लिए यह आवश्यक है कि मूल्याकन सतत् एवं व्यापक हो, उसे सुचारू रूप से रिकार्ड किया जाए, यह वस्तुनिष्ठ हो, वैध एव विश्वसनीय हो। मूल्याकन के द्वारा ज्ञात की गई दुर्बलताओं का निदान करना एक आवश्यक कार्य है। अतः इन दुर्बलताओ को दूर करने हेतु उपचारी शिक्षण और पुनर्मूल्यांकन की व्यवस्था करना आवश्यक है। जिस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य छात्र एव छात्राओं का विकास है उसी प्रकार मूल्याकन का क्षेत्र मात्र संज्ञानात्मक विकास का मूल्याकन नहीं होना चाहिए अपितु शिक्षा मे गुणात्मक सुधार हेतु इसका दायरा पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाकलापो एवं सामाजिक तथा व्यक्तिगत गुणों के विकास से सम्बधित भी होना चाहिए। इन्हें भी उसी निष्ठा व महत्व के साथ करना चाहिए जैसा कि अभी तक सज्ञानात्मक पाठयक्रमों के अतर्गत रखे गए विषयों के साथ किया जा रहा है, अन्यथा भविष्य का मानव, एक बिना विकसित आत्मा का पशु होगा जो कि मात्र स्वयं के सदर्भ मे ही सोच सकेगा। शिक्षा मे गुणात्मक सुधार के लिए यह आवश्यक है कि इसकी शुरुआत प्राथमिक स्तर से ही की जाए क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि सभी बच्चे प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त भी शिक्षा ग्रहण करे। इसलिए प्राथमिक शिक्षा अपने मे सम्पूर्ण होनी चाहिए। यदि हम अपने मानव ससाधन का पूर्ण रूप से विकास करना चाहते है तो प्राथमिक शिक्षा मे गुणात्मक सुधार आवश्यक है।

विद्यालय आधारित मूल्यांकन योजना क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान से संबधित प्रायोगिक विद्यालयों के अधीन प्राथमिक विद्यालयो (डी. एम. एस) में क्रियान्वयन हेतु प्रस्तुत की गई। इस प्रायोजना से कई प्रश्नों के उत्तर जानने का प्रयास किया गया, ये प्रश्न है—

- ☐ क्या यह योजना विद्यालयो में क्रियान्वित हो सकती है या नहीं?
- ☐ क्या वास्तव में मूल्यांकन का सतत् एवं व्यापक स्वरूप अध्यापकों के कार्यभार मे इतनी वृद्धि करता है कि वह विद्यालय मे लागू नही की जा सकती?
- ☐ क्या इसके लागू करने से विद्यार्थियों की उपलब्धि के स्तर की गुणवत्ता मे वृद्धि होती है?

इसमे प्राथमिक शिक्षा (कक्षा I से V) को तीन चरणों में विभाजित किया गया। चरण एक मे कक्षा I तथा II, चरण दो मे कक्षा III तथा IV तथा चरण तीन मे कक्षा V रखे गए। इन तीनों चरणों पर विद्यार्थियो के विकास की अवस्था के अतर को ध्यान मे रखते हुए संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं मनोपरक क्षेत्रो मे मूल्याकन का प्रारूप सुझाया गया। ऐसा करना इसलिए आवश्यक समझा गया क्योंकि वर्तमान में विद्यालयो मे केवल शैक्षिक विषयों, जो कि मूल्यांकन का संज्ञानात्मक पक्ष है, पर जोर दिया जाता है परन्तु इस योजना में तीनों पक्ष मूल्यांकन हेतु निम्नवत् निर्धारित किए गए हैं।

संज्ञानात्मक क्षेत्र

इस क्षेत्र में मूल्याकन हेतु निम्न बिन्दुओ पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

- ☐ शिक्षा एवं मूल्यांकन दक्षता आधारित हो।
- ☐ प्रत्येक दक्षता की समाप्ति पर अनौपचारिक अथवा औपचारिक परीक्षण हो जिसके द्वारा विद्यार्थियों की अधिगम कठिनाईयों का आकलन कर उपचार किया जाए तथा उनका पुनर्मूल्यांकन किया जाए जिससे पूर्णज्ञान के स्तर तक अधिगम हो। अतः निदानात्मक परीक्षणों तथा उपचारात्मक शिक्षण पर जोर दिया

जाए। इस प्रकार सतत् मूल्यांकन किया जा सके।

- ☐ मूल्याकन विद्यार्थियो की सहभागिता के आधार पर हो।
- ☐ इकाई परीक्षा/आवधिक परीक्षा विद्यालय की समय सारणी के हिसाब से की जाए। इसके बाद कोई निदानात्मक परीक्षा/पुन परीक्षा नही हो।
- ☐ विद्यार्थियों के विभिन्न परीक्षणों की उपलब्धि का रिकार्ड विद्यार्थियो की प्रगति देखने के लिए रखा जाए।
- ☐ विद्यार्थियों की उपलब्धि को निरपेक्ष ग्रेडिग के नीचे दिए गए पाच बिन्दु के स्केल पर आका जाए।

अंक विस्तार	*श्रेणी*	*विवरण*
80% और ऊपर	A	अत्यत अच्छा
50% – 79%	B	बहुत अच्छा
50% – 64%	C	अच्छा
35% – 49%	D	औसत
35% से नीचे	E	औसत से नीचे (सुधार की आवश्यकता)

ग्रेड रिपोर्ट करने के लिए सभी दक्षता आधारित परीक्षाओ, इकाई परीक्षाओ तथा टर्म परीक्षाओं को बराबर महत्व दिया जाए। जिन विद्यार्थियों ने उपचार कार्यक्रम के पश्चात् उपलब्धि में सुधार किया है उनकी दूसरी परीक्षा की उपलब्धि को ग्रेड देते समय ध्यान रखा जाए।

विद्यार्थियो की लिखित परीक्षा हेतु सतुलित प्रश्न-पत्रों का प्रयोग किया जाए। जिसमें आरेख, प्रारूप, प्रश्न-पत्र, अक योजना तथा प्रश्नवार विश्लेषण बनाए जाए तथा शेष सभी दक्षता आधारित परीक्षाओं के लिए केवल आरेख, प्रश्न-पत्र तथा अंक योजना का निर्माण किया जाए। उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त चरणवार निम्न विन्दुओ पर भी जोर देने को बताया गया।

चरण 1 (कक्षा I और II)

- ☐ शिक्षण के लिए खेल विधि अपनाई जाए।
- ☐ मूल्यांकन शिक्षण के साथ-साथ किया जाए तथा इस पर ध्यान दिया जाए कि बच्चे यह न जानें कि उनकी परीक्षा हो रही है। जिससे बच्चो के अंदर परीक्षा के लिए भय न पैदा हो।
- ☐ अध्यापक प्रत्येक बच्चे की प्रगति पर ध्यान दे क्योंकि इस उम्र में परिपक्वता की कमी होती है।
- ☐ अवलोकन द्वारा परीक्षण तथा मौखिक परीक्षण पर जोर दिया जाए।

चरण 2 (कक्षा III और IV)

- ☐ विद्यार्थियों की शैक्षिक उत्कृष्टता का आकलन शुद्ध लिखावट, सशक्त अभिव्यक्ति, त्वरित गणन, अच्छे चित्र खींचना, तेज स्मृति आदि को ध्यान में रखकर किया जाए तथा अध्यापक विद्यार्थियों में इन गुणो का विकास करने मे सहयोग दे।
- ☐ अधिक चंचल विद्यार्थियो का पढ़ाई मे ध्यान एकाग्र कराने हेतु अध्यापक पाठ्यपुस्तक विधि से हट कर कहानी सुनाने की विधि, क्रियाकलाप विधि तथा बच्चो के अनुभवो को जोड़ कर पढाने की विधि का प्रयोग करे।
- ☐ लिखित परीक्षा में प्रथम चरण की अपेक्षा धीरे-धीरे वृद्धि हो।
- ☐ परीक्षणो मे अति लघु उत्तर, रिक्त स्थान भरो, जोड़ी बनाओ तथा सही / गलत जैसे प्रश्नों का प्रयोग किया जाए।
- ☐ मूल्याकन पांच बिन्दु के स्केल पर निरपेक्ष ग्रेडिंग पर किया जाए।

चरण 3 (कक्षा V)

- ☐ परीक्षा मे मौखिक एवं लिखित दोनो विधियो का समावेश किया जाए। भले ही मौखिक परीक्षा का मान कम हो।
- ☐ परीक्षण मे दिए गए प्रश्नों में उच्च स्तरीय तर्क व समस्या समाधान करने से सबंधित प्रश्नों को भी दिया जाए।
- ☐ प्रश्न-पत्रो मे लघु उत्तर, दीर्घ उत्तर, बहु विकल्प प्रश्नो

को भी सम्मिलित किया जाए।

- मूल्याकन, पाच बिन्दु के स्केल पर निरपेक्ष ग्रेडिग पर अन्य दो चरणो के समान ही किया जाए।

मनोपरक क्षेत्र

यह क्षेत्र यद्यपि पाठ्यक्रम का भाग है परन्तु इसके शिक्षण पर संज्ञानात्मक क्षेत्र की अपेक्षा कम ध्यान दिया जाता है। इस क्षेत्र मे विद्यार्थियो के विकास के आकलन हेतु न तो उपयुक्त उपकरणो का विकास किया गया है और न ही मूल्याकन हेतु कोई सुचारू प्रणाली ही उपलब्ध है। इन तथ्यो को ध्यान में रखकर इस परियोजना मे इनके विकास, अवलोकन, मापन एवं मूल्यांकन पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके अतर्गत अवलोकन तथा सहभागिता के आधार पर तीन विन्दुओ के स्केल पर इकाई / टर्म के अंत मे प्रत्येक विद्यार्थी को ग्रेड दिए जाते है जो कि 'अच्छा', 'औसत' एव 'औसत से अधिक' हो। अत इस क्षेत्र के मूल्याकन मे भिन्न तीन घटक है।

- अवलोकन
- रेटिंग
- ग्रेडिग

मनोपरक क्षेत्र के अंतर्गत सह शैक्षिक क्रियाकलाप जैसे– कला शिक्षा, कार्यानुभव तथा शारीरिक और स्वास्थ्य शिक्षा का विद्यार्थियो मे विकास व मूल्याकन किया जाए। यह आवश्यक है कि अध्यापक यह सुनिश्चित करें कि सभी विद्यार्थी मनोपरक क्षेत्र मे आयोजित गतिविधियों में किसी न किसी में भाग अवश्य ले तथा विद्यार्थी द्वारा प्रदर्शित असाधारण प्रदर्शन को आख्यान-रिकार्ड मे अवश्य लिखा जाए।

मनोपरक क्षेत्र में उपरोक्त बिन्दुओ के अतिरिक्त चरणवार निम्न बिन्दुओं पर भी जोर दिया जाए।

चरण 1 (कक्षा I और II)

- सभी बच्चे उन सभी गतिविधियो मे भाग लेंगे जो अध्यापक करवा रहा है। मूल्यांकन बच्चो के गतिविधियों में भाग लेते समय अध्यापक द्वारा अवलोकन विधि से किया जाए।
- कला शिक्षा क्षेत्र मे अध्यापक अपने अवलोकन के दौरान विद्यार्थियों की विभिन्न कलाओं जैसे चित्रकला, संगीत, वादन, नृत्य मे सहभागिता पर ध्यान दे।
- शारीरिक शिक्षा क्षेत्र के अंतर्गत अध्यापक विद्यार्थियों का मूल्यांकन विभिन्न गतिविधियों में सहभागिता के आधार पर करें।
- स्वस्थ आदतों के आकलन के लिए अध्यापक अभिभावको पर निर्भर करे क्योकि ये अधिकतर घर पर ही संपन्न होती है। केवल भोजन अवकाश में भोजन करने से पूर्व तथा भोजन करने के उपरान्त हाथ धोने की क्रिया ही विद्यालय में होती है। जिसका अवलोकन एवं मूल्यांकन करें।

चरण 2 (कक्षा III और V)

- ड्रिल सभी विद्यार्थियो के लिए अनिवार्य हो।
- इस स्तर पर बच्चे अपनी रुचि के अनुसार कला, शारीरिक शिक्षा तथा कार्यानुभव की कम से कम एक या दो गतिविधियो मे अवश्य भाग ले तथा इन्ही क्षेत्रो मे उनकी सहभागिता के आधार पर मूल्यांकन करें।

भावनात्मक क्षेत्र

वर्तमान व्यवस्था मे व्यापक मूल्यांकन के क्षेत्र के संज्ञानात्मक व कुछ मनोपरक क्षेत्र ही सम्मिलित हैं। भावनात्मक क्षेत्र का पूर्णतः अभाव है। अतः व्यापक मूल्यांकन के अर्थपूर्ण क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि तीनो क्षेत्रों को उचित मान दिया जाए।

यद्यपि सभी पाठ्यक्रम सामाजिक एव व्यक्तिगत गुणो, रुचियों, दृष्टिकोणों व मानव मूल्यो के विकास की चर्चा करते हैं और पिछले दशक से तो जीवन कौशलों को भी सम्मिलित किया जा रहा है, परन्तु पाठ्यचर्या मे न तो किसी भी स्तर पर उनका समावेश है न ही इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि उनका किस प्रकार से विकास एव मूल्यांकन हो। इस योजना में इस अभाव को ध्यान मे रखते हुए 9 सामाजिक व्यक्तिगत गुणो, रुचियों, सकारात्मक दृष्टिकोणो जैसे आज्ञाकारिता, उत्तरदायित्व,

सहयोग, सत्यनिष्ठा, देशभक्ति, समय पांबदी, नियमितता आदि मूल्यों को जोड़ कर भावनात्मक विकास के पक्ष को उभारने का प्रयास किया गया है। इस क्षेत्र का विस्तार बहुत व्यापक है अत. उन सभी गुणों को प्राथमिक स्तर पर सम्मिलित करना मानवीय स्तर पर असभव है। इसलिए प्रत्येक विद्यालय को यह स्वतंत्रता दी गई है कि वे स्वयं इनके अन्तर्गत आने वाले सभी क्षेत्रों का विश्लेषण कर कुछ आधारभूत गुणो, रुचियो, दृष्टिकोणो तथा मूल्यो का चयन करें। गुणो के विकास के लिए कुछ गतिविधियो को विद्यार्थियो के समक्ष उदाहरण सहित करवाने का भी सुझाव दिया गया है।

इस योजना मे मूल्याकन को और भी प्रभावी बनाने के लिए दो अन्य तकनीको के प्रयोग को भी शामिल किया गया ये हैं– स्व-मूल्याकन एव सहपाठी द्वारा मूल्याकन। स्व-मूल्याकन हेतु एक प्रोफार्मा विकसित किया गया जिसे कक्षा 5 के विद्यार्थी भर कर स्व-मूल्याकन करे। इसके आधार पर शिक्षक विद्यार्थी की एक प्रोफाइल बनाएगे। इस प्रोफाइल को अभिभावको को भेजे जाने वाले रिपोर्ट कार्ड के साथ सलग्न किया जाएगा।

इसी प्रकार सहपाठी द्वारा मूल्यांकन हेतु कक्षा को दो समूहो में बाटा जाएगा। प्रत्येक समूह के छात्रों को अपने समूह के छात्रों की सूची दे दी जाएगी। उनसे कहा जाएगा कि अपने सहपाठियो के नाम के आगे उसके एक अच्छे गुण के बारे मे लिखे। एक बच्चे के बारे मे दिए गए सभी छात्रो के विचारो को अध्यापक एकत्र करके एक पृष्ठ पर उसका सार लिखकर उस बच्चे की रिपोर्ट के साथ संलग्न करेगे।

क्रियान्वयन रणनीति

प्रारभ मे यह मूल्यांकन योजना एक प्रायोजना समूह के द्वारा निर्मित की गई जिसे कार्यशाला मे जांचा गया तथा उसे अतिम रूप देने से पहले कई प्रश्न उठाए गए। प्रश्नों से संबंधित बिन्दु निम्न थे–

- ☐ समय-सारणी का पुनर्निर्धारण
- ☐ मूल्यांकन उपकरणों का निर्माण (केन्द्र स्तर पर होगा या स्थानीय स्तर पर)
- ☐ रिपोर्ट कार्ड में संशोधन
- ☐ विद्यार्थियों की उपलब्धि का रिकार्ड रखना
- ☐ शिक्षण, निदान, उपचार एव मूल्याकन के लिए समय निर्धारण
- ☐ मूल्याकन मुद्दो पर शिक्षक प्रशिक्षण
- ☐ योजना के क्रियान्वयन में सभावित कठिनाइया एव उनके हल
- ☐ योजना क्रियान्वयन का अनुवीक्षण एव निरीक्षण
- ☐ योजना संबधित क्रियाकलापों पर छात्रो की प्रतिक्रिया और उनके अभिभावकों के विचार

उपरिवर्णित बिन्दुओं पर बारीकी से चर्चा हुई और समाधान ढूढने के प्रयास किए गए। इन समाधानो के आधार पर अंतरिम समय-सारणी, क्रियाकलापो का कलैडर तथा सशोधित रिपोर्ट कार्ड की रूपरेखा विद्यालय स्तर पर तैयार करवाए गए तथा उन्हे अंतिम रूप दिया गया। साथ-साथ योजना के मौलिक प्रारूप में भी कार्यशाला के दौरान प्रस्तुत सुझावों का समावेश करके परिवर्तन किया गया।

तत्पश्चात् क्रियान्वयन हेतु चुने गए डी. एम. स्कूल की प्राथमिक कक्षाओ के शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली मे 5 दिन का उन्मुखीकरण कार्यक्रम आयोजित किया गया।

उन्मुखीकरण कार्यक्रम मे अध्यापको को सशक्त बनाने के उद्देश्य से निम्न बातों पर चर्चा की गई–

- ☐ विद्यालय आधारित मूल्याकन व्यवस्था।
- ☐ संज्ञानात्मक क्षेत्र मे सतुलित इकाई परीक्षण पत्र और प्रश्न-पत्र के निर्माण की तकनीक।
- ☐ निदान एव उपचार की प्रक्रिया।
- ☐ मनोपरक एवं भावनात्मक क्षेत्रों में मूल्याकन के लिए उपकरणो का निर्माण व उनका उपयोग।
- ☐ अवलोकनों का रिकार्ड रखने की विधि।
- ☐ शैक्षिक क्षेत्रों की उपलब्धि को 5 बिदु मापनी पर ग्रेड देने की विधि।
- ☐ सह-शैक्षिक क्षेत्रो की उपलब्धि को 3 बिंदु मापनी पर ग्रेड देने की विधि।
- ☐ रिपोर्ट भरने एवं टिप्पणी लिखने की प्रक्रिया।

प्रशिक्षण

शैक्षिक विषयो में उपलब्धि के आकलन में व्याप्त त्रुटियो को दूर करने हेतु संतुलित प्रश्न-पत्र निर्माण का प्रशिक्षण इस परियोजना का एक प्रमुख भाग बनाया गया। जिसके अंतर्गत इस परियोजना के क्रियान्वयन के समय चयनित विद्यालयो के सभी शिक्षकों व मुख्य अध्यापकों को व्यापक प्रशिक्षण दिया गया। जिसके अतर्गत प्रश्न-पत्र की डिजाइन, ब्लू-प्रिन्ट एव विभिन्न प्रकार के अनेक उद्देश्यों जैसे ज्ञान, बोध, अनुप्रयोग एव कौशल पर आधारित प्रश्न-पत्रों के निर्माण की प्रक्रिया को उदाहरण के साथ समझाया गया तथा उनसे अपने-अपने विषय मे एक-एक दक्षता आधारित सतुलित प्रश्न-पत्र बनवाए गए। इन प्रश्न-पत्रो को उपस्थित समूह के सामने प्रस्तुत करके उनका विश्लेषण किया गया, जिससे सभी को प्रश्नो में निहित कमियो की जानकारी मिली तथा अच्छे प्रश्नों के उदाहरण भी प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त प्रश्नो की जाच प्रक्रिया तथा अंक प्रदान करने की प्रणाली पर भी चर्चा हुई जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष ग्रेडिंग तथा अप्रत्यक्ष ग्रेडिग करने का तरीका भी उदाहरण सहित स्पष्ट किया गया। इन प्रश्नो के विश्लेषण द्वारा बच्चों की कमजोरियो का अवलोकन करना भी सिखाया गया तथा इस पर चर्चा हुई कि इन कमजोरियों को दूर करने के लिए क्या और कैसे उपचारात्मक उपाय किए जाएं। इस प्रकार मूल्यांकन को सशक्त बनाने के लिए निदान एवं उपचार की प्रक्रिया को एक महत्वपूर्ण अंग के रूप मे प्रस्तुत किया गया। यह प्रणाली वास्तव मे विद्यार्थियों को न्यूनतम अधिगम स्तर से लेकर पूर्ण ज्ञान के स्तर (मास्टरी लेवल) तक ले जाने के लिए आवश्यक है, इस बात पर अध्यापकों का ध्यान आकर्षित किया गया। साथ ही यह भी बताया गया कि यह सतत् मूल्यांकन का महत्त्वपूर्ण अंग है। यहां यह कहना उचित होगा कि वर्तमान प्रचलित मूल्यांकन प्रणाली में सतत् मूल्याकन की धारणा का अभाव है। जो थोड़ा-बहुत होता भी है तो वह सुनियोजित नहीं है। अतः इस परियोजना मे सतत् मूल्याकन पर विशेष जोर दिया गया। मनोपरक क्षेत्र मे सह शैक्षिक क्रियाकलापों के द्वारा किस प्रकार कार्यानुभव, चित्रकला, संगीत एवं नृत्य आदि विधाओं का विकास किया जा सकता है इस पर एक परिचर्चा के माध्यम से अनेक कार्यविधियो के बारे मे अध्यापकों को प्रशिक्षित किया गया। उन्हें यह भी बताया गया कि किस प्रकार इन क्षेत्रो में बच्चों की दक्षता का अवलोकन करके रिकार्ड करें। इसके लिए प्रत्येक अध्यापक को एक रजिस्टर बनाने के लिए कहा गया जिसमें प्रत्येक छात्र के व्यवहारो का रिकार्ड रखने की व्यवस्था हो। इन अवलोकनों के आधार पर रेटिग व ग्रेडिग का सुझाव दिया गया। भावनात्मक क्षेत्र में योजना के अंतर्गत चयनित गुणों, रुचियो एव मूल्यों के विकास एव मूल्यांकन के लिए भी उपरोक्त विधि के प्रयोग की चर्चा हुई और अध्यापकों को अवगत कराया गया।

अनुवीक्षण एवं पर्यवेक्षण

योजना क्रियान्वयन का एक अत्यत महत्वपूर्ण भाग था, अनुवीक्षण एव निरीक्षण। इस भाग को सम्मिलित करने का उद्देश्य यह था कि शिक्षाविदों में सतत् और व्यापक मूल्यांकन के क्रियान्वयन को लेकर अनेक शंकाए थी। उनकी सोच यह थी कि एक तो अध्यापक इसे स्वीकार नही करेंगे दूसरे इसके क्रियान्वयन मे अधिक समय लगेगा तथा यदि इसे लागू किया गया तो यह फार्म भरने की एक प्रक्रिया मात्र रह जाएगा, इससे कोई ठोस परिणाम नही मिलेगा। इन आलोचनाओ की दृष्टि से पहले भी कई बार सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन को लागू करने का प्रयास किया गया और असफलता हाथ लगी। (अग्रवाल, 1985, राजपूत एव अग्रवाल, 1996) असफलता के कारणों के जानने से यह तय पाया गया कि पुराने प्रयासों में एक ओर न तो अध्यापक की रुचि का विकास किया गया, न ही उन्हें प्रशिक्षित किया गया। साथ ही इसका निरीक्षण भी नही किया गया कि वे इसे विद्यालय में ठीक से क्रियान्वित कर पा रहे है या नही । उन्हे क्या कठिनाइया आ रही हैं? इन कठिनाइयो का कोई समाधान है या नही? इत्यादि के संदर्भ में तत्काल अध्यापको की जिज्ञासाओं और दुश्चिंताओ का निराकरण करने के लिए कोई बहुस्तरीय निरीक्षण की व्यवस्था भी नहीं की गई थी। (राजपूत एव अग्रवाल, 1999) इन सभी बिंदुओं

को ध्यान में रखकर इस विद्यालय आधारित परियोजना के अतर्गत निरीक्षण हेतु एक चार स्तरीय निरीक्षण व्यवस्था को सम्मिलित किया गया। यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह निरीक्षण मात्र एक अवलोकन न रह जाए इसके लिए सभी स्तर के निरीक्षणो हेतु कई प्रकार के प्रपत्र बनाए गए। जिनका विश्लेषण स्वय निरीक्षण द्वारा तथा उसके ऊपर के स्तर के लोगों के द्वारा वर्ष मे कम से कम तीन बार करने का प्रावधान रखा गया। इसके साथ ही तीनों बार क्रमशः भरे हुए प्रपत्रों का अध्ययन करके यह जानने का प्रयास किया गया कि परियोजना का क्रियान्वयन उद्देश्यों के अनुसार सही दिशा मे हो रहा है या नही। हर टर्म के अत में विद्यालयो से रिपोर्ट प्राप्त करके यह जानने का प्रयास किया गया कि कहां कठिनाई है और उससे संबधित मार्गदर्शन दिए गए क्योंकि इस निरीक्षण कार्य के दो उद्देश्य थे–

- ☐ अध्यापकों के कार्य में सहायता प्रदान करके मूल्यांकन को समुन्नत करना।
- ☐ यह देखना कि प्रणाली कितनी व्यावहारिक है तथा इससे अध्यापकों की कार्य प्रणाली पर कितना प्रभाव पडता है।

यहा यह निहितार्थ नही था कि अध्यापको की आलोचना करके कोई नकारात्मक टिप्पणी लिखकर उनकी कार्यप्रणाली के लिए या उनके व्यवसाय के लिए परेशानी पैदा की जाए।

उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान मे रखकर चारों स्तरो के निरीक्षकों के लिए चार प्रकार के प्रपत्र बनाए गए। इन प्रपत्रो के मुख्य प्रश्न मूल्याकन के उन मुख्य बिदुओं पर आधारित थे जो कि योजना के प्रमुख अंग है तथा जिन पर अध्यापको को प्रशिक्षण प्रदान किया गया था। साथ ही विभिन्न स्तर के कार्यकर्ताओं के जो दायित्व निर्धारित किए गए उनके मुख्य बिदु भी इसमें सम्मिलित थे। विभिन्न प्रपत्र जो नेता अध्यापक, मुख्य अध्यापिका, संयोजक तथा परियोजना शोध दल के लिए बनाए गए उनका विवरण निम्नलिखित है–

- ☐ शिक्षक नेता – एक प्रपत्र
- ☐ मुख्य अध्यापिका – एक प्रपत्र
- ☐ सयोजक – एक प्रपत्र
- ☐ केन्द्रीय शोध दल – चार प्रपत्र

(इन चारों प्रपत्रो का विवरण निम्न है)

- योजना के क्रियान्वयन से सबंधित मूल्याकन के मुख्य बिदुओं के परिप्रेक्ष्य में केन्द्रीय शोध दल का प्रपत्र
- विद्यालय वातावरण का प्रपत्र
- अभिभावको के विचार का प्रपत्र
- कक्षा 5 के विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया का प्रपत्र

केद्रीय शोध दल के प्रपत्रो को छोडकर हर कार्यकर्ता द्वारा अपने ऊपर के कार्यकर्ता को अपना प्रपत्र भर कर देने की व्यवस्था थी; जैसे शिक्षक नेता, मुख्य अध्यापिका को तथा मुख्य अध्यापिका, संयोजक को। यह कार्य एक टर्म मे करने के लिए नियत था तथा सयोजक से यह आशा की गई कि वह इन प्रपत्रो से प्राप्त सूचनाओ तथा अन्य गतिविधियों के आधार पर एक रिपोर्ट बनाकर केन्द्रीय दल के पास भेजे ताकि केन्द्रीय दल अपने निरीक्षण के समय कई समस्याओं के समाधान से सबधित तथा अन्य आवश्यक दिशा-निर्देश दे सके। केन्द्रीय दल अपने निरीक्षण के समय अपने प्रपत्र को भरते समय सभी निरीक्षणकर्ताओं से संवाद करके जानकारियों के लिए स्वय अवलोकन कर अपनी टिप्पणियां डायरी में लिखते थे। केन्द्रीय शोध दल द्वारा अभिभावक एव विद्यार्थियों के प्रपत्रो को भरवा कर सयोजक को दिए जाने की व्यवस्था थी ताकि वे उसका विश्लेषण कर मूल्याकन की कार्यप्रणाली मे सुधार करवा सकें।

इसके अतिरिक्त इस योजना को और अधिक प्रभावशाली ढग से क्रियान्वित करने के लिए निम्न प्रयत्न भी किए गए।

- ☐ स्थानीय आवश्यकताओ के अनुरूप योजना में परिवर्तन कर इसे लागू करने की स्वतंत्रता चारो डी एम. स्कूलों को दी गई ताकि वे अपनी-अपनी समय-सारणी, परीक्षा क्रम तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओ के लिए उपलब्ध सुविधा का यथोचित उपयोग कर सकें।
- ☐ केन्द्रीय पर्यवेक्षकों की टोली ने दो बार प्रत्येक विद्यालय में जाकर योजना के क्रियान्वयन की बारीकी से जांच

की तथा योजना के सभी पक्षो को बेहतर ढंग से प्रयोग में लाने हेतु विचार-विमर्श किया और आवश्यक सुझाव भी दिए तथा यह भी प्रयत्न किया कि दिए गए सुझाव योजना मे विद्यालय स्तर पर सम्मिलित किए जाए।

- जिन-जिन क्षेत्रो में अध्यापकों को परेशानी का अनुभव हो रहा था उनको विस्तार से विवेचित किया गया तथा एक विद्यालय की अच्छी बातों को दूसरे विद्यालयो को बताया गया। जिससे वे भी उनका लाभ उठा कर गुणवत्ताओं मे विकास कर सके। अधिकतर विद्यालयों में यह पाया गया कि सत्र के शुरुआत मे प्रश्न-पत्र बनाते समय अध्यापको को मुख्य रूप से आरेख तथा ब्लू-प्रिन्ट बनाने मे परेशानी हुई। साथ ही साथ सह शिक्षा पाठ्यक्रम से सबधित क्रियाओ के अवलोकन तथा उनकी रिकॉर्डिंग मे भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।
- सभी विद्यालयों में समय की कमी को प्रमुख समस्या के रूप मे उभारा गया। फिर भी विभिन्न विद्यालयों ने विभिन्न तरीको से इसके समायोजन की प्रणाली विकसित की।
- प्रारम्भ मे सामाजिक एवं व्यक्तिगत गुणो के विकास के सबंध में कोई विशेष प्रयास नहीं किए जा रहे थे। अत. केन्द्रीय दल ने इस पर चर्चा की और सोदाहरण इन गुणो को विकसित व मूल्यांकन करने की प्रक्रिया को समझाया, साथ ही उनके मूल्यांकन के विषय में भी विस्तृत चर्चा की। बाद में अध्यापक इनका अवलोकन एव मूल्यांकन करने लगे।
- अध्यापको की न्यूनतम अधिगम स्तर की समझ मे कमी एक प्रमुख समस्या आंकी गई। साथ ही दक्षता आधारित पुस्तकों के अभाव को भी अध्यापकों ने विद्यार्थियो तथा अभिभावकों की ओर से एक प्रमुख समस्या के रूप में प्रस्तुत किया। जबकि इनका अभाव वास्तव मे नही था। यह अध्यापक के विषय-वस्तु को भली-भाति न समझ पाने के कारण ही था।
- द्वितीय परिवीक्षण के समय केन्द्रीय शोध दल ने पाया कि अधिकृत उपरोक्त वर्णित समस्याओ का समाधान हो गया था। फिर भी कुछ नई समस्याए उभर कर सामने आ रही थीं जिन्हे स्थानीय स्तर पर सुलझाने हेतु आवश्यक दिशा-निर्देश दिए गए।

चारों डी. एम. स्कूलों मे उपलब्ध सुविधाओ एवं साधनों के साथ यह प्रायोजना काफी हद तक सुचारू रूप से क्रियान्वित हो रही है। हालांकि आकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त ही निश्चित तौर पर यह कहा जा सकेगा कि प्रायोजना अपने उद्देश्य प्राप्ति में कितनी सफल रही तथा किन-किन क्षेत्रों में कौन-कौन से सुधारो की अभी भी आवश्यकता है।

उभरते मुद्दे

शिक्षा की गुणवत्ता को स्थापित करने के लिए अनेक प्रयास किए गए फिर भी कुछे मुद्दे जो कि बहुत पहले सुलझ जाने चाहिए थे अभी भी जीवंत हैं। उनमें से कुछ प्रमुख मुद्दे निम्नवत है—

- *विद्यालयों की स्थिति*— विद्यालय में उपलब्ध सुविधाओ का आकलन।
- *प्रशिक्षण की व्यवस्था*— अध्यापको को मूल्यांकन का गहन प्रशिक्षण वाछित, ताकि वह मूल्यांकन को शिक्षा स्तर के सुधार से जोड सके और मूल्यांकन को एक बहुमूल्य उपकरण की भांति प्रयोग मे ला सकें।
- *अनुवीक्षण एवं पर्यवेक्षण*— योजना की सफलता के लिए एक सुदृढ व समयबद्ध अनुवीक्षण एव पर्यवेक्षण प्रणाली का होना आवश्यक है। जिसका सीधा प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से योजना की सफलता पर पडता है।
- *अभिभावकों में जागरूकता*— शिक्षा के क्षेत्र मे कोई भी नई योजना की सफलता तब तक सदिग्ध है जब तक कि अभिभावकों को इसमें हिस्सेदार नहीं बनाया जाता। अतः अभिभावकों को योजना के संबंध में पूर्ण जानकारी दी जानी आवश्यक है। जिससे उनका नई मूल्यांकन पद्धति के प्रति विश्वास जागृत हो सके और वे अपना पूर्ण सहयोग दे सकें।
- *ग्रेडिंग पर जोर*— शिक्षा में मूल्याकन के माध्यम से गुणवत्ता लाने हेतु ग्रेडिंग प्रणाली को अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इस प्रणाली के अन्तर्गत क्रमवार छात्रों की विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धि को

विभिन्न योग्यता के स्तरो मे बांटकर दर्शाया जाता है। इसके द्वारा अभिभावक यह जान सकते हैं कि उनका बच्चा कल कहां था और आज कहां है।

- *सह शैक्षिक एवं व्यक्तित्व विकास पर जोर*— बालक के सर्वागीण विकास हेतु मात्र संज्ञानात्मक पक्षो पर ही मूल्याकन नही किया जाना चाहिए वरन् सह शैक्षिक एवं व्यक्तित्व विकास पर भी उतना ही जोर व ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है क्योकि इन गुणों के आधार पर ही सर्वागीण विकास सम्भव है।
- *समानता तथा उत्कृष्टता के बीच सामंजस्य*— इस प्रकार के प्रयासो की आवश्यकता है कि गुणात्मक शिक्षा सभी की पहुच मे हो।
- *अध्यापको की उपस्थिति सुनिश्चित करना*— विद्यार्थियों को पठन-पाठन प्रक्रिया से जोड़ते हुए पढ़ने और सीखने के अवसर प्रदान करना। शिक्षा प्रशासको द्वारा यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि अध्यापकगण निर्धारित शिक्षण अवधि के दौरान विद्यालय में उपस्थित हों तथा कार्यक्रमानुसार नियमित कक्षाओं को पढाए।
- *समय की कमी*— शिक्षा प्रशासक निश्चित की गई विद्यालय की समय अवधि के निर्धारण पर पुनः विचार करें तथा आवश्यकतानुसार उसे बढ़ाएं जिससे कि निर्धारित पाठ्यक्रम सुचारू रूप से विद्यार्थियो को पढ़ाया जा सके।
- बदले परिवेश मे शिक्षण अधिगम की सहायक नवाचारो के प्रयोग की अभिरुचि अध्यापको में विकसित करें तथा यथानुसार प्रशिक्षण का बन्दोबस्त करे।
- *नो डिटेंशन पॉलिसी की प्रासगिकता*— प्राथमिक कक्षाओं में प्रचलित नॉनडिटेशन के मर्म को समझाते हुए ही विद्यार्थियों की प्रगति की व्यवस्था हो तथा अध्यापक आवश्यकतानुसार छात्रो को निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करे।
- *सतत् मूल्यांकन का उचित उपयोग*— सतत् मूल्यांकन इस प्रकार नियमित किया जाए कि वह छात्रो एवं अभिभावकों के लिए बोझ न हो तथा शिक्षण हेतु समय की पर्याप्तता निश्चित की जा सके।

शिक्षा मे गुणात्मक सुधार हेतु मूल्यांकन के उपयोग का एक सार्थक प्रयास विद्यालय आधारित मूल्याकन परियोजना के रूप मे प्रायोगिक स्तर पर क्रियान्वित किया गया। जिसके परिणाम न सिर्फ मूल्यांकन बल्कि देश के शिक्षा स्तर मे गुणात्मक सुधार के रूप में अपेक्षित है। उपरोक्त तात्कालिक मुद्दों के सन्दर्भ मे प्रायोजना की सफलता के लिए शैक्षिक प्रशासन स्तर पर कुछ नीतिगत निर्णय लेने की आवश्यकता है। जिनमें विद्यालयो से शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार, पर्याप्त अध्यापको की नियुक्ति और प्रशिक्षण, अभिभावकों के सहयोग हेतु प्रयास, विद्यालय की समय-सारणी मे परिवर्तन, आवश्कयतानुसार विद्यालय समय मे वृद्धि, सुगठित अनुवीक्षण एवं पर्यवेक्षण की सरचना, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के महत्व को प्रत्यक्ष रूप से वरीयता दिया जाना, मूल्याकन की सततता को नियंत्रित कर उसे शिक्षण पर हावी न होने देना, अध्यापकों के लिए मूल्यांकन पर अध्यापक संदर्शिका का निर्माण करना, अध्यापको को शैक्षिक क्रियाकलापों के आयोजन हेतु स्वायत्तता प्रदान किया जाना आदि प्रमुख हैं। इनकी सुनिश्चितता इस प्रकार निर्धारित की जाए कि विद्यालय आधारित प्रायोजना को सहज व सुचारू रूप से क्रियान्वित किया जा सके। कार्यक्रम की सफलता का एक प्रमुख कारक शैक्षिक प्रशासकों की शैक्षिक समस्याओं एव मुद्दों के प्रति जागरूकता एव सवदेनशीलता की आवश्कयता है। इसके लिए समय-समय पर शैक्षिक प्रशासको के उन्मुखीकरण की भी आवश्यकता है। इस बिन्दु पर अब तक ध्यान नहीं दिया गया फलस्वरूप नीति पर आधारित विभिन्न कार्यक्रमो का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन नहीं हो पाया। ❑❑

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली

आधुनिक भारत में शारीरिक शिक्षा का स्वरूप

❑ उर्मिला वर्मा

आधुनिक भारत मे पारम्परिक शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया। इनसे प्राप्त अनुशसा के आधार पर कुछ नए बिन्दुओ को जोडते हुए इसके मानदंड निर्धारित किए गए। इस आधार पर आज शारीरिक शिक्षा अपने पूरे स्वरूप को प्राप्त कर लेने में सक्षम दृष्टिगत हो रही है। आज के औद्योगिक विकास और आधुनिक तकनीकी ज्ञान का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है। इस दृष्टि से इसे दो खण्डो मे रखकर विवेचित करना समीचीन होगा।

- ❑ स्वतंत्रता पूर्व शारीरिक शिक्षा।
- ❑ स्वातंत्रोत्तर शारीरिक शिक्षा।

स्वतंत्रता पूर्व शारीरिक शिक्षा

शारीरिक शिक्षा के विकासात्मक स्वरूप पर दृष्टि डालने से अद्यावधि जो परिवर्तन दृष्टिगत होता है उसे परिवर्तन की दृष्टि से बहुत विशिष्ट अथवा बहुत विकसित हुआ नहीं कहा जा सकता, कारण कि प्रत्येक युग मे वे ही मूलभूत तत्व दिखाए गए हैं जिनकी परिगणना इस काल के पूर्व तक में की गई है। आधुनिक भारत में शारीरिक शिक्षा के प्रसार का श्रेय वाई.एम सी.ए नामक सस्था को है, जिसके द्वारा 1910 में मद्रास मे शारीरिक शिक्षा के प्रचार- प्रसार हेतु शिक्षा सचालकों ने शारीरिक शिक्षा का एक आधुनिकतम अल्प प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारभ किया। इसी अनुक्रम मे 1920 में शारीरिक प्रशिक्षण विद्यालय एव 1931 में शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोले गए। इस संस्था के प्रथम प्रधानाचार्य थे– श्री एच. सी. बक।

इसी प्रकार का प्रयास उत्तर भारत मे भी हुआ। जिसके परिणामस्वरूप लखनऊ मे कालेज ऑफ फिजिकल एजुकेशन, लखनऊ का संचालन क्रिश्चियन कालेज के अंतर्गत होता था। इस रूप मे वाई एम सी. ए. का शारीरिक शिक्षा के विकास में अप्रितम महत्व है। इस दिशा में श्री एच. सी. बक ने मद्रास के शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय के अन्तर्गत शारीरिक प्रशिक्षण का पहला वैज्ञानिक प्रयास किया था। इसके बाद अंग्रेजो के चले जाने के उपरांत स्वतत्र भारत में शारीरिक शिक्षा में एक नया मोड़ दिया जिसे स्वातंत्रोत्तर शारीरिक शिक्षा उप-शीर्षक के अंतर्गत विवेचित किया जाएगा।

शारीरिक शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु तैयार किए गए पाठ्यक्रम में स्वास्थ्य शिक्षा, प्राथमिक चिकित्सा, पोषक आहार आदि के कार्यक्रमों का भी समावेश किया जाए। शारीरिक शिक्षकों के समुचित प्रशिक्षण हेतु निम्नांकित विषयों को भी पाठ्यक्रम में समायोजित करना अधिक श्रेयस्कर होगा यथा– बाल मनोविज्ञान, स्वास्थ्य शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त एवं स्वच्छता।

स्वातंत्रोत्तर शारीरिक शिक्षा का विकास

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र की अमान्य गतिविधियों के साथ सपूर्ण देश में शारीरिक शिक्षा को भी प्रभावशाली बनाने के लिए अनेकानेक योजनाए तैयार की गई। इस सदर्भ मे सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह रहा कि शिक्षा मंत्रालय के तत्वावधान मे शारीरिक शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना का निर्माण करके संपूर्ण देश मे उसका क्रियान्वयन किया गया। साथ ही साथ सभी राज्यो में शारीरिक शिक्षा से संबधित सस्थाए स्थापित की गई। इस सदर्भ मे शारीरिक शिक्षा से संबद्ध विद्यालयो, महाविद्यालयो, संस्थानो एवं विश्वविद्यालयो का उल्लेख करना समीचीन होगा। कुछ प्रमुख संस्थाएं इस प्रकार हैं– राष्ट्रीय खेलकूद संस्थान पटियाला, शास. शिक्षण महाविद्यालय पटियाला, लक्ष्मीबाई शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय ग्वालियर, तात्या टोपे शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय, शिवपुरी, महिला शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय पेंड्रा आदि ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाओ

की स्थापना स्वातंत्रोत्तर शारीरिक शिक्षा के विकास की महत्वपूर्ण योजनाओ की देन है। स्वातंत्रोत्तर शारीरिक शिक्षा के विकास को उपयुक्त रूप मे स्पष्ट करते हुए इस सदर्भ मे दी गई आयोगो की अनुसंशाएं, कमीशन आदि के सुझाव एव अन्य महत्वपूर्ण तथ्यो (जो कि समय-समय पर कार्यशालाओ एवं सगोष्ठियो मे लिए गए) का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

भारत सरकार के विभिन्न आयोगों द्वारा दी गई अनुसंशाएं

शारीरिक शिक्षा मे परिवर्तन लाने के उद्देश्य से एवं उसे समयानुसार समुन्नत बनाने की दृष्टि से भारत सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न आयोगों द्वारा महत्वपूर्ण अनुसंशाए की गई है, जिनका उल्लेख करना आवश्यक होगा। 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग या हंटर कमीशन 1917-19, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग या सेडलर कमीशन 1927-29, हर्टाग कमीशन, 1944 एवं साजेन्ट कमीशन में भारतीय शिक्षा का अधोपान विवेचन किया गया है। इसी सदर्भ में शारीरिक शिक्षा की महत्वपूर्ण अनुशसाए प्राप्त होती हैं। इस सदर्भ में यह संकेत्य होगा कि यद्यपि मात्र शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से ही इन आयोगों का गठन नहीं किया गया था अपितु सामान्य शिक्षा के समानान्तर ही शारीरिक शिक्षा के सदर्भ में भी विचार-विनिमय एव निष्कर्ष स्थापन अथवा भावी योजनाओं का निर्देश साथ ही उनका क्रियान्वयन होता रहा है। इस दृष्टि से निर्धारित किए गए आयोगों का यहां क्रमश. विवेचन किया जा रहा है।

राधाकृष्णन आयोग

राधाकृष्णन आयोग का प्रमुख उद्देश्य यद्यपि शारीरिक शिक्षा के बारे में विचार-विनिमय का था, फिर भी तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार इस आयोग के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा पर भी विस्तार से चर्चा की गई। 1948-49 मे स्थापित राधाकृष्णन आयोग ने नि:संदेह अपने मूल विषय से हटकर शारीरिक शिक्षा के बारे में अपने भौतिक एवं विद्वतापूर्ण ढंग से प्रकारान्तर से इसलिए चर्चा की क्योंकि शिक्षण संस्थाओ में अध्ययनरत विद्यार्थियो के मानसिक विकास के साथ-साथ शारीरिक विकास की आवश्यकता है और इसी परिप्रेक्ष्य मे भारत मे शारीरिक शिक्षा पर पहली बार चर्चा की गई। यदि डा. राधाकृष्णन को भारत में शारीरिक शिक्षा के प्रवर्तक के रूप मे स्वीकार किया जाए तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही होगी। इस आयोग के जो मूलभूत तत्व हैं, जिनका कि भारत के विभिन्न शैक्षिक सस्थानो एवं विश्वविद्यालयों मे विस्तृत अध्ययन किया गया है वे इस प्रकार है– नियमित रूप से कवायत और कसरत आदि का अभ्यास, खेलकूद की प्रतिस्पर्धाओ के अंतर्गत भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों का अवलोकन एव स्वास्थ्य शिक्षा के क्रियान्वयन हेतु पाठ्यक्रमों एव कार्यक्रमों की समीक्षा करना।

उपर्युक्त पक्षों पर गंम्भीरतापूर्वक विचार-विनिमय के उपरात आयोग के सम्मुख निम्नांकित समस्याएं सामने आई–

- शैक्षणिक सस्थाओं में खेलकूद के मैदानो का अभाव।
- प्रशिक्षित व्यायाम शिक्षकों का अभाव।
- विद्यार्थियो में व्याप्त गुरु गम्भीर एवं शैक्षिक कार्यक्रमो की व्यस्तता।
- विद्यालयी जीवन में परस्पर विभेद एव क्रियात्मक विसंगतियां।

इन मूलभूत तत्वों पर चिन्तन करते हुए आयोग ने जो सुझाव दिए थे, वे इस प्रकार हैं–

- विद्यार्थियो की शारीरिक एवं मानसिक प्रवृत्तियो को देखते हुए स्वास्थ्य शिक्षा पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इसके लिए शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम में संलग्न व्यायाम शिक्षको के स्तर एवं कार्य को गौरव प्रदान किया जाए, साथ ही अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में कार्यरत शिक्षको की तरह इन्हे भी महत्व एव समस्तरीय माना जाना चाहिए।
- विश्वविद्यालयों में स्वास्थ्य शिक्षा के पाठ्यक्रम आरभ किए जाए। आयोग ने अपनी अनुशंसा में संस्थाओ के महत्व को स्वीकारा है। साथ ही इस प्रकार से कार्य कर रही संस्थाओं को अधिकाधिक धनराशि दी जाने की सिफारिश की है ताकि ये शारीरिक शिक्षा के विकास मे अपना समुचित योगदान देती रहे।

आयोग यह भी स्वीकार करता है कि–

- भारत में शारीरिक शिक्षा की प्रगति बहुत ही मंद है।

- प्रशिक्षित व्यायाम शिक्षकों का अत्यत अभाव है।
- स्वास्थ्य शिक्षा के उन्नयन के विस्तार में साज-सज्जा का अत्यंत अभाव है।

आयोग यह अनुशसा करता है कि भारत के प्रत्येक प्रात मे कम से कम एक या दो शारीरिक शिक्षण महाविद्यालयो की स्थापना अवश्य की जाए ताकि इन सस्थाओ के माध्यम से प्रशिक्षित व्यायाम कार्यक्रम को समुन्नत बनाया जा सके।

मुदलियर आयोग

मुदलियर आयोग या माध्यमिक शिक्षा आयोग की अनुशसाएं–

यह आयोग 1953 मे गठित किया गया। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि मे रखकर, स्वास्थ्य शिक्षा, स्वास्थ्य परीक्षण, शालाओ मे कार्यरत स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षकों के महत्व एव शारीरिक शिक्षकों मे प्रशिक्षणो के कार्यक्रमों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया।

इस आयोग ने उपर्युक्त स्कन्धो एवं प्रकरणो पर सूक्ष्मेक्षिका पूर्ण दृष्टि से विचार करने के पश्चात् जो अनुशंसाए की, वे अधोलिखित है–

- प्रत्येक शाला में छात्रो का स्वास्थ्य परीक्षण कार्यक्रम अनिवार्य रूप से चलाया जाए।
- छात्रों एव अभिभावको को स्वास्थ्य सबधी सभी प्रकार *की कमियो व त्रुटियो से भली-भाति अवगत कराया* जाए।
- आड ओवर मेजर्स कार्यक्रम अविलम्ब अपनाया जाना चाहिए।
- छात्रो के स्वास्थ्य परीक्षण की रिपोर्ट तीन प्रतियो मे तैयार की जाए। एक प्रति डाक्टर के पास, दूसरी पालक के पास और तीसरी उस समूह से संबद्ध शिक्षक के पास होनी चाहिए।

शालाओ मे उपलब्ध स्वास्थ्य सबंधी सेवाओ को पूरे मनोयोग के साथ संचालित किया जाए और उनका महत्व प्रतिपादित किया जाए ताकि छात्रों मे श्रम के प्रति निष्ठा एवं स्वाध्याय के प्रति आस्था की भावना जाग्रत हो सके।

शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रमो में प्राथमिक चिकित्सा स्वास्थ्य के मूलभूत आधार एवं सामान्य स्वास्थ्य जैसे विषयों पर विस्तारपूर्वक अध्यापन का कार्यक्रम प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षको के लिए अविलब अनिवार्य कर दिया जाए ताकि वे अपनी संस्थाओ मे इसको क्रियान्वित कर सके।

शारीरिक शिक्षा के सदर्भ में अद्यावधि प्रचलित विचार धाराओं (जो अब अर्थहीन हो गई है) मे परिवर्तन किया जाना चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा व शारीरिक शिक्षा को विद्यालयी शिक्षा के कार्यक्रम मे उतना ही महत्व दिया जाए जितना कि शैक्षणिक कार्यक्रमो को दिया जाता है।

समिति यह अनुशसा करती है कि 40 वर्ष की अवधि के बीच सभी शिक्षक शारीरिक शिक्षा संबंधित विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों मे भाग लें। इसका दायित्व विषयरत शिक्षक को सौंपा जा सकता है।

शारीरिक शिक्षको के प्रशिक्षण हेतु तैयार किए गए पाठ्यक्रम मे स्वास्थ्य शिक्षा, प्राथमिक चिकित्सा, पोषक आहार आदि के कार्यक्रमो का भी समावेश किया जाए। शारीरिक शिक्षको के समुचित प्रशिक्षण हेतु निम्नांकित विषयों को भी पाठ्यक्रम में समायोजित करना अधिक श्रेयस्कर होगा *यथा*– बाल मनोविज्ञान, स्वास्थ्य शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त एव स्वच्छता।

उपर्युक्त विषयों को समायोजित कर लेने पर शारीरिक शिक्षा के क्रियान्वयन एव अध्यापन मे पर्याप्त सहयोग मिल सकेगा।

समिति यह अनुशंसा करती है कि प्रशिक्षित शारीरिक शिक्षकों की नियुक्ति की जाए, तदर्थ शारीरिक शिक्षा, शारीरिक व्यापन, शिक्षक के लिए दो वर्ष का प्रशिक्षण आवश्यक होगा। शारीरिक प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों मे सैद्धातिक एव व्यावहारिक शिक्षा से सबधित समस्त सुविधाए उपलब्ध कराई जाएं।

इसके अतिरिक्त समिति यह भी अनुशसा करती है कि सभी फिजिकल ट्रेनिंग सेन्टर्स को मान्यता प्रदान की जाए अथवा उन्हें केन्द्र अथवा प्रदेश सरकारो द्वारा सहयोग प्रदान किया जाए ताकि अधिकाधिक सख्या मे शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमो में लोगो को प्रशिक्षित किया जा सके।

शिक्षा आयोग या कोठारी आयोग की अनुशंसाएं

इस आयोग का कार्यकाल 1964-66 रहा। आयोग की दृष्टि से शारीरिक शिक्षा के लिए उपयुक्त विशिष्ट सिद्धांतो को दृष्टि में रखकर कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए जैसे–

- ☐ शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम छात्रो की रुचियों एवं क्षमताओ को दृष्टिगत करते हुए निर्मित किया जाए, ताकि समयावधि के भीतर अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो सकें। परम्परागत ढंग से खेलों एवं शारीरिक क्रियाकलापों को भी विद्यालयी कार्यक्रम मे सम्मिलित किया जाए।
- ☐ इन कार्यक्रमो के द्वारा छात्र-छात्राओं मे स्वाभिमान एव आत्मसम्मान की भावनाओं का समुचित विकास हो जाता है, जिससे वे भविष्य मे उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यक्रमों मे अपना योगदान दे सके।
- ☐ कार्यक्रम आर्थिक साधनों के अनुकूल तैयार किए जाएं. इन कार्यक्रमो में प्रतिभाशाली छात्रो के लिए विशेष व्यवस्था की जाए।
- ☐ स्वास्थ्य शिक्षा का कार्यक्रम सभी प्रकार के छात्रों को उपलब्ध होना चाहिए।

शासकीय स्तर पर विभिन्न अवसरों पर की गई उपर्युक्त सभी अनुशंसाओ के आलोक में जो उपयोगी व तथ्यात्मक, निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, उन्हे इस प्रकार से विवेचित एवं विश्लेषित किया जा सकता है। लगभग सभी अनुशसाओ में शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य शिक्षा के रूप मे मानने की अनुशंसा की गई है। अतः यह कहा जा सकता है कि शारीरिक शिक्षा को प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालयी स्तर तक अनिवार्य रूप मे क्रियान्वित किया जाना चाहिए। फिर भी इसके क्रियान्वयन के संबध मे यह ध्यान देना आवश्यक होगा कि जिन विद्यार्थियो के लिए शारीरिक शिक्षण का पाठ्यक्रम क्रियान्वित किया जा रहा है– वह उनकी वय एव मानसिक क्षमता के अनुरूप है अथवा नहीं। यदि कम आयु के अथवा कम मानसिक क्षमता वाले छात्रों को अधिक परिष्कृत पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाएगा तो उसका निष्कर्ष अथवा फल बहुत संतोषप्रद नही होगा। इसके प्रशिक्षण एव अध्यापन कार्य को शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालयो के माध्यम से क्रियान्वित किया जाना चाहिए। इस प्रकार के क्रियान्वयन से अध्येता की मानसिक क्षमता मे वृद्धि होगी। इस प्रकार से शारीरिक शिक्षा आज की एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आवश्यकता है।

शैक्षणिक संस्थाओं की अनुशंसाएं

आयोग द्वारा की गई अनुशंसा के अनुक्रम मे केन्द्रीय शिक्षा विभाग अन्य विभागो के सहयोग से शारीरिक शिक्षा पर समय-समय पर सगोष्ठिया आयोजित करता रहा है। ऐसी ही एक 12 दिवसीय संगोष्ठी बम्बई के महाबलेश्वर में केन्द्रीय शिक्षा विभाग एवं केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसधान परिषद् के सयुक्त तत्वावधान में 19 मई से 30 मई, 1958 को सपन्न हुई। इस सम्मेलन मे शारीरिक शिक्षा के उन्नयन हेतु विभिन्न प्रस्ताव एवं अनेक उल्लेखनीय अनुशंसाएं की गई तथा कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए जिनका विवेचन यहा पर करना समीचीन होगा।

वह सेमिनार राष्ट्रीय स्तर का सेमिनार था। इसमे 19 विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि एवं विभिन्न प्रदेशो के 10 प्रतिनिधियो ने भाग लिया। विश्वविद्यालयों के *प्रतिनिधियो के अतिरिक्त केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय द्वारा* मनोनीत किए गए 9 विषय विशेषज्ञ भी उपस्थित थे। इस सेमिनार में लिए गए निर्णयों का संक्षिप्त प्रारूप इस प्रकार से है– ● वर्तमान शारीरिक शिक्षा निरीक्षण एव नियत्रण की प्रणाली को प्रभावी बनाने पर विचार तथा विद्यालय एवं महाविद्यालयी स्तर पर नेशनल प्लान ऑफ फिजिकल एजुकेशन एण्ड रिक्रिएशन को ध्यान मे रखकर शारीरिक शिक्षा का विकास किया जाना चाहिए। ● शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम समाज के लिए विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो के लिए किया जाए। विशेषज्ञ समिति ने इस सेमिनार में अखिल भारतीय शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय सघ द्वारा प्रेषित रिपोर्ट पर अपने विचार आधारित करने का आग्रह किया।

सेमिनार में शारीरिक शिक्षा के कार्यो पर विश्वविद्यालय स्तर पर तथा विभिन्न प्रदेशों मे जो कार्य किए गए उन कार्यों पर विचार किया गया तथा जो समस्याए सामने आई उनको मुख्यत 4 भागों मे विभक्त किया गया–

- ☐ शालेय स्तर पर शारीरिक शिक्षा
- ☐ महाविद्यालय स्तर पर शारीरिक शिक्षा
- ☐ शारीरिक शिक्षा एव मनोरजन–समाज के स्तर पर
- ☐ शारीरिक शिक्षा का नियंत्रण निरीक्षण

उपर्युक्त मूलभूत तथ्यो के आधार पर शिक्षा मंत्रालय को सेमिनार द्वारा भेजी गई सिफारिश के तीन रूप रहे।

शालेय स्तर पर

शालेय स्तर पर शारीरिक शिक्षा के उन्नयन हेतु 6 बिन्दुओं को निर्देशित किया गया–

- प्राइमरी शिक्षक प्रशिक्षण मे शारीरिक शिक्षा का अनिवार्य स्थान हो।
- शालाओ में शारीरिक शिक्षा एक परीक्षा का विषय हो।
- शारीरिक शिक्षको के लिए रिफ्रेशन कोर्स आयोजित हो।
- शारीरिक शिक्षा के लिए 250 छात्रों के लिए एक शिक्षक हो।
- खेल के मैदान एवं जमनेशियम के लिए सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त हो।
- प्राइमरी, मिडिल तथा हाईस्कूल के लिए खेल का मैदान क्रमश. 5,3,1 एकड़ लड़कों के लिए एव 3,2,1 एकड़ लड़कियो के लिए हो।

महाविद्यालयी मंत्रालय स्तर पर

सेमिनार मे लिए गए निर्णयों के संदर्भ में संबंधित विशेषज्ञ समिति ने महाविद्यालयीन शिक्षा विभाग एव मंत्रालय को शारीरिक शिक्षा की प्रगति के लिए निम्न 5 अनुशंसाएं प्रेषित की–

- शारीरिक शिक्षा विभाग को 'स्वास्थ्य शारीरिक शिक्षा एवं मनोरजन विभाग' कहना चाहिए।
- शारीरिक शिक्षा मे अनिवार्य एवं ऐच्छिक दोनों कार्यक्रमों का होना नितान्त आवश्यक है तथा प्रत्येक विद्यार्थी को 2 खेलों मे तथा शारीरिक शिक्षा के अन्य कार्यक्रमों मे निपुण होना चाहिए।
- कोच की योग्यता, शारीरिक शिक्षा के निर्देशक के समतुल्य होनी चाहिए।
- छात्रों को विशेष योग्यता संबंधी छात्रवृति (मेरिट स्कॉलरशिप) देते समय शारीरिक शिक्षा में खेल की निपुणता पर भी ध्यान देना चाहिए।
- एक सलाहकार समिति का होना आवश्यक है।

सामाजिक मनोरंजन

समिति द्वारा शासन को सामाजिक मनोरंजन के संदर्भ में भेजी गई 6 सिफारिशें थीं, जो इस प्रकार है–

- शिक्षा विभाग में सामाजिक मनोरंजन के लिए एक अलग विभाग होना चाहिए।
- स्कूल के विद्यार्थियों एवं अन्य व्यक्तियों के लिए स्कूल के परिसर से बाहर मनोरंजन का प्रबध होना चाहिए।
- मनोरजन से संबधित व्यक्तियों का शारीरिक शिक्षा के विद्यालयों में प्रशिक्षण आरभ करना चाहिए।
- केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय उद्यानों, पार्को, प्रौढ़ छात्रावासों, पर्यटन केंद्रो में अवकाश के समय शारीरिक शिक्षा एव खेलकूद के कैम्प का आयोजन होना चाहिए।
- अवकाश के दिनों मे जनता को प्रशिक्षित करना चाहिए। प्रेस, रेडियो, फिल्म आदि से इस ओर सहयोग प्राप्त करना चाहिए।
- मनोरंजन के लिए सस्था का गठन करना चाहिए। संस्था के सदस्य वे व्यक्ति हों जो सरकारी तथा अन्य किसी संस्था के सदस्य रह चुके हो। ऐसी संस्थाएं, ग्रामीण एव शहरी दोनो स्तर पर होनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वातत्रोत्तर काल में शारीरिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। यही नहीं इसे एक व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया। अतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। इसकी स्वरूपगत विशेषताओ को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि देश मे शारीरिक शिक्षा का भविष्य काफी उज्ज्वल है।

शारीरिक शिक्षा– वृहत्तर संदर्भ में

भारतीय परम्परा के अनुरूप ही विश्व के अन्य देशों में भी शारीरिक शिक्षा के प्रमुख तत्व मिलते हैं। उल्लेख्य है कि चीन, मिस्र, ईरान, यूरोप, ग्रीस, रोम, स्पार्टा, एथेन्स, जर्मनी, डेनमार्क स्वीडन, इंग्लैंड, अमेरिका, रूस आदि देशों के शारीरिक शिक्षा संबधी अपने-अपने एतिहासिक संदर्भ हैं।

शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, जबलपुर
मध्य प्रदेश

कक्षा एक में दो अंकों की संख्या के शिक्षण को प्रभावी एवं क्रियात्मक बनाने के लिए अधिगम सामग्री का निर्माण व उपयोगिता का परीक्षण

❑ भारती वर्मा

प्रेरणा

सामान्यत· शिक्षा का यह अनुभव है कि छात्र गणित में 1 से 100 तक की संख्याएं क्रम से लिख तो लेते हैं, किंतु बीच मे से किसी सख्या को बोलने पर वह संख्या लिख नहीं पाते हैं। साथ ही साथ बीच की सख्या को पहचानने मे कठिनाई का अनुभव करते हैं, जिससे उन्हे गणित बोझिल, नीरस और उबाऊ लगता है। बालको की कक्षा एक मे दो अंकों की संख्याओं को समझने संबंधी कठिनाई को देखते हुए इसे सहज, सरस और बोधगम्य बनाने की विधिया ढूंढ़ने की प्रेरणा ली।

औचित्य

इस ब्रम्हांड पर अंक का राज्य है। बिना पढ़ाई-लिखाई के निर्वाह हो सकता है, किंतु गणित के बिना नहीं क्योंकि गणित जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से प्रत्यक्षत संबधित है।

गणितीय प्रणाली का उपयोग हम प्रात काल से रात्रि तक करते हैं। समय, भार, मूल्य, दूरी आदि के ज्ञान के लिए हमें अंको की पहचान होना आवश्यक है। यहा तक कि यदि हम कोई व्यवसाय करते हैं जैसे खेती, सिलाई, कारीगरी आदि सभी में गणित का ज्ञान आवश्यक है।

कक्षा- पूर्व में ही संख्या सबधी अवधारणा स्पष्ट नही की जाए तो आगे की कक्षाओ में यह एक समस्या खड़ी करती है। अत· यह अत्यंत आवश्यक है कि कक्षा एक मे दो अको की सख्याओं की समझ स्पष्ट और सरल तरीके से विकसित की जाए।

> **कक्षा एक के प्रत्येक शिक्षक को इस प्रकार की अधिगम सामग्री का निर्माण करना चाहिए जिसके द्वारा खेल-खेल में संख्याओं की पहचान हो सके। साथ में छात्रों को भी इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। शिक्षकों को इन अधिगम सामग्रियों का कक्षा में नियमित प्रयोग करना चाहिए।**

निदान

कक्षा एक मे दो अंको की सख्याओ की समझ विकसित करने के लिए सरल, सरस एव कम लागत की अधिगम सामग्री का निर्माण तथा शिक्षण में उसका उपयोग आवश्यक है।

कार्य-कारण संबंध

कक्षा एक में दो अकों की संख्याओ को पहचानने एवं संख्याओं को सख्यांकों से मिलाने संबधी अवधारणा स्पष्ट न होने के कारण यह आगे की कक्षाओं मे कठिनाई पैदा करती है। अत· इन अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए सरल व रुचिकर अधिगम सामग्री का निर्माण किया गया है।

उद्देश्य

प्रस्तुत क्रियात्मक अनुसंधान का उद्देश्य इस प्रकार है–

- ❑ कक्षा एक के छात्रों मे दो अंक की संख्याओं की समझ विकसित करना।
- ❑ दो अंक की संख्याओं की अवधारणा स्पष्ट करने के लिए प्रयोगकर्ता द्वारा सरल एवं कम लागत की सामग्री का निर्माण व मूल्यांकन करना।
- ❑ छात्रो के लिए गणित अध्ययन अनुभव को रोचक एवं आनदप्रद बनाना।

तालिका 1
विद्यार्थियो का जातिवार विवरण

	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	अन्य पिछड़ा वर्ग	सामान्य	योग
बालक	4	1	6	7	18
बालिका	11	2	6	13	32
कुल	15	3	12	20	50

सामान्य जानकारी

- शाला का नाम– संजय गाधी माध्यमिक शाला, भोपाल
- कक्षा– एक
- छात्र संख्या– पचास
- अवधि– जुलाई 1995 से अक्तूबर 1995

परिकल्पना

दो अक की संख्याओं की समझ स्थानीय मान के आधार पर अधिगम सामग्री द्वारा खेल-खेल में प्रदान की जाए तो अधिगम प्रभावशाली होगा।

प्रक्रिया

प्रक्रिया के तीन चरण निर्धारित किए गए, जो निम्न है–

- शाला के शिक्षण सत्र के आरंभ मे पूर्व-परीक्षण
- बिना अधिगम सामग्री के दो अंको की संख्या का शिक्षण तथा प्रथम पश्च परीक्षण
- अधिगम सामग्री का उपयोग करके शिक्षण तथा द्वितीय पश्च परीक्षण।

बाल केन्द्रित शिक्षा, खुद करके सीखना तथा खेल-खेल में सीखना इन तीन बिन्दुओ के आधार पर द्वितीय चरण के पश्चात् नवीन अधिगम सामग्री का निर्माण किया गया तथा उनसे रोचक खेल बनाए गए। इसके लिए निम्नलिखित अधिगम सामग्री का निर्माण प्रयोगकर्ता द्वारा किया गया।

- अबाक्स (दो तार तथा थर्माकोल की गोली वाला)
- अबाक्स (स्केच पेन के टुकड़ों से ऑलपिन लगी प्लाईवुड पर बना।)
- फ्लैनल बोर्ड (फ्लैनल के कपड़े को बोर्ड पर बांधकर 0 से 9 तक के अकों के कटआउट।
- ड्राइंग शीट पर अंकों के कटआउट काटकर फेविकोल से रेत चिपकाकर (पीछे की तरफ)
- गत्ते का गिनती बोर्ड तथा 1 से 100 की संख्या लिखे गत्ते के वर्गाकार ब्लॉक्स।
- लकड़ी के पासे, गत्ते का इकाई-दहाई बोर्ड।

इसके अलावा निम्नलिखित सामग्री एकत्रित की गई–

- पुरानी झाडू से सीके निकालकर एक आकार की काटकर एकत्रित की गई।
- कनेर के सूखे बीज एकत्रित करके उन पर लाल रंग रंगा गया।

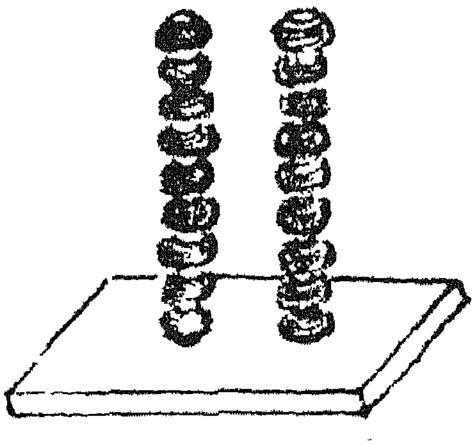
रूपांकन

संख्याओं की अवधारणा स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित सहायक सामग्री का निर्माण किया गया–

(विशेष– यह प्रयोग जिन छात्रों पर किया गया वे हिन्दी माध्यम के हैं तथा हिन्दी के अक ही पहचानते है अतः प्रयोगकर्ता ने प्रयुक्त अधिगम सामग्री निर्माण में हिन्दी के अंकों का प्रयोग किया है।)

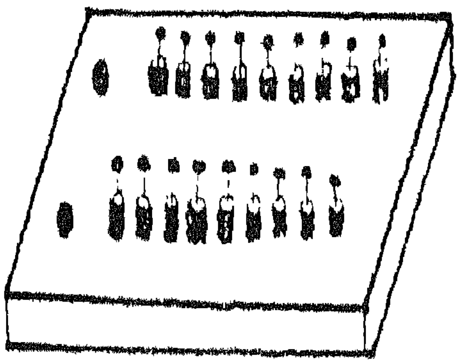
थर्माकोल की गोलियों का अबाक्स

अबाक्स का निर्माण करने के लिए आयताकार पटिये पर दो तार लगाएं (चित्रानुसार)। तार की लम्बाई इस प्रकार रखे कि उसमें 9 से अधिक गोलिया न आएं।



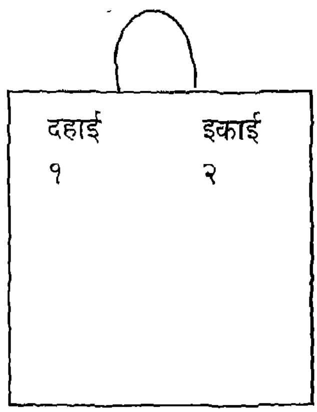
थर्माकोल की एक ही आकार की 18 गोलियां बनाकर गर्म कील से छेद कर लिया। थर्माकोल के मोती तैयार हो गए उन पर लाल रंग का पोस्टर कलर कर दिया।

(2) स्केच पेन के टुकड़ों का अबाक्स



प्लाइवुड (पटिया या मोटा गत्ता) पर दो लाइन चित्रानुसार खींचकर प्रत्येक लाइन पर नौ-नौ ऑलपिन बराबर दूरी पर ठोकते हैं। तत्पश्चात् दो रंगों के स्केच पेन (बेकार वाले) लेते है। उसके ब्लेड से 2 सेमी. के टुकड़े काट लेते हैं प्रत्येक रंग के 9 टुकडे हमने लाल और काले रंग का उपयोग किया है। ऑलपिन की एक लाइन के ऊपर लाल रंग का गोला तथा दूसरी लाइन के ऊपर काले रंग का गोला पेंट से चित्रानुसार बना देते है। (चित्र में ए और बी द्वारा प्रदर्शित) लाल रंग के गोले के सामने की ऑलपिनों में लाल स्केच पेन के टुकड़े तथा दूसरी ऑलपिनों की लाइन मे काले स्केच पेन के टुकडे डाल देते हैं, अबाक्स बनकर तैयार है। इसमें यदि एक हुक लगा दें तो इसे दीवार पर भी टांग सकते है। अबाक्स में प्रयुक्त रंग अपनी सुविधानुसार ले सकते है जिस रंग के स्केच पेन के टुकडे लगें सामने उसी रंग का गोला बनाएगे।

फ्लैनल बोर्ड



अंकों का कट आउट

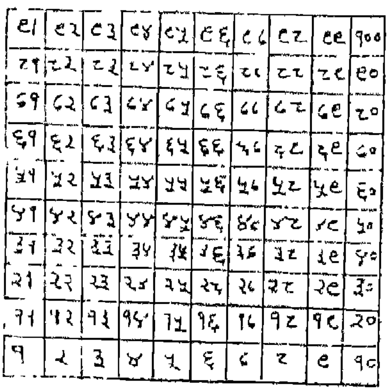
०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९

इकाई

दहाई

एक फ्लैनल के कपड़े को लेकर प्लाइवुड या हार्ड बोर्ड के ऊपर बांध दिया जाता है। (कपड़े तथा प्लाइवुड का आकार समान रहता है) अको के कट आउट बनाने के लिए ड्राइग शीट (कपडे के विपरीत रंग की) लेकर उसमे 0 से 9 तक के अक इकाई, दहाई को काट लेते है। (चित्रानुसार) फिर कट आउट के दूसरी तरफ फेविकोल से रेत को चिपका देते हैं। इससे ये टुकडे फ्लैनल बोर्ड पर चिपके रहते हैं और प्रयोग करने के बाद सरलतापूर्वक हटा सकते है।

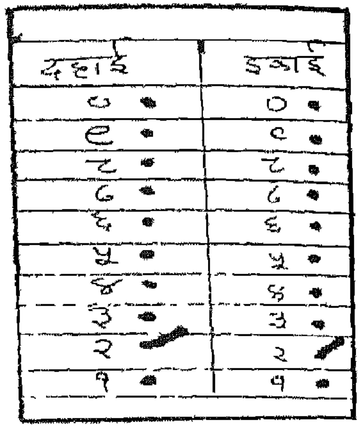
गत्ते का गिनती बोर्ड



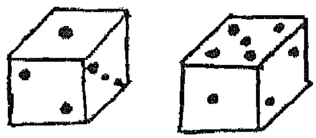
गत्ते के 4 सेमी. के 100 (सौ) वर्ग 2 मिमी. मोटाई के काटकर उन पर 1 से 100 तक की संख्याए लिखते हैं। (संख्या लिखने के पहले सभी वर्गो पर हल्के रग का एक-सा कागज चिपका देते है)

बोर्ड बनाने के लिए 50 × 50 सेमी. का एक गत्ता लेकर उसके चारों तरफ गत्ते की पट्टियो का फ्रेम इस प्रकार लगाते हैं कि अंदर 100 वर्ग आसानी से फिट हो सके। इस प्रकार बोर्ड तैयार हो जाता है। इसमे आसानी से 100 ब्लॉक्स फिट हो सकते हैं।

लकड़ी के पासे तथा गत्ते का इकाई-दहाई बोर्ड



लकड़ी के पासे



लकड़ी के एक ही आकार के दो घन काटकर खुरदरी सतह पर रगडकर चिकना कर ले, अब उसमे एक से पांच तक के गोले, पांच सतहो पर बना दे। (स्केच पेन से अथवा पेट से निशान लगाकर) लकड़ी के पासे तैयार हो जाते है। (एक सतह खाली रहेगी)

गत्ते का इकाई-दहाई बोर्ड

गत्ते पर चित्रानुसार रेखाए खींचकर 0 से 9 तक के अक लिख लेते हैं। प्रत्येक अक के बाजू में एक-एक छेद रहता है (चित्र में काले बिन्दुओ द्वारा प्रदर्शित) जिसमें सींकें आसानी से धस सकती हैं। इसे बोर्ड पर 0 से 99 तक की संख्याएं प्रदर्शित कर सकते हैं। (चित्र में 22 प्रदर्शित है)

सींकों के बंडल तथा कनेर के बीज

पुरानी झाडू मे से सींक निकालकर एक आकार की काटकर 10-10 बडल रवर बैड से बाधकर रख लेते हैं।

कनेर के बीजो को सुखाकर लाल रग का पेंट कर लेते हैं। ये बीज गिनती गिनने मे बडे प्रभावी रहते हैं।

क्रियान्वयन

योजना का क्रियान्वयन खेल-खेल में सीखे पर आधारित है। इसमे प्रयोगकर्ता द्वारा निर्मित तथा छात्रों द्वारा एकत्रित अधिगम सामग्री से व्यक्तिगत एवं सामुहिक खेल खेले जाते है जिनकी खेलने की विधि निम्नानुसार है–

(अ) व्यक्तिगत खेल

खुद करके सीखो

इसमें छात्र स्वयं सींकें और बीज एकत्रित करते हैं तथा इकाई-दहाई बोर्ड का निर्माण करते हैं। सर्वप्रथम शिक्षक प्रशिक्षक 1 से 9 तक संख्याएं एक-एक करके बोलते है, छात्र उतनी संख्या की सींकें या बीज गिनकर रखते हैं तत्पश्चात् उस संख्या को इकाई-दहाई बोर्ड पर सींक लगाकर प्रदर्शित करते हैं। इससे इकाई की अवधारणा स्पष्ट होती है।

दहाई के लिए 10 के बडल या ढेरी बनवाते है तथा इकाई-दहाई बोर्ड पर प्रदर्शित करने को कहते हैं। इस प्रकार क्रम से एक से 9 दहाइयो का ज्ञान करवाया जाता है।

तत्पश्चात् इकाइया और दहाइया मिलाकर गिनने और बोर्ड पर लगाने को कहा जाता है, जैसे शिक्षक प्रशिक्षक ने एक सख्या 12 गिनने को कहा। छात्रो ने 12 सींके या बीज गिने। फिर 10 की ढेरी या बंडल बनाए और उन्हे अपने वोर्ड पर इकाइयों और दहाइयों में प्रदर्शित किया।

इस प्रकार यह खेल किसी संख्या को गिनने एवं उसे इकाई-दहाई में प्रदर्शित करने का कौशल विकसित करता है। इस खेल में छात्र का सतत् मूल्याकन भी होता जाता है।

(ब) सामुहिक खेल

पासों तथा इकाई-दहाई बोर्ड से खेल

कक्षा के छात्रो को 5-5 के समूहो में बांटा। हर समूह को इकाई-दहाई बोर्ड दिया। एक बोर्ड शिक्षक प्रशिक्षक के पास रहेगा।

एक छात्र को प्रथम समूह से बुलाकर पासा खेलने को कहा। तत्पश्चात् दोनों पासो के अंको को जोड़कर उस संख्या को फ्लैनल वोर्ड पर लगाने को कहा। उस संख्या को सभी समूहों के छात्र अपने इकाई-दहाई बोर्ड पर लगाएगे। शिक्षक भी अपने इकाई-दहाई वोर्ड पर अंकित करेगा। तत्पश्चात् दूसरे समूह का छात्र सामने आकर पासा खेलकर, अकों को जोड़कर, संख्या फ्लैनल बोर्ड पर लगाएगा। (प्रथम छात्र द्वारा प्रदर्शित सख्या को हटाने के बाद) सभी समूहो के छात्र तथा शिक्षक प्रशिक्षक इकाई-दहाई बोर्ड पर प्रदर्शित सख्या सभी समूहो से पूछेंगे। गलती होने पर उसका निराकरण किया जाता है। इस खेल द्वारा सख्याओ को इकाई-दहाई मे प्रदर्शित करना, गिनना तथा जोड का कौशल विकसित होता है। साथ ही साथ एकाग्रता, क्रियाशीलता, आत्मविश्वास एवं प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास होता है।

अबाक्स द्वारा खेल

इस खेल में अबाक्स तथा फ्लैनल बोर्ड का साथ-साथ प्रयोग करते है। फ्लैनल बोर्ड के ठीक सामने बॉक्स रखा जाता है इसके खेलने की विधि निम्नानुसार है।

शिक्षक संख्या बोलता है छात्र पहले फ्लैनल बोर्ड पर लगाता है फिर उसको देखकर अबाक्स में गोली या स्केच पेन के टुकड़े डालता है। इस तरह प्रत्येक छात्र आकर एक-एक सख्या प्रदर्शित करते है। इससे छात्रों मे संख्या को पहचानने, स्थानीय मान के आधार पर लिखने के गुण का विकास होता है। साथ ही साथ आत्मविश्वास, एकाग्रता, क्रियाशीलता तथा विचार शक्ति का विकास होता है।

गिनती बोर्ड का खेल

- प्रत्येक छात्र को सख्या के दो-दो ब्लॉक्स दे दिए जाते हैं। (कक्षा में छात्र सख्या 50 है)
- शिक्षक प्रशिक्षक 1 से 100 तक की संख्या क्रम से एक-एक करके बोलते हैं। जिस छात्र के पास उस संख्या का ब्लॉक्स होता है, वह उसे लगाता है।
- इस प्रकार 1 से 100 तक के ब्लॉक्स क्रम से बोर्ड पर लगवा दिए जाते है।

- द्वितीय चरण मे शिक्षक प्रशिक्षक द्वारा बोली गई संख्या के ब्लॉक छात्र आकर निकालते हैं।
- तृतीय चरण मे सभी ब्लॉक बोर्ड मे से निकाल कर अलग रख देते है। एक-एक छात्र आकर एक ब्लॉक उठाकर उस पर लिखी सख्या को पढ़ते है तथा उस सख्या को बोर्ड पर उचित स्थान पर लगा देते है।

इस प्रकार यह खेल संख्यांक पहचानने, संख्याओ को सही स्थान पर लगाने तथा संख्या को गिनने का कौशल विकसित करता है। साथ ही साथ आत्मविश्वास, एकाग्रता, निरीक्षण क्षमता, विचार शक्ति को भी विकसित करता है।

इस प्रकार दो अंको की संख्याओं की समझ विकसित करने के लिए उपरोक्त चार खेल प्रयोगकर्ता द्वारा विकसित किए गए। ये चारों खेल आसानी से उपलब्ध हो जाने वाली अल्पव्ययी सामग्री से बनाए जा सकते हैं। बालक भी सहजता से ऐसी सामग्री बना सकते है। वस्तुत अनेक बच्चो ने ऐसी सामग्री बनाने में रुचि दिखाई।

विश्लेषण

आंकडो के विश्लेपण से निम्न तथ्य सामने आते है—

- अधिगम सामग्री के उपयोग के बिना, केवल 20% विद्यार्थियों ने 80% से ऊपर अक प्राप्त किए जबकि सामग्री के उपयोग से यह प्रतिशत बढ़कर 80% हो गया, इस प्रकार 60% की वृद्धि दर्ज की गई।
- अधिगम सामग्री के उपयोग के बिना, केवल 18.8% छात्राओं ने 80% से ऊपर अंक प्राप्त किए जबकि सामग्री के उपयोग से यह प्रतिशत बढ़कर 81 2% हो गया। इस प्रकार छात्राओं की 62.4% वृद्धि देखी गई।
- बिना सामग्री उपयोग के केवल 22.2% छात्रों ने 80% से ऊपर अंक प्राप्त किए जबकि अधिगम सामग्री के उपयोग से 77.8% छात्रों ने 80% से ऊपर अंक प्राप्त किए। इस प्रकार छात्रो मे 55.6% की वृद्धि देखी गई।
- जातिवार एवं लिंगवार विश्लेषण में सामग्री उपयोग के कारण 80% से ऊपर अक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो के प्रतिशत मे निम्नानुसार वृद्धि देखी गई—

	छात्र	छात्राएं	योग
अनुसूचित जाति	50	44 9	46 6
अनुसूचित जनजाति	100	100	100
अन्य पिछड़ा वर्ग	83.4	50	66 7
अन्य	28 6	76.9	60

विशेष अभिलक्षण

इन चार महीनो में छात्रों के व्यवहार मे अनेक परिवर्तन आए।

- पहले जो छात्र डरे-डरे से रहते थे, वे अब आत्मविश्वास के साथ उत्तर देने लगे।
- बच्चे स्वयं ही सामग्री एकत्र करके लाने लगे।
- एक छात्रा "माया" ने आत्मविश्वास के साथ पूरी कक्षा के छात्रो की संख्याओ को प्रदर्शित करना फ्लैनल बोर्ड पर बताया। यह देखकर प्रयोगकर्ता को बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ। उसने सहपाठी छात्रों से भी सख्याएं बुलवाई।
- 92% छात्रो ने हिन्दी के अको द्वारा सख्या बनाई, किंतु 8% विद्यार्थी ऐसे भी रहे जिन्होने अंग्रेजी के अंको से सख्या बनाई। ये छात्र अंग्रेजी के अंक पहचानते थे किन्तु उच्चारण हिन्दी का करते थे जैसे 12 को "बारह" कहते थे, टवैल्व बोलना उन्हे नही आता था।
- फ्लैनल बोर्ड पर पढाने के लिए अपनी पारी का इतजार करते थे।
- सींकों के बंडल बनाने मे मजा आता था।
- रटने की प्रवृत्ति कम हुई।
- स्थानीय मान के आधार पर संख्याओं की समझ विकसित हुई।
- पश्च परीक्षण मे निम्नलिखित गतिविधिया की गई—
  - कनेर के बीजों से संख्या गिनवाई।
  - उसी संख्या को फ्लैनल बोर्ड पर चिपकाया।
  - प्रयोगकर्ता द्वारा बोली गई संख्या विद्यार्थी ने चिपकाई।
  - प्रयोगकर्ता द्वारा दी गई सख्या की पहचान छात्रों

ने की।

- शिक्षक प्रशिक्षक को देखकर छात्र अत्यंत प्रफुल्लित होते थे तथा अपनी पढ़ने के प्रति रुचि जाहिर करते थे जैसे आज हम बीजों से गिनती गिनेंगे, आज हम बोर्ड पर संख्या बनाएंगे आदि।
- कई छात्र तो प्रयोगकर्ता से पूछते थे कि आप कल भी आएंगी न। यह सुनकर शिक्षक प्रशिक्षक को आत्मसंतोष होता था तथा पुनर्बलन मिलता था।

निष्कर्ष

आकडों का विश्लेषण करके निम्न निष्कर्ष निकाले—

- ☐ शिक्षण में अधिगम सामग्री के उपयोग से 80% से ऊपर प्राप्ताक वाले छात्र-छात्राओं के प्रतिशत मे वृद्धि देखी गई।
- ☐ शिक्षण में अधिगम सामग्री के उपयोग से 80% अंक प्राप्त किए अर्थात् दो अंकों की संख्या पहचानने व संख्याओं को संख्यांकों से मिलाने की दक्षता प्राप्त की। साथ ही साथ स्थानीय मान के आधार पर दो अंकों की संख्या बनाने का ज्ञान भी हुआ।
- ☐ शिक्षण में अधिगम सामग्री के उपयोग से 80% से ऊपर प्राप्तांक वाले छात्र-छात्राओं के प्रतिशत में वृद्धि देखी गई।
- ☐ शिक्षण में अधिगम सामग्री के उपयोग से 80% विद्यार्थियों ने 80% अंक प्राप्त किए अर्थात् दो अंकों की संख्या पहचानने एवं संख्याओ को सख्यांकों से मिलाने की दक्षता प्राप्त की। साथ ही साथ स्थानीय मान के आधार पर दो अंकों की सख्या बनाने का ज्ञान भी हुआ।
- ☐ शिक्षण में अधिगम सामग्री के उपयोग से 80% से ऊपर प्राप्तांक पाने वाले विद्यार्थियों में छात्राओ की सख्या में छात्रों से अधिक वृद्धि हुई। अनुसूचित जनजाति के छात्र एव छात्राओं की सख्या में सर्वाधिक वृद्धि हुई।

इस प्रकार नवीन अधिगम सामग्री एव खेल के द्वारा गणित मे छात्रो की उपलब्धि को बढाया जा सकता है।

सुझाव

कक्षा एक के प्रत्येक शिक्षक को इसी प्रकार की अधिगम सामग्री का निर्माण करना चाहिए, जिसके द्वारा खेल-खेल मे संख्याओं की पहचान हो सके। साथ मे छात्रो को भी इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। शिक्षको को इन अधिगम सामग्रियों का कक्षा में नियमित प्रयोग करना चाहिए।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस उम्र मे वालको का अमूर्त चिंतन विकासशील अवस्था में रहता है, इसलिए अधिगम सामग्री मूर्त चिंतन का प्रमाण प्रस्तुत करती है। प्याजे के अनुसार—

बच्चा सुनता है, भूल जाता है,
बच्चा देखता है, याद रखता है,
बच्चा खुद करता है, समझता है।

अर्थात् संख्याओं की जो समझ हम "वाक एण्ड टाक" द्वारा नहीं दे पाते वह अधिगम सामग्री के माध्यम से प्रभावी रूप से दे सकते है।

शैक्षिक उपादेयता

उपरोक्त प्रयोग प्रयोगकर्ता द्वारा अधिगम सामग्री पर किया गया है। इसकी शैक्षिक उपादेयता निम्नानुसार है—

- ☐ संख्याओं का ज्ञान स्थूल रूप में प्रदान करने से सीखने की प्रेरणा मिलती है तथा रटने की प्रवृत्ति कम होती है।
- ☐ उपरोक्त खेलो में प्रत्येक बालक संख्याएं स्वय बनाता है, जिससे उसके अनुभव प्रत्यक्ष तथा सार्थक हो जाते है तथा सख्याओं की समझ स्थायी रूप से विकसित होती है और रटने की प्रवृत्ति कम होती है।
- ☐ खेल-खेल में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, समस्या समाधान, कौशल, एकाग्रता एव विचार शक्ति के गुणो का विकास होता है।
- ☐ अधिगम सामग्री द्वारा दिए गए रोचक अधिगम अनुभव बालकों की शैक्षिक गुणवत्ता की नीव मजबूत करते है।
- ☐ सामुहिक खेलों से सहयोग और आपसी तालमेल का विकास होता है। ☐☐

डाइट, जहांगीराबाद
भोपाल, मध्य प्रदेश

प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की समस्याओं का अध्ययन

❑ शशि चितौड़ा

राष्ट्र के विकास में व्यक्ति का विकास निहित है और व्यक्ति विकास राष्ट्र के विकास में सहायक होता है। आज का नौनिहाल बालक भावी राष्ट्र का निर्माता है। अध्यापक समाज का शिल्पी माना गया है। इस दृष्टि से अध्यापक का समाज मे भी महत्वपूर्ण स्थान है।

"अध्यापक वह प्रकाशपुंज है, जो स्वयं जलकर औरों को भी प्रकाश प्रदान करता है।" —टैगोर

अध्यापक शिक्षा व्यवसाय में उच्च आदर्शो के साथ प्रवेश करता है। वह "सादा जीवन उच्च विचार" को ध्यान में रखकर समाज सेवा मे लग जाता है किन्तु उसके सम्मुख ऐसी समस्याए और सीमाएं आ जाती है, जिनके कारण सभी आदर्श एव प्राकृकल्पनाए ताक में रखकर परम्परागत परिपाठी में लग जाना पड़ता है। समाज शिक्षक से अनेक अपेक्षाएं रखते हुए अपनी सर्वस्व पूंजी बालक को बिना किसी हिचकिचाहट के विद्यालयों के माध्यम से अध्यापक को सौंप देता है। भारत में शिक्षा इतिहास को देखे तो यह परिलक्षित होता है कि प्राथमिक शिक्षा की प्रगति के प्रयास तो किए गए पर प्राथमिक शिक्षा देने वाले अध्यापक की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह सदैव से उपेक्षा का पात्र रहा है। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ शिक्षकों की संख्यात्मक वृद्धि हुई है साथ ही उनकी समस्याओं मे भी वृद्धि हुई है। शर्मा शिव कुमार (1955) ने उदयपुर के माध्यमिक विद्यालयों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया और पाया कि अधिकाश अध्यापक कम वेतन, समाज में सम्मान की कमी, बार-बार स्थानान्तरण के कारण अध्यापक का व्यवसाय पसन्द नहीं करते।

स्याल सावित्री (1955) ने बीकानेर शहर के माध्यमिक विद्यालयों की अध्यापिकाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया और पाया कि अध्यापिकाओ को अल्प वेतन, समाज मे कम सम्मान तथा घर से दूर नियुक्ति होने से आने-जाने मे काफी समय व अर्थ का अपव्यय होता है। शर्मा सत्यनारायण (1966) ने एस.टी.सी प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों के सम्मुख आने वाली शैक्षिक समस्याओ का अध्ययन किया। इनमें मुख्यत' कक्षा शिक्षण सहायक सामग्री का निर्माण, विद्यालय प्रशासन और सगठन तथा अन्य समस्याओ का अध्ययन किया।

अध्यापक शिक्षा व्यवसाय में उच्च आदर्शों के साथ प्रवेश करता है। वह "सादा जीवन उच्च विचार" को ध्यान में रखकर समाज सेवा में लग जाता है, किन्तु उसके सम्मुख ऐसी समस्याएं और सीमाएं आ जाती हैं जिनके कारण सभी आदर्श एवं प्राकृकल्पनाएं ताक में रखकर परम्परागत परिपाटी में लग जाना पड़ता है। समाज शिक्षक से अनेक अपेक्षाएं रखते हुए अपनी सर्वस्व पूंजी बालक को बिना किसी हिचकिचाहट के विद्यालयों के माध्यम से अध्यापक को सौंप देता है। भारत में शिक्षा इतिहास को देखें तो यह परिलक्षित होता है कि प्राथमिक शिक्षा की प्रगति के प्रयास तो किए गए पर प्राथमिक शिक्षा देने वाले अध्यापक की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह सदैव से उपेक्षा का पात्र रहा है।

शर्मा भंवरलाल (1966) ने पचायत समिति घाटोल (बांसवाडा) के एक अध्यापकीय प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की समस्याओं का अध्ययन किया और पाया कि अध्यापक को आवास एवं पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध नही हैं। अध्यापक अपने बच्चो की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं करा पाते है। गांव में आवश्यक सामान उपलब्ध नहीं होता है।

मेहता पारसमल (1962) ने ग्रामीण स्तरीय अध्यापको की रचनात्मक एव सेवा सबधी समस्याओं का अध्ययन किया और पाया कि शिक्षको को स्थानीय नेताओ द्वारा परेशान कर उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है।

व्यास अमरचद (1971) ने बीकानेर शहर के अध्यापकों की समस्याओं को जानने का प्रयास किया और पाया कि 75 प्रतिशत अध्यापकों ने बताया कि अतिरिक्त अन्य कार्यो मे नियोजित करना उपयुक्त योग्यता प्राप्ति पर पदोन्नति न देना, पुस्तकालयो में समय पर पुस्तकें न मिलना और उच्च अधिकारियो से उपेक्षित व्यवहार सहन करना बताया। 60 प्रतिशत अध्यापको ने रुचिकर विषय अध्यापन हेतु न मिलना एवं शिक्षण कालाश मे अन्य कार्य करना बताया। श्रीनिवासन वी. (1992) ने प्राथमिक विद्यालयी शिक्षकों के व्यक्तित्व गुणों का शिक्षण अभिवृत्ति पर प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि आयु, लिंग, अनुभव और समाज का शिक्षको की शिक्षण अभिवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं होता है। गुप्ता आर के. और गुप्ता डी. (1992) ने तीन राज्यो गुजरात, तमिलनाडु, राजस्थान में प्राथमिक विद्यालय में शिक्षण सामग्री व उपकरणों के वितरण व उपयोगिता का अध्ययन ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के तहत किया और पाया कि 83.2 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में दो कमरे हैं। 9.7 प्रतिशत विद्यालयों में शौचालय सुविधा उपलब्ध है। 20.4 प्रतिशत विद्यालयों मे शिक्षक छात्र अनुपात उचित है।

उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर ही इस प्रकार के कार्यो को करने के लिए प्रेरणा मिली।

उद्देश्य– प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की समस्याओं का अध्ययन करना।

शोध विधि– आदर्शमूलक, सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया।

उपकरण– स्वनिर्मित उपकरण- प्रश्नावली का निर्माण कर प्राथमिक विद्यालयो मे कार्यरत शिक्षकों की समस्याओं का पता लगाया।

न्यादर्श– प्राथमिक विद्यालयों के 60 शिक्षकों का चयन न्यादर्श हेतु किया।

विश्लेषण–प्राथमिक विद्यालयी शिक्षकों की समस्याओं का क्षेत्रवार प्रतिशत विश्लेषण।

सारणी 1 मे समग्र न्यादर्श शिक्षको द्वारा अकादमिक क्षेत्र के 11 कथनों पर व्यक्त राय के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्न परिणाम परिलक्षित होते हैं–

- 33.33 प्रतिशत शिक्षकों का मत है कि प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियो के स्तरानुकूल विषय-वस्तु की अधिकता है जबकि 30 प्रतिशत शिक्षक यह स्वीकार नही करते। शेष शिक्षक इस मत के बारे में कम सहमत है।
- 16 66 प्रतिशत शिक्षक यह स्वीकार करते हैं कि पाठ योजना बनाकर पढ़ाने से पाठ्यक्रम पूरा करने मे कठिनाई होती है, जबकि 76.66 प्रतिशत शिक्षक इसे अस्वीकृत करते है।
- 16.66 प्रतिशत शिक्षक स्वीकारते हैं कि उन्हें अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का अध्यापन कार्य करना होता है, जबकि 40 प्रतिशत शिक्षक यह स्वीकार नही करते हैं।
- 55 प्रतिशत शिक्षक वर्तमान समय में स्वीकारते हैं कि विद्यालय मे पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर कम बल दिया जाता है।
- 40 प्रतिशत शिक्षकों ने अपना मत व्यक्त किया है कि अन्य पाठ्य सहगामी कार्य सौंपे जाने पर शिक्षण कार्य में छूट नहीं मिलती है। केवल 8 33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि उन्हे छूट मिलती है।
- 16.66 प्रतिशत शिक्षको ने स्वीकार किया है कि विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तरानुकूल अध्यापन कार्य संभव नही है, जबकि 48 33 प्रतिशत शिक्षक तो स्वीकारते है कि स्तरानुकूल अध्यापन कार्य संभव है।
- 28.33 प्रतिशत शिक्षकों ने अपनी राय व्यक्त की कि प्रधानाचार्य द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप से शिक्षण कार्य प्रभावित होता है जबकि 58.33 प्रतिशत शिक्षको की उपरोक्त राय नही है।
- 28.33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि कार्याधिक्य से शिक्षण कार्य एवं विषय ज्ञान अवरुद्ध होता है जबकि 46.66 प्रतिशत शिक्षक ऐसा नही मानते हैं।
- वर्तमान समय में 53.33 प्रतिशत शिक्षकों ने यह

क्षेत्र– अकादमिक समस्याओं का प्रतिशतवार विश्लेषण

सारणी 1

क्रम सं.	कथन सं.	कथन	सहमत संख्या	सहमत प्रतिशत	असहमत संख्या	असहमत प्रतिशत
1.	1.	प्राथमिक कक्षाओं में विद्यार्थियों के स्तरानुकूल विषय-वस्तु की अधिकता है।	20	33.33	18	30
2.	2.	पाठ योजना बनाकर पढ़ाने में पाठ्यक्रम पूरा करने में कठिनाई आती है।	10	16.66	46	76.66
3.	3.	आपको अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषय का अध्यापन कार्य करने को दिया जाता है।	10	16.66	24	40.00
4.	4.	विद्यालय मे पाठ्य सहगामी क्रियाओं की अपेक्षा अध्यापन पर अधिक बल दिया जाता है।	33	55.00	8	13.33
5.	5.	अन्य पाठ्य सहगामी कार्य सौंपे जाने पर शिक्षण कार्य में छूट का प्रावधान है।	5	8.33	24	40.00
6.	6	विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप अध्यापन कार्य संभव नहीं है।	10	16.66	29	48.33
7.	7.	प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षण मे अनावश्यक हस्तक्षेप शिक्षण को प्रभावित करता है।	17	28.33	35	58.33
8.	8.	कार्याधिक्य से शिक्षण कार्य एव विषय ज्ञान अवरुद्ध होता है।	17	28.33	28	46.66
9.	9.	अभिभावक अपने बच्चों की पढ़ाई के प्रति उदासीन रहते हैं।	32	53.33	16	26.66
10.	10.	प्राप्त शिक्षण कौशल का लाभ शिक्षण कार्य में नही मिलता है।	8	13.33	19	31.66
11.	11.	प्रत्येक कालाश मे पढ़ाई में नीरसता आने लगती है।	8	13.33	35	58.33

स्वीकार किया है कि अभिभावक बच्चों की पढाई के प्रति उदासीन रहते हैं।

- 13.33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि प्राप्त प्रशिक्षण कौशल का लाभ शिक्षण कार्य मे नही मिलता है जबकि 31.66 प्रतिशत शिक्षक यह स्वीकार नहीं करते है।
- 13.33 प्रतिशत शिक्षक ही स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक कालाश मे पढ़ाई से नीरसता आने लगती है जबकि 58.33 प्रतिशत शिक्षक कहते है कि प्रत्येक कालांश में पढ़ाना उनका कर्तव्य है।

क्षेत्र- प्रशासनिक समस्याओं का प्रतिशतवार विश्लेषण
सारणी 2

क्रम सं.	कथन स.	कथन	सहमत संख्या	सहमत प्रतिशत	असहमत संख्या	असहमत प्रतिशत
1.	12	प्रशासकीय नीतियां विद्यालयी प्रशासकों द्वारा निर्धारित की जाती हैं।	16	26.66	10	16.66
2.	13	प्रशासनिक नीतियो में आपकी भागीदारी नही होती है।	28	46.66	16	26.66
3.	14	छोटे-छोटे कार्यो के लिए प्रशासन से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है।	21	35 10	28	46 66
4.	15	व्यावसायिक प्रगति हेतु सेमिनार कार्यगोष्ठियो में भाग लेने के अवसर प्रदान नही किए जाते हैं।	17	28.33	30	50 00
5.	16	स्टाफ मीटिंग में निर्णय की अपेक्षा आदेश पालन पर बल दिया जाता है।	17	28.33	30	50.00
6	17	सप्रेषण कमी के कारण निर्धारित नीतियो के क्रियान्वयन मे कठिनाई आती है।	12	20.00	28	30.00
7	18	प्रधानाध्यापक द्वारा किया गया मासिक पयर्वेक्षण आपकी अध्ययन क्षमता में सुधार करने मे सहायक होता है।	30	50.00	4	6 66
8	19	प्रधानाध्यापक द्वारा व्यावसायिक पथ प्रदर्शन के रूप मे सलाह प्रदान की जाती है।	22	36 66	10	16.66
9.	20	प्रधानाध्यापक के अलावा अन्य शैक्षिक अधिकारियों के बार-बार निरीक्षण तथा सुझावो में भ्रामकता बनी रहती है।	11	18.33	21	35 00
10.	21	प्रशासनिक नीतियों में होने वाले बार-बार परिवर्तनों से शिक्षा मे बाधा उत्पन्न होती है।	29	48.33	14	23.33
11.	22	अपनी व्यक्तिगत तथा कक्षागत वास्तविक समस्याओं को भी प्रशासन के समक्ष प्रस्तुत करने में डर लगता है।	7	11.66	37	61.60

उपरोक्त सारणी मे समग्र न्यादर्श शिक्षकों (एन-60) द्वारा प्रशासनिक क्षेत्र के 11 कथनो पर व्यक्त राय के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्न परिणाम परिलक्षित होते है–

- ☐ 16.66 प्रतिशत शिक्षको ने स्वीकार किया कि प्रशासकीय नीतियां विद्यालयी प्रशासकों द्वारा निर्धारित नहीं की जाती हैं जबकि 26.66 प्रतिशत शिक्षक यह मानते हैं कि प्रशासकीय नीतियां विद्यालयी प्रशासकों द्वारा निर्धारित की जाती हैं।
- ☐ 46 66 प्रतिशत शिक्षको ने स्वीकार किया कि

प्रशासकीय निर्णयों में उनकी भागीदारी नही होती है, जबकि 26.66 प्रतिशत शिक्षक इसे अस्वीकृत करते हैं।

- 35.11 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि छोटे-छोटे कार्यो के लिए भी प्रशासन से अनुमति प्राप्त करनी होती है, जबकि 46.66 प्रतिशत शिक्षक यह नही मानते हैं।
- 28.33 प्रतिशत शिक्षकों ने स्वीकार किया कि व्यावसायिक प्रगति हेतु सेमिनार, कार्यगोष्ठियो में भाग लेने के अवसर प्रदान नहीं किए जाते है जबकि 50 प्रतिशत शिक्षक स्वीकारते हैं कि उन्हे अवसर प्रदान किया जाता है।
- 28.33 प्रतिशत शिक्षकों ने यह मत व्यक्त किया है कि स्टाफ मीटिग में निर्णय की अपेक्षा आदेश पालन पर बल दिया जाता है जबकि 50 प्रतिशत शिक्षक इस पर अपनी राय व्यक्त नही करते हैं।
- 20 प्रतिशत शिक्षक मानते है कि संप्रेषण नीतियो में कमी के कारण निर्धारित नीतियों के क्रियान्वयन मे कठिनाई होती है।
- 6.66 प्रतिशत शिक्षकों ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रधानाध्यापक द्वारा किया जाने वाला मासिक पर्यवेक्षण उनके अध्यापन मे सुधार नही करता है, जबकि 50 प्रतिशत शिक्षक मानते हैं कि प्रधानाध्यापक द्वारा किया गया पर्यवेक्षण उनकी अध्यापन क्षमता मे सुधार करता है।
- 16 66 प्रतिशत शिक्षक मानते हैं कि प्रधानाध्यापक उन्हे व्यावसायिक पथ प्रदर्शक के रूप मे सलाह प्रदान नहीं करते है, जबकि 36.66 प्रतिशत शिक्षक मानते है कि व्यावसायिक पथ-प्रदर्शक के रूप में प्रधानाध्यापक सलाह प्रदान करते है।
- 18 33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते है कि प्रधानाध्यापक के अलावा अन्य शैक्षिक अधिकारियो के बार-बार निरीक्षण तथा सुझावों से भ्रामकता बनी रहती है।
- 48.33 प्रतिशत शिक्षकों ने स्वीकार किया कि प्रशासकीय नीतियों में होने वाले बार-बार परिवर्तनों से शिक्षा में बाधा उत्पन्न होती है।
- 11 66 प्रतिशत शिक्षको ने माना कि वे अपनी व्यक्तिगत तथा कक्षागत वास्तविक समस्याओ को भी प्रशासन के समक्ष प्रस्तुत करने में डरते है, जबकि 61.60 प्रतिशत शिक्षकों ने माना कि उन्हे ऐसा कोई डर नहीं है।

आगे दी गई सारणी 3 मे समग्र न्यादर्श शिक्षक (नं. 60) द्वारा विभिन्न समस्याओं के 11 कथनों पर व्यक्त राय के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्न परिणाम परिलक्षित होते है–

- 28.63 प्रतिशत शिक्षक स्वीकारते है कि उन्हें समय पर वेतन नहीं मिलता है, जबकि 46.66 प्रतिशत शिक्षक इसे अस्वीकृत करते हैं।
- 46.66 प्रतिशत शिक्षकों की समस्या है कि उन्हे समय पर चिकित्सकीय भत्ता नही मिलता।
- 36.66 प्रतिशत शिक्षक छात्र कोष को प्रभावी वित्तीय स्रोत नही मानते हैं।
- 18.33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते है कि छात्र कोष का उपयोग छात्र कल्याण के लिए नही होता है, जबकि 28.33 प्रतिशत शिक्षक मानते हैं कि छात्र कोष छात्र कल्याण के लिए ही होता है।
- 30 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते है कि राजकोष द्वारा प्रदत्त अनुदान राशि विद्यालयी आवश्यकता के अनुरूप नहीं है।
- 20 प्रतिशत शिक्षक ही यह स्वीकार करते है कि वित्तीय दुरुपयोग रोकने हेतु वार्षिक वित्तीय अंकेक्षण का कार्य नहीं होता है जबकि 55 प्रतिशत शिक्षक इसे अस्वीकृत करते हैं।
- 58.33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते है कि उन्हे शोध कार्य के लिए विद्यालय से वित्तीय सुविधाए प्रदान नही की जाती हैं।
- 15 प्रतिशत शिक्षक यह स्वीकार करते हैं कि सामुदायिक स्रोतो से वित्तीय सहयोग नहीं मिलता है, जबकि 43.33 प्रतिशत शिक्षक यह नहीं मानते है।
- 15 प्रतिशत शिक्षकों की समस्या है कि विद्यालय के सामान्य खर्च हेतु वित्तीय बजट का प्रावधान नहीं है, जबकि 26.66 प्रतिशत शिक्षक यह नहीं मानते हैं।

क्षेत्र– वित्तीय समस्याओं का प्रतिशतवार विश्लेषण
सारणी 3

क्रम सं.	कथन सं	कथन	सहमत		असहमत	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	23	आपको समय पर वेतन नहीं मिलता है।	17	28.63	28	46.66
2.	24	आपको समय पर चिकित्सकीय भत्ता नहीं मिलता है।	28	46 66	21	35.00
3.	25	छात्र कोष प्रभावी वित्तीय स्रोत होता है।	26	43 33	22	36.66
4	26	छात्र कोष का उपयोग छात्र कल्याण के लिए ही किया जाता है।	17	28.33	11	18 33
5.	27	राजकोष द्वारा प्रदत्त अनुदान राशि विद्यालय आवश्यकता के अनुरूप नही है।	8	30.00	16	26 66
6.	28	वित्तीय दुरुपयोग रोकने हेतु वार्षिक वित्तीय अंकेक्षण का कार्य नहीं किया जाता है।	12	20.00	33	55.00
7.	29	आपके शोध कार्य करने के लिए विद्यालय से वित्तीय सुविधाए प्रदान की जाती है।	4	6.60	35	58.33
8.	30	सामुदायिक स्रोतों से वित्तीय सहयोग नहीं मिलता है।	9	15.00	26	43.33
9.	31	विद्यालय के सामान्य खर्च हेतु वित्तीय बजट का प्रावधान नही है।	9	15.00	16	26 66
10.	32	मकान बनाने, वाहन खरीदने अन्य कार्यो के लिए ऋण सुविधाए आसानी से मिलती है।	10	16.66	32	53 33
11.	33	वित्तीय साधनों की अनुपलब्धता से विद्यालयी विकास अवरुद्ध होता है।	2	3 33	14	23.33

- 53.33 प्रतिशत शिक्षकों की समस्या है कि मकान बनाने, वाहन खरीदने एव अन्य कार्यो के लिए ऋण सुविधाए आसानी से नहीं मिलती हैं।
- 3 33 प्रतिशत शिक्षक ही स्वीकार करते हैं कि वित्तीय साधनों की अनुपलब्धता से विद्यालयी विकास अवरुद्ध होता है।

आगे दी गई सारणी 4 मे समग्र' न्यादर्श शिक्षकों (नं. 60) द्वारा भौतिक क्षेत्र की समस्याओ के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्न परिणाम परिलक्षित होते हैं–

- 20 प्रतिशत शिक्षको की समस्या है कि विद्यालय भवन स्वच्छ वातावरण में स्थित नहीं है, जबकि 53.33 प्रतिशत शिक्षको की यह समस्या नही है।
- 18.33 प्रतिशत शिक्षक ही यह मानते हैं कि विद्यालय मे पर्याप्त कक्षा कक्षों का अभाव है, जबकि 68.33 प्रतिशत शिक्षको की राय में नहीं है।
- 25.00 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि कक्षा कक्ष में अपेक्षित सुविधाओं का अभाव है जबकि

क्षेत्र– भौतिक समस्याओं का प्रतिशतवार विश्लेषण
सारणी 4

क्रम सं.	कथन सं.	कथन	सहमत		असहमत	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	34	विद्यालय भवन स्वच्छ वातावरण में स्थित है।	32	53.33	12	20.00
2.	35	पर्याप्त कक्षा कक्षों का अभाव है।	11	18.33	41	68.33
3.	36	कक्षा कक्षो मे अपेक्षित सुविधाओं का अभाव है।	15	25.00	32	53.33
4	37	पीने के लिए स्वच्छ पानी उपलब्ध है।	13	21.60	33	55.00
5.	38	शिक्षकों की संख्या छात्र संख्या के अनुपात में उचित है।	24	40.00	29	48.33
6.	39	विद्यालय मे पुस्तकालय सुविधा स्तरीय एवं पर्याप्त न होने से संदर्भ पुस्तकों का ज्ञान हमें नहीं मिलता है।	18	30.00	20	33.33
7.	40	प्रायोगिक कुशलताओ के विकास के लिए पर्याप्त साधन सामग्री का अभाव है।	3	15.00	27	45 00
8.	41	प्राथमिक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है।	15	25 00	36	60.00
9.	42	विद्यालय के कक्षा कक्षों का क्षेत्रफल इसमें बैठने वाले छात्रों के लिए कम है।	14	23.33	30	50.00
10.	43	रिक्त कालाश में शिक्षकों के बैठने के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं है।	14	23.33	39	65.00
11.	44	विज्ञान तथा गणित जैसे कठिन विषयो को पढ़ाने हेतु कोई सहायक सामग्री नहीं है।	7	11.66	29	48.33

53.33 प्रतिशत शिक्षक यह स्वीकार नही करते हैं।

- 55 प्रतिशत शिक्षकों की समस्या है कि पीने के लिए स्वच्छ पानी नहीं है, जबकि 21 60 प्रतिशत शिक्षकों की यह समस्या नही है।
- 48.33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते है कि शिक्षकों की सख्या छात्र संख्या के अनुपात मे अनुचित है।
- वर्तमान मे 30 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि विद्यालय में पुस्तकालय सुविधा स्तरीय एवं पर्याप्त न होने से संदर्भ पुस्तको का ज्ञान नही मिलता है।
- 45 प्रतिशत शिक्षकों ने अपना मत व्यक्त किया कि प्रायोगिक कुशलताओं के विकास के लिए पर्याप्त साधन सामग्री उपलब्ध नहीं है।
- 60 प्रतिशत शिक्षकों की समस्या है कि प्राथमिक चिकित्सा सुविधा अनुपलब्ध है।
- 23.33 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि विद्यालय के कक्षा कक्षो का क्षेत्रफल इसमे बैठने वाले छात्रों के लिए कम है तथा शिक्षको के लिए अलग से बैठक व्यवस्था नहीं है।
- 11.66 प्रतिशत शिक्षक स्वीकार करते हैं कि गणित

तथा विज्ञान जैसे कठिन विषयो को पढ़ाने हेतु सहायक सामग्री नही है।

निष्कर्ष

समग्र न्यादर्श शिक्षकों की क्षेत्रवार समस्याओं के प्रतिशतवार विश्लेषण—

(अ) समग्र न्यादर्श शिक्षकों की अकादमिक समस्याओं के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए—

- विद्यार्थियो के स्तरानुकूल विषय-वस्तु की अधिकता है।
- विषय के अतिरिक्त अध्यापन कार्य करना होता है।
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर कम बल दिया जाता है।
- अन्य पाठ्य सहगामी कार्य सौपने पर शिक्षण कार्य मे छूट नही मिलती है।
- प्रधानाध्यापक द्वारा किए हस्तक्षेप एवं कार्याधिक्य से शिक्षण कार्य अवरुद्ध होता है।
- अभिभावक बच्चो की पढ़ाई के प्रति उदासीन रहते हैं।
- प्रशिक्षण प्राप्त कौशल का लाभ नहीं मिलता है एवं प्रत्येक कालांश में पढ़ाने से नीरसता अनुभव होती है।

(ब) समग्र न्यादर्श शिक्षकों की प्रशासनिक समस्याओ के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए—

- प्रशासनिक निर्णयो में शिक्षकों की भागीदारी नही होती है।
- छोटे-छोटे कार्यो के लिए प्रशासन की अनुमति प्राप्त करनी होती है।
- स्टाफ मीटिंग में निर्णय की अपेक्षा आदेश पालन पर बल दिया जाता है।
- व्यावसायिक प्रगति हेतु सेमिनार, कार्यगोष्ठियों मे भाग लेने के अवसर प्रदान नहीं किए जाते है।
- प्रशासकीय नीतियो मे होने वाले बार-बार परिवर्तनो से शिक्षा मे बाधा उत्पन्न होती है।

(स) समग्र न्यादर्श शिक्षको की वित्तीय समस्याओ के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए—

- शिक्षकों को समय पर वेतन नहीं मिलता है।
- शिक्षकों को समय पर चिकित्सा भत्ता नही मिलता है।
- शोध कार्य के लिए विद्यालय से वित्तीय सहयोग नहीं मिलता है।
- राजकोषीय राशि से विद्यालय की आवश्यकता की पूर्ति नही होती है।
- मकान बनाने, वाहन खरीदने के लिए ऋण सुविधा आसानी से नहीं मिलती है।

(द) समग्र न्यादर्श शिक्षको की भौतिक समस्याओं के प्रतिशतवार विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए—

- पीने के लिए स्वच्छ पानी का अभाव है।
- शिक्षको की संख्या छात्र सख्या के अनुपात मे उचित नहीं है।
- प्रायोगिक कुशलताओ के विकास के लिए पर्याप्त साधन सामग्री का अभाव है।
- प्राथमिक चिकित्सा सुविधा का अभाव है।
- विद्यालय के कक्षा कक्षो का क्षेत्रफल छात्र संख्या के अनुरूप नही है।
- शिक्षको के लिए पृथक बैठक व्यवस्था नहीं है।
- विज्ञान तथा गणित विषयो मे शिक्षण के लिए सहायक सामग्री का अभाव है। ❑❑

लोकमान्य तिलक शिक्षक महाविद्यालय
राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर
राजस्थान

नैतिक शिक्षा– शैशव से उच्च प्राथमिक स्तर तक

❐ हरिश्चन्द्र व्यास

शैशव की गीली मिट्टी पर पड़े संस्कारों के निशान स्थायी हो जाते है। मन इस तरह संस्कारित हो जाता है कि वह चरित्र की स्वयं पहरेदारी करने लगता है। मन की चौकसी का मुकाबला दुनिया का कोई भी सचेष्ट से सचेष्ट चौकीदार भी नहीं कर सकता। मन की साक्षी का सत्य इतना निष्कलुष होता है कि उसकी तुलना में कोई भी बनावटी "सत्य" (चाहे वह कितनी ही चतुराई से क्यो नहीं "गढ़ा" गया हो) ठहर ही नहीं सकता। मूल्यों की शिक्षा का पहला दायित्व यही है कि वह शैशव को अपनी ऐसी प्रयोगशाला बनाए जिससे निसृत सूत्र या प्रयोग कभी असफल हो ही नहीं।

शैशव के तीन-चार वर्ष (जब तक बच्चा पूर्व-प्राथमिक शाला में नहीं जाता) अवलोकन, आचरण और आदत निर्माण के वर्ष होते हैं। पालने मे लेटा हुआ शिशु, घुटनो के बल चलता हुआ शिशु, अपने पैरो पर खड़े होने की कोशिश करता हुआ और फिर ठुमक-ठुमक कर चलता हुआ शिशु अपने चारो ओर के परिवेश का अवलोकन करता रहता है। अवलोकन की इस प्रक्रिया में उसे प्यार और दुत्कार का अंतर ज्ञात हो जाता है। माता की गोद उसे सुरक्षा भी देती है, सरक्षण और प्यार भी। पिता की डाट (यदि पिता डांटने वाले हों) उसे कष्टप्रद लगती है, वह सुबकने, सिसकने या रोने लगता है। उसे प्यार अच्छा लगता है और दुत्कार बुरी। शिशु द्वारा मल-मूत्र त्यागने पर, दूध के बर्तन को हाथ से गदा कर देने पर या कपड़े खराब कर लेने पर मां तत्काल सफाई कर देती है। इससे उसे लगने लगता है कि स्वच्छता अच्छी बात है और गंदगी बुरी। थोड़ा-सा बड़ा होने पर अपनी ही उम्र के 3-4 वर्ष के बच्चों के साथ खेलते समय, हसते-कूदते समय, रूठते-मानते समय उसे कुछ बातें अच्छी लगती है और कुछ बुरी। जो बच्चे उसके खिलौने नहीं तोड़ते या उसको नहीं पीटते या उसकी चीज नहीं छीनते वे उसे अच्छे लगते है। शिशु जब देखता है कि उसके पिता या माता सवेरे-सवेरे दादा-दादी के पैरों को हाथ लगाते हैं या ईश्वर की विनती करते है अथवा आने वाले मेहमानो का आदर करते है तो वह भी ऐसा ही करने को उद्यत हो जाता है। आगन्तुक को हाथ जोड़कर नमस्कार करना उसे भी अच्छा लगने लगता है। बचपन के तीन-चार वर्ष उसे छोटे-छोटे पिल्लं या बिल्ली के बच्चो के संसर्ग में भी लाते है। वह पिल्लं को गोदी मे उठाता है, उनके सिर पर हाथ फेरता है उन्हें दूध पिलाता है—यह सब उसे अच्छा लगता है। कोई उसके पिल्ले को नीचे गिरा दे, यह उसे नही सुहाता। शैशव के इन तीन-चार वर्षो के उसके संस्कार धीरे-धीरे आचरण मे उतरने लगते है, आदत बनने लगते हैं और उसके मन मे स्थान बनाने लगते है। इन अच्छे संस्कारों मे प्यार, स्वच्छता, मैत्री, सहयोग, आदर भाव, ईश्वर मे आस्था, पशुओं के प्रति दया भाव आदि सम्मिलित हैं। कच्ची समझ की पकड़ में जितनी भी बाते आ जाए, वे धीरे-धीरे परिपक्व होती हुई एकदम पक्की बन जाती हैं। गंदगी, दुत्कार, छीना-झपटी या पशुओं के प्रति अन्याय उसे नहीं सुहाते। सुहाने वाली बाते ही आदतों का रूप लेती है और आदते संस्कारों से ही परिचालित होती हैं।

शैशव अवस्था में पड़े संस्कारों से कालान्तर में वह अपने चरित्र एवं राष्ट्रीय चरित्र की स्वयं पहरेदारी करने की क्षमता विकसित कर लेता है। अतः मूल्यों की शिक्षा का पहला दायित्व यही है कि वह शैशव को अपनी ऐसी प्रयोगशाला बनाए जिसके फलस्वरूप निसृत सूत्र या प्रयोग कभी असफल हो ही नहीं।

पूर्व-प्राथमिक से उच्च प्राथमिक स्तर तक

सामाजिकता का पहला और विधिवत् संस्कार विद्यालयों

में ही मिला करता है। अब बच्चा अपने घरेलू और आस-पड़ोस के परिवेश से निकल कर थोड़े वृहद् परिवेश मे प्रवेश करता है। उसके हमजोली बच्चे भिन्न-भिन्न परिवारों तथा पृथक्-पृथक् पृष्ठभूमियों से अलग-अलग सस्कारो को लेकर आते है। उनके साथ तालमेल रखना, उनसे कुछ सीखना तथा उनको कुछ सिखाना आदि क्रियाएं चलती रहती है। विद्यालय का परिवेश, अध्यापको का व्यवहार, शाला के नियम-कायदे, वहा की गतिविधियां, बोली की मिठास या कर्कशता, सभी कुछ ऐसी बातें हैं, जो उसे प्रभावित करती है। स्वयं द्वारा शैशव में अर्जित संस्कारों की कसौटी पर वह उन सभी बातो को परखता है। कुछ उसे अच्छी लगती है और कुछ बुरी। इस बीच किताबो से उसका परिचय होना संस्कारो को नया विस्तार देने वाला अनुभव होता है। इनमे पाठ्यपुस्तके भी है तो अन्य पुस्तकें और पत्रिकाएं भी। सचित्र पुस्तके उसके मन को भाती है, उबाऊ पुस्तके अच्छी नहीं लगतीं। विद्यालय मे आने-जाने का समय, कालांशो का क्रम व खेल की गतिविधियां उसमें नियमितता के संस्कार भरती हैं। साथ ही विद्यालय का परिवेश उसे स्वच्छता से सस्कारित कर सकता है। अनुशासन और आज्ञापालन से मिलने वाली प्रशंसा उसे इन दो मूल्यो की ओर आकर्षित करती है। प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर तक नैतिक शिक्षा— जो व्यावहारिक भी है और सैद्धांतिक भी, आचरण प्रधान भी है और सोच को निखारने वाली भी—का स्वरूप कुछ इस प्रकार हो सकता है।

स्वच्छता

इसमे तन और मन दोनों की स्वच्छता सम्मिलित है। स्नान करना, बाल बनाना, नाखून काटना व कपडे साफ रखना, पुस्तको पर जिल्दें चढ़ाना, जूतों और मोजों को साफ रखना तथा बैठने के स्थान की सफाई करना आदि बातें मन मे भी स्वच्छता के संस्कार देने वाली है। स्वच्छ मन विचारों के कलुष से दूर रहता है। विद्यालय इस दिशा में बहुत कुछ कर सकते हैं। कमरे साफ-सुथरे हों, नालियां गदी न हो, मक्खियां नहीं भिनभिनाती हों, मटकियो पर ढक्कन हो, पीने का पानी स्वच्छ हो, शौचालयों व मूत्रालयो की नियमित सफाई होती हो तथा बच्चों के कपड़ों, बालों, नाखूनों की गंदगी पर ध्यान रखा जाता हो तो बच्चे स्वच्छता के सस्कार अवश्य ही ग्रहण करेगे तथा रोगो से बच सकेंगे।

नियमितता

नियमितता जीवन की सफलता की कुजी है। नियत समय पर उठना, तैयार होना, विद्यालय में समय पर पहुंचना, निश्चित समय मे खेलना, खाना, गृह-कार्य करना, सोना आदि आदतें जीवन को एक क्रमबद्धता देती हैं। पंक्तिबद्ध आने या जाने, सही रूप से बैठने और मिल जुलकर रहने के संस्कार भी जीवन को नियमितता देने वाले हैं।

आज्ञापालन और आदर भाव

आज्ञापालन, आदर भाव और विनम्रता एक अच्छे चरित्र के शृंगार होते हैं। मा-बाप और गुरुजन श्रद्धा के पात्र होते है। उनकी आज्ञा का पालन करना, उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना, चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लेना, बड़ों के प्रति सम्मान का भाव रखना, सभी साथियों से शिष्टाचार का व्यवहार करना, छोटो से स्नेह रखना आदि ऐसे गुण है, जिनका बचपन मे विकास किया जा सकता है। जरूरी नहीं कि ये गुण किताबो से ही प्राप्त हो, जीवन अपने आप मे एक खुली किताब है, जिससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

देशभक्ति एवं सर्व धर्म समभाव

देशभक्ति की भावना का विकास भी प्राथमिक स्तर पर किया जा सकता है। राष्ट्रीय पर्व(स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस) के उत्सवो पर राष्ट्रीय ध्वज के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया जाता है। बच्चों को स्वतंत्रता आदोलन की कहानियां कही जा सकती हैं। सर्व धर्म समभाव के लिए विविध पर्व मिल-जुलकर मनाते हैं यथा रामनवमी, जन्माष्टमी, महावीर जयंती, बुद्ध पूर्णिमा, नानक जयती, क्रिसमस, ईद, मोहर्रम आदि। बचपन की ताजगी और उमंग तथा पर्वो के प्रति स्वाभाविक उत्साह मिलकर मानस पर स्थायी छाप छोड़ते हैं।

श्रमनिष्ठा और पर्यावरण प्रेम

विद्यालय वाटिका के विकास द्वारा श्रमदान और पर्यावरण के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकता है। इसी तरह छोटे-छोटे पशु-पक्षियो से अनुराग उनके प्रति संवेदना की भावना पैदा करता है। बच्चों को थोड़ा-सा उत्साहित कर दें तो वे पक्षियों के घोंसलो, उनके अण्डों के रख-रखाव के तरीकों, उनके रगो, ध्वनियों और आदतो के बारे मे अधिक से अधिक जानना चाहेंगे। फूलों के रंग, गध और आकार-प्रकार भी उनको आकर्षित करेगे। इससे प्रकृति के प्रति सहज स्वाभाविक लगाव पैदा होगा तथा वे अपने मनोरजन के लिए पशु-पक्षियो और वनस्पति जगत के अन्य उपादानों को हानि नहीं पहुंचाएंगे।

सत्यनिष्ठा, प्रेम और सहयोग

गलती करने पर उसे मान लेना, काम नहीं कर पाने पर बहाने बनाने के स्थान पर सच्ची बात बता देना, असावधानीवश कोई चीज गिरकर टूट जाए या अपने हाथों से किसी की वस्तु का नुकसान हो जाए तो उसे स्वीकार कर लेना, अपनी कमजोरी को नहीं छुपाना, खेलकूद में झूठ का सहारा नही लेना, अपनी त्रुटि के लिए दूसरों पर दोषारोपण नहीं करना, लालच में आकर कोई चीज उठा लेने या खा लेने या काम में ले लेने पर उसकी गलती को स्वीकार कर लेना आदि अनेक ऐसी बाते हैं जो बच्चों को सत्यनिष्ठा की ओर ले जाने वाली हैं। सहपाठी बालकों के साथ प्रेम, विद्यालय वाटिका के गमलों, लताओं व पुष्पों से अनुराग, पक्षियों से लगाव आदि बातें मन में प्यार के संस्कार भरती हैं। आपसी प्रेम के कारण मिल-जुलकर काम करते हैं और उनमें सहयोग की भावना का विकास होता है।

सुदंरता के प्रति व्यामोह

सत्य के साथ शिव और सुन्दर का जोड़ा जब तक न हो, सत्य आकर्षणहीन बना रहता है। ललित कलाओं द्वारा सौन्दर्य का सस्कार मिलता है, सुन्दर वस्तुओं के चयन, वर्गीकरण, चित्रांकन आदि से भी यह सस्कार प्रबल होता जाता है। घर, कक्षा और वातावरण की साज-सज्जा में छोटे-छोटे बच्चो का सहयोग लिया जा सकता है ताकि उनमें सुन्दरता के मूल्य के प्रति अनुराग का भाव आ सके।

इस तरह आचरण पक्ष के ''पाठ्यक्रम'' मे स्वच्छता, नियमितता, आज्ञापालन, आदरभाव, नम्रता, सत्य, प्रेम, *सहयोग, पशु-पक्षियों के प्रति दया भाव*, देशभक्ति, समय की पाबदी, साहस, सेवा, सुन्दरता का आग्रह, न्यायप्रियता, दूसरों की भावनाओं का आदर, परोपकार आदि मूल्यो का विकास सम्मिलित है।

चरित्र निर्माण में किताबों की भूमिका

हिन्दी भाषा की पाठ्यपुस्तके बच्चो के अनुभव जगत का विस्तार करती हैं। उक्त सभी मूल्यो का विकास भी पाठ्य-सामग्री के माध्यम से संभव हो सकता है। छोटी-छोटी रोचक और देशभक्ति पूर्ण कहानियां साहस की कथाए, कर्तव्य पालन की बातें और पशुओं के प्रति प्रेम के पाठ मिलकर बालक के अंतर्मन पर एक छाप छोड़ते है। महापुरुषों के पाठ पढ़कर उनमें चरित्रवान बनने की इच्छा जागृत होती है। अन्य विषयों—सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान (पर्यावरण शिक्षा) व गणित की पाठ्यपुस्तकें भी बच्चों की चेतना को प्रभावित करती हैं। इससे सामाजिकता के बोध, वैज्ञानिक दृष्टि तथा तार्किकता के विकास में सहायता मिलती है तथा बच्चों की जिज्ञासा तृप्त होती है। इस प्रकार उत्सुकता को मिली हुई खुराक मन द्वारा पचा लेने के बाद जो संस्कार पनपते है, वे स्थायी हो जाते हैं। ☐☐

कीकाणी व्यासों का चौक
बीकानेर, राजस्थान

सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयों की गुणवत्ता—एक विश्लेषण

❏ विवेक कौशिक

यह तथ्य सार्वभौमिक रूप से मान्य है कि जब नीव मजबूत होगी तो उस पर अच्छी इमारत का निर्माण किया जा सकता है, यदि वह कमजोर है तो बडी एवं मजबूत इमारत नही बनाई जा सकती। अगर बना भी दी जाए तो वह टिकाऊ नहीं होती है। इसी प्रकार प्राथमिक शिक्षा हमारी भावी पीढ़ी के लिए नींव का कार्य करती है। प्रत्येक राष्ट्र के लिए प्राथमिक शिक्षा प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह सफलता की सीढ़ी का प्रथम सोपान है जिससे गुजरकर कोई भी राष्ट्र या समाज अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुचता है। राष्ट्रीय एव सामाजिक जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान इसका है उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनैतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नही है। इसका सबध किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग से न होकर देश की पूरी जनसख्या से होता है। इसका सम्बन्ध व महत्व व्यापक है। अतः प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना या इसके गुणात्मक स्तर मे कमी से किसी राष्ट्र के सामने गम्भीर समस्या पैदा हो सकती है

भारतीय संविधान ने सभी को प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता का अधिकार प्रदान किया है। सभी को प्राथमिक शिक्षा मिल सके इसके लिए सरकार, स्थानीय निकायो तथा निजी क्षेत्र ने तेजी से कार्य शुरू किया है। इस क्रम में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आज तक हमने संख्यात्मक रूप से आशाजनक प्रगति की है। परन्तु प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करते-करते हमारे सामने अनेक समस्याए आ गई है। यद्यपि ज्यादातर समस्याए व्यवस्था एवं सार्वभौमीकरण के सन्दर्भ मे है परन्तु इसकी गुणवत्ता को बनाए रखने की समस्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसके बावजूद भी इस समस्या को अभी तक द्वितीयक महत्व की माना जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के करीब तीन दशको अर्थात् 1980 तक सख्यात्मक वृद्धि पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा परन्तु 20वी सदी के समाप्त होते-होते संख्यात्मक बढ़ोतरी के साथ-साथ गुणात्मक स्वरूप को लेकर भी समय-समय पर विवाद उठते रहे है।

सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयों में निजी विद्यालयों की अपेक्षा गुणवत्ता का स्तर अत्यन्त पिछड़ा है। निजी विद्यालय अपने समृद्ध भौतिक संसाधनों एवं सक्रिय तथा परिणाम आधारित शिक्षकों के कारण गुणवत्ता को बनाए रखने में सक्षम हैं। जबकि सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालय जहां एक ओर भौतिक संसाधनों की कमी से जूझ रहे हैं वहीं दूसरी ओर इनके शिक्षकों को शिक्षण कार्य में अरुचि तथा शिक्षण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोंण न होने के कारण गुणवत्ता की स्थिति दयनीय है। यदि सार्वजनिक विद्यालयों के शिक्षकों को जवाबदेह बनाया जाए, पर्यवेक्षण एवं प्रशिक्षण की पद्धति को सुव्यवस्थित रूप में विकसित किया जाए तथा अन्य छोटे-छोटे पहलुओं पर ध्यान दिया जाए तो निश्चित ही ये विद्यालय निजी विद्यालयों से प्रतिस्पर्धा की स्थिति में होंगे।

चूकि प्राथमिक शिक्षा निजी एव सार्वजनिक दोनों स्तरों पर समान रूप से जारी है इसलिए दोनों की गुणवत्ता की तुलना सहज रूप में आवश्यक है। सरकारी या स्थानीय निकायो द्वारा सचालित विद्यालयो में निजी विद्यालयो की तुलना मे गुणवत्ता की स्थिति अधिक दयनीय है। ये सरकारी

विद्यालय या तो राज्य सरकारों द्वारा सीधे सचालित किए जाते है या स्थानीय निकायों जैसे—नगर निगम, नगर पालिका, जिला परिषद् आदि के माध्यम से संचालित कराए जाते हैं। इन प्राथमिक विद्यालयों का प्रमुख उद्देश्य गरीब एवं पिछड़े बालको को गुणवत्तापूर्ण एव नि शुल्क शिक्षा प्रदान करना है। यद्यपि ये विद्यालय सख्यात्मक रूप से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से निजी विद्यालयों से काफी पीछे हैं। जबकि इन विद्यालयो के शिक्षक उच्च शिक्षित तथा प्रशिक्षित होते हैं। कुछ राज्यो जैसे—उत्तर प्रदेश और केरल मे तो स्नातकोत्तर तथा एम एड , पी.एच.डी. तक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्राथमिक शिक्षक के रूप मे कार्यरत हैं। परन्तु कुकुरमुत्ते की तरह गली मौहल्लों मे खुलने वाले निजी प्राथमिक विद्यालयो की तुलना मे जहां केवल सैकेन्ड्री उत्तीर्ण एवं अप्रशिक्षित शिक्षक होते हैं, से गुणवत्ता की दृष्टि में ये सार्वजनिक विद्यालय पिछड़े हुए है। प्रश्न यह उठता है कि आखिर कमी किस जगह है? अध्यापको के प्रशिक्षण मे कहीं कमी है? या अध्यापकों की व्यक्तिगत रुचि एव अभिवृत्ति में कमी है? या बदलते हुए सामाजिक मूल्य जिम्मेदार है? या इन विद्यालयों में पढ़ने वाले बालको का मानसिक स्तर कम है? क्या नीतियों के निर्धारण मे कहीं कमी है? या नीतियों के क्रियान्वयन मे कमी है? या उपरोक्त सभी कारणों का सम्मिलित रूप से प्रभाव है? यह एक ऐसा विषय है, जिस पर अधिक ध्यान और चर्चा की आवश्यकता है। मेरे विचार से सरकारी विद्यालयों में शैक्षिक गुणात्मकता की निम्नता के प्रमुख कारण है।

अध्यापकों की अभिवृत्ति एवं मूल्यों में परिवर्तन

सरकारी एवं स्थानीय निकायों के अध्यापकों में अपने व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति मे जो नकारात्मक परिवर्तन आया है, यह शैक्षिक गुणवत्ता को सर्वाधिक प्रभावित करता है। अधिकांश अध्यापकों के मस्तिष्क में यह बात घर कर गई है कि बस एक बार सरकारी नौकरी मिल जाए तो फिर जीवन पर्यन्त पढ़ने-पढ़ाने से कोई मतलब नहीं है। उनका उद्देश्य केवल आर्थिक पक्ष तक सीमित है। अध्यापको में शिक्षण कार्य के प्रति जो समर्पण की भावना होनी चाहिए वह भावना सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षको मे कम होती जा रही है। जिन व्यवहारों, क्रियाकलापों तथा आदर्शो की अपेक्षा उनसे समाज एवं बालकों को है उस तरह का आदर्श वे प्रस्तुत नही कर पा रहे हैं। परन्तु इस बात का खण्डन वे इस तथ्य से करते हैं कि क्या पूरे समाज को सुधारने का अनुबन्ध केवल उनके ही पास है? कुल मिलकर उनकी स्वार्थपरकता एव नकारात्मक अभिवृत्ति प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मकता के लिए बड़ा अवरोध है।

जवाबदेही की कमी

जिस प्रकार निजी विद्यालयों मे शिक्षण गुणवत्ता व अच्छे परीक्षा परिणाम के लिए जवाबदेह होता है उस प्रकार की कोई व्यवस्था सरकारी विद्यालयो के शिक्षकों के लिए नहीं है। इन शिक्षकों को पूरा वेतन एवं अन्य भत्ते जब बिना परिश्रम व जिम्मेदारी के मिल जाते है तो वे अपने कर्तव्य के प्रति गम्भीर क्यों होंगे? निजी विद्यालय का शिक्षक नामांकन एवं गुणवत्ता दोनों के लिए समान रूप से प्रयासरत रहता है, जिसके परिणाम प्राय. सकारात्मक ही मिलते हैं। जब तक सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य के प्रति जवाबदेही निर्धारित नही की जाएगी तब तक शैक्षिक गुणात्मकता एक दिवास्वप्न की तरह ही रहेगी।

बाल मनोविज्ञान की जानकारी का अभाव

शिक्षा मनोविज्ञान में यह माना जाता है कि “डन्डा छूटा और बालक बिगड़ा” परन्तु सरकारी विद्यालयों के अध्यापको द्वारा प्राय. नकारात्मक एवं कड़े रुख का प्रयोग शिक्षण के समय अधिक किया जाता है। जिससे बालकों में अध्यापकों के प्रति भय की भावना जागृत हो जाती है तथा बालक की कुछ जानने की उत्सुकता समाप्त हो जाती है, साथ ही उसमें शिक्षक का अभाव जागृत हो जाता है। बालक के मानसिक एवं सांवेगिक विकास में प्राथमिक शिक्षकों का योगदान सबसे प्रमुख होता है। यदि शिक्षक कक्षा कक्ष में प्रेम, सौहार्द्र तथा उत्सुकता उत्पन्न

कर सके तो बालक का अध्ययन एव अधिगम प्रभावी हो जाता है। प्राथमिक शिक्षकों को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, परन्तु प्राथमिक शिक्षको ने बाल मनोविज्ञान के प्रत्ययो को व्यवहार रूप मे लागू करने का गम्भीरतापूर्वक प्रयास नहीं किया।

पुरानी शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग

जहां निजी एवं परिणाम आधारित प्राथमिक विद्यालयों में समय-समय पर नवीन शिक्षण पद्धतियो, प्रमुख रूप से खेल पद्धति, देशाटन, पिकनिक, कार्यानुभव, परियोजना, समस्या-समाधान, प्रयोगशाला आदि का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है जिससे बालक मे हर समय सीखने के प्रति रुचि एवं आकर्षण बना रहता है। साथ ही विभिन्न अनुभवों से वह बिना किसी अतिरिक्त मानसिक तनाव के अधिक सीख लेता है। जिससे उसके व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास मे मदद मिलती है। वहीं सरकारी विद्यालयों में केवल कक्षा कक्ष या पेड़ के नीचे बैठकर, मात्र रटाने पर बल दिया जाता है। जिससे बालकों का मानसिक विकास तो किसी सीमा तक हो जाता है परन्तु शारीरिक, क्रियात्मक, सांवेगिक एवं भावात्मक आदि विकास न के बराबर हो पाते हैं। इस स्थिति से गुणवत्ता का स्तर स्वाभाविक रूप से नीचे चला जाएगा।

भौतिक एवं आर्थिक सुविधाओं का अभाव

सरकारी विद्यालयों मे शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट के लिए पर्याप्त भौतिक एवं आर्थिक सुविधाओं का न होना भी प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। ज्यादातर विद्यालयों में भवन के नाम पर दो कक्ष तथा एक या दो बरामदे होते हैं। फर्नीचर तो न के बराबर होता है। शिक्षको के बैठने के लिए भी मुश्किल से व्यवस्था रहती है। प्रयोगशाला, पुस्तकालय, वाचनालय, खेल मैदान, खेल का समान, मनोरंजन कक्ष एवं सामान, पंखा, बिजली आदि तो केवल कल्पना की वस्तुए है। ये सभी अव्यवस्थाएं शिक्षकों में आलस्य एवं ढीलापन लाती हैं जिससे शैक्षिक गुणात्मकता प्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक रूप में प्रभावित होती है। इन विद्यालयों के पास अपने कोई आर्थिक संसाधन नही होते। ये पूर्णरूप से अपने व्यवस्थापको पर निर्भर है। एक छोटा-सा सामान खरीदने के लिए प्रधानाध्यापक या वरिष्ठ अध्यापक को 'शिक्षा अधिकारियों के कार्यालय में अनेक चक्कर लगाने पड़ते है। जबकि निजी विद्यालयों मे कोई भी व्यवस्था कम से कम समय में हो जाती है। 'शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य' नामक दस्तावेज मे कहा गया है— "प्रारम्भिक शिक्षा का उदाहरण लेते हुए यह देखा जा सकता है कि कुल व्यय का लगभग 95 प्रतिशत शिक्षको के वेतन और प्रशासन पर खर्च होता है, जिससे उपयोगी कार्य, घूमने-फिरने, खेलों और अभिरुचियों, वैज्ञानिक उपकरणो तथा साधारण इश्तहारों और चार्टो के लिए बहुत थोडा धन बचता है।" पांचवे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 13.50 प्रतिशत विद्यालय छप्पर वाली झोपडियो, तम्बुओं तथा खुले स्थान में चलते थे। यदि भौतिक साधनो की यही स्थिति रही तो आगामी समय मे सरकारी विद्यालयो में पढ़ने के लिए छात्र उपलब्ध नहीं होगे।

सहायक शिक्षण सामग्री का अभाव

आज के इलैक्ट्रॉनिक एवं कम्प्यूटर युग में भी सरकारी प्राथमिक विद्यालयो में किसी प्रकार की सहायक शिक्षण सामग्री का प्रयोग नहीं किया जाता है। बालकों में रग, आकार, प्रकार तथा विभिन्न प्रत्ययों का विकास प्राथमिक स्तर पर किया जाता है। यदि ये प्रत्यय ठीक प्रकार से विकसित नहीं हो पाते हैं तो बालक जीवन पर्यन्त उस लाभ से वचित रह जाता है जो वास्तव में उसे मिलना चाहिए। प्रत्ययों के विकास के लिए विभिन्न चार्टों, फाइलो, मानचित्रों, चित्रों तथा कुछ कर के सीखने के लिए अनेक प्रकार के आवश्यक उपकरणों की आवश्यकता होती है। परन्तु इन विद्यालयों में सहायक शिक्षण सामग्री तथा कार्यानुभव सामग्री का लगभग पूर्ण अभाव होता है जिसकी परिणति गुणात्मक विकास के विरोध के रूप में होती है।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अभाव

बालक के मानसिक विकास के साथ-साथ उसका शारीरिक एव क्रियात्मक विकास होना भी आवश्यक है और इसके

लिए पाठ्य सहगामी क्रियाओं का महत्व सर्वविदित है। परन्तु सरकारी विद्यालयों मे एक-दो छोटे-मोटे खेलों के अतिरिक्त किसी प्रकार की पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन नहीं किया जाता है। इसके विपरीत निजी विद्यालयो में प्रतिदिन कोई न कोई गतिविधि चलती रहती है। जिससे बालको का समग्र विकास सम्भव हो पाता है। सरकारी विद्यालयो मे खेलकूद, गीत, सगीत, वाद-विवाद, नाटक, कविता आदि गतिविधियों के लिए बालक को प्रोत्साहित करना तो दूर उनको इनसे दूर रहने की हिदायत दी जाती है और कहा जाता है कि "खेलोगे कूदोगे बनोगे गंवार, पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब" इसके पीछे कारण यह है कि इन सब गतिविधियो के सचालन के लिए शिक्षको को अतिरिक्त समय देना पड़ेगा। जबकि वे अतिरिक्त तो क्या निर्धारित समय भी नहीं देते है।

अभिभावकों का कम शिक्षित या अशिक्षित होना

शैक्षिक गुणवत्ता पर सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों का प्रभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। विभिन्न अनुसंधानो से यह बात स्पष्ट हो गई है कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बालको का मानसिक एवं शारीरिक स्तर, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के बालको की तुलना मे अच्छा होता है। जैसा कि विदित है कि विभिन्न कारणों से अच्छी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बालक सरकारी विद्यालयो मे नहीं पढ़ते है। वे मंहगे व अच्छे विद्यालयों मे शिक्षा प्राप्त करते हैं। हमारे समाज में विद्यालय आज सामाजिक प्रतिष्ठा का संकेत बन गए है। यहां पर कहने का आशय यह है कि उच्च बुद्धिलब्धि शैक्षिक गुणात्मकता को सीधे सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। जब सरकारी विद्यालयों मे निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बालक शिक्षा ग्रहण करेगे तो शैक्षिक गुणवत्ता निश्चित रूप से उस स्तर की नही होगी जो अच्छे निजी विद्यालयों मे होती है।

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शैक्षिक स्तर में नकारात्मक भूमिका निभाने वाले और भी अनेक कारण हो सकते है परन्तु ये कारण इस प्रकार के नहीं हैं कि उनका निवारण सम्भव नहीं हो। सार्वजनिक प्राथमिक शालाओ में शैक्षिक स्तर को अच्छा बनाए रखने के अनेक उपाय किए जा सकते हैं। कुछ प्रमुख कदम अग्राकित प्रकार से उठाए जा सकते है।

अध्यापकों को परिणाम एवं गुणात्मकता के लिए जवाबदेह बनाना

आज सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक शिक्षकों को उनकी जिम्मेदारी से अवगत कराया जाए। साथ ही उनको सौंपे गए कार्य को पूरा करने के लिए जवाबदेह बनाया जाए। उनके मन से इस भावना को सख्ती से निकालना होगा कि उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है एव उनके वेतन या अन्य सुविधाओ पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा। इसके लिए प्रशासनिक स्तर से शिक्षक स्तर तक एक जवाबदेही शृंखला का निर्माण करना होगा। पूरे वर्ष के शैक्षिक और शैक्षिकोत्तर कार्यक्रमो का निर्धारण करके कार्यो को करने की जिम्मेदारी निश्चित की जाए। शिक्षा अधिकारियों से उप शिक्षा अधिकारी फिर उसके नीचे के अधिकारियो फिर प्रधानाध्यापक तथा इसके बाद वरिष्ठता के अनुसार सभी शिक्षकों के कार्य का वितरण कर उस कार्य के पूरा होने की जिम्मेदारी की जवाब देही निश्चित करनी होगी। अगर यह शृखला ठीक प्रकार से कार्य करेगी तो निश्चित रूप से हम गुणवत्ता में सुधार कर पाएगे।

भौतिक संसाधनों को उपलब्ध कराना

प्रभावी शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया के लिए उचित भौतिक वातावरण तथा सुविधाओं का होना आवश्यक है। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की खस्ता हालत किसी से छिपी नही है। जरूरत इस बात की है कि छात्रों की संख्या के अनुसार भवन उपलब्ध कराया जाए। भवन से तात्पर्य केवल कक्षा कक्ष तक सीमित नही है वरन् मनोरंजन कक्ष, खेलकक्ष, आरामकक्ष, व्यायामशाला, सहायक सामग्री कक्ष, प्रधानाध्यापक कक्ष, अध्यापक कक्ष, प्रयोगशाला कक्ष, पुस्तकालय कक्ष तथा प्रसाधन कक्ष आदि अवश्य हों। साथ ही बिजली तथा अन्य उपकरणो की उपलब्धता भी

हो। प्राथमिक विद्यालयो के लिए भौतिक संसाधनो को जुटाने के सन्दर्भ में एक ठोस नीति का निर्धारण किया जाए। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक विद्यालय का प्रति दो वर्ष बाद मूल्याकन किया जाए और आवश्यक साधनो की तत्काल पूर्ति की जाए। इसके लिए सरकार व प्रशासन को गम्भीरतापूर्वक विचार कर कदम उठाना होगा।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं के कलैण्डर का निर्माण एवं उसका दृढ़तापूर्वक पालन

बालक के समग्र विकास के लिए पाठ्य सहगामी एव पाठ्येतर क्रियाओ का क्रियान्वयन आवश्यक है। अत सरकारी विद्यालयो मे पूरे एक सत्र के लिए प्रतिवर्ष पाठ्य सहगामी क्रियाओं का कलैण्डर तैयार करना चाहिए साथ ही इनका दृढ़तापूर्वक पालन भी सुनिश्चित किया जाए। इन क्रियाओं में खेलकूद, सास्कृतिक, साहित्यिक, वाद-विवाद, सगीत, कविता पाठ, नाटक, देशाटन, समाज सेवा, प्राथमिक चिकित्सा, लेखन, चित्राकन, कार्यानुभव यथा— चाक बनाना, मिट्टी के खिलौने बनाना, छोटे-मोटे उपकरण बनाना आदि विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को उचित स्थान दिया जाए। प्रत्येक गतिविधि के लिए दिनाक, अवधि तथा कार्यक्रम की रूपरेखा अवश्य तैयार की जाए। पाठ्य सहगामी क्रियाओं के क्रियान्वयन की रिपोर्ट समय-समय पर सम्बन्धित जवाबदेह अधिकारी द्वारा जिला शिक्षा अधिकारी तक पहुंचाई जाएं। साथ ही कमियो को रेखाकित कर सुझाव दिए जाएं। ब्लॉक, जिला एवं राज्य स्तर पर अन्तर प्राथमिक विद्यालयों की विभिन्न क्षेत्रों मे प्रतियोगिता करायी जाए जिसमे उचित पारितोषिक की व्यवस्था हो। इस कार्य हेतु राज्य स्तरीय शैक्षिक अनुसधान परिषदों एव जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण सस्थानों से सहयोग लिया जा सकता है।

शिक्षकों को प्रतिवर्ष अनिवार्यतः प्रशिक्षण दिया जाए

सरकारी प्राथमिक शिक्षक एक परिस्थिति और एक पाठ्यक्रम को पढ़ाने तथा अपनी निजी व्यस्तताओ एवं परेशानियो के कारण शिक्षण मे अरुचि प्रदर्शित करते है। अत यह आवश्यक है कि उनको प्रतिवर्ष किसी एक विशेष विषय पर जैसे बाल मनोविज्ञान, शिक्षा मे नवाचार, नवीन शिक्षण विधियां, आदि सामयिक समस्या को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। प्रशिक्षण में न आने वाले शिक्षको के लिए कठोर आर्थिक या अन्य आवश्यक कार्यवाही की व्यवस्था की जाए। प्रशिक्षण के उपरान्त इस बात का निरीक्षण किया जाए कि शिक्षक किस सीमा तक उस नवीन ज्ञान को बालक तक पहुंचाता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन अवकाश के समय न करके पूरे वर्षभर एक चक्रीय क्रम में किया जाए। जिससे प्रशिक्षण की पद्धति विकसित हो सके साथ ही शिक्षक अपने अवकाश का लाभ ले सकेंगे। यह प्रशिक्षण कम से कम एक माह का होना चाहिए।

समय-समय पाठ्यक्रम में परिवर्तन

कोई भी सिद्धान्त सदैव उपयोगी नहीं रहता है। समय एवं परिस्थितियो के अनुसार उसकी उपयोगिता का मूल्याकन किया जाता है। इसी प्रकार सरकारी विद्यालयों का पाठ्यक्रम अपेक्षाकृत उतना सामयिक नहीं होता जितना कि निजी विद्यालयो का। अतः समय एवं वर्तमान आवश्यकताओ के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्धारण करते रहना चाहिए। उपयोगी सामग्री को जोड़ना तथा अनुपयोगी सामग्री को हटाते रहना चाहिए। नवीन समाचारों तथा खोजो का समावेश अवश्य होना चाहिए। पाठ्यक्रम के परिवर्तन के लिए समय-समय पर विचार गोष्ठियो का आयोजन कर उनके सुझावो का अनुपालन आवश्यक है। जिससे हमारे ये सरकारी प्राथमिक विद्यालय निजी विद्यालयो की प्रतिस्पर्धा में खड़े हो सकेगे।

पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं का विकास

निजी विद्यालयों की तरह सरकारी विद्यालयो में पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं का विकास आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं कि इनका आकार बड़ा हो परन्तु अलग-अलग कक्षों में इनका अस्तित्व हो। बच्चों की मनपसंद पत्र-पत्रिकाओ, चित्रो आदि का संग्रह निर्धारित पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त होना चाहिए। साथ ही इन पुस्तकों को

पढ़ने के लिए शिक्षको द्वारा बालकों को प्रोत्साहित करना होगा। प्रयोगशाला मे सभी आवश्यक उपकरण हों और शिक्षकों द्वारा अधिकतम प्रत्ययो को प्रयोग करके सीखना चाहिए जिससे बालको का दृष्टिकोण तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक बन सके साथ ही करके सीखने की आदत का विकास हो सके।

शिक्षक-अभिभावक व्यक्तिगत सम्पर्क

कभी-कभी सभी प्रयत्न करने के बावजूद बालक में वह आवश्यक परिवर्तन नही आ पाता जिसका निर्धारण शिक्षक कर चुका है। तो निश्चित रूप से उसके सामाजिक परिवेश या पारिवारिक परिवेश में इस प्रकार का तत्व विद्यमान है जो उसमें आवश्यक परिवर्तन लाने से रोक रहा है। इस स्थिति का केवल एक विधि से निवारण किया जा सकता है और वह है शिक्षक द्वारा बालक के अभिभावक से व्यक्तिगत सम्पर्क। ऐसा करने से शिक्षक को छात्र के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण जानकारियां मिल जाती है। परन्तु हमारे सरकारी प्राथमिक शिक्षक इस प्रकार के सम्पर्क से सदैव दूर रहते हैं। जरूरत इस बात की है कि अभिभावकों से व्यक्तिगत सम्पर्क के लिए प्रधानाध्यापक द्वारा एक योजना तैयार की जाए तथा उस पर दृढ़तापूर्वक अमल किया जाए जिससे बालकों में वाछित परिवर्तन लाने में सहायता मिल सके।

समय-समय पर विद्वानो ने प्राथमिक शिक्षा की ओर सरकार एवं अन्य सम्बन्धित सस्थाओ का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। जीन ड्रेज तथा अमर्त्य सेन ने "बेसिक एजुकेशन एज ए पोलिटिकल इश्यू" में यह निष्कर्ष निकाला कि शैक्षिक गुणवत्ता के लिए मुख्य रुकावट मूलत' वित्तीय नहीं है वरन् बुनियादी शिक्षा को कम महत्व दिया जाता है।

कुल मिलाकर आज प्राथमिक शिक्षा को पहली वरीयता देने की जरूरत है। इससे पहले कि सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाए, हमें शैक्षिक मानकों को पुनःस्थापित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने चाहिए। एक ओर हमे शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगो को आश्वस्त करना होगा कि साधनों की कमी व व्यवस्था की जड़ता के कारण उनकी कार्यनिष्ठा व मेहनत निरर्थक नहीं होगी तो दूसरी ओर हमे ऐसी प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी जो बालको मे रुचि एवं आत्मविश्वास विकसित कर सके ताकि वे विकास व परिवर्तन के लिए कटिबद्ध हो सकें। राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया में लोकतान्त्रिक ढंग से शिक्षा प्रणाली को अपनी भूमिका कारगर ढंग से निभा सकने योग्य बनाने के लिए यह अनिवार्य है कि सभी लोग प्राथमिक शिक्षा का एक समान लाभ उठा सके। ऐसा तभी सम्भव है जब शिक्षा के प्रथम स्तर का भली-भांति उन्नयन किया जाए। यह उन्नयन आध्यापको के सकारात्मक सहयोग तथा नीति निर्धारकों एवं प्रशासको के उचित तालमेल से किया जा सकता है। ❑❑

श्री फारूख हुसैन कालेज
निधौली कलां, एटा
उत्तर प्रदेश

शिशु देखभाल और शाला

❑ अमरनाथ दत्त गिरि

स समय अनेक विकासशील देशो मे बाल विकास के मन्वित कार्यक्रम चलाए जा रहे है। जिनमे बच्चों के ास्थ्य की देखभाल, टीकाकरण, उन्हें पोषक आहार देना ौर फिर उन्हें शाला-पूर्व शिक्षा देना आदि शामिल है। ।शेषज्ञो का कहना है कि इन समन्वित कार्यक्रमों का केवल सार्थक प्रभाव पड़ता है बल्कि जब वह स्कूल पढ़ने जाने लगता है तो वहा वह एक योग्य छात्र ाद्ध होता है। इस शाला-पूर्व शिक्षा का एक मुख्य प्रभाव ह देखा गया है कि बच्चे मे पढ़ाई के प्रति रुचि उत्पन्न । जाती है। इससे वह नियमित रूप से स्कूल जाता और फिर माता-पिता के मना करने के बावजूद भी कूल नही छोड़ता। इस तरह एक लाभ यह हुआ है क पढ़ाई छोड देने वाले बच्चों की संख्या में कमी आई । साथ ही उन बच्चो का मानसिक विकास भी अन्य च्चो की तुलना मे अधिक पाया गया। यह भी देखा या कि शाला-पूर्व शिक्षा प्राप्त बच्चो में, कक्षा में पढ़ाए ए विषय के प्रति ग्राह्यता भी अधिक होती है। वे ल्दी सीखते-समझते हैं। जो बच्चे शाला-पूर्व शिक्षा पाकर कूल जाते हैं, उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, क्योंकि नका टीकाकरण हो चुका होता है, उनके स्वास्थ्य पर ायमित ध्यान दिया गया है और कुपोषण से बचने के ाए उन्हें पोषाहार भी दिया गया है।

शिशु देखभाल और शिक्षा कार्यक्रम विकासशील देशो में जिस तरह सफलतापूर्वक चल रहा है, उससे विश्व बैंक को बडी आशाएं है। विश्व बैक के अनुसार शिशु देखभाल और शिक्षा कार्यक्रम मे धन लगाने का अर्थ है भविष्य के लिए खर्च करना। सच पूछा जाए तो समन्वित शिशु विकास कार्यक्रम ही एकमात्र ऐसा कार्यक्रम है जो गरीब बच्चो, परिवारो, समुदायों और देशो में पीढ़ी-दर-पीढी चला आ रहा है, गरीबी को दूर करने मे प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है।

यूनिसेफ के अनुसार आज शिशु विकास के लिए कोई एक सही कार्यक्रम नहीं है। आज इस पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है कि बच्चो की क्षमताएं विकसित करने की दिशा में माता-पिता और परिवार के अन्य लोग सभी मिलकर सक्रिय भूमिका निभाएं। वे स्कूल के भरोसे न बैठे रहें क्योकि वहा ऐसा कराना महगा और कठिन हो सकता है।

बाल विकास के समन्वित कार्यक्रमों का न केवल सार्थक प्रभाव पड़ता है बल्कि जब वह स्कूल में पढ़ने जाने लगता है तो वहां वह एक योग्य छात्र सिद्ध होता है। इस शाला-पूर्व शिक्षा का एक मुख्य प्रभाव यह देखा गया है कि बच्चे में पढ़ाई के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है। बाल विकास की दिशा में भारत सरकार का यह कार्यक्रम बड़ा महत्वपूर्ण है। इस कार्यक्रम में प्रमुख राष्ट्रीय पोषण एवं स्वास्थ्य लक्ष्यों को हासिल करने तथा सभी को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के राष्ट्रीय लक्ष्य को शामिल किया गया है। ''शिशु शिक्षा'' कार्यक्रम को बाल विकास की नींव को ठोस बनाने वाला महत्वपूर्ण कार्यक्रम माना गया है।

विश्व बैंक के अनुसार शिशु शिक्षा पर खर्च किए गए एक डालर का सुपरिणाम माध्यमिक या उच्च शिक्षा पर खर्च किए गए एक डालर की तुलना मे कही ज्यादा होता है। यह लागत भी शिशु शिक्षा के मामले में कम की जा सकती है यदि इसे स्वयंसेवी संस्थाओं और परिवारों

का सहयोग मिले। कई विकासशील देशो मे देखा गया है कि घर में दी गई प्रारम्भिक शिशु शिक्षा की लागत केन्द्र की शिक्षा की लागत से पांच गुना कम होती है। इसका कारण है कि बच्चो को सिखाने-पढ़ाने के लिए खिलौने आदि वस्तुए घर मे बिना किसी अतिरिक्त खर्चे के उपलब्ध हो जाती है। इसके अलावा घर मे पढाई के लिए वातावरण भी सामान्य होता है। कुछ देशों मे प्रारम्भिक शिशु शिक्षा खर्च का कुछ अश सरकार देती है, कुछ स्थानीय सस्थाएं और स्थानीय प्रशासन देता है। माता-पिता भी स्वेच्छा से दान देते हैं। कई विकासशील देशो मे गरीब परिवारों के लिए चलाए जा रहे इस कार्यक्रम का पूरा खर्च सरकार उठा रही है।

शिशु देखभाल और शिक्षा कार्यक्रम में चूंकि स्वास्थ्य की देखभाल, टीकाकरण, साफ-सफाई, दवा, पोषक आहार और साथ-साथ शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम शामिल है। इसलिए इन्हे चलाने वाली संस्था और सरकार दोनों के वीच गहरा तालमेल होना जरूरी है। दरअसल गावो में आज बच्चों की देखभाल और शिक्षा की जरूरत बहुत बढ गई है। क्योंकि अधिकांश माता-पिता अपनी खराब आर्थिक स्थिति के कारण काम पर जाने के लिए मजबूर रहते है और वे बच्चो के पालन-पोषण पर पूरा ध्यान देने में न तो समर्थ होते हैं, न ही उनके पास समय होता है। इसलिए यूनेस्को जैसी संस्थाएं यह सुझाव दे रही है कि जिन देशो मे सरकारी सहायता अपर्याप्त है, वहां इस कार्यक्रम में गैर-सरकारी संगठनो और स्वयसेवी संस्थाओं को शामिल किया जाना चाहिए ताकि यह कार्यक्रम अधिक से अधिक गावो मे चल सके।

भारत मे महिला एव बाल विकास विभाग के समेकित बाल विकास कार्यक्रम के तहत शिशु-देखभाल और शाला-पूर्व शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। बाल विकास की दिशा में भारत सरकार का यह कार्यक्रम बड़ा महत्वपूर्ण है। इस कार्यक्रम में प्रमुख राष्ट्रीय पोषण एवं स्वास्थ्य लक्ष्यो को हासिल करने तथा सभी को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के राष्ट्रीय लक्ष्य को शामिल किया गया है। समेकित बाल विकास (आई सी. डी एस.) कार्यक्रम के तहत गरीब तबके की 38 लाख से भी अधिक गर्भवती महिलाओ और दूध पिलाने वाली माताओं तथा करीब 2 करोड़ से भी अधिक बच्चो को (छह साल से कम उम्र के) पूरक आहार उपलब्ध होता है। करीब डेढ़ करोड़ बच्चो को (3 से 6 साल की उम्र के) शाला-पूर्व अनौपचारिक शिक्षा भी दी जाती है। इस प्रकार समेकित बाल विकास कार्यक्रम बच्चो की देखभाल और शिक्षा के लिए विश्व का सबसे बड़ा अपनी किस्म का कार्यक्रम है। यह देश के बच्चों के प्रति भारत की वचनबद्धता का प्रतीक है। हमारी राष्ट्रीय बाल नीति 1974 में कहा गया है कि बच्चों को समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए बाल विकास जरूरी है। हमारी बाल विकास योजनाएं इसी राष्ट्रीय बाल नीति के तहत शुरू की गई हैं। साथ ही संयुक्त राष्ट्र के बाल-अधिकार घोषणा-पत्र 1990 की भारत सरकार ने 2 दिसम्बर, 1992 में अभिपुष्टि कर दी है। इससे स्पष्ट है कि सरकार देश के बच्चों के विकास के लिए बड़े पैमाने पर कार्य कर रही है।

समेकित बाल विकास सेवाए इस समय "आगनवाडी" के माध्यम से, समेकित ढंग से उपलब्ध कराई जा रही हैं। प्रत्येक आगनवाड़ी में एक "आंगनवाड़ी कार्यकर्ता" और एक "सहायिका" होती है। ये आंगनवाड़िया ग्रामीण और शहरी इलाकों में प्रति हजार आबादी पर एक आंगनवाड़ी और आदिवासी इलाकों मे प्रति सात सौ की आबादी पर एक आगनवाड़ी की दर से स्थापित की गई हैं। शिशु देखभाल और शाला-पूर्व शिक्षा कार्यक्रम आंगनवाड़ी के माध्यम से ही चलाया जा रहा है। शिशु देखभाल के अन्तर्गत नवजात शिशुओ से लेकर छह वर्ष तक के बच्चों के स्वास्थ्य की जांच की जाती है साथ ही गर्भवती महिलाओ और दूध पिलाने वाली माताओ की देखभाल की जाती है। बच्चों की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के कार्यकर्ता मिलकर देखभाल करते हैं। इसमें बच्चों के स्वास्थ्य की जांच, वजन लेना, टीकाकरण, कुपोषण का उचित प्रबंध अतिसार का इलाज, पेट के कीड़ों को समाप्त करना तथा साधारण दवाइया बांटना सम्मिलित है। इसके साथ ही बच्चों को पूरक आहार भी दिया जाता है ताकि उन्हे कुपोषण से बचाया जा सके।

दरअसल शिशु देखभाल और शाला-पूर्व शिक्षा कार्यक्रम को आई.सी डी.एस. कार्यक्रम की रीढ़ की हड्डी कहा जाता है। वास्तव मे यह खेल-खेल मे सिखाने की एक आनन्ददायक दैनिक गतिविधि है। इसे प्रतिदिन तीन घटे तक चलाया जा सकता है। यह गतिविधि बच्चो को आंगनवाडी केन्द्र की तरफ आकर्षित करती है और वहां रहने में उनकी रुचि बनाए रखती है। आंगनवाड़ी में बच्चों को इस तरह खेल-खेल में मिलने वाली अनौपचारिक तथा शाला-पूर्व शिक्षा से माता-पिता और समुदाय को भी प्रेरणा मिलती है कि साक्षर बनने का क्या महत्व और आनन्द है। भारत सरकार के शिशु देखभाल और शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य है—"साधन विहीन अत्यन्त गरीब लोगो के 0 से 6 साल तक की उम्र के बच्चों का सम्पूर्ण विकास। इसमे तीन साल से कम उम्र के बच्चो का उत्प्रेरण और माताओ की देखभाल भी शामिल है।" शिशु शिक्षा कार्यक्रम के अर्न्तगत आगनवाड़ी में तीन से छह साल के बच्चों को स्वाभाविक, आनंददायक और सुखद वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। आगनवाड़ी कार्यकर्ताओं द्वारा स्थानीय सहायक सामग्री की मदद से, स्थानीय सस्कृति और प्रथाओं के माध्यम से खेल-खेल में सिखाने वाली गतिविधियों को बढावा दिया जाता है। इसमे स्थानीय फल, खिलौने, मिट्टी के बर्तन कपड़े के खिलौने आदि शामिल होते हैं। बच्चों को कथा-कहानी, खेल-गीत, गिनती, आकार, रंग आदि की पहचान और जानकारी की बहुत-सी बातें बताई जाती है। इससे बच्चो का सामाजिक, भावात्मक, ज्ञानात्मक, शारीरिक और भाषात्मक विकास होता है। इसलिए "शिशु शिक्षा" कार्यक्रम को बाल विकास की नीव को ठोस बनाने वाला महत्वपूर्ण कार्यक्रम माना गया है।

शिशु-देखभाल और शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत आंगनवाड़ी को प्राथमिक स्कूल के रूप में बनाने के नए प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए समय, स्थान और सहायक संपर्को के हिसाब से आंगनवाडियों और प्राथमिको स्कूलों के बीच बेहतर समन्वय को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस समय इस कार्यक्रम के तहत एक करोड़ छियासी लाख बच्चो को लाभ मिल रहा है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान मे राज्य शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् की सहायता से उदयपुर जिले के तीन ब्लॉको में शिशु शिक्षा की विशेष परियोजना चलाई जा रही है। इसमें 391 आंगनवाड़ी केन्द्रो को शामिल किया गया है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं तथा पर्यवेक्षको ने प्रशिक्षण कार्य के दौरान बच्चों की माताओं द्वारा तैयार की गई कम लागत वाली शाला-पूर्व सहायक सामग्री का उपयोग करना भी सीखा और उसके आधार पर कार्यक्रम को आगे बढ़ाया है। राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने कम लागत वाली स्कूल-पूर्व सहायक सामग्री तथा खिलौना उत्पादन का एक ससाधन केन्द्र भी स्थापित किया है। इसी के साथ जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण सस्थाओं की क्षमता का विकास करने पर विशेष बल दिया गया है ताकि उन्हे शिशु शिक्षा के लिए विकेन्द्रीकृत प्रशिक्षण इकाइयां बनाया जा सके। इस प्रकार के प्रयासो का विस्तार करने के लिए राज्य स्तर पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया। जिसमें चुने हुए बाल विकास परियोजना अधिकारी, आगनवाड़ी कार्यकर्ताओ आदि ने भाग लिया। प्रशिक्षण की अनुवर्ती कार्यवाही के रूप मे राजस्थान सरकार ने राज्य भर मे फैले आगनवाडी केन्द्रो मे से पाच सौ नमूना आगनवाड़ियो का चयन किया है ताकि स्कूल-पूर्व शिक्षा मे अभिनव परिवर्तन किए जा सके। आगनवाड़ी केन्द्रों को "सज्ञानात्मक विकास किट" इस आशा से उपलब्ध कराए जाएगे कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता समुदाय की मदद से स्थानीय खेल सामग्री विकसित करेंगी। स्थानीय महिला समूहो को इन किटों के निर्माण तथा इनके प्रयोग का प्रशिक्षण देने के प्रयास भी किए जाएंगे ताकि इन किटो का समेकित बाल विकास सेवा तथा अन्य शिशु शिक्षा केन्द्रो मे बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा सके।

शिशु शिक्षा कार्यक्रम, आंगनवाड़ी और प्राथमिक स्कूल के बीच का एक ऐसा पुल है जो देश के बच्चों को नया भविष्य देने में सहायक सिद्ध होगा और वे "2005 तक सबके लिए शिक्षा" का भारत का सपना पूरा करने में सहायक सिद्ध होंगे। ❑❑

बी- 4/56-बी-1
हनुमानघाट, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

विद्यालयों में नैतिक-मूल्यों की शिक्षा का स्वरूप

❑ धनंजय जोशी

महान दार्शनिक प्लेटो ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है– शिक्षा से अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो अच्छी आदतो के द्वारा बच्चों मे अच्छी नैतिकता का विकास करता है। जर्मन विशेषज्ञ हरबर्ट के शब्दो में, "शिक्षा के सम्पूर्ण कार्य को एक ही शब्द मे प्रकट किया जा सकता है और वह शब्द है नैतिकता।" अर्थात् नैतिकता व नैतिक शिक्षा वह आधारभूत तत्व है जिसके बिना शिक्षा को अपूर्ण कहा जा सकता है। आज ससार जिस तीव्र गति से प्रगति कर रहा है उस रफ्तार से यदि किसी चीज़ मे सर्वथा गिरावट आई है तो वह है नैतिक-मूल्यों में आता तीव्र क्षरण। सम्पूर्ण विश्व प्रगति के कई मानक स्थापित कर चुका है किन्तु सम्पूर्ण मानवता हेतु स्वमेव कई भस्मासुर भी निर्मित कर चुका है इनमे प्रमुख है– परमाणु आयुधों का निर्माण, प्रदूषण, आतंकवाद इत्यादि। इस सम्पूर्ण उन्नति के बावजूद शांति, स्वच्छता व सहिष्णुता जैसे बुनियादी तत्व आज उपरोक्त संकटों से जूझ रहे है। यदि इस संकट में महत्वपूर्ण भूमिका किसी उपव्यवस्था की मानी जा सकती है तो वह निश्चित रूप से शिक्षा की है। शिक्षा पर आज यह दायित्व आ गया है कि वह शांति व नैतिकता के बीज विद्यार्थियो मे प्रत्यारोपित करे।

महान दार्शनिक रॉस के ये शब्द सारगर्भित हैं– आज अधिकाधिक विचारशील लोगों का विश्वास यह हो गया है कि यदि हम शिक्षा द्वारा उच्च कोटि की सभ्यता का निर्माण करना और उसको बनाए रखना चाहते हैं एव कुछ समय के बाद होने वाली पशुता के प्रदर्शन से इसकी रक्षा करना चाहते हैं, तो शिक्षा को नैतिकता पर आधारित किया जाना आवश्यक है।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने माना है– विद्यालयी पाठ्यक्रम का एक गम्भीर दोष है– सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य-शिक्षा की अनुपस्थिति। यदि हम अपनी शिक्षा सस्थाओ से नैतिक शिक्षा व आध्यात्मिक प्रशिक्षण को निकाल देंगे, तो हम अपने सम्पूर्ण ऐतिहासिक विकास के विरुद्ध कार्य करेंगे।

यह सत्य है कि समाज तीव्र आर्थिक विकास और सामाजिक रूपांतरण के कारण संक्रमण के दौर से गुजर रहा है व नैतिक मूल्यों का विकास प्राथमिकता का मुद्दा नहीं है। पहले जमाने में संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रमुख लाभ यह था कि माता-पिता, दादा-दादी व अन्य परिवारजन बच्चों को संस्कारों व मूल्यों की शिक्षा देते थे तथा शिक्षा व्यवस्था में भी अनौपचारिक रूप से इनका समावेश पाया जाता था। किन्तु आज संदर्भ और परिस्थितियां बदल चुकी हैं। परिवारों में संयुक्त प्रथा टूटने के कगार पर है।

भारत मे अनेक धर्मो और सप्रदायो के व्यक्ति निवास करते है। सविधान का अनुच्छेद 25 से 28 सभी को अपने धर्म का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है व साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि राजकीय शिक्षा संस्थाओ में धर्म की शिक्षा नही दी जा सकती। चूकि भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। अत. अब प्रश्न यह उठता है कि विभिन्न धर्मो के बालको को नैतिक शिक्षा किस प्रकार दी जाए? इस समस्या का समाधान गाधी जी ने यह कहकर किया– "मेरे लिए नैतिकता, सदाचार और धर्म– पर्यायवाची शब्द है। नैतिकता के आधारभूत सिद्धांत सब धर्मो में समान हैं। इनको बालकों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिए और इसको पर्याप्त धार्मिक शिक्षा समझा जाना चाहिए।"

विभिन्न शिक्षा आयोगों व समितियों के मूल्य-शिक्षा पर विचार

भारतीय शिक्षा आयोगों व समितियों ने एक स्वर मे नैतिक मूल्यों की शिक्षा को शिक्षा का अनिवार्य अंग कहा है व शिक्षा के विभिन्न स्तरों मे इनके सम्मिलन को आवश्यक बताया है।

राधाकृष्णन आयोग (1948-49)

राधाकृष्णन आयोग ने मूल्य-शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अग माना। आयोग के अनुसार विद्यालय स्तर पर छात्रो को नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों को व्यक्त करने वाली कहानियां पढाई जाएं। छात्रों को महान व्यक्तियो की जीवनिया पढाई जाए। जीवनियों मे महान व्यक्तियो के उच्च विचारो और श्रेष्ठ भावनाओं का समावेश किया जाए। विश्वविद्यालय स्तर मे संसार के धार्मिक ग्रन्थों मे से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भागो को पढ़ाया जाए।

श्रीप्रकाश समिति (धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति), 1959 के सुझाव

इस समिति की अध्यक्षता श्रीप्रकाश ने की व धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के सबध में यह सुझाव दिया कि विद्यार्थियों को सब धर्मो के आधारभूत विचारों की शिक्षा तुलनात्मक विधि से दी जाए। छात्रों को महान धार्मिक नेताओं की जीवनियो और शिक्षाओं के सार से अवगत कराया जाए। जैसे-जैसे छात्रों का मानसिक विकास होता जाए, वैसे-वैसे उनको नैतिक, दार्शनिक और आध्यात्मवादी सिद्धांतों से परिचित कराया जाए। प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के लिए उपयुक्त धार्मिक और नैतिक पुस्तकें तैयार कराई जाएं। इस हेतु प्राथमिक स्तर पर समिति को सुझाव दिया। विद्यार्थियो को प्रति सप्ताह दो घण्टे नैतिक शिक्षा प्रदान की जाए। माध्यमिक स्तर पर छात्रों को संसार के महान धर्मो के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाए। पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के रूप में समाज सेवा की भावना का विकास किया जाए। विश्वविद्यालय स्तर पर सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में विभिन्न धर्मो के सामान्य अध्ययन को अनिवार्य अग बनाया जाए।

शिक्षा आयोग के सुझाव (1964-66)

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग जिसकी अध्यक्षता प्रो. दौलत सिह कोठारी ने की। धार्मिक और नैतिक शिक्षा के संबध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए–

विद्यालय स्तर– विद्यालय स्तर मे विद्यार्थियों को आधारभूत नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा दी जाए, यथा– सत्य, ईमानदारी, सामाजिक उत्तरदायित्व, पशुओ पर दया, बुजुर्गो के प्रति सम्मान, दु:खी और दरिद्रो के प्रति सहानुभूति इत्यादि। उक्त मूल्यों को विद्यालय के कार्यक्रमों का अभिन्न अग बनाया जाए। मूल्यों की शिक्षा देने के लिए समय-तालिका में प्रति सप्ताह कुछ घण्टे निर्धारित किए जाए। विद्यालयों के पाठ्यक्रमो में संसार के सब धर्मो को उचित स्थान दिया जाए। प्राथमिक स्तर पर भारत और संसार के महान धर्मो से चुनी गई रोचक कहानियों द्वारा आधारभूत मूल्यो और समस्याओं पर शिक्षक और छात्रो द्वारा विचार-विमर्श किया जाए। माध्यमिक स्तर की उच्च कक्षाओ मे महान धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं की कहानियां पढ़ाई जाए।

विश्वविद्यालय स्तर– आयोग के अनुसार विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों को व्यक्ति के सम्मान, समानता, सान्याय, कल्याणकारी राज्य आदि की शिक्षा दी जाए। छात्रो मे नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने के लिए भारत मे अन्य देशों की संस्कृतियों से सामग्री का संकलन किया जाए। डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष मे महान धार्मिक नेताओ की जीवनियां पढ़ाई जाए। द्वितीय वर्ष मे ससार के धार्मिक ग्रंथो मे से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भागों को पढ़ाया जाए। तृतीय वर्ष में धर्म-दर्शन की मुख्य समस्याओं का अध्ययन किया जाए।

नैतिक व मूल्य-शिक्षा को आत्मसात् करने की विधियां

इस संबंध में राष्ट्रीय आयोग (1964-66) ने लिखा है– हमारा विश्वास है कि नैतिक व मूल्य शिक्षा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों विधियो से दी जानी चाहिए। हम अप्रत्यक्ष

प्रभाव के कार्य को अधिक महत्व देते हैं। विभिन्न आयोगों ने इस हेतु दोनों विधियो पर जोर दिया है। प्रत्यक्ष विधियो में प्रमुख निम्न हैं–

- ☐ समय तालिका में मूल्य और नैतिक शिक्षा के लिए निर्धारित घण्टे।
- ☐ शिक्षा द्वारा छात्रो को धार्मिक और नैतिक कहानियों, घटनाओं, पौराणिक कथाओं आदि का सुनाया जाना।
- ☐ शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को धार्मिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यो की शिक्षा।
- ☐ शिक्षा द्वारा विद्यार्थियो को महान धार्मिक और सामाजिक नेताओं की जीवनियां और आत्मकथाएं सुनाई जाएं।
- ☐ विद्यार्थियो द्वारा नैतिक पुस्तकों, धार्मिक ग्रथो, धार्मिक समस्याओ और तुलनात्मक धर्म का अध्ययन।
- ☐ विद्यार्थियों और शिक्षक से धार्मिक और नैतिक विषयो पर विचार-विमर्श और विद्यार्थियों द्वारा प्रश्न पूछा जाना।
- ☐ खेल आदि के समय छात्रों के समक्ष उत्पन्न होने वाली नैतिक समस्याओ के संबध मे शिक्षक द्वारा उनका पथ-प्रदर्शन किया जाए।

अप्रत्यक्ष विधियां– अप्रत्यक्ष विधियों में प्रमुख हैं–

- ☐ **मौन चिंतन**– कुछ मिनट मौन व चिंतन द्वारा कार्य का प्रारम्भ करना दिन को स्फूर्तिमय व ताज़गी से भर देता है।
- ☐ **प्रातःकालीन सभा**– विद्यालय की विभिन्न गतिविधियो मे प्रार्थना व प्रातःकालीन सभा का सर्वोच्च्य स्थान है और यह मूल्य स्थापना का प्रमुख स्थान है।
- ☐ **धार्मिक समारोह**– सभी विद्यालयो मे महान धर्म-प्रवर्तको के जन्मोत्सव और सभी धर्मों के धार्मिक उत्सव मनाए जाए। इन अवसरो पर विभिन्न धर्मो के सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान और उपदेश दिए जाए।
- ☐ **विद्यालय का सामुदायिक जीवन**– विद्यालय के सामुदायिक जीवन को धार्मिक और विशेष रूप से नैतिक शिक्षा देने का महत्वपूर्ण साधन बनाया जा सकता है। शिक्षक और छात्र को एवं एक छात्र और दूसरे छात्र को अपने पारस्परिक सम्बन्धों, नैतिक नियमों का प्रयोग करने और सीखने का सुनहरा अवसर मिलता है।
- ☐ **सामुहिक कार्य**– 'शिक्षा आयोग' ने शिक्षा मे धार्मिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विकास करने के लिए विभिन्न प्रकार के सामुहिक कार्यो का सुझाव दिया है जैसे– समाज-सेवा, कार्य-अनुभव।
- ☐ **सुझाव व प्रेरणा**– बालको के मस्तिष्क में धार्मिक और नैतिक आदर्शो का समावेश वलपूर्वक या आदेश द्वारा नहीं किया जा सकता। ऐसा करने के लिए शिक्षक को उन्हें सुझाव और प्रेरणा देनी चाहिए। सुझाव देने की सर्वोत्तम विधि बताते हुए 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने लिखा है– "सुझाव की सर्वोत्तम विधि व्यक्तिगत उदाहरण, दैनिक जीवन और कार्य द्वारा है।"
- ☐ **विद्यालय का वातावरण**– धार्मिक और नैतिक विकास के अभाव मे बालक का बौद्धिक विकास अर्थहीन है। अतः बौद्धिक विकास के साथ-साथ, उसका धार्मिक और नैतिक विकास भी किया जाना आवश्यक है। उसका यह विकास पाठों द्वारा शिक्षा देकर नहीं किया जा सकता। यह तभी सम्भव है जब विद्यालय का सम्पूर्ण वातावरण इस प्रकार का हो कि बालक को अपनी नैतिक उन्नति करने के लिए धार्मिक बल प्राप्त हो।

यह वातावरण किस प्रकार का होना चाहिए, इसके सम्बन्ध में 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने अपना मत इन शब्दों में अंकित किया है– "यदि हमारी शिक्षा सस्थाएं छात्रों को धार्मिक बल प्रदान करना चाहती है तो उनमें सादगी और पवित्रता का वातावरण होना चाहिए, जो जीवन पर स्थायी प्रभाव डालता है।"

निष्कर्ष

यह सत्य है कि समाज तीव्र आर्थिक विकास और सामाजिक रूपांतरण के कारण संक्रमण के दौर से गुजर रहा है व नैतिक मूल्यों का विकास प्राथमिकता का मुद्दा नहीं है। पहले जमाने में संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रमुख लाभ यह था कि माता-पिता, दादा-दादी व अन्य परिवारजन

बच्चो को सस्कारों व मूल्यो की शिक्षा देते थे व शिक्षा व्यवस्था में भी अनौपचारिक रूप से इनका समावेश पाया जाता था। किन्तु आज सदर्भ व परिस्थितिया बदल चुकी हैं। परिवारो मे संयुक्त प्रथा टूटने के कगार पर है। आज माता-पिता दोनो काम करते हैं और एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ चुका है। बच्चो की भावात्मक और नैतिक आवश्यकताओ की पूर्ति का ध्यान अभिभावक नहीं रख पाते न ही दादा-दादी या अन्य परिवारजन पास होते हैं, संस्कृति, सदाचार व चरित्र की शिक्षा व नैतिकता परिवार के दायरे से बाहर होते जा रहे है। अपराध, हिंसा, अशाति के इस माहौल मे मानव-मूल्य नैतिक रूप से पतित व प्रदूषित होते जा रहे हैं।

अतः इस स्थिति में शिक्षा को मात्र पाठ्यक्रम के दायरे में ही सीमित नही रखना होगा वरन् इसे नई भूमिका व संदर्भ मे देखना होगा व मूल्य आधारित शिक्षा को अपनाना होगा। विद्यालयों की आज यह पहली भूमिका है कि वह चरित्र व सदाचार की शिक्षा को भी अपना लक्ष्य समझें ताकि राष्ट्र का नैतिक व आध्यात्मिक उत्थान हो सके। ❑❑

महाराजा सूरजमल संस्थान
सी-4, जनकपुरी, नई दिल्ली

क्या बच्चे वास्तव में "नालायक" होते हैं?

❑ सविता स्याल

नालायक बच्चे" अभिभावकों के लिए ही नही शिक्षको ; लिए भी एक सिरदर्द बन जाते हैं। माथे पर "नालायक" ा लेबल लगाए, सभी ओर से तिरस्कृत ये मासूम बच्चे ाध्यापकों तथा अभिभावकों दोनों की प्रताड़ना सहते है। ाखो बच्चे बहुमुखी प्रतिभाओ के धनी होते हुए भी नालायक" शब्द की सज्ञा के नीचे दबकर हीन भावना ह समुद्र में जीवन भर गोते खाते रहते है।

अध्यापकों द्वारा नजरन्दाज किए गए ये विद्यार्थी, ापराध जगत के दादाओं द्वारा स्वीकार कर लिए जाते हैं ौर अध्यापको के स्थान पर गिरोह के सरदार इनके मार्गदर्शक बन बच्चों की प्रतिभाओ का दुरुपयोग करते हैं और देश के भावी रक्षक ये बच्चे देश के भक्षक के रूप में एक दिन हमारे सामने आकर खडे हो जाते है।

याद रखें। कोई भी बच्चा जन्म से न तो 'नालायक' होता है और न ही 'होशियार'। बच्चे की पारिवारिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां ही उसे इन दो श्रेणियो मे बाट देती है। पढ़ाई से विमुख होना अथवा ज्ञान प्राप्ति मे असमर्थ होना दो अलग-अलग पहलू हैं। ज्ञान प्राप्ति मे असमर्थ बच्चे मदबुद्धि विद्यार्थियों की श्रेणी मे आते है परन्तु यदि कोई छात्र शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ है तब भी पढ़ाई में अच्छे परिणाम नहीं ला पाता तो इस कारण उसकी ज्ञान प्राप्ति के प्रति अरुचि तथा विमुखता हो सकती है, असमर्थता नही।

पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितिया

सभी छात्रों की पारिवारिक पृष्ठभूमि एक-सी नहीं होती। हर घर का अपना एक वातावरण होता है। बच्चे के पढ़ाई से विमुख होने के बहुत से पारिवारिक कारण भी हो सकते है जैसे माता पिता की व्यस्तता, मा की अस्वस्थता

कोई भी बच्चा जन्म से न तो 'नालायक' होता है और न ही 'होशियार'। बच्चे की पारिवारिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां ही उसे इन दो श्रेणियों में बांट देती हैं। पढ़ाई से विमुख होना अथवा ज्ञान प्राप्ति में असमर्थ होना दो अलग-अलग पहलू हैं। ज्ञान प्राप्ति में असमर्थ बच्चे मंदबुद्धि विद्यार्थियों की श्रेणी में आते हैं परन्तु यदि कोई छात्र शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ है तब भी पढ़ाई में अच्छे परिणाम नहीं ला पाता तो इस कारण उसकी ज्ञान प्राप्ति के प्रति अरुचि तथा विमुखता हो सकती है, असमर्थता नहीं।

के चलते छोटे बहन-भाईयो व घर के कामों की जिम्मेदारी, पढ़ने के लिए उचित वातावरण की कमी आदि। प्रायः देखने में आता है कि नौकरीपेशा अभिभावक बच्चो को ट्यूटर के भरोसे छोड़कर अथवा विद्यालय की फीस भर देने मात्र से ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते है और सोचते हैं कि केवल इतना कर देने से ही बच्चे को परीक्षा मे अपेक्षित परिणाम दे देने चाहिए। कक्षा में कुछ न समझ आने पर, विद्यालय मे अध्यापक के डर से तथा घर में माता-पिता की व्यस्तता के कारण बच्चे अपनी शंका का समाधान नहीं कर पाते और धीरे-धीरे ये सभी शंकाएं मिलकर उसके मस्तिष्क में एक भूल-भुलैया का जाल-सा फैलाने लगती है, जिससे वह भागने का प्रयत्न करता है और उसे पढ़ाई एक मुसीबत-सी नज़र आने लगती है। कई छात्रों का पढ़ाई से विमुख होने का कारण अभिभावको की ऊंची अपेक्षाएं भी है। उनकी इन अपेक्षाओ पर खरा उतरने मे असमर्थ ये बच्चे या तो पढ़ाई के नाम से कतराने लगते हैं अथवा नकल आदि का सहारा लेकर अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने की चेष्टा करते है। एक अध्ययन के बाद ऐसा भी देखने में आया है कि मां की अस्वस्थता के चलते छोटे बहन-भाईयों का ध्यान रखना अथवा घर के कामों में अधिक समय लग जाने के कारण कुछ विद्यार्थियों को पढाई करने का समय ही नहीं मिलता। यहां तक कि घर पर काम होने पर समय-समय पर विद्यालय से भी छुट्टी करवा दी जाती है। ऐसे परिवारों में बच्चों को नियमित रूप से विद्यालय भेजना आवश्यक नहीं समझा जाता और ऐसे वातावरण में पल रहे छात्रो को भी विद्यालय जाने की अपेक्षा घर पर रहना अधिक भाता है। पढ़ने के लिए घर पर उचित व्यवस्था न होने पर भी, जैसे घर के अन्य सदस्यों का शोर, पढ़ने के लिए स्थान का अभाव इन सब का भी विद्यार्थी की एकाग्रता पर प्रभाव पडता है। पढ़ाई के अनुकूल वातावरण का महत्व केवल कुछ शिक्षित अभिभावक ही समझते हैं। पढ़ने के नाम पर बहुत अधिक पाबन्दिया लग जाने के कारण भी अक्सर बच्चे, पढ़ाई के प्रति और विद्रोही हो जाते है, जैसे पढ़ो, खेलने नहीं जाना, टी.वी. नहीं देखना आदि। ऐसे छात्र प्राय कक्षा में पीछे की बेंचों पर बैठकर, पढ़ाई के समय में खेलकर अपनी इच्छापूर्ति करते हैं अथवा अपने ही सपनों की दुनिया में खोए रहते हैं। ऐसे पारिवारिक वातावरणों मे पल रहे बच्चों की पढ़ाई की ओर से लापरवाही एव विमुखता स्वाभाविक है। ऐसे में बच्चो को दोषी ठहराना तथा बात-बात पर कक्षा में उन्हे "नालायक" कहकर तिरस्कृत करना कहा तक उचित है?

सामाजिक कारण

सामाजिक कारणों में कक्षा तथा विद्यालय का वातावरण बहुत महत्व रखता है। कक्षा में किसी भी मित्र का न होना, अध्यापकों का अपने विद्यार्थियों से अनुशासन के नाम पर कठोर व्यवहार करना अथवा बहुत सीमित बात करना और उनकी समस्याओं को जानने का प्रयत्न न करना सभी तथ्य बच्चों के विकासोन्मुख मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। जिन अध्यापकों के अपने विद्यार्थियो से मधुर सम्बन्ध रहते हैं और वे कक्षा से बाहर रहते हुए भी उनकी सहायता करने को तैयार रहते है ऐसे अध्यापकों के विषय में छात्र अधिक रुचि लेते है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मित्रो द्वारा स्वीकार किए गए बच्चे विद्या ही नहीं प्रत्येक क्षेत्र मे अधिक सफल होते हैं क्योकि वे आत्मविश्वास से परिपूर्ण होते हैं। इसी प्रकार

माता-पिता के आपसी मधुर सम्बन्ध भी बच्चे के मन मस्तिष्क को संतुलित रखने में सहायता करते हैं। घर का वातावरण खुशहाल होने पर तथा माता-पिता की सहायता से छात्र अपनी पढ़ाई सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने मे अधिक सफल रहते हैं। कक्षा मे अध्यापकगण होशियार विद्यार्थियो की ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं और उन्हीं से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर पाकर सतुष्ट रहते है इससे अन्य विद्यार्थी पढ़ाई से कतराने लगते है।

मनोवैज्ञानिक कारण

पढ़ाई के *प्रति विमुखता के मनोवैज्ञानिक कारण भी* हो सकते है जिसमे बच्चे के मन में छिपे कई प्रकार के डर उसे आगे बढने से रोकते हैं जैसे असफल होने का डर, अध्यापकों से दण्डित होने का भय अथवा सहपाठियों के उपहास का पात्र होने का भय। कुछ छात्रो के मन में यह कशमकश चलती ही रहती है कि उनका उत्तर ठीक होगा कि नही, यदि गलत हुआ तो। कई विद्यार्थी तो उत्तर जानते हुए भी असफलता के डर से अथवा अध्यापकों की प्रताड़ना के डर से कक्षा मे गुमसुम बैठे रहते है और अपने आपको "नालायक" कहलवाना अधिक बेहतर समझते हैं क्योंकि उन्हे इस संज्ञा की आदत सी हो जाती है। उत्तर गलत होने पर अध्यापक एव उनके सहपाठी उन पर हंसेगे और उनका मज़ाक उड़ाएंगे इस डर के कारण भी कई विद्यार्थी कक्षा मे सक्रिय होकर न तो भाग लेते हैं और न ही पढ़ाई की ओर ध्यान देते है। मन मे ऐसी कई प्रकार की भ्रान्तियां पाले ऐसे विद्यार्थी अक्सर कक्षा मे पीछे बैठना पसन्द करते हैं और अध्यापकगण भी उनकी ओर अधिक ध्यान न देकर उन्हें नजरन्दाज करना उचित समझते है।

अध्यापक यदि इन छात्रों की ओर भी थोड़ा ध्यान दें उनसे बातचीत द्वारा थोडी पारिवारिक पृष्ठभूमि अथवा उनके किसी मित्र द्वारा उन छात्रों के स्वभाव एवं अन्य परिस्थितियों के विषय मे जानने का प्रयत्न करे तो निश्चय ही वे जान पाएंगे कि समस्या कहां है और इसके लिए कौन दोषी है? समस्यानुसार अभिभावको से अथवा विद्यालय के प्रधानाचार्य एव अन्य सहकर्मियो से बातचीत करके *उन छात्रों की समस्याओं को दूर किया जा सकता है।* अध्यापको द्वारा दिए गए कुछ सराहना के शब्द एक विद्यार्थी के जीवन की दिशा ही बदल सकते है। इसके विपरीत "नालायक" की संज्ञा जीवन भर उसे हीन भावना का शिकार बना सकती है। छात्र के विषय मे अपनी धारणा बनाते समय अध्यापकों को छात्रों की पारिवारिक तथा मनोवैज्ञानिक विषमताओं को भी ध्यान मे रखना चाहिए। अध्यापक द्वारा क्रोधित होकर कहे गए अपशब्दो के प्रति बच्चे सवेदनशील भी होते है और यही शब्द प्राय: उनकी आत्मधारणा भी बन जाते है। कई बार तो एक विशेष आत्मधारणा बना लेने के कारण छात्रो को उससे उबारना भी कठिन हो जाता है।

शिक्षकों के हाथो राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति "आज के बच्चे" हैं। इन बच्चों को "लायक" अथवा "नालायक" बनाना उन्ही के हाथों में है। विद्यार्थियों के प्रति उनकी सूझबूझ एवं सतर्कता देश के उज्ज्वल भविष्य में सहायक होगी। ❑❑

10A, साउथ सिटी II
सोहना रोड, गुरुगांव
हरियाणा

बदलते सामाजिक परिवेश में विद्यालय की सार्थक भूमिका

❑ जगदीश नागर

पहले गुरुकुल शिक्षा के केन्द्र थे। हमारे विद्यार्थी इनमे 'सत्यमृवद', 'धर्ममृचर', का अध्ययन करते थे और उन बातों को आचरण मे भी उतारते थे। लेकिन इनमे रहकर बालक एक ही प्रकार के परिवेश से गुजरता था। आज का विद्यार्थी पारिवारिक और विद्यालयी– इन दो प्रकार के परिवेशो से गुजरता है। इसी कारण उसके सामने समायोजन की समस्या है।

गुरुकुल पद्धति मे नैतिकता को प्राथमिकता थी। धीरे-धीरे ज्ञानार्थी बढ़े और एक सस्था के रूप मे विद्यालय का जन्म हुआ। यह वह ज्ञान मंदिर है, जहां आकर बालक मूल्यों की शिक्षा ग्रहण करता हे। अतः ज्ञानार्जन के साथ इनमें चरित्र निर्माण का कार्य भी होता है।

संस्कारो के अभाव मे शिक्षा पगु है। इनके बिना छात्र दायित्वहीन हो जाता है। उसे संस्कारित बनाना राष्ट्रहित मे ही है। ये काम विद्यालय ही कर सकते हैं। आजादी के पश्चात् हर क्षेत्र में असंख्य बच्चों का निर्माण हुआ है। लेकिन समाज, देश और मानवता के लिए समर्पित इन्सान बनाने मे हमने कहीं भूल की है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है–

"कौन थे, क्या हो गए हम, जान लो इसका पता।
जो थे, कभी गुरु है न उसमे शिष्य की भी योग्यता।।
जो थे, सभी के अग्रणी और आज पीछे भी नहीं।
है दीखती विपरीतता, संसार मे ऐसी कहीं।।

शिक्षा वह मंदिर है, जहां हम मानवता के लिए समर्पित मूल्यो से पूर्ण सस्कारवान बच्चे तैयार करते हैं। इनके बिना आर्थिक और सामाजिक विकास असंभव है। उचित मार्गदर्शन से उनमें अभिव्यक्ति कौशल के साथ-साथ आत्म विश्वास की भावना भी उजागर होती है। हम 'सोसायटी' मे रहते हैं। अत. बच्चों को समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के साथ सामजस्य करना सिखाते हैं। एस.यू.पी.डब्ल्यू. शिविरो के माध्यम से उनमें समाज सेवा एवं आत्मीयता की भावना का विकास होता है। स्कूल मे उन्हें घर जैसा वातावरण देने का पूरा प्रयास किया जाता है। उन्हें राष्ट्र की संपत्ति की सुरक्षा करने की बात सिखाते हैं। पढ़ाते समय उन्हें गांधी और टैगोर के जीवन से प्रेरणास्पद उदाहरण देकर, एक अच्छा इसान बनाने का प्रयास करते हैं। जिससे वे अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति करना सीखते है। बच्चो को केन्द्र मानकर ही, सभी प्रकृतियां संचालित की जाती हैं।

भारत एक विशाल वृक्ष है जिसकी शाखाओं का सहारा लेकर हम अपना जीवन बिता रहे हैं और छात्रों को सिखाते हैं कि हमें इस वृक्ष की शाखाओं को आबाद रखना है। इससे हमारी राष्ट्रीय एकता मजबूत होगी।

समाज का हर वर्ग एक-दूसरे पर निर्भर है। जो बालक समाज की संपत्ति है, वे ही उनमे विद्याध्ययन के लिए आते हैं। अत प्रवेश के साथ ही वे अपने समाज और परिवार के प्रभाव के कारण विभिन्न परम्पराओं एवं आदतो को भी लेते हैं। विद्यालय जब विद्यार्थियो के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करता है तो उसे विभिन्न परम्पराओं, प्रवृत्तियों और रीतिरिवाजों तथा आदतो की ओर भी ध्यान देना पड़ता है।

आज के बदलते सामाजिक परिवेश मे मूल्यो की प्रतिष्ठा में यदि अपनी श्रेष्ठ भूमिका अदा कर सकते है, तो वे हैं, विद्यालय। विश्व के रंगमंच से भी बार-बार यही बात आ रही है कि आज हमारे मूल्यों का पतन हो रहा है। इस बदलते सामाजिक परिवेश में मूल्यों की प्रतिष्ठा के अंकुरण एवं उनके विकास मे ये शिक्षा केन्द्र ही अपनी श्रेष्ठ भूमिका अदा कर सकते हैं। ज्ञान धन बांटने से बढता है और मूल्य भी बाटने से बढ़ते हैं।

यदि हमारे बच्चों मे मूल्यों का विकास नहीं होगा तो यह विश्व बदलेगा नहीं। उत्तम आचरण ही मूल्यों की प्राप्ति की कसौटी है। आज के छात्र अपने कर्तव्यो को भूलते जा रहे हैं। उन्हें फिर से अपने दायित्वो की पहचान कराने के लिए ये ही अपनी सक्रिय भूमिका अदा कर सकते है।

प्रत्येक छात्र मे अपरिचित विशेषताएं हैं। लेकिन सही निर्देशन के अभाव मे, वह इनका गलत अर्थ लगा रहा है। स्वतन्त्रता के नाम पर वह स्वच्छन्द हो गया है। उसे अपने खोए हुए गुण वापस प्राप्त करने हैं। यही आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है। इनके बिना उसका विकास असंभव है।

जे.एस रास के अनुसार– "विद्यालय एक उद्यान है। विद्यार्थी एक कोमल पौधा है और शिक्षक एक सतर्क माली है।"

आज की बदलती हुई सामाजिक परिस्थितिया हमें कुछ और ही सोचने को बाध्य करती है। आजकल छात्रो को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नही दिया जाता, वरन् उनका चहुंमुखी विकास भी किया जाता है। उन्हे समाज के हर व्यक्ति के साथ सामजस्य स्थापित करने की सलाह दी जाती है। हमारे विद्यार्थी शिक्षालय के केन्द्र हैं जहा अध्ययनार्थियो को प्रेम, सहयोग, सदभाव और सभी आदर करने की बातें बताई जाती है तथा उन्हें उचित मार्गदर्शन द्वारा उत्कृष्ट इन्सान बनाया जाता है। रटन्त प्रवृति के स्थान पर बहु- विकल्पात्मक प्रश्नो के माध्यम से, उनकी विचार शक्ति को प्रबल बनाया जाता है।

प्रार्थना सभा मे प्रवचन के माध्यम से/ उत्सव दिवस और विभिन्न सामाजिक एव राष्ट्रीय समारोहो के माध्यम से, नैतिक शिक्षा के माध्यम से उनमे मानवीय मूल्यों का अंकुरण किया जाता है– ताकि हमारा विद्यार्थी एक श्रेष्ठ अध्येता के साथ-साथ, अपने परिवार, समाज, जिले, प्रान्त और देश का प्रबुद्ध एवं सेवाभावी नागरिक बन सके। विद्यालय वे केन्द्र हैं, जहा बाल मनोविज्ञान को समझते हुए उनको शिक्षा दी जाती है। एक बालक जब मां की गोद से निकलकर शिक्षण संस्था की ओर बढता है तो उसे उसी तरह के वात्सल्य की आवश्यकता होती है और ऐसा स्नेह उसे घर के बाद विद्यालय में ही प्राप्त हो सकता है।

ये ही वे केन्द्र है, जहां शिक्षक उनमें छिपे हुए गुणो का पता लगाकर, आवश्यक दिशा-निर्देश द्वारा उनको विकास की ओर अग्रसर करते हैं। विश्व के प्रत्येक देश की एक निजी संस्कृति है। हमारी सस्कृति दुनिया की सबसे शक्तिशाली संस्कृति है। 'सस्कृति और कुछ नही, मानव की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियां ही उसकी संस्कृति है।' अत· हम नि सकोच कह सकते हैं कि हमारी बाल पीढ़ी उत्तम शैक्षिक मार्गदर्शन के जरिए ही अपने में बदलाव ला सकती है। मूल्य आधारित विचारधारा के विकास से ही जीवन मे शान्ति संभव है। देश में व्याप्त हिंसात्मक गतिविधियों पर जब तक रोक नहीं लगेगी, हमारा देश विकास नही कर सकता और यह रोक उत्तम सस्कारो के निर्माण से ही सभव है।

भारत एक विशाल वृक्ष है जिसकी शाखाओं का सहारा लेकर हम अपना जीवन बिता रहे है और छात्रों को सिखाते है कि हमे इस वृक्ष की शाखाओ को आबाद रखना है। इससे हमारी राष्ट्रीय एकता मजबूत होगी।

गुरु, समाज, परिवार और देश को आज कौत्स जैसे सभी क्षेत्रो में पूर्ण पारगत शिष्यों की आवश्यकता है ताकि हमारे देश का विश्व मे नाम उजागर हो सके। अत· सभी शिक्षक अपने शिष्यो का ऐसा पथ-प्रदर्शन करे कि वे उनके द्वारा सीखे हुए ज्ञान को उत्कृष्ट रूप प्रदान कर सके।

अन्त मे हम यही कह सकते हैं कि हमारे वर्तमान विद्यालय नैतिक शिक्षा, मानवीय मूल्यो एव पर्यावरण जागृति के एकमात्र ऐसे केन्द्र हैं जहां जीवनोपयोगी शिक्षा के साथ-साथ उत्कृष्ट पाठ्येतर प्रवृतियों के माध्यम से प्रत्येक शिक्षार्थी को देश का होनहार, सस्कारवान एवं श्रमशील व्यक्ति और प्रत्येक समाज का विश्वासपात्र बनाते हैं। शिक्षा ही ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा बच्चों मे अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता की यही भावना विश्व शान्ति स्थापित करने की अचूक औषधि है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तेजी से बदलते सामाजिक परिवेश में विद्यालय की महती भूमिका है। ❑❑

नैतिकता के प्रश्न एवं व्यक्तित्व विकास

❒ मंजू देवी

प्रत्येक व्यक्ति की मनःशारीरिक विलक्षणताओं मे ऐसी विशिष्टता होती है, जो उसे दूसरों से पृथक करती है। इस वैयक्तिक विशेषता का आभास व्यक्ति के व्यवहार से होता है। स्थितियों के अनुसार निःसंदेह व्यक्ति की प्रतिक्रियाए भी बदलती रहती है। उसके सम्मुख जैसी स्थितियां आती हैं, उसी के अनुसार उसका व्यवहार होता है। किसी स्थिति में भावना प्रमुख होती है तो किसी मे बौद्धिक गुण। इसी प्रकार किसी स्थिति मे वह प्रफुल्ल होता है तो किसी मे खिन्न। व्यक्तित्व कोई ऐसा गुण या पदार्थ नही है, जिसे सीधे-सीधे देखा जा सके। यह व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार की सामान्य विशेषता है और सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियो पर व्यक्त होती रहती है। व्यक्तित्व में व्यक्ति के सभी मनःशारीरिक गुणों का प्रभाव होता है।

व्यक्तित्व की परिभाषा बहुत प्रकार से की गई है। कुछ परिभाषाओं में मुख्य रूप से व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को दृष्टिगत रखा गया है और उनमे उन्हीं गुणों को महत्व दिया गया है जो व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करते है या सामुहिक जीवन में व्यक्त होते हैं। व्यक्तित्व व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का समष्टिगत रूप है। इसकी झलक व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार से मिलती है।

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है। किसी का अधिक आकर्षक तो किसी का कम आकर्षक। कुछ व्यक्ति दूसरो को विशेष प्रभावित नहीं करते है। ऐसे लोगों के लिए प्रायः कहा जाता है कि इनका कोई व्यक्तित्व नही है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सही नही है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में निजी विशेषता होती है और वही उसका व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व का स्वरूप व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक विशेषताओं तथा उसके वातावरण की अन्त:क्रिया पर निर्भर करता है। यह अन्त:क्रिया जीवन भर होती रहती है। उसी के अनुसार अनुभवों के साथ-साथ व्यक्तित्व विकास भी होता रहता है।

व्यक्तित्व को समझने के लिए मानव व्यवहार की जटिलता पर ध्यान देना आवश्यक है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए उन परिस्थितियों को पहले समझना होगा जिन परिस्थितियों में व्यक्ति ने व्यवहार किया। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को तभी अच्छी तरह से समझा जा सकता है जब उसके साथ आदान-प्रदान की क्रिया हो।

व्यक्तित्व को समझने के लिए मानव व्यवहार की जटिलता पर ध्यान देना आवश्यक है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए उन परिस्थितियों को पहले समझना होगा जिन परिस्थितियों मे व्यक्ति ने व्यवहार किया। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को तभी अच्छी तरह से समझा जा सकता है जब उसके साथ आदान-प्रदान की क्रिया हो।

व्यक्ति के बाह्य व्यक्तित्व को देखकर उसे सतही रूप में ही समझा जा सकता है। कई बार लोगो के बाहरी रूप को देखकर भ्रम होता है और अनायास ही लगता है कि इस व्यक्ति का व्यक्तित्व कितना आकर्षक है, लेकिन जब उसके साथ उठना-बैठना, खाना-पीना, लेन-देन तथा विचारों का आदान-प्रदान होता है तो ऐसी स्थिति नहीं होती है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उस समय अच्छी तरह से होती है, जब हम साथ-साथ काम करते हैं, एक-दूसरे

के नजदीक आते है, उसके स्वभाव को जानते हैं तथा किसी विषय पर खुलकर बाते करते हैं।

एक व्यक्ति का व्यक्तित्व किन्ही दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करता है तो यह जरूरी नहीं है कि तीसरा या चौथा व्यक्ति भी उससे प्रभावित हो ही। अपने स्वभाव, गुण तथा आवश्यकता के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग पसन्द होती है और उसी के अनुसार वह अपना मित्र और सहयोगी चाहता है।

व्यक्ति का व्यक्तित्व समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक समय और स्थान पर एक व्यक्ति का जो व्यक्तित्व था या है दूसरे स्थान पर भी उसका वही व्यक्तित्व होगा। व्यक्ति पूर्व में हुए खट्टे-मीठे अनुभवों को लेते हुए अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन करता रहता है।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का मापन करने के लिए अलग-अलग परीक्षण बनाए हैं, लेकिन सामान्य जीवन में हमेशा उन परीक्षणो का प्रयोग नही किया जा सकता। किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने के लिए उसके साथ सम्पर्क रखना जरूरी है। बिना सम्पर्क के न ही उसको समझा जा सकता है और न ही उस पर विश्वास किया जा सकता है। हमारे हाव-भाव, उठने-बैठने, चलने-बोलने-हंसने का ढग, कम शब्दों मे बातो को अच्छी तरह से कहने की कला, सादगी आदि सभी मिलकर व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। हमारा ढंग जितना सहज और सरल होता है उतना ही आकर्षक होता है। हम बातों को किसी तरह से प्रस्तुत करते हैं, छोटी-छोटी बातो को भी कितना महत्वपूर्ण मानते हैं, यह सब मिलकर हमारे व्यक्तित्व की पहचान बनाते है।

कभी-कभी किसी व्यक्ति का बाह्य रूप छोटी पुड़िया जैसा देखने में होता है, उन्हें देखकर यह लगता है कि शायद ये किसी काम को देने पर ठीक से नहीं कर पाएंगे, लेकिन जब वे ही व्यक्ति कामों को बखूबी कर लेते हैं तो आश्चर्य होने लगता है। अत' किसी व्यक्ति के बारे में पहले से कुछ भी नहीं कहा जा सकता और न ही उसे पहचाना जा सकता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में उस समय तनाव उत्पन्न होता है जब उसका आन्तरिक व्यक्तित्व कुछ होता है और बाह्य व्यक्तित्व कुछ और। ऐसे समय मे वह कुंठा का शिकार हो जाता है। आज जीवन मे बढ़ रही कुठा, निराशा, द्वेष, घृणा, दुख को समझने के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है।

कुछ लोगों का व्यक्तित्व अपने सहकर्मियों को डराने, धमकाने और दबाने वाला होता है। ऐसे लोग अपने अस्तित्व तथा अपनी पहचान बनाए रखने के लिए दूसरे लोगों की भावनाओं का आदर नहीं करते है तथा अपने स्वार्थ के लिए किसी भी सीमा तक चले जाते हैं।

कई बार हम अपने मन की भावनाओ को दूसरो पर प्रक्षेपित करते हैं तथा किसी व्यक्ति की पहचान उसी रूप में करते है जैसी हमारे मन की भावना होती है। सामने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व चाहे कितना भी अच्छा हो, लेकिन अपनी कमियो और अपने व्यक्तित्व को दूसरों पर थोपते हुए उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को अपनी सोच के अनुसार देखते हैं। ऐसी स्थितियों में व्यक्तित्व की पहचान करने वाले व्यक्ति की बातों पर विश्वास नही किया जा सकता और न ही यह सामान्य स्थिति है।

आज की भागदौड़ के जीवन मे व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत ज्यादा गतिशील हो गया है। अपने स्वार्थ तथा अपने हित को ध्यान में रखकर लोगों ने अपने व्यक्तित्व को भी उसी अनुसार बना लिया है। सामने वाले व्यक्ति से यदि यह लगता है कि लाभ होगा तो उसकी बुरी बातें भी अच्छी लगती है या बुरी बातों का हम नजरन्दाज कर देते हैं। ऐसे बार-बार बदलने वाले व्यक्तित्व के लोगो के बारे मे कुछ भी कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि ऐसे लोगो का व्यवहार प्रत्येक व्यक्ति के साथ अलग-अलग होता है। यदि किसी व्यक्ति के साथ दो चार बार धोखा हो जाता है तो वह सामान्य व्यक्तित्व पर भी विश्वास नहीं करता है।

इतिहास गवाह है कि दूसरो के लिए जीने वाले व्यक्तियों, साहित्यकारों, समाज सुधारको ने अपने कार्य से अपना व्यक्तित्व समाज के सामने प्रस्तुत किया, लेकिन आज वैसे लोगों की कमी होती जा रही है। समाज में जिस तरह की अराजक स्थिति फैलती जा रही है, उसमे अच्छे व्यक्तित्व के लोग भी पिसते जा रहे हैं

तथा बहती हुई अंधी धारा में शक की नजर के घेरे में आ जाते हैं।

जिस समाज मे लोग जाति, धर्म, भाषा, लिंग तथा प्रान्त के आधार पर अलग-अलग समूह बना रहे हों, अपने आपको छोटे-छोटे समूहों मे विभक्त कर रहे हो, उस समाज में एक-दूसरे के व्यक्तित्व को समझना आसान नहीं है।

वर्तमान समय में व्यक्ति ने अपने जीवन को इतना संकुचित कर लिया है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान करना कठिन है। जिस समाज में नैतिक मूल्यों का जबरदस्त रूप मे पतन हो रहा हो; मूल्य, परम्पराएं, आदर्श, परिवार, रिश्ते सब कुछ बदल रहे हो; प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही दुनिया मे व्यस्त हो, उसे दूसरों की ओर देखने की फुरसत न हो तो ऐसे समाज में वह व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व की पहचान कर ले, शायद यही बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। ❑❑

A-9/123, प्रहलाद घाट
वाराणसी, उत्तर प्रदेश

बच्चों का सर्वांगीण विकास करें

❑ **मुकेश मोहन तिवारी**

जब बच्चे छोटे हो तभी से हमें उनमें अच्छे गुणो, अच्छी शिक्षा, अच्छी गतिशीलता आदि के विकास का प्रयास करना चाहिए। बच्चे देखने मे छोटे लगते है पर जीवन के आरंभिक दिनों में उनकी गतिशीलता और ग्रहण शक्ति असाधारण होती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—व्यक्ति को जो कुछ बनना होता है, वह अपने जीवन के प्रारभिक पांच वर्षो मे बन चुका होता है। प्रारंभ से ही ऐसी आदते डाली जानी चाहिए जो आजीवन संतुलित समायोजन देती रहें। बच्चों में वश परम्परा एवं जननी की मनःस्थिति का पूरा प्रभाव पडता है। फिर दुनिया मे कदम रखते ही हमें उनको अच्छी से अच्छी आदतों में ढालना चाहिए।

बच्चे देश का भविष्य है। यह बात सभी लोग जानते हैं। बच्चे को अच्छा नागरिक बनाने के लिए उत्तम शिक्षा, अच्छा घरेलू वातावरण भी जरूरी है। बच्चे कच्ची माटी के समान बने होते है जैसा उनको ढालेंगे, वैसा ही बनेंगे। बच्चे अच्छे कैसे बनें और सब के बच्चे अच्छे बनें यह कठिन बात है क्योंकि जो माता-पिता नौकरी या व्यवसाय में लगे है। उन्हें कार्य की व्यस्तता की वजह से घर पहुंचने मे रात को देर हो जाती है इसलिए वे अपने बच्चों पर बिल्कुल ध्यान नही दे पाते है। वह पढ़ाने के लिए घर मे शिक्षक एव स्कूलों पर छोड़ देते हैं। वे समझते हैं कि बच्चा अच्छा पढ़ रहा है और अच्छी आदतें सीख रहा है। इस तरह माता-पिता यदि ध्यान नहीं देंगे तो बच्चे बिगड़ेंगे। माता-पिता सोचें कि बच्चा क्या पढ़ रहा है, कब स्कूल जा रहा है, कब आ रहा है, कहां और कब खेल रहा है। इन सबकी जानकारी प्रत्येक माता-पिता को रखनी चाहिए। बचपन में बच्चो के साथ ज्यादा लाड़-प्यार भी नही करना चाहिए नहीं तो बच्चे के बिगड़ने की संभावना रहती है। उन्हे अच्छे शिष्टाचार का प्रशिक्षण बचपन मे ही देना चाहिए।

बच्चे अच्छी से अच्छी सभ्यता सीखें क्योंकि सभ्यता बाह्य है। बाह्य प्रयोग में दिखाई देती है। लेकिन जब मनुष्य उसका अनुसरण करता है तो वह संस्कृति बन

बच्चे देश का भविष्य हैं। जब बच्चे छोटे हों तभी से हमें उनमें अच्छे गुणों, अच्छी शिक्षा, अच्छी गतिशीलता आदि के विकास का प्रयास करना चाहिए। बच्चों में प्रारंभ से ही ऐसी आदतें डालनी चाहिए जो आजीवन संतुलित समायोजन देती रहें। बच्चे कच्ची माटी के समान बने होते हैं जैसा उनको ढालेंगे वैसा ही बनेंगे। स्वस्थ आत्मबल से दीप्त, निर्भीक, प्रबुद्ध, तेजस्वी और चरित्रवान विद्यार्थी ही राष्ट्र की प्रगति का नियामक बन सकता है। तभी वह राष्ट्र निर्माण में अपना अतुलनीय योग देकर राष्ट्र को गौरवान्वित कर सकता है।

जाती है और इसी से मनुष्य संस्कारवान बनता है। इसलिए बच्चो पर अपने प्रयोगों से अच्छा अनुसरण सिखाओ। बच्चे सभ्यता और सस्कृति के अनुसरण से शिष्टाचार सीखते है इसलिए बच्चों के सामने अच्छे अनुसरण का शिष्टाचार सिखाएं। जो फलने-फूलने पर समाज में जाता है और अच्छे समाज का चरित्र निर्माण करता है क्योकि शिष्टाचार बचपन मे ही सीखा जाता है। अपने छोटों के साथ, बड़ों के साथ, अपने पड़ोसियो के साथ और परिवार वालों के साथ कैसा व्यवहार हो यह सब वह अपने अनुभव से करता है और अनुभव अनुसरण से आता है। यह अनुभव बच्चे शिक्षकों के सम्पर्क मे रहकर सीखते हैं। ऐसा बच्चा जब वयस्क बनकर समाज में रहता है तो उसे समाज में आदर मिलता है। उसमें आत्मविश्वास पैदा होता है और इसी से उसमें साहस व समाज के कल्याण के लिए उत्साह पैदा होता है। किसी भी देश का सम्मान, उसकी उन्नति, विकास सुख-शान्ति उस देश के समाज के ऊपर निर्भर करती है। यदि उस देश के बच्चे समाज को उन्नत बनाते है तो वह देश सबसे अधिक शक्तिशाली और उन्नत होता है। हम बच्चो की भावनाओं का ख्याल अवश्य रखें। मिनेसोटा विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बायरन एग्लैण्ड के अनुसार "जिन बच्चों की भावनाओ को ठेस पहुंचती है, बड़े होने पर उनका मानसिक विकास दूसरे बच्चों की अपेक्षा कम होता है। यह इसलिए होता है कि भावनाओं को ठेस पहुंचते रहने से बच्चो के स्वाभिमान में निरन्तर ह्रास होता चला जाता है।" हम अधिक से अधिक प्रभुत्व बच्चों पर न जमाएं।

बाल चिकित्सा शास्त्री श्री लेफर के अनुसार सभी माता-पिता किसी न किसी मामले में अपने बच्चो पर प्रभुत्व जमाने की कोशिश करते है। जब बच्चा स्कूल से आए तो अधिक से अधिक आज्ञाओं का पालन भी न कराए, क्योंकि अक्सर देखा गया है कि अभिभावक हमेशा ही अपने बच्चों से काम कराते रहते है। बच्चे का मन हुआ तो काम कर देते हैं, जब मन नहीं हुआ तो काम नहीं करते है। हम उन पर गुस्सा उतार देते हैं और हम उसे बेवकूफ और अनुशासनहीन मान लेते हैं। ऐसा भी नहीं होना चाहिए। बच्चो के व्यक्तित्व विकास के लिए घर का, विद्यालय का वातावरण प्रेरणाप्रद होना चाहिए। बच्चो पर वातावरण का जादुई प्रभाव पड़ता है क्योंकि बचपन मे बच्चो की ग्राह्य शक्ति तीव्र होती है इसलिए हमे अपने वातावरण में इस प्रकार का कोई विकार उत्पन्न नही करना चाहिए जिससे बच्चो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। बालकों की मनोदशा पर मनोचिकित्सक हैरी स्टैक लम्बे समय से विशद् अध्ययन एवं अनुसधान के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि—बच्चा जन्म से बुराई लेकर नही आता बल्कि पारिवारिक एव सामाजिक शिष्टता और अशिष्टता के माहौल को देखकर ही वह भला-बुरा बनता है। घर तथा स्कूल के सम्पर्क/व्यवहार मे आकर ही उसमें सुसंस्कारिता/ कुसस्कारिता के बीज आरोपित होते चले जाते हैं जो श्रेष्ठ अथवा निम्न स्तर के व्यक्तित्व की आधारशिला रखते है। उन्होने मानव के दो स्वरूप बताए हैं।

- ☐ बहिर्मुखी (एक्सट्रोवर्ट)
- ☐ अन्तर्मुखी (इन्ट्रोवर्ट)

बालक की बाह्य गतिविधियो को देखकर ही अन्दर की उत्कृष्टता या निकृष्टता का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। उन्होंने बहिर्मुखी स्तर के व्यक्तित्व को

ही सामाजिकता का दर्जा दिया है क्योंकि इसके सहारे जन समूह के हित साधन को ध्यान में रखते हुए अनुशासित ढंग से व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है। ऐसा व्यक्ति सदैव आशावान एव उत्साही होता है। अन्तर्मुखी को उन्होंने सकोची, स्वार्थी और सकीर्ण स्तर का बताया है जो सदैव अपनी ही प्रगति का ताना-बुना बुनता रहता है। बच्चे पर उसकी सगति का प्रभाव भी प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। जिस परिवार में अच्छे प्रतिभावान माता-पिता हो या स्कूल में प्रतिभावान शिक्षकों के संपर्क मे हों या किसी अन्य प्रभावशाली व्यक्तित्व के संपर्क में हो तो बच्चों के व्यक्तित्व पर इसका सकारात्मक प्रभाव ही पडेगा। सज्जनों के सम्पर्क में रहने से अनायास ही सद्प्रवृतियों की छाप पडती है और वे धीरे-धीरे साथियो को भी अपने जैसा बना लेते हैं।

जिस वातावरण मे दुष्प्रवृतियों का बोलबाला है उस वातावरण मे रहने से बालको पर भी उन दोषो की छाप निश्चित रूप से पड़ जाएगी। इसलिए बच्चों में बचपन से ही कुसंस्कारों और कुविचारों को हावी नही होने देना चाहिए। इसके लिए अभिभावक, अध्यापक, समाज और शासन के सम्मिलित प्रयास से हम सफल हो सकते हैं। बच्चों के सामने ऐसे प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए जिससे बच्चे अच्छे बन सकें। हम यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है जो कि निम्न हैं– एक बार ईश्वरचद विद्यासागर को इग्लैड में एक सभा की अध्यक्षता करनी थी। प्राय उनके बारे मे यह बात प्रचलित थी कि उनका हर काम घड़ी की सुई के साथ पूर्ण होता है। वे निश्चित समय पर सभा भवन मे पहुंचे तो देखा कि लोग सभा भवन के बाहर घूम रहे थे। पूछने पर पता चला कि सफाई कर्मचारी के न आने के कारण भवन की सफाई नहीं हो पाई है। ईश्वरचंद ने यह सुना तो उन्होंने यकायक झाडू उठाया और सफाई करने लग गए। उनको ऐसा करते देख सभी लोगों ने कार्य करना आरंभ कर दिया। कुछ ही समय में भवन की सफाई एवं फर्नीचर यथास्थान लग गया। जब सभा आरभ हुई तो ईश्वरचंद विद्यासागर ने कहा–चाहे कोई व्यक्ति हो या फिर राष्ट्र उसे स्वावलम्बी होना चाहिए। अभी आप लोगों ने देखा कि एक-दो व्यक्तियों के न आने से सभी परेशान हो रहे थे। हो सकता है उन व्यक्तियों तक इसकी सूचना न पहुची हो या किसी प्राकृतिक आपदा के कारण वे यहां न पहुंचे हो, यदि इस स्थिति में आज का यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया जाता तो कितने व्यक्तियों का आज का श्रम एवं समय व्यर्थ जाता। अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलंबी होना चाहिए। वक्त पड़ने पर किसी भी कार्य को करने से नही हिचकिचाना चाहिए। इस प्रकार के उदाहरण बच्चों के सम्मुख रखने से उनमें किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं आएगी और वे स्वावलंबी बन सकेंगे।

एक और दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है–लाला दौलतराम जी अमृतसर मे इन्सपैक्टर थे। उनका लड़का जब हाईस्कूल पास कर चुका तो नौकरी खोजने के लिए उसे लाहौर भेजा गया। बालक ने लाहौर पहुचकर अपने कुल-पुरोहित से मिलना चाहा जो एक इजीनियर के दफ्तर में नौकर थे। जब वह दफ्तर मे पहुंचा तो वहां कोई नही था। बालक एक खाली कुर्सी पर बैठकर अपने कुल-पुरोहित की प्रतीक्षा करने लगा। तभी वहां इजीनियर साहब भी आ गए। भाग्य की बात! जिस कुर्सी पर वह बालक बैठा था, वह इंजीनियर साहब की थी। उन्हे यह बहुत बुरा लगा और डाट-डपटकर उसे उस कुर्सी से उठा दिया। थोडी देर में उनके पुरोहितजी भी आ गए। उन्होंने उस बालक से नौकरी आदि के विषय मे बात की। तभी बालक बोल उठा– जी! नौकरी-चाकरी करने का मेरा विचार बदल गया है। क्यों? ऐसी क्या बात हुई? अब तो मैं और आगे पढूगा। आज जिस कुर्सी से मै उठाया गया हूं एक दिन मैं उस पर बैठकर ही रहूंगा। फिर गंगाराम ने लौटकर रुड़की कालेज में नामांकन कराया और सचमुच एक दिन वे इंजीनियरिंग की परीक्षा पास कर उस कुर्सी पर बैठे। उनकी वह टेक पूरी हुई। आगे चलकर वे बहुत ऊंचे पद पर पहुंचे और उन्होंने लाखो रुपए विभिन्न संस्थानों को दान दिए। इस उदाहरण से बच्चों में लगन आएगी और लगन के आधार पर वे अच्छे बन सकेंगे। बच्चों के सामने हम जैसा उदाहरण प्रस्तुत करेगे वे वैसा ही बनेंगे। जैसा हमे देखेगा वैसा

ही वह आचरण करेगा क्योंकि बच्चों का मन बड़ा कोमल और खुला होता है।

हम उन्हें अच्छे नागरिक बना सकते हैं। बच्चे अपने शिक्षकों की बात जल्दी मानते हैं। अत बालकों मे अच्छी आदतों के विकास में विद्यालय की अहम् भूमिका है। सरल व्यवहार, खेल-खेल मे अनुकरण आदि तरीको से बच्चो में अच्छी आदते रोपित होने के बाद उन्हे बनाए रखने में माता-पिता का परम स्थान है। अतः अच्छी आदतों के विकास का कार्य एक-दूसरे पर न थोपें क्योकि उसमे बालक का ही नही पूरे राष्ट्र का नुकसान होता है, क्योकि बच्चा आखिर बच्चा ही होता है। बच्चा पढाई मे थोड़ी-सी कठिनाई आने पर घबरा उठता है। उस समय उसे सात्वना और प्यार चाहिए। केवल अच्छे और बड़े स्कूलों मे नाम लिखाने से माता-पिता की जिम्मेदारी से मुक्ति नही मिल पाती। अगर ठीक ढंग से बच्चे की पढ़ाई-लिखाई और स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाय तो वह नि.सन्देह अच्छे विद्यार्थी के रूप मे अवश्य परिणित होगा।

बच्चों को रचनात्मक बनाएं। आज बच्चे की रचनात्मक व स्वतः कुछ कर पाने की क्षमता का विकास नही हो पा रहा है क्योकि स्कूल मे कार्य, फिर गृह-कार्य मिलना व ट्यूशन पढ़ना। इनके बाद बच्चा किसी भी प्रकार से अपने रचनात्मक कार्य के लिए समय नही निकाल पाता। फलतः उसका मन पढाई से हटता चला जाता है। खेल-कूद का भी बच्चे को समय नहीं मिलता। इस उबाऊ माहौल मे बच्चो की शिक्षा के प्रति रुचि शनै.-शनैः खत्म हो जाती है तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं है। प्रारम्भिक शिक्षा को सुरुचिपूर्ण बनाकर शिक्षा मे गीत, सगीत, कहानी, लोकगीत व चित्र आदि के माध्यम से बच्चो को काफी उत्साहित किया जा सकता है। बच्चो का बस्ता भी छोटा हो। बच्चो के सर्वागीण विकास के लिए आहार, निद्रा व खेल तीनो का शिक्षा से कुछ कम महत्व नहीं है। शिक्षको व शिक्षाविदो को चाहिए कि शिक्षा को रुचिकर बना कर बच्चों में शिक्षा के प्रति उत्साह व रुझान पैदा करें। बच्चो का स्वास्थ्य भी अच्छा हो। वैसे छोटा बच्चा स्वतः ही अपने हाथ-पैर फेंककर अपने लायक व्यायाम कर लेता है। फिर भी बच्चे की बढ़ती उम्र के साथ-साथ छोटे-छोटे व्यायामों की आदत डालनी चाहिए। शिशु अवस्था में व उसके उपरान्त शरीर की मालिश का काफी महत्व बताया गया है। व्यायाम व दैनिक मालिश से बच्चा स्वस्थ व बीमारी रहित रह सकता है। स्वस्थ बच्चे के सम्मुख ऐसे क्रियाकलाप प्रदर्शित किए जाने चाहिए जिनका उसके मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव पड़े।

प्रत्येक आदमी बच्चे से ही वयस्क होता है जो आदत बचपन में डाली जाती है वही आदत बडे होने पर भी बनी रहती है। घर में बच्चो को एक कैदी की तरह नही बल्कि स्वतन्त्र रूप से रहने देना चाहिए। घर के अलावा उन्हे विभिन्न स्थानो पर जैसे— पार्क, बाजार, संग्रहालय, चिड़ियाघर, झरने, बांध आदि स्थानों पर भ्रमण हेतु ले जाना चाहिए। इससे बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं।

सभी बच्चों के सर्वागीण विकास के लिए राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का गठन होना चाहिए। शिक्षा प्रणाली मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिकता का विकास करना ही नही अपितु व्यक्ति की आध्यात्मिकता का विकास करना भी है। शिक्षा मानव में सहयोग श्रमप्रियता, रचनात्मक कार्यो के प्रति लगाव, बौद्धिक जागृति, वैचारिक स्पष्टता और अच्छे नागरिक बनने की भावना उत्पन्न करने मे समर्थ होनी चाहिए। स्वस्थ आत्मबल से दीप्त, निर्भीक, प्रबुद्ध, तेजस्वी और चरित्रवान विद्यार्थी ही राष्ट्र की प्रगति का नियामक बन सकता है। तभी वह राष्ट्र निर्माण में अपना अतुलनीय योग देकर राष्ट्र को गौरवान्वित कर सकता है। शिक्षित बच्चे समाज को, राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जाएंगे। आज राष्ट्र को शिक्षित एंव जागरूक समाज की आवश्यकता है यह तभी सभव है जब शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो। ❑❑

117 बलवंत नगर, गांधी रोड
ग्वालियर, मध्य प्रदेश

किशोरावस्था में मादक औषधियों की बढ़ती आदत

❑ चन्दन कुमार पंकज

किशोरावस्था में नशीली दवाओं तथा नशीले पदार्थो की बढ़ती आदत इस सदी की सबसे बड़ी सामाजिक मनोवैज्ञानिक समस्या है, और यह विश्वव्यापी रूप ले चुकी है। 15 से 25 वर्ष की उम्र के लोग इस आदत के ज्यादा शिकार हो रहे हैं। किसी भी राष्ट्र का किशोर वर्ग उसका कर्णधार होता है किन्तु जिस देश के किशोरों की मानसिक व शारीरिक शक्ति नशाखोरी से खोखली होती जा रही हो, निश्चय ही उस देश का भविष्य अंधकारमय होगा। किशोरावस्था जीवन का स्वर्णिमकाल होता है, किशोर शरीर स्फूर्ति व शक्ति का भडार होता है, इस अवस्था में मन में भी अदम्य उत्साह व कुछ कर गुजरने और जीवन की उंचाइयां छू लेने की तमन्ना होती है। परन्तु जब इसी स्वर्णिम अवस्था में नशीली दवा रूपी घुन लग जाता है तो वह धीरे-धीरे मन व शरीर दोनो को खोखला कर देता है। परिणामतः नशे के आदी किशोर किसी काम के नही रह जाते बल्कि वे समाज के भार के रूप मे अपना व समाज दोनो का विनाश करते रहते है।

किशोर लोगों में बढ़ती नशीली दवाओं की आदत का कारण हमारा सामाजिक व आर्थिक ढाचा है। आज की अर्थ प्रधान उपभोक्तावादी सस्कृति में नैतिक शिक्षा व नैतिक माहौल का ध्यान किसी को नही है। मा-बाप अधिक अर्थोपार्जन की अभिलाषा से नौकरियों या धन्धों में जुट जाते है, बच्चे पैतृक प्यार व स्नेह से वचित रह जाते है, ऐसी अवस्था मे उनकी मानसिकता मे एक असतुलन बन जाता है। दूसरी तरफ एक वर्ग ऐसा है जो पैसा कमाने के लिए इन सुकुमार मन के बच्चो को अपना निशाना बनाता है। आइसक्रीम व चॉकलेट मे मिलाकर उन्हे नशीली औषधियां खिलाता है। धीरे-धीरे ये बच्चे इसके आदी हो जाते है और नशीली औषधियो व पदार्थो के ग्राहक बन जाते है।

> **जिस प्रकार हवन-कुण्ड में आहुति पड़ने पर उनकी अग्नि दबती नहीं बल्कि और अधिक बढ़ती है उसी तरह इच्छाओं की पूर्ति होने पर वे और बढ़ती जाती हैं। महात्मा बुद्ध ने भी कहा था– इच्छाएं दुख का कारण हैं। आज के भोगी-विलासी जीवन में हर वय का मनुष्य असन्तुष्ट है खास करके किशोर वर्ग जो भावनात्मक रूप से अधिक संवेदनशील होते हैं। अतः जरा-सा असन्तुष्टि का झटका लगते ही वे लड़खड़ा जाते हैं और मुड़ जाते हैं नशाखोरी के दल-दल की तरफ, जहां से उबरना बड़ा मुश्किल होता है।**

नशीली दवाओं का आदी होने का दूसरा कारण बड़ी उम्र के किशोरो मे पाया जाता है। जब एक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार का लड़का उच्च आय वर्ग के लड़कों का रहन-सहन देखता है तो उसके मन में एक असंतोष की भावना पनपती है। वह अपने आप में हीन भावना महसूस करता है। धीरे-धीरे इसकी मानसिकता विकृत होने लगती है, और वह शांति ढूंढ़ता है– नशीली दवाओं मे। विचारणीय समस्या का तीसरा प्रमुख कारण इंजीनियरिंग कॉलेज मे मिलता है। कभी पढ़ाई के भार के कारण मानसिकता विकृत होती है, तो कभी पढ़ाई कर लेने के बाद नौकरी न मिलने से असंतोष की भावना उसकी मानसिकता विकृत कर देती है और वे भी निकल पड़ते हैं अपनी असंतुष्ट मानसिकता को संतुष्टि देने नशीली दवाओं के पक-पयोधि में।

आज हर व्यक्ति की अनन्त इच्छाएं है जो प्रायः असंतुष्ट रहती हैं। इच्छाए कभी शात नहीं होतीं–

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्तमेव भूयः एव अभिवर्धते।।'

जिस प्रकार हवन-कुण्ड मे हिवषान्न पड़ने पर उनकी अग्नि दबती नहीं बल्कि और अधिक बढ़ती है उसी तरह

इच्छाओं की पूर्ति होने पर वे और बढ़ती जाती है। महात्मा बुद्ध ने भी कहा था— इच्छाएं दुख का कारण है। आज के भोगी-विलासी जीवन में हर वय का मनुष्य असन्तुष्ट है खास करके किशोर वर्ग जो भावनात्मक रूप से अधिक संवेदनशील होते हैं। अतः जरा-सा असन्तुष्टि का झटका लगते ही वे लड़खड़ा जाते हैं और मुड़ जाते हैं नशाखोरी के दल-दल की तरफ, जहा से उबरना बडा मुश्किल होता है।

गरीब तबके के बच्चे व किशोर उम्र के लड़को को वैसे भी कोई सामाजिक व भावनात्मक सरक्षण सुलभ नहीं होता। अत. वे आसानी से नशीली दवाओ के आदी हो जाते हैं। उन्हें प्राय. महगी नशीली दवाएं सुलभ नहीं होतीं तो वे किसी कपड़े के टुकड़े को पैट्रोल मे डुबोकर रख लेते है और उसे ही सूंघ-सूंघ कर झटका पाते रहते है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि नशीली दवाओ की आदत समाज के हर वर्ग के किशोर में पाई जाती है। नशीली दवाओ की आदत इतनी खराब होती है कि एक बार लग जाने पर छूटती नहीं। नशेडी को जब नशा नही मिलता तो बैचेन हो जाता है, यदि नशीले पदार्थ खरीदने का रुपया उसे आसानी से नहीं मिल पाता है तो वह अपने ही घर में चोरी करता है, अपने ही परिजनों की हत्या तक भी कर देता है। इस प्रकार नशीली दवाओं का दुष्परिणाम बहुयामी है। यह न केवल राष्ट्र के भावी कर्णधारो के शरीर व मन.शक्ति का क्षय करती है बल्कि तमाम अपराधी प्रवृतियों को बढ़ावा देती है। ऐसी प्रवृति के लोगो में यौन अपराध की प्रवृति भी बलवती होती है और बडी विकराल व विकृत कामुकता के रूप मे परिणत होकर यौनशोषण के बाद हत्या तक करवा देती है।

कुछ नशीली दवाओ को उसके नशेड़ी नसो में सुई लगाकर शरीर में पहुंचाते है। एक ही सुई का प्रयोग कई नशेड़ी करते हैं जिसके कारण एक नशेड़ी के शरीर मे एड्स या हेपेटाइटिस के विषाणु हैं तो वे दूसरे नशेड़ियो के शरीर में भी पहुंच कर उन्हें रोग संक्रमित कर देते हैं। इस प्रकार इस बुरी आदत के भयानक दुष्परिणाम समाज मे देखने को मिलते हैं।

कुछ नशीली दवाएं सिगरेट में भर कर पी जाती हैं। एक ही सिगरेट को कई नशेड़ी पीते हैं और विभिन्न बीमारियो से सक्रमित होकर असमय ही काल के गाल में समाहित हो जाते हैं। पर उससे पहले वे अपने मां बाप पर इतना अधिक संवेदनात्मक भार डाल चुके होते हैं जिससे उन्हे इससे उबरने मे काफी समय लग जाता है। नशीली दवाए यदि अधिक खर्चीली है या सहज सुलभ नही है तो नशेड़ी लोग नई-नई सहज सुलभ दवाएं या पदार्थ खोज लेते हैं जैसे खासी की दवा में समय सुधार करने वाला सफेद रंग का करेक्टिग फ्लूड, वार्निश, रिमूवर, पैट्रोल आदि का प्रयोग करते हैं इनमे से कफ सीरप को पीकर नशे की अनुभूति करते हैं किन्तु करेक्टिंग, फ्लूड, वार्निश रिमूवर, पेट्रोल और ग्लू आदि सूघ कर अपनी नशे की आदत को तृप्त करने का असफल प्रयास करते हैं।

यूं तो नशीली दवाओं का सेवन एक विश्वव्यापी समस्या है पर हमारे देश मे इसके अधिक बढ़ने का कारण यह है कि भारत गोल्डन केशेन्ट— अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईरान और गोल्डन त्रिकोण— म्यांमार, लाओस तथा थाईलैंड के बीच नशीली दवाओ के परिवहन और अदला-बदली वाले क्षेत्र है। चूकि अधिकांश नशीले पदार्थ गोल्डन केशेन्ट से गोल्डन त्रिकोण हमारे ही देश से होकर जाते हैं। अतः इनकी सुलभता बढ़ जाती है और परिणामत· नशेड़ियों की संख्या बढ़ती जा रही है और हमारे देश के महत्वपूर्ण अंश को घुन की तरह खाकर खोखला करती जा रही है।

चूकि नशीले पदार्थ जैसे मार्फीन, कोकीन, ब्राउन शुगर आदि सहज सुलभ नहीं होते किन्तु नशीली दवाएं, मेडिकल दुकानो पर आसानी से मिल जाती हैं। अत. नशेड़ी लोग इन दवाओ का सेवन करने लगते है जैसे वेलियम 5, वेलियम 10, डाइजापाम। वैसे ये दवाए रोग पीड़ित व्यक्ति को शमनकारी औषधि और सोने के लिए दी जाती है पर नशेड़ी लोग इन्हे अधिक संख्या मे लेकर अपना नशा बुझाने का प्रयास करते हैं।

महानगरी मुम्बई में कई तकनीकी विद्यालय स्थित हैं उनमें से बहुत से विद्यार्थियों को केटामाइन लेने की आदत है। इस वर्ष अप्रैल मे संकल्प पुनर्वास न्यास नामक गैर-सरकारी संगठन ने 51 विद्यार्थियों को इस बुरी आदत से छुड़ाने का स्तुत्य कार्य किया। केटामाइन व मर्फिन के अलावा फोर्टविन नामक दर्द नाशक औषधि नशों मे सुई लगाकर विद्यार्थियों को अपने शरीर में पहुंचाते पाया

गया। डाक्टरो के अनुसार केटामाइन का दुरुपयोग करने पर यह हृदय व श्वसन तत्र को क्षति पहुंचाता है। शरीर मे प्रवेश कर यह विभ्रम की अनुभूति करती है विभ्रम की स्थिति में मनुष्य एक लुभावने आनन्द की अनुभूति करता है, कुर्सी पर बैठा विभ्रमित व्यक्ति महसूस करता है कि जैसे वह हवाई जहाज में उड रहा है किन्तु बाद में नशेड़ी को सन्निपात व जबडा नामक बीमारी हो जाती है। अधिक मात्रा में केटामाइन लेने पर मृत्यु भी हो सकती है। इसके लम्बे समय के सेवन के दुष्परिणाम अभी ज्ञात नहीं है क्योकि इसके दुष्प्रयोग के बारे में हाल ही मे जानकारी मिली है। यह औषधि 22 रुपया 20 पैसे मे मिलती है लेकिन जब मेडिकल स्टोर वाले जान जाते है कि कोई नशेड़ी इसे खरीद रहा है तो वे मनमाना दाम भी वसूल करते हैं।

कुछ नशीली दवाओं को नशेड़ी लोग खुद भी बना लेते हैं इसमें एक है क्रेक। जिसे बनाने के लिए सोडाबाई कार्बोनेट, पानी और थोड़ी-सी बर्फ की आवश्यकता होती है। नशेड़ी लोग रसायन वैज्ञानिकों की तरह नई-नई खोज करते हैं और उनका सेवन कर अपना अमूल्य जीवन बरबाद करते हैं। प्राय. नशीले पदार्थ मनुष्य के तन्त्रिका-तंत्र को प्रभावित करते हैं और उनका सेवन करने वाला क्षणिक विभ्रम की अवस्था मे पहुंचकर आनन्द की अनुभूति करता है और वह भी ऐसा आनंद जो इसके पूरे जीवन को परम कष्टदायक बना देता है। स्मैक आदि को जब नशेड़ी सिगरेट वगैरह में भरकर पीता है तो धुए के साथ उसके शरीर मे कई विषाक्त पदार्थों का समूह भी पहुंच जाता है। इसमे प्रायः कार्बन मोनोऑक्साइड, नीकोटीन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, आर्सेनिक व तर आदि होते हैं। नशेड़ी जब धुंए व नथुनों के माध्यम से नशीले पदार्थ लेते हैं तो इनकी धमनिया बड़ी होकर सिकुड़ जाती है जिससे रक्त प्रवाह में बाधा पड़ती है। रक्तचाप बढ़ बढ़ जाता है और कैंसर भी हो जाता है। अन्य नशीले पदार्थों से दिमाग व पूरा तंत्रिका तन्त्र दुष्प्रभावित होता है, उसका दिमाग व उसके अंग ठीक से काम करना बन्द कर देते हैं, धीरे-धीरे कमजोर होकर नशेड़ी काल-कवलित हो जाता है।

चूकि नशीले पदार्थो का सेवन एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गया है। अतः सयुक्त राष्ट्र संघ भी इसके निर्मूलन का प्रयास कर रहा है। सन 1998 के जून माह में संयुक्त राष्ट्र संघ का नशीले पदार्थो का सम्मेलन न्यूयार्क में हुआ जिसमें 150 देशों ने भाग लिया और अगले दस वर्षो मे नशीले पदार्थो को समाप्त कर देने की घोषणा पर हस्ताक्षर किए। सयुक्त राष्ट्र संघ ने नशीले पदार्थो से विश्व को मुक्त कराने के उद्देश्य से युनाइटेड नेशन्स ड्रग कन्ट्रोल प्रोग्राम नामक सगठन बनाया है, जिसका मुख्यालय वियना मे है। युनाइटेड नेशन्स ड्रग कन्ट्रोल प्रोग्राम सभी देशो को नशीले पदार्थो के नियत्रण व इसके नशेडियो के पुनर्वास के लिए धन उपलब्ध कराता है। 26 जून को अन्तर्राष्ट्रीय मादक पदार्थ विरोधी दिवस के रूप मे पूरे विश्व में मनाया जाता है और सरकार युनाइटेड नेशन्स ड्रग कन्ट्रोल प्रोग्राम के निर्देश मे मादक पदार्थो के सेवन के प्रयोग से लोगो को छुड़ाकर अच्छी तरह जीवन-यापन करने का प्रयास करती है।

भारत वर्ष मे नारकोटिक्स कन्ट्रोल ब्यूरो नामक संगठन मादक द्रव्य के अपराधियों को पकड़ने का कार्य करता है और अभियुक्तो के खिलाफ आरोप पत्र नारकोटिक्स ड्रग्स एण्ड साइकोट्रोपिक सब्सटैंसेज एक्ट के तहत अभियोग पत्र न्यायालय मे दाखिल करता है। कुछ दिन पहले नारकोटिक्स ड्रग्स एण्ड साइकोट्रोपिक सब्सटैंसेज एक्ट के स्पेशल जज ए. के. मुखर्जी ने इलाहाबाद में एक व्यक्ति को दस वर्ष का कारावास व एक लाख रुपए का जुर्माना किया। नशीली दवाओ व नशीले पदार्थो के अपराधी को पकड़ने का कार्य नारकोटिक्स कन्ट्रोल ब्यूरो करता है, किन्तु कभी-कभी स्थानीय सिविल पुलिस अपराधियों को पकड़ने का भेद लेना चाहती है, जिसके कारण दोनों मे भिड़न्त हो जाती है। कुछ दिनो पहले बाराबंकी की स्थानीय पुलिस ने एक व्यक्ति को हेरोइन रखने के झूठे परिवाद में पकड़ लिया जो व्यक्ति एन. सी. बी. को अपराधियो की खबर देता था।

यदि समाज जागृति से इस बुराई को समूल्य नष्ट करे तो इससे पनाह पाया जा सकता है। ❑❑

मिलिया फखरुद्दीन अली अहमद
बी.एड. टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, रामबाग
पूर्णिया, बिहार

प्राइमरी शिक्षक

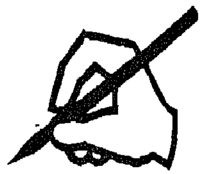
वर्ष 28 | अक : 3 | जुलाई 2003

इस अंक मे

शिक्षकों ने लिखा है

विचार

संपादक की कलम से



मानव संसाधन के उन्नयन में प्राथमिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्र निर्माण के प्रयासों में मानव संपदा की उपयोगिता की दिशा में कुछ विशेष उभार-सा आया है जिसके फलस्वरूप अनेकों नवीन शैक्षिक कार्यक्रमों जैसे सर्वशिक्षा अभियान को विभिन्न राज्यों मे प्राथमिकता के आधार पर लागू किया जा रहा है। शिक्षा की महत्ता का आकलन केवल शिक्षाविदों ने ही किया हो, ऐसा नही है। इसकी आवश्यकता पर अर्थशास्त्रियो, समाजशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, विचारको आदि सभी ने विशेष बल दिया है। अनेक सर्वेक्षणों एवं शोधों द्वारा यह स्थापित हो चुका है कि शेष शिक्षा के स्तरो की तुलना में प्राथमिक शिक्षा में पूंजी निवेश से उच्च दर की वापसी प्राप्त होती है। इसका यह आशय नहीं है कि उच्च शिक्षा के विकास को अनदेखा कर दिया जाए। परन्तु यह भी सच है कि स्वतंत्रता के पश्चात् यदि देश की पूर्ण शिक्षा पद्धति को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो उच्च शिक्षा को अधिक बढ़ावा मिला है तथा प्राथमिक शिक्षा सदैव अभावों से ग्रस्त रही है।

प्राथमिक शिक्षा की इस उपेक्षा का कुप्रभाव देश में जनसंख्या का विस्फोट, गरीबी, अस्वस्थता, विकास कार्यो मे धीमी प्रगति, आम जनता मे आधुनिक विचारों का अभाव, सामाजिक असमानता आदि के रूप में देखा जा सकता है। अत. प्राथमिक शिक्षा को 'लोकहित कार्यक्रम' का रूप देने तथा इसके लिए संपूर्ण वित्तीय प्रावधान की सरकार द्वारा वचनबद्धता आज के संदर्भ में नितांत आवश्यक है।

स्वतत्रता के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे वित्तीय अपर्याप्तता तथा अन्य कठिनाइयों के होते हुए भी प्रगति हुई है। देश मे प्राथमिक शिक्षा की सुविधा एक किलोमीटर के अन्दर ही उपलब्ध कराने की दिशा में प्राथमिक विद्यालय चलाए जा रहे हैं। इतना विशाल प्राथमिक शिक्षा का ढांचा विश्व मे सबसे बड़ा माना जाता है। ❑❑

राष्ट्रीय व भावात्मक एकता की अभिवृत्ति क्यों और कैसे विकसित हो?

❑ कैलाश चन्द्र व्यास

राष्ट्र की उत्तरोत्तर प्रगति एवं राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीयता, भारतीय समाज के साथ दायित्व निर्वाह की भावना और सतत् सुदृढ़ता जैसी अभिरुचि व अभिवृत्ति के विकास, उपादेय एवं उपयोगी शिक्षा से ही संभव हो सकती है। लोकहित में व्यक्ति द्वारा प्रभावी प्रयास से राष्ट्रीय विकास सहज ही सम्भव हो सकता है। राष्ट्रवाद, समाजवादी समाज, धर्म निरपेक्षता, पंथ-निरपेक्षता और लोकतंत्र के सिद्धान्तों को शिक्षा द्वारा छात्रों को संकल्पित आदर्शो की अभिरुचि व अभिवृत्ति विकसित सहज ही भावी पीढ़ी में पैदा की जा सकती है। दुर्भाग्य है कि भारत जैसे प्राचीन संस्कृति वाले राष्ट्र में विकृतियां, विसंगतियां एवं संकुचितता जैसे कृत्यों के फलस्वरूप राष्ट्र में विघटनकारी तत्व आए दिन दुर्घटनाएं करते हैं। राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने हेतु हमारे सांस्कृतिक आदर्शों को हृदयंगम करवाने हेतु विभिन्नता में एकता कायम करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय एकता पर ध्यान केन्द्रित करना वांछित है।

राष्ट्र की प्रगति एवं राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीयता, समाज के प्रति व्यक्तिगत दायित्व भावना और सतत् सुदृढ़ता उपयोगी शिक्षा से ही सभव हो सकती है। लोकहित में व्यक्ति के प्रयास करने से राष्ट्र का विकास होता है। राष्ट्रवाद, समाजवादी समाज, धर्म निरपेक्षता, पंथ निरपेक्षता और लोकतत्र के सिद्धान्तों में सकल्पित वर्तमान आदर्शो के भावी विकास हेतु सशक्त आधार प्रदान किया जा सकता है। जिन्हे हम शिक्षा द्वारा भावी पीढ़ी में पैदा कर सकते है। दुर्भाग्य है कि भारत जैसे प्राचीन सास्कृतिक देश मे विकृतियां, विसगतियां एव सकुचितता के फलस्वरूप राष्ट्र में विघटनकारी तत्व आए दिन दुर्घटनाए करते रहते है। राष्ट्र की प्रगति मे अवरोध पैदा करने और सार्वजनिक हित मे निर्मित योजनाओं और अमन-चैन को अस्त-व्यस्त करने मे स्वार्थी तत्व संलग्न होते दृष्टिगोचर हो रहे है। किसी न किसी को आधार बनाकर राष्ट्र को विभिन्न खंडो मे करने के लिए आतुर हो रहे है। व्यक्तिगत स्वार्थ, धर्म के आधार पर द्वन्द्व, आतंकवाद, संकीर्ण दृष्टिकोण, झूठे दभ, स्वार्थपरता, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संकीर्णता हमारी सांस्कृतिक धरोहर व राष्ट्रीय दर्शन की मूलभूत आत्मा को धूमिल करने में संकोच नहीं कर रहे है। परस्पर सप्रदाय, भाषा, क्षेत्र एवं आर्थिक लोलुपता तथा आत्मघाती फूट के फलस्वरूप राष्ट्र के सम्मुख अनेको चुनौतिया खड़ी कर दी है। इससे राष्ट्रीय एकता के लिए दूरगामी भयंकर दुष्परिणाम होने की आशकाएं हो सकती हैं। राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता पर भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को शिक्षा दी, "गुणों का नाश फूट के कारण ही होता है, फूट से वे शत्रु द्वारा सुगमता से जीत लिए जाते है, अतः गुणों को प्रयत्न करना चाहिए कि वे संघ से संगठित होकर रहे।" आज स्वार्थी तत्व देशवासियों की भावनाओं से खिलवाड़ करते हुए राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहे देश के विकास के मार्ग में अवरोध पैदा कर रहे है। इस संबंध में रवींद्रनाथ का कथन आज भी प्रासंगिक है—"सबसे प्रथम देश के व्यक्तियों में मातृभूमि के लिए भावना उत्पन्न करनी चाहिए। शेष कार्य तो इसके उपरांत भी किए जा सकते हैं।" समय अब भी हमारे पास है, जब हम शिक्षा के माध्यम से भावी पीढ़ी में

सहिष्णुता और सद्भाव की सांस्कृतिक परंपराओं को मुख्य ध्येय बनाकर देश के भावी नागरिकों को उनके शिक्षा अध्ययन काल में योग्य बनाया जाए कि वे धर्म निरपेक्षता, भाषा, क्षेत्रीयता एव आर्थिक विषमता के सही अर्थ तथा मूल्यो को हृदयंगम करवाते हुए राष्ट्रीय अखंडता और सपूर्ण अनेकताओं में व्याप्त भारत की एकता के सर्वोपरि मूल्य को समझ सकें। शिक्षा के माध्यम से ऐसा अवबोध दें कि प्रत्येक भारतीय का नागरिक कर्तव्य हो कि वे राष्ट्रहित में सहयोगी सिद्ध हो सके तथा व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सदप्रयास के लिए अडिग नैतिक आधार की व्यवस्था करे। भारतीय संस्कृति का मूल आधार निष्काम, नि.स्वार्थ राष्ट्रीय सेवा की वृत्ति ही शिक्षा का केन्द्र बिदु बनकर राष्ट्रीय एकता स्थापित की जा सकती है। राष्ट्र एवं राष्ट्रीय दर्शन की जड़ों पर कुठाराघात निश्चय ही हमारी राष्ट्रीय अस्मिता को संकट मे डालने जैसा सिद्ध हो सकता है। अत· हमें अथर्ववेद के इस उपदेश को प्रत्येक भारतीय के लिए प्रेरणादायक मानना चाहिए– "मैं अपनी मातृभूमि के लिए और उसके दुःख को दूर करने के लिए सब प्रकार के कष्ट सहने को तैयार हूं। वे कष्ट चाहे जिस ओर से, चाहे जिस समय मे आए, चिंता नही।" हमारी स्वाधीनता, अखण्डता और जीवन शैली शाश्वत सिद्ध हुई है। जब-जब विदेशी ताकतों ने हमें कुचलने का प्रयास किया सभी भारतीयों ने उसका मुहतोड़ जवाब दिया है और उनके मसूबे सफल नहीं हुए हैं। इस प्रसग में डा. सपूर्णानद के विचार सार्थक सिद्ध हुए–"देश एकता और एक एकीकृत रहेगा चाहे इसके निवासियों में कितनी विभिन्नताएं क्यो न पाई जाएं।" अतः देश की एकता, अखण्डता एव अस्मिता के लिए स्वार्थपरक व सकुचित दृष्टिकोण को तिलाजलि देने हेतु शिक्षा अहम् भूमिका अदा करे। नागरिको में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करते हुए राष्ट्र के प्रति नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यो को हृदय से स्वीकार करने पर ही राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकेगी। इस पुण्य कार्य हेतु शिक्षक और विषय-वस्तु दोनों का उद्देश्य एक ही हो–देश की भावात्मक और राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना।

राष्ट्रीय एकता के विभिन्न तत्वों को खंडित करने के असफल प्रयत्नों के उपरात हमारे कुछ आदर्श हैं जो भारत की आत्मा में जीवित हैं। अतः सही दृष्टिकोण का विकास करने से हमारे मस्तिष्क और हृदय मे एकता स्थापित हो सकती है। सच्चे भारतीय होने के नाते हमें विश्व में उजागर करना है कि हमारी "विभिन्नता मे एकता" कायम है और कायम रहेगी। क्योंकि भारतीयों ने व्यक्तिगत हितों को राष्ट्र के हित मे त्याग देने का उदाहरण 1961, 1965 तथा 1971 में थोपे हुए युद्ध मे कर दिखाया है।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता का अर्थ

राष्ट्रीय एकता– राष्ट्रीय एकता का अर्थ एक राष्ट्र के निवासियो की भावात्मक तथा आंतरिक एकता से है, जिसमे वे अपनी एक विशिष्ट जाति, वर्ग, धर्म, संस्कृति, संप्रदाय तथा प्रांत के संकीर्ण हितों को भूलकर सपूर्ण राष्ट्र की एक सामान्य सस्कृति, सामान्य भाषा, सामान्य मौलिक तथा राजनैतिक परिस्थिति तथा जीवन शैली को अपनाते हैं और संपूर्ण राष्ट्र की प्रगति की उत्कृष्ट आकाक्षा करते हैं।

भावात्मक एकता–देश के सभी समूहो, संप्रदायों व क्षेत्रों के लोग समस्त मतभेद भुलाकर जाति, धर्म, भाषीय समुदायों के एक सघन समूह में एकता निर्माण करते हैं। देश के समस्त निवासियों द्वारा प्रथक्ता की भावनाओं का अंत कर विचारो एवं भावनाओं की एकता स्थापित करने से है। श्री नेहरु ने इस प्रसंग मे कहा था– "भावात्मक एकता से मेरा तात्पर्य अपने मस्तिष्क और हृदय मे समन्वय से है। इसमें अलगाव की प्रवृति का दमन सम्मिलित है।" यह एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि है। यह जनता के दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। इसलिए राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों पर निर्भर करती है। के.जी. सैयदन कहते हैं–भावात्मक एकता का अर्थ विभिन्नताओं को समाप्त करना नहीं है। अतः लोगों की मानसिक स्थितियों में बदलाव लाने की आवश्यकता है। श्री नेहरु के विचारों के अनुसार "भारतीय लोगो का भावात्मक एकीकरण हो, ताकि हम सब एक बन सके, एक शक्तिशाली राष्ट्रीय इकाई बन सकें, साथ ही

अपनी अद्भुत विविधता को भी बनाए रखे।" डा. संपूर्णानंद के अनुसार—"भावात्मक एकीकरण भ्रातृत्व एव राष्ट्रीयता की प्रबल भावना है, जो देश के सभी निवासियो को विचार व कार्य के समस्त क्षेत्रों में प्रेरणा प्रदान करती है और उनको अपनी सब विभिन्नताओ (धार्मिक, वैयक्तिक, स्थानीय या संबंधी) का विस्मरण एवं बहिष्कार करने मे मदद करती है।"

राष्ट्रीय स्तर पर विविधता मे एकता का प्रदर्शन ही राष्ट्रीय एकता का मानदड है तथा भावात्मक एकता इसे प्राप्त करने का साधन है। भावात्मक एकता द्वारा हमारी बहुमूल्य विविधता सुरक्षित रह सकती है। इस प्रसंग में डा. राधाकृष्णन ने कहा है— "राष्ट्रीय एकता ईट-गारे तथा छेनी, हथौड़े से निर्मित नहीं की जा सकती, इसे शांतिपूर्वक व्यक्तियो के हृदय और मस्तिष्क में विकसित करना होगा तभी शिक्षण प्रक्रिया में उपलब्धि हो सकेगी।"

शिक्षा का अर्थ

एजुकेशन का शाब्दिक अर्थ है—"विरोहन"। इसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द "ऐजु-केचर" से हुई है। शिक्षा विचारो तथा दृष्टिकोणों का उपदेश या एक-दूसरे पर विचारों का आरोपण मात्र नहीं है। अतः भावनाओं से स्वीकार करने की बात है। शिक्षा जब जबरन ठूंसा-ठूंसी या निषेधाज्ञा बन जाती है तो दडात्मक रूप से अनुशासनहीनता व आंदोलन होने लगते हैं। शिक्षा संकुचित अर्थ मे औपचारिक विद्यालयी शिक्षा है। जबकि व्यापक अर्थ में शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। सही रूप में शिक्षा का अर्थ— शिक्षा मानव की जन्मजात शक्तियों एवं ज्ञान व कौशलो मे वृद्धि व व्यवहार परिवर्तन करने वाली सामाजिक प्रक्रिया है जो समाज की उन्नति का आधार है।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता की आवश्यकता

भावात्मक एकता की आवश्यकता है, विशेष रूप से वर्तमान भारत में, क्योंकि इतिहास पर दृष्टि डालें तो भावात्मक एकता के अभाव के फलस्वरूप विदेशियों से शासित होते रहे। मध्यकाल मे देश के छोटे-छोटे राज्य विदेशियो को सहायता देते रहे हैं। वर्तमान में विदेशी ताकते भारत में आतकवादी गतिविधियो हेतु सहयोग दे रही हैं। देश की अखण्डता को समाप्त करने हेतु घुसपैठ कर रहे है। विदेशी शक्तियां, देश के अल्पसख्यको में संकीर्णता के बीज बो रही है। जाति, धर्म, सस्कृति आदि की भावनाओ को उभारने हेतु उत्प्रेरित करने का असफल प्रयत्न कर रही हैं। आर्थिक प्रलोभन देकर देश की अखण्डता को समाप्त करने की साजिश मे विदेशियों का हाथ है। अस्त्र-शस्त्र के जखीरे सीमा पार से भेजने, वायुयान द्वारा गिराने का सफल प्रयत्न करना, अल्पसख्यको में भय एव शोषण की भावना भड़काना, राष्ट्रीय एव भावात्मक एकीकरण के अभाव के कारण सकीर्ण संप्रदायवाद की भावनाओ को उभारना। अतः ये ऐसे कारण है जिन्हे विश्व समझ गया परतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी गतिविधियों को रोकने हेतु उन राष्ट्रो पर प्रभावी दबाव नही डाला जा रहा। जबकि अपने राष्ट्र में सभी भारतीयो के लिए अमन-चैन करने की इच्छा शक्ति सरकार एवं समाज द्वारा होती रहती है। भावात्मक एकता स्थापित करने के पीछे हमारा उद्देश्य है— भारत को हर दृष्टि से सशक्त राष्ट्र के रूप में उभारना, सविधान, राष्ट्रीय झंडे व राष्ट्रीय प्रतीक के प्रति प्रेम पैदा करना, देश में सभी जातियो, संप्रदायों के लोगों मे परस्पर सौहार्द्र बना रहे, शासन व प्रशासन में प्रजातांत्रिक दर्शन का विकास, विज्ञान, तकनीक व आर्थिक प्रगति से सभी भारतीय सभागीत्व कर सके, राष्ट्रीय भाषा, साहित्य, संस्कृति व परंपराओं का विकास, अखण्डता को आंच न आने देने हेतु, विघटनकारी आंतरिक व बाहरी शक्तियों से देश की रक्षा करें, देशवासियों में मानवीय एव विश्व बंधुत्व की भावना का विकास कर विश्व समाज को योगदान दे सकने की क्षमता का विकास करने हेतु व धर्म, सप्रदाय, जाति, क्षेत्र के आधार पर फैलाए जाने वाले द्वंद्व को समाप्त कर देश के विकास की धारा मे सभी को जोड़ने की इच्छाशक्ति।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता में बाधक तत्व

प्रो. श्रीनिवास ने भावात्मक एकता के प्रसंग में कहा है— "विभाजनकारी प्रवृतियां आज पूरे राष्ट्र में परिलक्षित हैं।"

हमे इसे कायम रखना है। प्रमुख रूप से देश के सम्मुख कुछ प्रमुख बाधाएं आज भी परिलक्षित हो रही है, जैसे जातिवाद, सांप्रदायिकता, भाषा, क्षेत्रीयता, हिंसात्मक गतिविधियां, आर्थिक विषमता, भारतीय सस्कृति के प्रति उदासीनता, नैतिक मूल्यों का ह्रास, दोषपूर्ण शिक्षा नीति, विदेशी भक्ति एवं विदेशी धन, राजनैतिक स्वार्थपरता, प्रशासन की शिथिलता, युवकों में निराशा, मादक पदार्थो की तस्करी व विभिन्नता पर बल आदि-आदि।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता और शिक्षा कार्यक्रम

राष्ट्रीय एकता और भावात्मक रूप से भारतीयो मे सहसंबंध स्थापित करने के लिए शिक्षा सबसे प्रमुख साधन है। शिक्षा ऐसे कार्यक्रमो को संगठित एवं संचालित करे जो उपयोगी सिद्ध हो सकें। सक्षेप में उन कार्यक्रमो के बारे में प्रकाश डालना वांछित समझते है जो उपादेय हो सकते है, वे हैं—

शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन— बच्चों के स्वास्थ्य, आचरण और भावनाओं की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय एकता के विकास हेतु अवबोध एवं कौशलो का विकास किया जाना चाहिए।

कार्यक्रमों में परिवर्तन— राष्ट्रीय सेवा, राष्ट्रीय त्यौहारो, त्रिभाषा सूत्र प्रारभ किया जाए। देश के विभिन्न क्षेत्रो की लोककथाओ, लोकगीतों एवं क्रियाकलापो को स्थान दिया जाए। देश के विभिन्न क्षेत्रो की पैदावार, उद्योगो का अन्य प्रान्तों मे हो रहे उपयोग का वर्णन, देश की सस्कृति, भाषा व विचारधाराओ का तुलनात्मक अध्ययन कर अवबोध पैदा करना। नैतिक शिक्षा का समावेश हो। मानव धर्म की अच्छाइयो का समावेश हो।

शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों में परिवर्तन— अध्ययन-अध्यापन की उन विधियो एव प्रविधियों का प्रयोग प्रमुखता से किया जाए जो सामाजिक वातावरण विकसित कर सकें। छात्रो की विभिन्नता के आधार पर अधिगम का अवसर, उनकी योग्यता व क्षमता के आधार पर प्राप्त हो सके। स्वाध्याय व समस्या समाधान, प्रोजेक्ट विधि व समाजीकृत अभिव्यक्ति अध्ययन विधि उपादेय हो सकती है।

पाठ्यपुस्तकों का सुधार— पाठ्यपुस्तकें शिक्षा के गुणात्मक सुधार को निर्धारित करने वाले कारकों मे से एक महत्वपूर्ण कारक है। यह तभी सभव हो सकता है जब विषय-वस्तु उत्प्रेरणादायक व राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने मे सहायक हो। पाठ्यपुस्तके जातीय, धार्मिक तथा प्रांतीय कटुता को समाप्त करने वाली होनी चाहिए। पाठ्यपुस्तकें सहकारिता, परस्पर प्रेम एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने में सफल हो सके। राष्ट्रीय आंदोलन पर राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में अनुपम ढग से प्रकाश डाला जाए। महापुरुषो, देशभक्तो, समाज सुधारकों आदि का पाठ्यपुस्तको मे महत्वपूर्ण स्थान हो।

वर्ण एवं जाति भेद की समाप्ति— जाति, धर्म, संप्रदाय एव वर्ण भेद को समाप्त करने हेतु विद्यालय परिवार द्वारा व्यवहार प्रदर्शित हो। बच्चो को प्रवेश व सुविधाएं योग्यता के आधार पर हों। पोशाक पर राष्ट्रीय महत्व के पक्षी, पशु या भवन आदि का मोनोग्राम में समावेश हो।

दैनिक सामुहिक सभा का आयोजन— शाला मे सदैव दैनिक सामुहिक सभा का आयोजन अनिवार्य रूप से हो। वहां छात्रो एव अध्यापको द्वारा प्रार्थना, नैतिक एवं राष्ट्रीय भावनाओ से ओत-प्रोत प्रवचन दिए जाए। समय-समय पर राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं भावात्मक एकता विषय पर अधिकृत अधिकारियो के विस्तार भाषण का आयोजन हो। राष्ट्र के लिए समर्पित हुए लोगो के संस्मरण का प्रत्यास्मरण करवाया जाए।

राष्ट्रीय पर्वो को धूमधाम से मनाना — स्वतंत्रा दिवस एव गणतत्र दिवस को एक रस्म के रूप मे नही बल्कि उमग से मनाया जाए। उक्त अवसर पर देश के आर्थिक, राजनैतिक, भौतिक उत्थान हेतु काम करने वाले लोगों को प्रेरणा के रूप मे प्रकाश डाला जाए, चाहे वे किसी भी क्षेत्र के निवासी क्यो न हों। 2 अक्तूबर को भी धूमधान से मनाना चाहिए। उक्त रोज उपस्थिति अनिवार्य होनी चाहिए।

राष्ट्रीय स्तर की भाषा का सम्मान और राष्ट्रभाषा हिंदी का विकास— देश की विभिन्न भाषाओं को सम्पूर्ण

राष्ट्र द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिए। क्योकि इन्हीं भाषाओं की विविध विधाओं मे भारत की सस्कृति सुरक्षित है। राष्ट्रभाषा हमें एकता के सूत्र में बांधती है। त्रि-भाषा को स्वीकार करके इस कार्य को पूरा किया जा सकता है। हिंदी के अध्ययन तथा अध्यापन के साथ प्रत्येक भाषायी क्षेत्रो में सभी अन्य भारतीय भाषाओ के अध्ययन तथा अध्यापन पर जोर दिया जाए। हर भाषा हमे समृद्ध कर सकती है, और विभिन्न भाषाएं एक-दूसरे को समृद्ध कर सकती है। समृद्ध साहित्य का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में अधिक करना चाहिए।

राष्ट्रीय नेताओं के जन्म दिवस मनाना— राष्ट्रवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक तथा समाजवादी शक्तियों को एक जुट करने मे जो विभूतियां अग्रणी रही है, उनके जन्म दिवस मनाए जाए। ये महान आत्माए चाहे किसी भी प्रांत व क्षेत्र में क्यो न जन्मी हों जैसे छत्रपति शिवाजी, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, तिलक, गोखले, महात्मा फुले और अबेडकर महाराष्ट्र के थे परन्तु इनकी जयंती भारत के अन्य क्षेत्रो मे भी मनाई जाए क्योकि उनकी सेवाएं राष्ट्रव्यापी है। इसी प्रकार गांधी, पटेल, बोस व नेहरु आदि का राष्ट्रीय स्तर पर जन्म दिवस मनाया जाए।

अंतर्प्रातीय खेलकूद— अतर्प्रातीय खेलकूद प्रतियोगिताएं देश के विभिन्न भागो के छात्रों के लिए आयोजित हो। राष्ट्रीय स्तर के विद्यार्थी एक स्थान पर इकट्ठे होने, एक मंच पर कार्यक्रम देने एवं एक मैदान में खेलने से परस्पर सहसंबध स्थापित होंगे और एक क्षेत्र की संस्कृति से सहज ही परिचित हो जाएंगे और एक-दूसरे के विचारों का आदान-प्रदान करने से एकता के भावों का विकास एवं भावात्मक सहसबंध स्थापित होने की प्रबल संभावनाएं बन सकती है। एक-दूसरे क्षेत्र के प्रति पूर्वागह यदि बन गए हैं तो मस्तिष्क में सुधार होने की संभावनाएं बन सकती हैं।

अंतर्प्रातीय सांस्कृतिक कार्यक्रम— अंतर्प्रातीय सांस्कृतिक एवं "यूथ फेस्टिवल" कार्यक्रमो के आयोजन से छात्र अपनी-अपनी संस्कृति की झांकी प्रस्तुत कर, सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर आंचलिक लोकगीत व लोकनृत्य से परिचित होंगे। देश की समग्र संस्कृति का एक स्थान पर प्रदर्शन केवल उल्लासपूर्ण ही नही होता बल्कि भावात्मक रूप से रुझान पैदा होने से राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता में सहयोगी सिद्ध हो सकता है। गणतंत्र दिवस पर राजधानी मे आयोजित विभिन्न प्रांतों की झाकिया भला किसको अच्छी नहीं लगतीं।

अंतर्प्रातीय प्रदर्शनियां— देश के विभिन्न क्षेत्रो की सभ्यता, सस्कृति, चित्रकला एवं हस्तकौशल को प्रदर्शित करने से एक प्रात के लोगों के दूसरे प्रात की विशिष्टता की ओर भावात्मक झुकाव मे अभिवृद्धि होगी।

राष्ट्र की विभिन्नताओं का आदर— देश की विभिन्न जातियां, रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा, धर्म, संप्रदाय, सस्कृति, मूल्यो में विभिन्नता पर्याप्त रूप से पाई जाती है परन्तु बालक व बालिकाओ को उसके प्रति प्रेमभाव से रुचि लेने हेतु उत्प्रेरित करना वांछित है ताकि वे भावात्मक रूप से जुड़ सके।

दूरसंचार के साधनों का उपयोग— देश की पत्र-पत्रिकाओ, रेडियो एव टेलीविजन पर भारत की विभिन्न भाषाओ, धर्मो, संप्रदाय, सभ्यता, संस्कृति से सहसंबधित साहित्यिक व सामाजिक कार्यक्रमो को प्राथमिकता से प्रमुख स्थान व समय देना चाहिए। इन समाचार, फीचर फिल्मो एवं पूरे देश की झांकी को कमरे में बैठकर पढ़ सकते है और देख सकते हैं। इससे अन्य क्षेत्रो के प्रति भावात्मक सबध स्थापित हो सकेंगे।

राष्ट्रीय स्तर के शिक्षकों का आदान-प्रदान— जिस प्रकार राष्ट्रीय स्तर की प्रशासनिक सेवा के लोगों को विभिन्न प्रांतों में कार्य करने हेतु भेजा जाता है इसी प्रकार अनुकरणीय एव स्वस्थ मानसिकता वाले अध्यापकों का राष्ट्रीय स्तर पर आदान-प्रदान हो। विभिन्न क्षेत्रों व परिवेश के अध्यापक अन्य सस्कृति के लोगो की भावना का आदर करना सीख सकेगे और छात्र-छात्राए उसका अनुकरण करने में सफल सिद्ध होने से पूरे देश में एकता के सूत्र में बध जाएंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था— राष्ट्रीय स्तर पर छात्रो को अध्ययन हेतु एक प्रांत से दूसरे प्रातो में जाकर अध्ययन हेतु उत्प्रेरित किया जाना वाछित है। इसे उच्च माध्यमिक स्तर से विश्वविद्यालय

स्तर पर लागू किया जा सकता है। केंद्रीय विश्वविद्यालयो में विभिन्न प्रांतो के छात्रों हेतु प्रत्येक संकाय व व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु आरक्षण हो जिससे देश के सभी क्षेत्रो के विद्यार्थी एक स्थान पर एक छात्रावास में रहकर एक दूसरे के प्रति सरलता से भावात्मक संबंध स्थापित कर सकेगे।

देश भ्रमण— राष्ट्रीय महत्व के स्थानों पर भ्रमण हेतु छात्रो को प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिए उत्तर भारत के छात्र दक्षिण भारत, पूर्व क्षेत्र के पश्चिमी क्षेत्रों मे भ्रमण करें। देश के विभिन्न भागो मे शैक्षिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व के स्थानों पर जाने से भावात्मक समझ की जागृति होगी।

छात्रों में अभिवृत्तियों का विकास— व्यक्ति की संकुचित प्रवृत्ति को हटाकर विस्तृत प्रवृत्ति विकसित करना।

अल्पसंख्यकों व बहुसंख्यकों के बीच तारतम्य— विभिन्न सप्रदायो के छात्रों में लोकतांत्रिक जीवन से सबंधित विश्वास व व्यवहार उत्पन्न करने हेतु अल्पसख्यको एव बहुसख्यकों के छात्रो के बीच परस्पर तारतम्य स्थापित करने से सौहार्द्र पैदा होगा, उन्माद नहीं।

संविधान के आदर्शो को हृदयंगम करवाना— संविधान की प्रस्तावना में अंकित उद्देश्यो—लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बधुत्व, धर्म-निरपेक्षता एवं समाजवादी व्यवस्थाओ के संप्रत्ययों को हृदयंगम करवाना चाहिए। भारतीय संविधान पूरे राष्ट्र के लिए 26 जनवरी, 1950 से भारत में लागू किया गया।

विभिन्न सांस्कृतिक विभिन्नताओं के प्रति प्रेम— भारत के विभिन्न त्यौहार जैसे— महाशिवरात्रि, होली, रामनवमी, रक्षाबधन, कृष्ण जन्माष्टमी, गणेशोत्सव, विजयदशमी, दीपावली, महावीर जयती, बुद्ध जयंती, बैशाखी, ओणम, ईद, क्रिसमस, एव पौंगल पूरे राष्ट्र में धूमधान से मनाए जाएं क्योंकि सभी संप्रत्ययों के त्यौहारों का समावेश इसमें निहित है। राष्ट्रीय स्तर पर इनको किसी न किसी रूप में मनाया जाता है।

नैतिक शिक्षा का समावेश— नैतिक शिक्षा समाज के लिए निष्ठा के साथ कार्य करने की वृत्ति है। इसके माध्यम से विभिन्न धर्मो का तत्व ज्ञान दिया जा सके। सभी धर्म, संप्रदायो की उन अच्छाइयों, जो मानव मात्र के हित में है, उनको अवबोधित करने से संकुचित एवं दूसरे धर्मो के प्रति घृणा पैदा नहीं होगी। यह भावात्मक रूप से जुडने हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सभी धर्मों की अच्छाइयों को प्रकाश में लाना— आज देश में अपने धर्म और संप्रदाय को श्रेष्ठ बताकर अन्य संप्रदायो के प्रति घृणा भाव पैदा करने की वृत्ति का देश में विकास हो रहा है। यह घृणा का जहर देश में द्वंद्व और उन्माद फैलाता है जबकि सभी धर्मो मे "मानव धर्म" से ओत-प्रोत विचार विद्यमान है। आवश्यकता इस बात की है कि भावी पीढ़ी मे संप्रदायो के बारे मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने से अल्प बुद्धि वाले भावुक लोगो को भावनाओं मे प्रवाहित कर देश मे द्वद्व पैदा न करने देने के लिए उपयोगी है। अत· शिक्षा एवं सहगामी प्रवृत्तियो एव साधारण ऐसेबली मे इस प्रसंग की विस्तार भाषण माला से सभी संप्रदाय के लोगो द्वारा प्रकाश डालने हेतु व्यवस्था की जानी भावात्मक एकता हेतु लाभप्रद रहेगी।

सौंदर्यात्मक सवेदनाएं विस्तृत हों— शिक्षा का मूल प्रयोजन है कि बौद्धिक आयामो, भावात्मक दायित्वों और सौदर्यात्मक संवेदनाओं को विस्तृत करने से बेहतर नागरिक देश को मिल सकेगे जो राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता जैसी चुनौतियो का सामना करने मे सक्षम हों।

पैन फ्रेंडशिप क्लब— छात्रो को विभिन्न अन्य राज्यों के छात्रों से पत्र-व्यवहार द्वारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, लोककथाओ, लोकगीत, दार्शनिक स्थल, राष्ट्रीय स्मारकों के बारे में परस्पर आदान-प्रदान करने से भारत की विभिन्न तथ्यों मे जो विभिन्नता है, उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेगे।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण हेतु विभिन्न समितियों के सुझाव

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग गोष्ठी 1958— भारतीय इतिहास से सांप्रदायिकता के अंशों को हटाने, छात्रावास, छात्रवृत्तियों, धर्म व संप्रदाय के आधार पर प्रदान न करने तथा राष्ट्रीय उत्सवो का आयोजन आदि।

संपूर्णानंद समिति 1961— प्राथमिक कक्षा में राष्ट्रगान व राष्ट्र प्रेम के गीतो का अभ्यास, भाषा इच्छा के विरुद्ध

न थोपें, राष्ट्रीय ध्वज व राष्ट्रगान को प्रतिष्ठित करने, राष्ट्रीय दिवसों को मनाने, सहगामी क्रियाए आदि राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण मे सहायक होगा।

उपकुलपति सम्मेलन 1961— विश्वविद्यालय में सभी राज्यो के छात्रो के प्रवेश की सख्या निश्चित हो, सास्कृतिक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन, धार्मिक सहिष्णुता का विकास एव विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अध्ययन व्यवस्था हो।

राष्ट्रीय एकता परिषद् 1962— माध्यमिक स्तर तक क्षेत्रीय भाषा मे शिक्षण, त्रिभाषा सूत्र लागू करने पर जोर; प्रेम, सद्भावना व राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार, दिल और दिमाग में प्रेम व सौहार्द्र का विकास।

कोठारी आयोग 1964-66— सभी स्तरों पर सामाजिक व राष्ट्रीय सेवा अनिवार्य, प्रादेशिक भाषा, उच्च शिक्षा का माध्यम, अंग्रेजी अतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अनिवार्य हो और संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का विकास हो।

राष्ट्रीय एकता समिति 1968— राष्ट्रीय एकता पर विशेष बल देते हुए शिक्षा में व्याप्त असतुलन को समाप्त करने पर बल दिया जाए। सांप्रदायिक सद्भाव के अध्यापको की नियुक्ति, अतर्विश्वविद्यालय मिलान व देश के भ्रमण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986— सामान्य स्कूल प्रणाली अपनाने, एक ही प्रकार की शैक्षिक संरचना, केन्द्रीय शिक्षा कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन, सांस्कृतिक विषय-वस्तु के समावेश द्वारा समृद्ध किया जाए तथा संपर्क भाषा को बढावा देना व दूसरी भाषा मे अनुवाद कार्य तथा बहुभाषी शब्दकोषो की शब्दाबली के प्रयोग को प्रोत्साहन।

राष्ट्रीय एकता स्थापित करने हेतु शिक्षा जगत में किए गए प्रयत्न

राष्ट्रीय एकता समितियां स्थापित की गई, विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों व अध्यापकों का आदान-प्रदान हो रहा है; पाठ्यपुस्तको मे गुणात्मक सुधार हेतु प्रत्येक प्रांत मे "पाठ्यपुस्तक मंडलों" की स्थापना, हिंदी भाषी राज्यो में विश्वविद्यालय स्तर की अग्रेजी पाठ्यपुस्तको के अनुवाद हिंदी में करवाने और उपलब्ध करवाने हेतु "ग्रंथ अकादमियो" की स्थापना, राष्ट्रीय एकता के घातक प्रकरणों को हटाया गया, "स्वतंत्रता संग्राम" का पाठ्यपुस्तकों मे समावेश, एन सी ई.आर.टी. द्वारा जात-पात और क्षेत्रीयता की भावना का अंत करने हेतु निर्देशन पुस्तक प्रकाशन, अंतर्राज्य शिविरों का आयोजन, कर्नाटक में भारतीय भाषाओं की केद्रीय संस्था की स्थापना, अहिदी भाषी क्षेत्रो में हिदी पढ़ने वालों को छात्रवृतियां, अहिदी प्रदेशो के हिदी लेखको को पुरस्कार, राष्ट्रीय सेवा एव युवा मेलो का कार्यक्रम प्रारंभ किया है।

प्रधानाध्यापक एवं अध्यापकों का राष्ट्रीय एकता स्थापित करने हेतु उत्तरदायित्व

- ☐ प्रधानाध्यापक व अध्यापक चाहे किसी भी समुदाय के क्यो न हों, उन्हे व्यापक एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण का व्यवहार करते हुए छात्रों में राष्ट्रीयता एव मानवता के भावों की अभिवृत्ति का विकास करना चाहिए।
- ☐ विशाल हृदय एवं राष्ट्र के प्रति समग्रता के दृष्टिकोण वाले अध्यापक छात्रों को भावात्मक एकता के संस्कार दे सकते है।
- ☐ शिक्षकों को समूह-शिक्षण विधि अपनानी चाहिए ताकि सामाजिक वातारण का विकास हो सके।
- ☐ देश के सभी प्रधानाध्यापक व अध्यापक राष्ट्रभाषा के महत्व को स्वीकार करे तभी भाषाई तनाव दूर हो सकता है।
- ☐ देश की विभिन्नताओं के प्रति आदर भाव हो।
- ☐ देश को एकता मे बाधने वाली बातों को सप्रेषित करने की लगन हो।
- ☐ अध्यापक किसी प्रकार का ऐसा आचरण न करें जिससे सांप्रदायिकता, जातिवाद एवं भाषावाद के आधार पर द्वंद्व पैदा होने की सभावनाएं बनें।
- ☐ शिक्षार्थियों को राजनीति से दूर रखने का प्रयत्न करें।
- ☐ समाज व राष्ट्र हित में व्यक्तिगत स्वार्थ के त्याग की भावना का विकास करे।
- ☐ आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों को अपेक्षाकृत अधिक सुविधाए और उन्हें आर्थिक सपन्न बालको के समान प्रेम दिया जाए।

- प्रधानाध्यापकों व अध्यापकों को चाहिए कि शाला प्रबंध की प्रत्येक प्रक्रिया में छात्रों को सभागीत्व देकर सामाजिक वातावरण निर्मित किया जाए।
- छात्रो को शारीरिक परिश्रम, श्रमदान व राष्ट्रीय सेवा योजनाओं में संभागीत्व करने हेतु प्रेरणा दें।
- छात्रों को राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का भान करवाया जाए।
- समय-समय पर राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के उद्देश्य से नाटक, व्याख्यान माला, प्रदर्शनी आदि छात्रों द्वारा आयोजित करने हेतु उत्प्रेरणा दें।
- अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया द्वारा समानता, प्रजातांत्रिक, सहयोगी मनोवृत्ति एव सामाजिक वातावरण के विकास हेतु सेमिनार, सिपोजियम, कांफ्रेंस, समूह चर्चा एवं पैनल चर्चा को प्राथमिकता दे।
- भारतीय संस्कृति के बारे में समय-समय पर ऐसेंबली में विचार रखे। भारतीय संस्कृति देश के विभिन्न भागो के तानों-बानो को एक साथ बुनने से ही निर्मित हुई है। इस पर क्षेत्र विशेष का अधिकार नहीं है। ऐसे विचारों को हृदयंगम करवाने का सफल प्रयत्न करें।
- छात्रो में सामुहिकता की भावना का विकास करें।
- समय-समय पर एकता के संकल्प छात्रों द्वारा दोहराए जाएं।

राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
बीकानेर, राजस्थान

विद्यालय में गृह विज्ञान की विषय वस्तु—एक वैकल्पिक दृष्टि

❑ वन्दना गोस्वामी
❑ मृदुला भारती

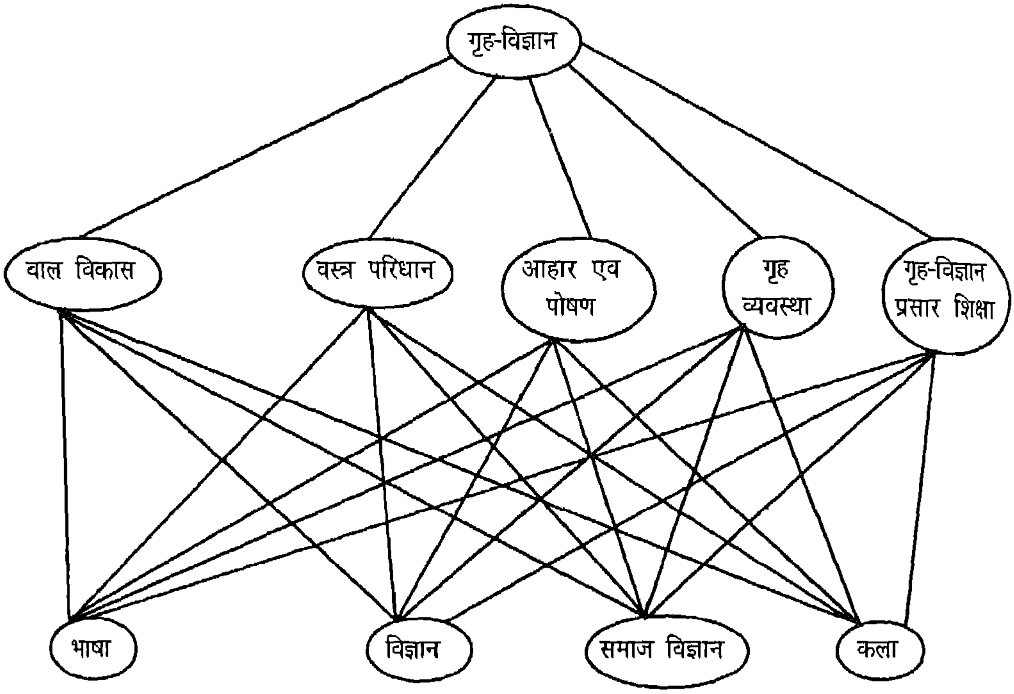
भारत मे गृह विज्ञान विषय का इतिहास यद्यपि बहुत पुराना नही है किन्तु लगभग 70-80 वर्षो की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बावजूद इसके अर्थ और प्रकृति के प्रति व्यापक दृष्टिकोण विकसित नहीं हो पाया है। आज भी गृह विज्ञान का अध्ययन करने वाले और न करने वाले दोनो ही प्रकार के विद्यार्थियों में गृह विज्ञान के प्रति स्पष्ट अवबोध का प्रभाव और सकुचित दृष्टिकोण व्याप्त है। यही कारण है कि उनके द्वारा गृह विज्ञान के अर्थ को खाना पकाने, वस्त्र सिलने, गृह-सज्जा करने और बच्चों की देखभाल सिखाने तक सीमित किया जाता है। इस प्रकार की दृष्टि न केवल विधार्थियो की है वरन् अनेक बुद्धिजीवियों द्वारा भी इसे घर का विज्ञान या गृह कार्यो को व्यवस्थित ढंग से करना मात्र कहा जाता है। किन्तु इस प्रकार के विचारो और अर्थो से इस विषय की प्रकृति स्पष्ट नहीं हो पाती है। ऐसे मे यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यदि गृह विज्ञान यह नही है तो वास्तव मे इसका अर्थ और इसकी प्रकृति क्या है?

अनेक विद्वानों ने इसकी आधारभूत प्रकृति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह कला और विज्ञान दोनों है परन्तु वास्तव में इसे कला और विज्ञान के साथ-साथ भाषा और समाज विज्ञान के सदर्भ में भी स्पष्ट किया जाता है। गृह विज्ञान विषय एक ऐसा सम्मिश्रण है जो दूसरे विषयो जैसे विज्ञान, समाज विज्ञान, भाषा और कला के विविध सम्प्रत्ययों को स्वयं में समाहित किए हुए है। इससे प्रश्न उभरता है कि क्या गृह विज्ञान की अपनी पृथक पहचान है? क्या गृह विज्ञान विषय का अपना स्वतत्र अस्तित्व नही है?

यह सत्य है कि गृह विज्ञान दूसरे विषयों के सम्प्रत्ययो से निर्मित है। इन सभी सम्प्रत्ययो को गृह विज्ञान के विविध पक्षों जैसे—बाल विकास, आहार एवं पोषण विज्ञान, वस्त्र एवं परिधान, गृह-व्यवस्था, गृह विज्ञान प्रसार शिक्षा के रूप में समझा जा सकता है। इस प्रकार गृह विज्ञान के अलग-अलग पक्षो का निर्माण विज्ञान, भाषा, कला और समाज विज्ञान के अनेकानेक सम्प्रत्ययो से हुआ है। यही कारण है कि गृह विज्ञान की प्रकृति को अन्तर्विषयक उपागम के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जो आगे के चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है।

अनेक विद्वानों ने गृह विज्ञान की आधारभूत प्रकृति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह कला और विज्ञान दोनों है परन्तु वास्तव में इसे कला और विज्ञान के साथ-साथ भाषा और समाज विज्ञान के संदर्भ में भी स्पष्ट किया जाता है। गृह विज्ञान विषय एक ऐसा सम्मिश्रण है जो दूसरे विषयों जैसे विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा और कला के विविध सम्प्रत्ययों को स्वयं में समाहित किए हुए है। इससे प्रश्न उभरता है कि क्या गृह विज्ञान की अपनी पृथक पहचान है? क्या गृह विज्ञान विषय का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है?

इस प्रकार गृह विज्ञान का अन्य विषयों से अन्तर्सम्बन्ध होने की वजह से ही इसकी प्रकृति को भी अन्तर्विषयक माना गया है। गृह विज्ञान व्यावहारिक और अनुप्रयुक्त विषय है। इसलिए इसमें अन्य विविध विषयक क्षेत्रों के सम्प्रत्ययो का समेकन होता है। किन्तु यह समेकन इस प्रकार होता है कि समस्त सम्प्रत्ययों को 'गृह' के संदर्भ में रूपान्तरित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप—बाल विकास का सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, भाषा से है तो



आहार एव पोषण विज्ञान, जैव रसायन, जीव विज्ञान, कला से सम्बद्ध है। इसी प्रकार वस्त्र एवं परिधान का सीधा सम्बन्ध समाज विज्ञान, विज्ञान, कला से है तो गृह व्यवस्था अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, विज्ञान तथा कला से सम्बद्ध है।

अत· गृह विज्ञान अन्तर्विषयक एवं अनुप्रायोगिक होते हुए भी स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, इस विषय की अपनी पृथक पहचान है क्योकि अन्य विषयों से सम्प्रत्ययो को ज्यों का त्यो नहीं लिया गया वरन् उन्हें गृह के संदर्भ में अर्थ परिवर्तित और रूपान्तरित कर गृह विज्ञान की विषय-वस्तु के स्वरूप को निर्मित किया गया है।

जब गृह विज्ञान की प्रकृति अन्तर्विषयक है तो उच्च माध्यमिक स्तर पर इसकी विषय-वस्तु का स्वरूप कैसा हो? यह ज्ञातव्य है कि वर्तमान विद्यालयी शिक्षा प्रणाली की संरचना में माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा सामान्य शिक्षा है तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर विशिष्ट शिक्षा दी जाती है। उच्च माध्यमिक स्तर, माध्यमिक तथा उच्च स्तर के मध्य की कड़ी है जिसमें माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् महाविद्यालयी शिक्षा के लिए आधार प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी विद्यालयी शिक्षा में दसवी तक विज्ञान, सामाजिक ज्ञान, भाषा और कला का अध्ययन तो करते हैं, किन्तु उच्च माध्यमिक स्तर पर अनेक नवीन विषयो से उनका प्रथम परिचय भी होता है जैसे वाणिज्य, कृषि विज्ञान और गृह विज्ञान। इस स्तर पर विद्यार्थी इनमे से एक का चयन कर पृथक विषय के रूप मे अध्ययन करते हैं। चूंकि उच्च माध्यमिक स्तर पर तो नितान्त प्रारभिक शिक्षा ही और न ही इस परिचयात्मक अवस्था पर बहुत तकनीकी शिक्षा ही दी जा सकती है। किन्तु यह आवश्यक है कि इस स्तर पर विषय-वस्तु के माध्यम से गृह विज्ञान के विद्यार्थी में इस विषय के सही अर्थ और इसकी प्रकृति के प्रति स्पष्ट समझ विकसित अवश्य हो जानी चाहिए। चूंकि महाविद्यालयी शिक्षा के लिए विद्यार्थी को तैयार भी कर रहे हैं। अतः

इस स्तर पर गृह विज्ञान विषयों की आधारभूत शिक्षा देने की आवश्यकता है।

उच्च माध्यमिक स्तर की विशेषताओ, गृह विज्ञान के उद्देश्यो जैसे— गृह कार्यो में वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग सिखाना, उपलब्ध ससाधनो के उपयोग से पारिवारिक सदस्यो को सतुष्ट करना, आधुनिक सुविधाओ के उपयोग से आवश्यकता संतुष्ट करना, संस्कृति का हस्तान्तरण एव संरक्षण करना, आने वाले परिवर्तनों के लिए तैयारी सिखाना, समृद्धशाली एव उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाना, घरेलू समस्याओं के निदान की कुशलता विकसित करना और खाली समय का सदुपयोग सिखाना आदि की प्राप्ति के लिए अनुकूल पाठ्यक्रम (विषय-वस्तु) के विकास की महती आवश्यकता है। निष्कर्षतः गृह विज्ञान की विषय-वस्तु इस प्रकार सगठित एवं संरचित की जानी चाहिए जिससे विद्यार्थी प्रत्येक सम्प्रत्यय को 'गृह' के संदर्भ में ग्रहण कर सके।

गृह विज्ञान विषय वास्तविक जीवन से प्रत्यक्षत. सम्बद्ध है। अतः इसका केन्द्र बिन्दु गृह ही होना चाहिए। गृह विज्ञान विषय-वस्तु में सम्प्रत्ययों के बीच इस प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध हो कि शिक्षार्थी सम्प्रत्ययों के मध्य के सहसम्बन्ध को समझते हुए विषय का अध्ययन करे न कि इसके पाच आयामो (बाल विकास, आहार एवं पोषण विज्ञान, वस्त्र एवं परिधान, गृह व्यवस्था और गृह विज्ञान प्रसार शिक्षा) के रूप में अलग-अलग अध्ययन करें।

उच्च माध्यमिक स्तर इस विशिष्ट अध्ययन की प्रारम्भिक अवस्था है जहा विद्यार्थी प्रथम बार गृह विज्ञान का अध्ययन कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की महसूस होती है कि विषय-वस्तु की सरचना, सगठन और पाठ्यक्रम मे इसका प्रस्तुतीकरण ऐसा हो कि विद्यार्थी इसके अर्थ और अन्तर्विषयक प्रकृति को समझ सके कि यह किस प्रकार अन्य विषयों से सम्बद्ध है? साथ ही यह भी स्पष्टत· प्रस्तुत किया गया हो कि गृह विज्ञान किस प्रकार दैनिक जीवन से जुड़ा है? घर मे इसके ज्ञान के उपयोग से किस प्रकार पारिवारिक जीवन को समृद्ध बनाया जा सकता है? भविष्य मे व्यवसाय की दृष्टि से इसका विस्तार क्षेत्र क्या है?

अपने अनुभव एवं अवलोकन से यह पाया है कि आज भी गृह विज्ञान की विषय-वस्तु मे ऐसे अनेक सम्प्रत्यय है जिन्हे दूसरे विषयों से लेकर 'गृह' के संदर्भ में परिवर्तित और रूपान्तिरित किए बगैर ज्यो का त्यो पढाया जा रहा है जैसे भोज्य तत्वों का जैव रसायन पढ़ाना, गृह उपयोगी (समय व श्रम बचाने के) साधनो/उपकरणों की आन्तरिक संरचना और कार्यप्रणाली विषय को शुद्ध विज्ञान वनाती है साथ ही इससे विषय-वस्तु नीरस व जटिल बन सकती है। इसी प्रकार समाजशास्त्रीय ढंग से परिवार की व्याख्या, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परिवार की व्याख्या, दृष्टि से बालक का विकास बताना गृह विज्ञान से सर्वथा सम्बद्ध है तथा ऐसे अनेक उदाहरण है जो इसकी अन्तर्विषयक प्रकृति को ठेस पहुंचाते हैं क्योकि गृह विज्ञान की अन्तर्विषयक प्रकृति से तात्पर्य दूसरे विषय के सम्प्रत्ययो को 'गृह' के सदर्भ मे रूपान्तरित करने से है।

गृह विज्ञान विषय व्यावहारिक विषय है। अत इसे विद्यार्थी केन्द्रित तथा अनुभवजन्य और दैनिक जीवन से सम्बद्ध बना कर रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। समाज निरन्तर परिवर्तनशील है। अत· समाज की बदलती मांग एव अपेक्षाओं की पूर्ति करने वाली तथा बढ़ते ज्ञान और नवीन ज्ञान से समृद्ध होना चाहिए। अन्त मे इस विषय मे विषय-वस्तु का किसी भी विशुद्ध विषय से चयन किया गया हो परन्तु उन्हें 'गृह' के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त और प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

अन्ततः गृह विज्ञान की अन्तर्विषयक प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए तथा उच्च माध्यमिक स्तर इस विषय-वस्तु की वैकल्पिक रूपरेखा के लिए प्राध्यापक तथा अध्यापक शिक्षक होने के नाते हमारा दायित्व है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में हम चिन्तन, मनन द्वारा उसे और समृद्ध बनाए। ❑❑

शिक्षा संकाय
वनस्थली विद्यापीठ मानित विश्वविद्यालय
वनस्थली, राजस्थान

बुनियादी शिक्षा दर्शन में मूल्य शिक्षा

❒ प्रशान्त अग्निहोत्री

> **बुनियादी शिक्षा दर्शन, नैतिक व्यक्ति उत्पन्न करना चाहता है। उनकी दृष्टि में वह शिक्षा निरर्थक है जो व्यक्ति को नैतिक एवं सदाचारी नहीं बना सकती। केवल पुस्तकीय ज्ञान या प्राप्त डिग्रियों का बोझ किसी को मनुष्य नहीं बना सकता। नई तालीम के द्वारा गांधीजी नए मानव की कल्पना करते थे और इसी से उन्होंने मुक्त, सर्वोदयी, विश्व समाज की कल्पना की थी। चूंकि व्यक्ति से ही समाज बनता है और व्यक्ति समाज के बिना बेकार है।**

"मेरे लिए सत्य सर्वोच्च सिद्धान्त है, जिसमे अनेक अन्य सिद्धान्त भी अन्तर्भूत हो जाते हैं। यह सत्य वाणी की सत्यता और यह केवल हमारी मान्यता सम्बन्धी सत्य ही नहीं, बल्कि परम सत्य, सनातन सिद्धान्त, अर्थात् ईश्वर है।"

गांधीजी के विचारों मे सत्य और ईश्वर एक-दूसरे के पर्याय हैं। उनके ही शब्दो मे "परमेश्वर सत्य है, यह कहने की बजाय सत्य ही परमेश्वर है, यह कहना अधिक उपयुक्त है।"

"वस्तुतः इस सत्य के साक्षात्कार का साधन या इसे पाने की राह जीव मात्र के प्रति प्रेम या अहिंसा है।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे भारतीय चिन्तन को गांधी के विचारों एव व्यवहार ने सबसे अधिक प्रभावित किया। गांधी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन केवल उनके विचारों मे ही नहीं बल्कि उनके व्यक्तित्व में भी झलकता है। उनका सम्पूर्ण जीवन सनातन मूल्यों पर आधारित रहा है। परिणामतः उनके विचारों में मूल्यो की पक्षधारिता सर्वत्र दिखाई देती है। अपनी शिक्षा व्यवस्था (बुनियादी शिक्षा) के सम्बन्ध में 1937 की वर्धा परिषद् में बोलते हुए गांधी ने कहा था – अगर हम कौमी और अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष को बन्द करना चाहते हैं तो हमारे लिए जरूरी है कि जिस शिक्षा की मैने हिमायत की है, उससे अपने बालकों को शिक्षित करके शुद्ध और सुदृढ़ आधार पर इसकी शुरुआत करें। गांधी इसी नई तालीम को सच्चे मायनो में जिन्दगी की तालीम बनाना चाहते थे।

मूल्यों की शिक्षा कैसे?

वे अपनी शिक्षा पद्धति से जिस समाज का निर्माण करना चाहते थे। इसका स्पष्ट स्वरूप बुनियादी शिक्षा योजना के सिद्धान्तकारों मे से एक डा. जाकिर हुसैन के बुनियादी शिक्षा कान्फ्रेस मे दिए गए भाषण से स्पष्ट रूप से ध्वनित होता है। गाधीजी एक ऐसे मानवीय समाज का निर्माण करना चाहते थे 'जिसमें एक राष्ट्र दूसरे पर भरोसा कर सके, कमजोरों को जोरदार का डर न हो, गरीब अमीर की ठोकर से बचा रहे, जिसमे एक संस्कृति दूसरी सस्कृति के साथ-साथ भली-भांति फल-फूल सके और हर एक की विशेषताएं प्रकाशित हों, जहां हरेक वह बन सके जिसके बनने की उसमें क्षमता है और वह बनकर अपनी सारी शक्ति को समाज सेवा मे लगा दे।' निश्चित रूप से वह इसके लिए जिस शिक्षा व्यवस्था (बुनियादी शिक्षा) की बात करते थे, इन निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए उसका नैतिक आधारों पर आधारित होना आवश्यक था। परन्तु अनुभव किया कि नंगे, भूखे, गृहहीन, अज्ञान से भरे भारतीयो को आत्मज्ञान सिखाया जा सकता है। अतः उन्होंने विचार किया कि व्यक्ति को पहले खाना, कपड़ा और घर मिलना चाहिए उसके बाद स्वास्थ्य, फिर व्यक्तित्व का पूर्ण विकास, फिर संस्कृति और चरित्र का निर्माण ताकि उसमे समाज की सेवा और भला करने की शक्ति उत्पन्न हो सके। इसीलिए उनकी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के साथ काम आवश्यक तत्व था क्योकि काम या हुनर ही आय का स्रोत है जिससे मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव है। उनकी दृष्टि मे हुनर में भी नैतिक तत्वो का समावेश आवश्यक है। डा. हुसैन कहते हैं कि 'शिक्षित आदमी का जो चित्र हम सबके सामने आता है, उसमें खाली हुनरमन्दी का रंग नही होता। हुनरमन्द तो चोर भी होते हैं, हुनरमन्द धोखेबाज

भी होते हैं, हुनरमन्द सच को झूठ कर दिखाते है। ऐसी हुनरमन्दी तो शिक्षा का लक्ष्य नहीं हो सकती। शिक्षा का काम वही काम हो सकता है, जो किसी ऐसी मान्यता की सेवा करे, जो हमारी स्वार्थ भावना से परे हो और जिसे हम मानते हों। जो अपने स्वार्थ के लिए काम करता है वह हुनरमन्द तो जरूर हो जाता है, मगर शिक्षित नही होता। जो मान्यता की सेवा करता है, वह शिक्षित हो जाता है। मान्यता की सेवा में आदमी अपने कर्तव्य का पालन करता है– अपना स्वार्थ नहीं ढूढ़ता। इससे वह आदमी बनता है– अपना नैतिक रूप सुधारता है क्योकि नैतिकता और है क्या, सिवाय इसके कि जो मान्यताए स्वीकार की जानी चाहिए, उनकी सेवा मे आदमी अपनी इच्छाओं, लालचो और स्वार्थो को दबाए और उस मान्यता की पूरी-पूरी सेवा करे और उस सेवा का जो उद्देश्य है– उसका पूरा-पूरा पालन करे। काम की यह विशेषता हाथ के काम मे भी हो सकती है और दिमाग के काम मे भी। और हाथ का काम भी इससे खाली हो सकता है, और दिमाग का भी। बुनियादी शिक्षा दर्शन का सच्चा विद्यालय वही है, जो बच्चो में काम करने से पहले उस पर सोचने और करने के बाद उसे जाचने और परखने की आदत डाले।'

इस प्रकार हम देखते है कि बुनियादी शिक्षा दर्शन नैतिक व्यक्ति उत्पन्न करना चाहता है। उनकी दृष्टि में वह शिक्षा निरर्थक है जो व्यक्ति को नैतिक एवं सदाचारी नहीं बना सकती। केवल पुस्तकीय ज्ञान या प्राप्त डिग्रियों का बोझ किसी को मनुष्य नही बना सकता। नई तालीम के द्वारा गांधीजी नए मानव की कल्पना करते थे और इसी से उन्होंने मुक्त, सर्वोदयी, विश्व समाज की कल्पना की थी। चूकि व्यक्ति से ही समाज बनता है और व्यक्ति समाज के बिना बेकार है। अत· इन दोनो का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण गांधीजी सदाचार पर जोर देते थे। उनकी दृष्टि में यदि केवल उत्पादन से व्यक्ति ने अपना पेट भरा तो वह मानव नहीं होगा। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का लक्ष्य एकांगी बौद्धिक विकास न होकर, तन, मन और आत्मा का पूर्ण विकास है।

वस्तुत समाज की पुनर्स्थापना के दो रास्ते हो सकते हैं पहला—पूरे समाज को क्रान्ति द्वारा पूर्णतया बदल कर अच्छे मनुष्य की आधारशिला रखी जाए, दूसरा पहले मनुष्य को मन, आत्मा और कर्म से सुन्दर बनाया जाए फिर उनसे अच्छे समाज का स्वरूप तैयार हो। गांधीजी का सम्पूर्ण जीवन और विचार दर्शन दूसरे रास्ते का पक्षधर है क्योकि मनुष्य की नैतिकता, श्रेष्ठता या मूल्यो की पक्षधारिता व्यक्ति के अन्तर से जुड़ा पहलू है। अत· अच्छे समाज के निर्माण से पहले मनुष्य के मन की शुचिता, नैतिकता के प्रति दृढ़ता और आत्मबोध आवश्यक है। यह सब बाहर से थोपा नहीं जा सकता। इसका प्रादुर्भाव तो भीतर से ही होना चाहिए। यही नही क्रान्ति के मार्ग के लिए भी तो व्यक्ति के अन्दर पहले परिवर्तन के प्रति उत्कट अभिलाषा, कर्म या लक्ष्य के प्रति शुचिता और मूल्यो के प्रति दृढ़ता आवश्यक है। ऐसा होने पर ही सफल क्रान्ति का सूत्रपात्र हो सकता है। अत· यहा भी पहले मनुष्य के हृदय (अन्तर) मे परिवर्तन आवश्यक है। इन दोनो में अन्तर केवल दृष्टि और मार्ग का है। गांधी का सर्वोदयी अहिसा का मार्ग व्यक्तिवादी नैतिक आधार को सामाजिक रूप प्रदान करता है। गांधी मानते थे कि मानवीय हृदय मे देवत्व का वास होता है। यदि इस सुषुप्त देवत्व को प्रकाशित कर दिया जाए तो व्यक्ति का आचार एव व्यवहार शोषणमुक्त और न्यायपूर्ण होगा। उनकी दृष्टि मे शोषण से मुक्ति के लिए दमनात्मक नीतियों की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है मनुष्य के हृदय को प्रभावात्मक रूप से बदलने की। गाधीजी ने अपनी पुस्तक 'सत्य के प्रयोग' में लिखा है, 'मैंने सदा हृदय की संस्कृति और चरित्र को प्रथम स्थान प्रदान किया है। मैंने चरित्र को बालकों की शिक्षा की उचित आधारशिला माना है और यदि यह नींव मजबूत पड़ जाए तो अन्य सब बाते मित्रों आदि की सहायता से बच्चे स्वय सीख सकते है।' अत· आवश्यक है कि बच्चों के मस्तिष्क का निर्माण करने की अपेक्षा, उनका हृदय निर्माण किया जाए। इसके लिए वे अध्यापक से भी नैतिक जीवन व व्यवहार की अपेक्षा करते थे। उनके अनुसार आचार्य तथा अध्यापकगण पुस्तको के पृष्ठो से चरित्र नहीं सिखा सकते। इसीलिए गाधीजी अध्यापको को धिक्कारते है जो मुख से एक बात कहते हैं तथा जीवन मे भिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं। उनका मानना था कि लड़के पुस्तकों तथा व्यवहारो की अपेक्षा अध्यापकों के जीवन से अधिक सीखते है। अतः वे अध्यापको से उच्च चरित्र एवं नैतिकता पूर्ण जीवन जिए जाने की अपेक्षा करते थे। उनकी दृष्टि से अध्यापन कार्य के लिए समर्पण की आवश्यकता होती है क्योंकि अध्यापक का कार्य कक्षा की अपेक्षा कक्षा के बाहर अधिक है। जब तक अध्यापक छात्र को कक्षा के बाहर समय नहीं देता तब तक वह छात्र के हृदय

का निर्माण नही कर सकता, जो कि गांधीजी की दृष्टि में मस्तिक के निर्माण से अधिक आवश्यक है।

बुनियादी शिक्षा और धर्म

गांधीजी के अनुसार, 'धर्म की बुनियाद नीति है। नींव को खोद डालिए तो जैसे घर अपने आप ढह जाएगा वैसे ही यदि नीति रूपी नीव टूट जाए तो धर्म रूपी इमारत भी दो-चार दिन में भूमिसात हो जाएगी। गांधी जी अपने शैक्षिक चिन्तन मे जिस धर्म की बात करते थे, उसे मानव धर्म कहा जा सकता है। उनके इस मानव धर्म में विश्व के सभी धर्मो के नैतिक तत्वो का समावेश है। उनके धर्म में हठवाद या घृणा का कोई स्थान नहीं है। बुनियादी शिक्षा दर्शन मे जिस धर्म को स्थान मिला है वह धर्म रूढ़िवादिता, संस्कारवाद तथा संकुचित विचारों और क्रियाओ से सर्वथा मुक्त है। यह धर्म मनुष्य के मनोभावो को कल्पना की ऐसी अनन्त उड़ान देता है जो व्यक्ति को शोषण, कटु संघर्ष और घृणा के विचार से मुक्त कर उसके चित्त को ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी मे प्रक्षालित कर परमशुद्ध, नैतिक और चरित्रवान बनाती है। इस दृष्टि से गांधी धर्म और नीति को एक ही मानते हैं। उनकी दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व एक ही सत्ता का प्रतिरूप है और सभी मनुष्य उसी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। वास्तव मे साम्प्रदायिक उन्माद, धर्मान्धता, क्रूरता, इसी एकात्मकता का बोध न हो पाने के कारण होती है। चूकि मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है अतः वह अपनी विचारशीलता एवं सुसस्कृत व्यवहार से इस आधारभूत धार्मिक एकात्मकता को अनुभव कर सकता है। इस अनुभव की प्राप्ति के लिए गांधी एक नैतिक जीवन जिए जाने को आवश्यक मानते थे। नैतिक जीवन के लिए वे एकादश व्रत (सत्य, अहिंसा, प्रेम, ब्रह्मचर्य, अवाद, आस्तेय, अपरिग्रह, श्रम, स्वदेशी, अभय और नम्रता) का प्रावधान करते थे। यह व्रत ही गांधी के शिक्षा दर्शन के आधार हैं। इनमें सभी धर्मो का समावेश है। गाधी की दृष्टि मे सभी धर्मो में जो सार्वभौम सत्य है उसकी शिक्षा बालकों को आवश्यक रूप से दी जानी चाहिए। निश्चित रूप से एकादश व्रतों की शिक्षा शब्दों द्वारा नहीं दी जा सकती, इसके लिए अध्यापक को स्वयं इनके सम्यक् निर्वहन द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना होगा तब ही छात्र मानव धर्म के मर्म को समझ सकेंगे।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

यदि हम वर्तमान परिवेश मे गांधी के बुनियादी शिक्षा दर्शन का मूल्य शिक्षा के सन्दर्भ में मूल्याकन करे तो हम पाएंगे कि वर्तमान शैक्षिक परिवेश में इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। आज प्राथमिक कक्षाओ से लेकर उच्च तकनीकी कालेजों तक मात्र हुनर प्राप्ति पर ही जोर है। शिक्षा केवल सूचना प्रदान करने वाला साधन बनकर रह गई है। शिक्षार्थी को एक सम्पूर्ण मनुष्य एव समाज का उपयोगी सदस्य बनाने का काम विद्यालय कहीं भी करते नजर नही आ रहे हैं। सत्य, अंहिसा, धर्म, प्रेम और शाति जैसे आधारभूत मूल्यों को हमारे पाठ्यक्रम मे स्थान भले ही मिला हो परन्तु बच्चों में उनके दृढ़ीकरण के लिए सचेष्ट प्रयासों का सर्वथा अभाव हमारे शैक्षिक परिवेश में दिखाई देता है। पिछले पाच दशको मे हर स्तर पर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों में निरन्तर ह्रास हुआ है साथ ही स्वार्थपरता मे वृद्धि हुई है। समाज मे धन, सत्ता और पद के लिए सामाजिक और नैतिक मूल्य निरन्तर गायब होते जा रहे हैं। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण शिक्षा मे मूल्यों का अभाव है। होना तो यह चाहिए कि प्राथमिक कक्षाओं से ही बच्चे मे मूल्य शिक्षा का बीज बोया जाए क्योकि उस समय मस्तिष्क बहुत ग्रहणशील होता है। यह काम समर्पित शिक्षकों द्वारा होना चाहिए। यदि ऐसा हो सका तो राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का आधा काम हो जाएगा। साथ ही यह बच्चे को एक सामाजिक आधार प्रदान करेगा ताकि वह व्यस्क होने पर कुविचार, हिंसा, भ्रष्टाचार, और शोषण के खिलाफ संघर्ष कर सके।

इसके साथ-साथ जब बच्चे को सब धर्मो की बुनियादी बातो, उनमें अन्तर्निहित मान्यताओं से अवगत कराया जाएगा तब साम्प्रदायिकता, धार्मिक वैमनस्य और अलगाववाद का जहर धीमा पड़ेगा और विभिन्न स्तरो पर सौहार्द्र और आपसी भाईचारे में वृद्धि होगी। यही आज की परिस्थितियो में अभिकाम्य है। यही गांधी के बुनियादी शिक्षा दर्शन की राह है। अस्तु गाधी के शैक्षिक विचार सर्वकालिक हैं और उनकी प्रासगिकता आज भी उतनी ही है। ❑❑

312, मस्जिद गंज
शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश

विद्यालयी शिक्षा में जीवन मूल्य एवं नैतिक उत्थान

❑ ऊषा जायसवाल

मूल्यों का विकास सुनिश्चित करने के लिए शिक्षण प्रक्रिया में पारस्परिक चर्चा, प्रदर्शनियां, मूल्यों के स्पष्टीकरण और उनके अभ्यास, खुले सत्रों आदि का समावेश भी किया जाता है। कई बार विद्यार्थियों के मन में मूल्यों के प्रति आदर जगाने, आस्था पैदा करने के लिए सलाहकारों, विशेष अध्यापकों का भी उपयोग किया जाता है। अतः समग्र रूप से पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, पाठ्येतर गतिविधियों, शिक्षण प्रशिक्षण आदि के द्वारा ही राष्ट्र का सर्वागीण विकास एवं जीवन मूल्य तथा नैतिक उत्थान सम्भव है।

"अगर भारत को आध्यात्म शून्य नहीं बनाना है तो यहा के युवको को धार्मिक शिक्षण उतना ही आवश्यक है जितना धर्म निरपेक्ष शिक्षण। मेरा ऐसा मानना है कि सभी धर्मों की मूल भावना एक-सी होती है. .... धार्मिक शिक्षण के पाठयक्रम में अपने धर्म के सिद्धातो के साथ-साथ दूसरे धर्मो के सिद्धांतो के अध्ययन को भी शामिल किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए विद्यार्थियों को इस तरह प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि उनमें विश्व भर के विभिन्न महान धर्मों के सिद्धात को आदर की भावना के साथ और उदार सहिष्णुता से समझने और उसके प्रति सम्मान रखने की आदत बने।"

–(यग इडिया 25 अगस्त, 1927)

यह विचार महात्मा गाधी के हैं जो आज के संदर्भ में जब मूल्य की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है सुसंगत सिद्ध होते है।

धर्म निरपेक्ष स्वतंत्र भारत मे धार्मिक शिक्षा को विद्यालय अथवा पाठयक्रम में स्थान देना समीचीन नहीं समझा गया क्योकि धर्म को अत्यन्त निजी और व्यक्तिगत मामला माना गया। इसलिए यह तर्क दिया गया कि धर्म की शिक्षा व्यक्ति को परिवार तथा उसके समुदाय में देनी चाहिए। किन्तु यहां धर्म को अत्यन्त संकुचित अर्थ मे देखा गया। धर्म और पंथ के घेरे में बांधकर हमने उन आध्यात्मिक मूल्यों की उपेक्षा कर दी जिससे विद्यार्थी भ्रमित हुए एव हमने मानवता के आधारभूत सिद्धान्तो को खो दिया। क्योंकि धार्मिक शिक्षा का मतलब किसी एक धर्म एवं कर्मकाण्डों की शिक्षा देना नहीं है। धार्मिक शिक्षा का मतलब है नीतिपरक शिक्षा और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा जो हमे जीवन जीने की कला सिखाती है। ऐसी नीति परक शिक्षा से शिक्षित हुए बगैर हम चाहे जितने शिक्षित हो जाएं हम पूर्ण मानव कहलाने के अधिकारी नहीं हो सकते। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न धर्मो के मूल मे क्या है? अर्थात् विभिन्न धर्मो के मूलभूत तत्यो को जानना और विद्यार्थियों को उससे अवगत कराना ही मूल्यों की शिक्षा है। हर धर्म के मूल मे देखे तो आधारभूत सिद्धान्त वही है, जो मनुष्यता की परिभाषा से पूर्ण है इन्हीं मूल्यों की शिक्षा को सार्थक करना ही धर्म के सही स्वरूप को जानना है। ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों मे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यो का पोषण करे। इसके लिए विद्यालयी शिक्षा की राष्ट्रीय पाठयचर्चा की रूपरेखा में इस बात पर भी जोर दिया गया कि जब तक विभिन्न धर्मो के प्रति अज्ञानता का कोहरा होगा या यो कहे कि दूसरे धर्मो के बारे में न जानने की हठधर्मिता होगी तब तक हम धर्म या पंथ की कूपमंडूकता से निकलकर अध्यात्म के जीवन मूल्यो के विशाल क्षितिज से अनभिज्ञ रहेंगे और उन सभी धर्मों के हठधर्मिता, कर्मकाण्ड एवं मिथकीय अंशो मे उलझकर या तो उससे दूर होना चाहेगे या फिर संकुचित दायरे मे बंधकर जीवन मूल्यो को खो देगे। इसलिए

हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं पाठ्यक्रम में मूल्यो की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। नि संदेह यह सार्थक एव सराहनीय है। इसके लिए आवश्यक है कि भारत के सभी धर्मों को तटस्थ, निरपेक्ष और सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन किए जाने की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। यह प्राथमिक एवं माध्यमिक दोनों स्तरों पर नैतिक मूल्यो की शिक्षा का प्रावधान विद्यालयों मे होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम मे नैतिक मूल्यो की शिक्षा की रूपरेखा कुछ इस प्रकार इंगित की गई है।

प्राथमिक स्तर पर

- सामूहिक गान के लिए प्रातःकाल मे कुछ मिनटों के लिए विद्यालय सभा का आयोजन किया जाना चाहिए।
- अलग-अलग धर्मो के पैगम्बरों, सन्तों के जीवन के बारे में सरल और रोचक कहानियां तथा उनके उपदेशों को और पवित्र ग्रंथों को भाषा सम्बन्धी पाठ्य-सामग्रियों मे शामिल किया जाना चाहिए।
- विभिन्न तरीकों से नैतिक शिक्षा देने के लिए प्रति सप्ताह दो कालखण्ड अलग से लगाए जा सकते हैं।
- विद्यालय कार्यक्रम के माध्यम से मानवता और अन्य जीव-जन्तुओं बल्कि प्रकृति की भी सेवा करने की भावना और मानवता की, 'काम ही पूजा है', शिक्षार्थियो के मन-मस्तिष्क में जागृत की जानी चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर

- प्रातःकालीन सभा मे दो मिनट का मौन रखा जाना चाहिए और इसके बाद अलग-अलग धर्मो अथवा विश्व के महान साहित्य-जगत की ज्ञान भरी पुस्तकों से उपदेश पढकर सुनाए जाने चाहिए अथवा कोई समुचित प्रवचन दिया जाना चाहिए।
- विश्व के प्रमुख धर्मो से मिलने वाली खास-खास सीखों का अध्ययन कराया जाना चाहिए।
- नैतिक शिक्षा देने के लिए प्रति सप्ताह एक या दो घण्टे का समय निकाला जाना चाहिए। अच्छे वक्ताओ को बुलाकर विद्यार्थियो को नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर उनके विचार सुनवाए जाने चाहिए।
- छुट्टी के दिनों मे और कक्षा के बाद खाली समय में समाज सेवा का पाठ्येतर गतिविधियों का अनिवार्य अग के रूप में आयोजन किया जाना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर राष्ट्रीय शिविरो पर आयोजन कर सम्भव तरीके से नीति मूल्य की भावना मन में बैठाने मे सफलता मिल सकेगी।

मूल्य तथा नैतिक उत्थान के लिए शिक्षा में कार्यान्वयन

शिक्षा में जीवन मूल्य एवं आध्यात्मिक शिक्षा दो रूपों में क्रियान्वित की जा सकती है।

प्रत्यक्ष शिक्षण व्यवस्था—राष्ट्रीय शिक्षा पाठ्यचर्या के निर्देशानुसार इसके अन्तर्गत विधिवत शिक्षण दिया जाए जैसे— नैतिक मूल्य की पुस्तक को पाठ्यक्रम मे शामिल किया जाए उसके लिए एक कालखण्ड समय-सारणी में रखा जाए। यह व्यवस्था कई पब्लिक विद्यालयो मे होती है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को लागू करने में कई कठिनाइयां भी सामने आती हैं, जैसे समय-सारणी में कालखण्ड निर्धारण की समस्या, बस्ते का बोझ, विद्यार्थियो के मूल्यों का सही मूल्यांकन न कर पाना और मूल्यों के कालखण्ड में उदासीनता दिखाना, परीक्षा में अंकों का निर्धारण एव मूल्यांकन की भूमिका अनिश्चित होना आदि। इस सब कठिनाइयो के बावजूद जहा इस प्रकार का पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है उसका परीक्षा परिणाम अवश्य होता है। बच्चे चाहे इस ओर इतनी लगन से कक्षा में न बैठें पर इस प्रत्यक्ष शिक्षण का उनके मन मस्तिष्क में प्रभाव पड़ता है जैसे नैतिक शिक्षा की कक्षा में उन्होने यदि किसी महापुरुष के जीवन को पढ़ा तो निश्चय ही उनके जीवन की कुछ विशेषताएं बीज रूप में उनके अन्दर चली जाती है।

परोक्ष शिक्षण व्यवस्था— इसके भी दो रूप हो सकते हैं—

- **पाठ्यक्रम में जीवन मूल्य**— भाषा शिक्षण एवं सामाजिक विज्ञान एवं सामान्य ज्ञान के अन्तर्गत मूल्य

एवं नीति पर पाठ रखे जाएं जैसे—महापुरुषों का जीवन, उनके मूलभूत सिद्धान्त, भाषा मे साहित्य के अन्तर्गत नीति परक दोहे, कविता, मानवता, विश्व बन्धुत्व की भावना व राष्ट्रीय प्रेम से ओतप्रोत कविताएं/विभिन्न धर्मो के महत्वपूर्ण उत्सवों, पर्वो से सम्बन्धित पाठ इसी प्रकार राष्ट्रीय पर्व के पाठ आदि।

भाषा शिक्षण में इस प्रकार के पाठ पुस्तकों में संकलित होते है। मेरा हिन्दी भाषा शिक्षण मे लगभग 30-32 वर्ष का अध्यापकीय अनुभव रहा है जिसके आधार पर मैं दावे के साथ कह सकता हू कि यदि माध्यमिक स्तर पर हिन्दी साहित्य पढ़ाते समय शिक्षक जीवन मूल्य एवं नैतिक शिक्षा देना चाहे तो कहीं भी कोई कठिनाई नहीं है। इतना ही नहीं मेरा यह दावा है कि हिन्दी भाषा शिक्षण करते समय जीवन मूल्य, नीति शिक्षा को अलग नहीं किया जा सकता। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह कहना चाहती हू कि हिन्दी भाषा पठन-पाठन के समय विद्यार्थी पग-पग पर मूल्यों से परिचित होते है। जैसे कबीर, रहीम, रसखान के दोहे या तुलसी के साहित्य को बिना मूल्यो के कैसे व्याख्यित किया जा सकता है।

मीठी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय,
औरन को शीतल करे, आपौ शीतल होय।

'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।'

मानस की पंक्तियां— कहां, किस जगह, किस शब्द में जीवन मूल्य नहीं हैं यह 'कोई साबित करे'। चाहे कर्तव्यनिष्ठा हो, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, देशप्रेम, सौहार्द्र सहिष्णुता, एकता, समानता कौन-सा जीवन मूल्य नही है। आधुनिक काल यदि हम पढ़ा रहे हैं तो बिना जीवन मूल्य के कौन से कवि की कौन-सी रचना पाठ्यक्रम में रखी जाएगी। प्रेम का विस्तार देखिए जयंशकर प्रसाद की कविता 'जीवन के पथ में'

उस दिन जब जीवन के पथ में
लोगो की आखे ललचाई,
स्वंय मांगने को कुछ आई
मधुसरिता उफनी अकुलाई
देने को अपना संचित धन।

प्रेममयी सृष्टि को आप विद्यार्थियों में यदि अभिभूत करा पाए तो क्या यह मूल्यों की शिक्षा नहीं है।

अज्ञेय की पंक्तियां 'भीतर जागा दातार'

फिर भीतर
दाता खिल आया
हंस-हंस तुम्हें बुलाया
लो, यह स्मृति, यह श्रद्धा, यह हंसी
यह आहूत स्पर्श पूत भाव
यह मैं, यह तुम, यह खिलना
यह ज्वार, यह प्लावन
यह प्यार, यह अडूब उमड़ना,
सब तुम्हें दिया,
सब
तुम्हे,
दिया।

इन पंक्तियो का अद्भूत सौंदर्य की परिकल्पना, प्रिय के प्रति प्रेम, समर्पण, दातार भाव इन सबको यदि विद्यार्थी समझ सकें और साहित्य का रस लेते हुए जीवन मूल्यो को जाने तो फिर कौन-सा जीवन मूल्य शेष रहता है।

सुदामा पांडेय धूमिल की 'घर की वापसी' कविता में जो घर एवं घर के सभी प्राणी पिता, माता, बहन, बेटी, पत्नी की गरीबी का सजीव चित्र है उसके माध्यम से क्या हम जीवन मूल्य नही सिखा रहे हैं। चाहे बच्चन जी की कविता हो या फिर शिवमंगल सिंह सुमन की कविता सभी जीवन मूल्य की शिक्षा से ओत-प्रोत हैं। गद्य में प्रेमचन्द की कहानी 'पच परमेश्वर' के माध्यम से हम क्या जीवन मूल्य की शिक्षा नहीं दे रहे होते। सत्य और परमेश्वर की व्याख्या नहीं करते। ईदगाह कहानी आदर्श एवं यथार्थ कहानियां जीवन मूल्यों को इंगित करती हैं। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी प्रेम एव कर्तव्य निष्ठा का बोध है।

यह भाषा शिक्षण का एक रूप है जो कक्षा में हम शिक्षित करते है। सामाजिक विज्ञान में विभिन्न धर्मो की जानकारी जैसे बौद्ध धर्म के प्रवर्तक एवं उनके अष्टाग सिंद्धातों को समाहित करके पढ़ाया जा सकता है—

● सम्यक् दृष्टि ● सम्यक् संकल्प ● सम्यक् कर्मान्त ● सम्यक् वाक ● सम्यक् जीविकोपर्जन ● सम्यक् व्यायाम ● सम्यक् स्मृति ● सम्यक् समाधि।

जैन धर्म पंचमहाव्रत– ● अहिंसा ● सत्य ●अस्तेय ● ब्रहमचर्य ● अपरिग्रह (अनासक्त होना)।

गीता वेदान्त का ज्ञान– हिन्दी या किसी विषय के माध्यम से कर्म करो फल की इच्छा नहीं का सदेश पग-पग पर दिया जा सकता है।

इस्लाम धर्म– त्याग बलिदान, दया करुणा को जागृत करना। ईद पर निबंध लिखवाकर बलिदान और त्याग का पाठ पढ़ाया जा सकता है।

इसाई धर्म– ईसा मसीह का जीवन परिचय, उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं संकलित करके उससे बच्चों में इसाई धर्म के बारे में जानकारी एव ईसा मसीह के जीवन से प्रेरणा प्रदान की जा सकती है।

सिक्ख धर्म– 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' की वाणी सार एवं गुरुनानक देव, गुरु गोविंद सिह जैसे महान गुरुओं की जीवन की झांकी प्रस्तुत कर सिक्ख धर्म से विद्यार्थियों को अवगत कराया जा सकता है।

इस प्रकार उक्त विषयो की पाठयपुस्तकों मे धर्मो की जानकारी देकर उदार भावना को जागृत किया जा सकता है।

□ **पाठ्येतर शिक्षण द्वारा मूल्यों की शिक्षा–** जैसा कि ऊपर राष्ट्रीय शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूपरेखा मे सुझाव दिया गया। जिससे उन गुणो का विकास हो जो मनुष्य को सामाजिक दृष्टि से प्रभावकारी और सुखी बनाए, उनमे मित्रता, सहयोग, दया, आत्मानुशासन, आत्मालोचन, विनोद-वृत्ति, साहस, सामाजिक न्याय-प्रियता, आत्यसंयम आदि गुणों को अपनाए। पाठ्य चर्या में नैतिक तथा चारित्रिक मूल्यो पर जैसे ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, विश्वसनीयता, शिष्टता, निर्भीकता, दया, सहिष्णुता आदि को विकसित करने का सहज और सरल उपाय है पाठ्येतर शिक्षण–

- □ इसके लिए विद्यालय में ही प्रातःकालीन सभा में समूहगान, दो मिनट का मौन, विभिन्न धर्मों की प्रार्थना आदि का प्रावधान।
- □ अभियान के माध्यम से मूल्यपरक विषय पर वक्तव्य।
- □ साहित्यिक गतिविधियो का आयोजन, वाद-विवाद, निबन्ध, कविता, कहानी आदि प्रतियोगिताओं में अन्य विषयो के साथ जीवन मूल्यों के विषय, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, समाहित किए जाने से विद्यार्थी नैतिक मूल्यों को सीखते है। इसी प्रकार सांस्कृतिक गतिविधियों में आचलिक एवं भारतीय राष्ट्रीय सार्वजनिक मूल्यों, सांस्कृतिक भेदो और बहुलवाद की समझ एवं पर्यावरण संरक्षण आदि का पोषण हेतु समूहगान, विविध शैलियो मे पारंगत नृत्य व जीवन मूल्यों से भरपूर नाटक की प्रस्तुति छात्रों मे परोक्ष रूप से मूल्यो का शिक्षण करने में सक्षम होती है।

शैक्षिक भ्रमण की भी पाठ्येतर शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके द्वारा हम विभिन्न धर्मो के महत्वपूर्ण स्थलों, महापुरुषों के स्मारकों एवं सुरम्य प्राकृतिक वातावरण से छात्रो को अवगत कराते है, यह भी मूल्यों के शिक्षण मे अहम भूमिका निभाता है। इसी प्रकार महापुरुषो की जयन्तियो का आयोजन एवं विद्यालय प्रांगण मे बोर्ड सज्जा का उपयोग भी मूल्य शिक्षण में किया जाता है।

उल्लेखित सभी विधिया हमारे प्रायोगिक विद्यालय भोपाल में क्रियान्वित हो रही हैं। इस बात का भी जिक्र किया गया है कि भाषा शिक्षण के माध्यम से जितना मूल्य एव नैतिक शिक्षा दी जा सकती है उतनी प्रत्यक्ष रूप से नैतिक शिक्षा को विषय रूप में भी संभव नहीं है। यह अपने अध्यापकीय अनुभव से कह सकती हूं। बल्कि यह भी मानती हूं कि भाषा ही नहीं हर विषय का अध्यापक यदि नैतिक शिक्षा की उपेक्षा करते हुए शिक्षण करता है तो वह मात्र ज्ञान है शिक्षा नहीं। मूल्य परक शिक्षा पग-पग पर शिक्षक देता है और शिक्षार्थी ग्रहण करता है क्योंकि पाठयचर्या विद्यालय दर्शन की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उसमें ऐसे धटकों का समावेश होता है जो भौतिक परिवेश, सांगठनिक स्वास्थ्य और

मानवीय सबंधो से जुड़े कतिपय महत्वपूर्ण मूल्यो को जैसे— अनुशासन, स्वच्छता, समयनिष्ठता, लोकतांत्रिक व्यवहार, प्रतिबद्धता, व्यवस्था, शिष्टाचार, पर्यावरण रक्षा, दूसरे के धर्मो के प्रति आदर की भावना, जाति एवं समुदाय के प्रति सम्मान को प्रतिबिबित करते हैं। यह कैसे सम्भव है कि किसी विषय का अध्यापक विद्यालय मे उपरोक्त मूल्यो की अवहेलना करते हुए शिक्षण कार्य सम्पन्न करे। अपने अध्यापकीय काल का एक क्षण भी स्मरण नही है जब मूल्यों को दरकिनार करके विद्यालय में पग रखा हो, चाहे वह हिन्दी भाषा की कक्षा हो या सभाग्रह अथवा प्रातःकालीन सभा। अध्यापक होने के बावजूद यह कहने में संकोच नही है कि हमें मूल्यों के संप्रेषण के लिए स्वयं मे विभिन्न क्षेत्रों में सहज समाहित मूल्यों को उभारना होगा। कक्षा के वातावरण को तनावहीन और लोकतान्त्रिक बनाना जरूरी होगा।

मूल्यो का विकास सुनिश्चित करने के लिए शिक्षण प्रक्रिया में पारस्परिक चर्चा, प्रदर्शनियां, मूल्यों के स्पष्टीकरण और उनके अभ्यास, खुले सत्रों आदि का समावेश भी किया जाता है। कई बार विद्यार्थियों के मन मे मूल्यो के प्रति आदर जगाने, आस्था पैदा करने के लिए सलाहकारो, विशेष अध्यापको का भी उपयोग किया जाता है। अतः समग्र रूप से पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, पाठ्येतर गतिविधियों, शिक्षण प्रशिक्षण आदि के द्वारा ही राष्ट्र का सर्वागीण विकास एव जीवन मूल्य तथा नैतिक उत्थान सम्भव है। ❑❑

84, प्रिंस कालोनी
लोवर ईदगाह हिल्स
भोपाल, मध्य प्रदेश

परिवार, विद्यालय और समाज में शिक्षा मूल्यों की भूमिका

❑ निशात फात्मा

> **अभिभावकों के मन में बालक के जीवन को धन सम्पन्न बनाने की कामना रहती है यह एक साधारण तथ्य है। महत्वपूर्ण यह है, कि बालक को गुण सम्पन्न बनाने की कामना रहे। माता-पिता बालकों के सफल, सुखद भविष्य के लिए सुख सुविधाओं के साधनों का ढेर लगाते रहते हैं पर ये सारे गौण हैं। प्रमुख है– बालक में शुद्ध, स्वस्थ आदर्श संस्कारों का निर्माण और इसके लिए आवश्यक है अभिभावक अपने गुणों की प्रस्तुतियां बालकों के समक्ष करे, जिससे बालक गुणवत्ताएं ग्रहण करता रहे और गुण संपन्न बने।**

शिक्षा जीवन-पर्यन्त चलने वाली एक चेतन प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक के व्यवहार को धनात्मक दिशा में परिमार्जित करने का प्रयास किया जाता है। वास्तव में शिक्षा का मूलाधार व्यक्ति की आतरिक भावनाएं एव चिंतनधारा होती है। व्यक्ति का सामाजिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश ही उसकी आंतरिक विचारधारा और भावनात्मक पृष्ठभूमि को निर्धारित करने मे प्रभावी होता है। सम्प्रति भारतीय समाज मे चारित्रिक पतन दृष्टिगोचर हो रहा है। आज का शिक्षित समाज जो अपने क्षेत्र मे दक्षता प्राप्त करके लोक कल्याण एव समाज सेवा मे सहायक हो सकता है। किंतु धनार्जन की बलवती लालसा उन्हें ऐसा करने से रोकती है और वह प्रशासनिक सेवाओं की ओर आकर्षित होते हैं क्योंकि वहा भ्रष्टाचार के माध्यम से अधिक धन अर्जित किया जा सकता है। इसका मूल कारण शिक्षा में उच्च जीवन मूल्यों का अभाव है। आज की मूल्य रहित शिक्षा मेधावी छात्र-छात्राओ को डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक तथा कुशल प्रशासक बनाने मे तो समर्थ है किंतु उच्च जीवन मूल्यों का अनुसरण करने वाला नागरिक या मानव बनाने में असमर्थ है। अतः आज मूल्यों पर आधारित शिक्षा की महती अपेक्षा है। इसके लिए शिक्षा पद्धति में डिग्री के महत्व के साथ-साथ ज्ञानार्जन के महत्व को प्राथमिकता में लाना होगा, शिक्षा को व्यवसाय बनाने से रोकना होगा और इसके पवित्र स्वरूप को पुनर्स्थापित करना होगा। यह कार्य शिक्षक व अभिभावक वर्ग को साथ लेकर ही किया जा सकता है, क्योंकि घर या परिवार ही वह स्थान है जहां शिशु जन्मोपरान्त सर्वप्रथम ज्ञानवर्धन करता है एवं संस्कार ग्रहण करता है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अभिभावकों का जीवन और घर का वातावरण आदर्श हो, तभी बालक में आदर्श गुणों का संचार हो सकता है। अभिभावक वर्ग में मां की जिम्मेदारी सबसे अधिक है। मां यदि अपने बालक के सफल, सशक्त निर्माण और सर्वांगीण विकास के लिए कटिबद्ध हो जाए तो नई पीढ़ी का नवनिर्माण करके राष्ट्र के विकास में चार चांद लगा सकती है। मां की मानसिकता, गतिविधियों एवं क्रियाकलापों से बालक संस्कार ग्रहण करता है। अतः मां को गर्भावस्था मे तथा जन्म के उपरान्त सदैव अपने आपको तथा घर के वातावरण को पूरी तरह से संयमित, संतुलित व व्यवस्थित बनाए रखना होगा। मां, बालक की मात्र जननी ही नहीं है परन्तु वह उसके भावी स्वरूप की निर्मात्री और सच्ची शिक्षिका भी है। प्रत्येक मां के लिए यह आवश्यक है कि वह इस वस्तुस्थिति का अनुभव करे और अपने को योग्य बनाए। मां के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्य भी बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मां के उपरान्त पिता का स्थान है। मां यदि बालक की सर्वांगीण पूर्ण निर्मात्री है तो पिता बालक का सर्वांगीण पूर्ण संरक्षक है। पिता की छत्रछाया में ही बालक सम्भावित

बुराइयो से बच सकता है और सदाचार का अनुसरण करता रहता है। बालक सुसंस्कारी बना रहे इसके लिए पिता को भी अपने आपको तथा घर के वातावरण को उसके अनुरूप बनाए रखना जरूरी होता है।

अभिभावको के मन मे बालक के जीवन को धन सम्पन्न बनाने की कामना रहती है। यह एक साधारण तथ्य है। महत्वपूर्ण यह है कि बालक को गुण सम्पन्न बनाने की कामना रहे। माता-पिता बालको के सफल-सुखद भविष्य के लिए सुख-सुविधाओं के साधनो का ढेर लगाते रहते हैं पर ये सारे गौण है। प्रमुख है— बालक मे शुद्ध स्वस्थ आदर्श सस्कारों का निर्माण और इसके लिए आवश्यक है अभिभावक अपने गुणो की प्रस्तुतियां बालको के समक्ष करे, जिससे बालक गुणवत्ताएं ग्रहण करता रहे और गुण सपन्न बने। अभिभावक यदि बालकों को दिए जाने वाले उपदेश के विपरीत कार्य करते हैं तो निश्चय ही इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अत· अभिभावकों को इस संबंध मे पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए।

यू तो मूल्यों के निर्माण की नींव परिवार में ही रखी जाती है। परन्तु उस पर दृढ़ ढांचा बनाने का कार्य विद्यालय करता है। विद्यालय मे प्रवेश के उपरान्त ही बालक प्रथम बार अपने माता-पिता एवं अन्य परिवारजनों से दूर होता है। विद्यालय के सोपानो से परिचित होता है। ऐसे मे यह आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण बाल सुलभ इच्छाओ के अनुरूप हो, वहां उसके आकर्षण और मनोरंजन के साधन हों। विद्यालय के प्रति विद्यार्थी का आकर्षण, शिक्षक के प्रति लगाव तथा विद्यार्थी जीवन की सम्पूर्ण सारगर्भित सफलता वास्तव में विद्यालय के वातावरण, शिक्षक के मनोवैज्ञानिक शिक्षण तथा स्नेहपूर्ण सद्भावना व कर्तव्यपालन पर निर्भर करती है। इस संदर्भ में कवीन्द्र रवीन्द्र की उक्ति प्रस्तुत है—

"हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरु के आसन पर बैठे हैं और हमें अपने शिष्यों मे जीवात्मा फूंकनी है। अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय मे ज्ञान और विद्या की ज्योति जगानी है— अपने प्रेम द्वारा बालकों का उद्धार करना है— उनके अमूल्य जीवन का सुधार करना है। उस समय वे सत्य रूप से स्वाभिमान के अधिकारी बन सकेंगे तब वे ऐसी वस्तु प्रदान करने को तैयार होंगे जो विक्रय नहीं है, जो मूल्य देकर प्राप्त नही हो सकती। उसी समय वे शिष्यो के निकट सरकार द्वारा नहीं वरन् धर्म के विधान तथा प्राकृतिक नियम के अनुसार सम्मानित तथा पूज्य बन सकेंगे।"

शिक्षा संस्कारो की जननी है। अतः हमें शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण राष्ट्र के अनुरूप करना होगा। आज आवश्यकता है शिक्षा के उन आदर्शो की जो सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के मूल्य को समाज मे पुनः स्थापित कर सके। इसके लिए शिक्षक से बडा दिशा निर्देशक कोई नहीं हो सकता। इसलिए विद्यालय में अध्यापक का स्थान सर्वोपरि स्वीकार किया गया। भारत जैसे देश में जहां सदैव गुरु को पूजनीय माना गया है वहां वर्तमान समय की शिक्षक-शिक्षा प्रणाली की विसंगतियों को देखते हुए तथा विगत दशको से शिक्षको की क्षमता, प्रतिबद्धता तथा कार्य निष्पादन की योग्यता में हो रहे ह्रास को देखते हुए शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम में संशोधन कर राष्ट्रीय स्तर पर एक मूल्यपरक एवं समान पाठ्यक्रम को लागू करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है, जिसका प्रमुख उद्देश्य होगा— जीवन को पूर्णता की ओर उन्मुख करना। इस पाठ्यक्रम में सत्य, शांति और अन्य मानव मूल्यो के सूत्र, आत्मवत सर्व भूतेषु एवं वसुधैव कुटुम्बकम्, आध्यात्म का वैज्ञानिक स्वरूप, आध्यात्म और अनुसंधान, शिक्षा का आध्यात्मिक आधार, मूल्य शिक्षण के व्यावहारिक पहलू और मूल्यांकन आदि हो तो तभी हम शिक्षा के अभिष्ट उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगे।

आज प्रत्याशा और प्रतिफल मे विशाल अन्तर शिक्षा व्यवस्था की नैतिक दृष्टि से सबसे बड़ी दुखद स्थिति है। विश्व सन्दर्भ मे भारतीय शिक्षा के लिए कहा जाता था कि "स्वस्व चरित्रं विक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" किन्तु आज भारतीय शिक्षा विश्व सन्दर्भ में तो क्या अपने छात्र के चरित्र निर्माण पर ही कोई ध्यान नहीं दे पा रही है। कारण सुस्पष्ट है, चित्त परिष्कार के अभाव में शिष्टाचार एवं नैतिकता की शिक्षा अनुकूलन मात्र ही होती है। आज भी भारतीय छात्र प्रतिभा और बुद्धि में किसी से कम नहीं हैं, किन्तु किन्हीं कारणो से संस्कार विहीन भारतीय

शिक्षा इस प्रतिभा को मुखरित करने में सहायक सिद्ध नहीं हुई है। आज शिक्षण संस्थाएं स्थानीय राजनीति एव जातिवाद से ग्रस्त हैं, जिनमें छात्र व शिक्षक दोनों का यथा सम्भव शोषण किया जाता है। आज भारतीय शिक्षा आर्थिक और सामाजिक विषमता को दूर करने के बजाय चिरस्थाई कर रही है। भारतीय शिक्षा मे पश्चिमी देशों की क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों का अंधानुकरण किया जा रहा है, जिनके चलते नैतिक मूल्यो के विकास हेतु कोई स्थान नहीं रह जाता। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मे शिक्षक के लिए निर्धारित दायित्वों के चलते वह केवल नाटकीकरण करते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन कर रहा है। अधिकारी भी इस नाटक को देख रहा है। किन्तु सभी चुप्पी साधे हुए हैं; कारण नैतिक पतन ऊपर तक हो चुका है। आज भारतीय शिक्षक भी कुछ अपवादों को छोड़कर मात्र एक बिचौलिया बनकर रह जाता है, जो पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान को छात्रो तक पहुंचाने का कार्य करता है। आज औसत भारतीय अध्यापक का ज्ञान के उत्पादन मे योगदान नगण्य है। आज मौलिकता का आकलन पद, वरिष्ठता, डिग्रियों एवं परीक्षा की श्रेणियों से ही आंका जाता है; यह विचारणीय बिन्दु है।

मूल्य व व्यवहार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं एवं मूल्य व्यक्ति का परिलक्षित व्यवहार ही है। बालक पर परिवार से भी अधिक प्रभाव उसके अध्यापक का रहता है परन्तु प्राइमरी स्कूल से लेकर डिग्री कालेज तक शिक्षकों ने अपने पद की गरिमा को नजरन्दाज करते हुए स्वार्थो की पूर्ति को ही अपना ध्येय बना लिया है, जिसके कारण छात्रों में न तो मूल्य विकसित होते है और न ही शिक्षकों के सम्मान की भावना। अच्छे शिक्षकों के सान्निध्य में जो युवा कर्तव्यनिष्ठा को समझकर, मूल्योचित आदर्श व्यवहार करते है, उन्हें भी अध्यापन को कैरियर बनाने में भ्रष्ट पदाधिकारियों तथा उन स्वार्थी संस्था चालकों का सामना करना पड़ता है, जो उनकी कर्तव्यपरायणता को तिरोहित करने में कोई कसर नही छोड़ते। यदि कुछ बुरे लोगो का गुट हो सकता है, तो अच्छे लोग भी संगठित होकर सच्चाई को जीत दिलवा सकते है, पर इसके लिए आवश्यकता है आध्यात्मिक चिन्तन की, दृढ़ प्रतिज्ञा की व आत्मविश्लेषण की जो संस्थाओं का शान्ति कुंज जैसा पावन वातावरण होने पर ही सभव है। ऐसी व्यवस्था लाने, मूल्यों को पुनर्स्थापित करने के लिए भयमुक्त वातावरण मे, शिक्षकों व छात्रो का ऐसे व्यक्तियों का सान्निध्य परमावश्यक है, जिनकी कथनी व करनी मे कोई अंतर न हो।

दार्शनिक मान्यता है कि शिक्षा न तो कोई किसी को दे सका और न ही कोई किसी से ले सका। इसी प्रकार जीवन रूपी विद्या मे मूल्य शिक्षा भी स्वय की खोज व उपयुक्त पात्रता पर ही आधारित है। विभिन्न शिक्षण पद्धतिया तो केवल मूल्य-शिक्षण या मूल्य-रोपण के प्रति इंगित भर करती है। वास्तव में स्वय की खोज तो निजत्व को देह रूपी कवच से बाहर कर चन्द्रमा रूपी लक्ष्य को पाना है न कि उस ओर उठती उंगली को ही पकड़े रहना। अतः आज की शिक्षा व्यवस्था में मूल्यहीनता, असन्तुष्टि, अराजकता, हिंसा, असुरक्षा आदि की भावनाओ से पार पाने हेतु पहले शिक्षकों में ही वांछित मूल्यों को पनपाना होगा। इसके लिए उन्हे अपने विषयों में पारंगत होने के साथ ही उच्च मूल्यों का स्वामी होना आवश्यक है।

शिक्षक तब तक सच्ची शिक्षा कदापि नहीं दे सकता, जब तक कि वह स्वयं न सीख रहा हो, एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक कदापि नहीं जला सकता जब तक कि वह स्वयं न जल रहा हो (रविन्द्रनाथ टैगोर)। अर्थात् अच्छी शिक्षा अच्छे शिक्षक पर निर्भर करती है और शिक्षक की अच्छाई अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर है, पर वह प्रभावहीन सिद्ध होती है। यदि ऐसे कुशल, जागरूक, विद्वान और सक्षम शिक्षक न हों, जो बच्चों को उनका उचित प्रयोग सिखा सकें एवं उनका उचित मार्गदर्शन कर सके। भारत सरकार के विभिन्न प्रयासों जैसे— माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953), शिक्षा आयोग (1966), 'द चैलेज ऑफ एजुकेशन' (भारत 1985) के साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986 एवं 1992 तथा 2000) ने भी स्वीकार किया है कि शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले और राष्ट्रीय विकास में योगदान देने वाले सभी कारको में निःसंदेह ही शिक्षक की योग्यता, क्षमता और चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

मानव जीवन का अभिन्न अंग होने से शिक्षा के गुण मनुष्य के व्यक्तित्व मे स्वतः ही सम्मिलित हो जाते है। इनमें शिक्षा की प्राप्ति तथा उसे सुरक्षित रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्व स्व उद्यम का विशिष्ट स्थान है। यह प्राचीन काल से ही हमारी शिक्षा का प्रधान अंग रहा है। वैदिक काल में वर्णानुसार शिष्यो को अनेक उद्यमों का ज्ञान कराया जाता था। कृषि, पशुपालन, रण विद्या, राज्य संचालन, व्यापार, वस्त्र निर्माण तथा कुटीर उद्योग भी इस शिक्षण व्यवस्था मे सम्मिलित थे। गुरुकुल मे रहकर शिष्य इतनें उद्यमी हो जाते थे कि अध्ययनोपरांत उन्हें समाज मे पहुचकर निराश और अकर्मण्यता का सामना नहीं करना पड़ता था। किन्तु धीरे-धीरे उद्योग शिक्षा के क्षेत्र से बाहर होने लगे और केवल पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर शिक्षित युवक-युवतिया कुछ नया कर पाने मे असमर्थ हो गए। परिणाम यह हुआ कि समाज के शिक्षित वर्ग का मूल्य गिरने लगा। वर्तमान बेरोजगारी, अनुशासनहीनता, धनलोलुपता तथा स्वार्थ लिप्सा वर्तमान शिक्षा पद्धति की ही देन है। अत यह आवश्यक है कि शिक्षा व्यवस्था में श्रम की प्रतिष्ठा करते हुए छात्र को स्वोत्थानशीलता की शिक्षा प्रदान की जाए और इसके लिए विद्यालय ही महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर सकता है।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को प्रत्यक्ष लाभ पहुंचा कर राष्ट्र एवं समाज को अप्रत्यक्ष लाभ पहुचाती है। क्योकि बच्चा जैसे ही अनुकरण करने योग्य होता है समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तथा जैसे ही उसमे समझ आती है वह संस्कृति ग्रहण करने लगता है। इस प्रक्रिया को पूर्ण करने में परिवार तथा विद्यालय के अतिरिक्त मुख्य भूमिका समाज की रहती है। जिस समाज मे एकता, समरसता एवं दैवीय गुणों का प्रचार-प्रसार होता है और कटुता, परायापन तथा अन्य भेदभाव की विकृतियो पर अंकुश लगा रहता है। ऐसे समाज में रहने वाले व्यक्तियो का जीवन स्वान्तः सुखाय न होकर परहिताय होता है। दूसरों के सुख में ही उन्हें आनन्द मिलता है। किन्तु वर्तमान समाज से ऐसे गुण समाप्त होते जा रहे हैं। आज लोग परहिताय के स्थान पर परदुखाय में संलग्न है। आज हर मानव की जबान पर प्रेम, अहिसा, दया, सेवा विराजमान है परन्तु क्या इनका व्यावहारिक प्रयोग हो रहा है। जनसेवा की शपथ लेने वाला डॉक्टर बिना धन के मरीज की ओर देखता भी नहीं। 'न्याय' की शपथ लेने वाला न्यायधीश क्या वास्तव में न्याय कर पा रहा है और आपको भविष्य निर्माता कहने वाला शिक्षक छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ नहीं कर रहा है। मूल्यों के अभाव मे भाषा अर्थहीन हो गई है। मानव व्यवहार अनिश्चित, तनावपूर्ण व अवसाद से ग्रसित हो गया है। इस दुखद स्थिति से उबरने का केवल एक ही उपाय है कि शिक्षा के कार्यक्रम मे इस प्रकार पाठ्यक्रमों का भारतीयकरण किया जाए कि शिष्यो के जीवन में पुनः आत्मानुभूति जैसे भारतीय मूल्यों का संचार हो। भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए मूल्यों को पुनः ढूढकर उनका सही अर्थ जानकर राष्ट्र को एक समृद्ध और दृढ़ राष्ट्र बनाना होगा। शिक्षा का प्रयास यह होना चाहिए कि छात्र मूल्यो का जीवन जीना आरम्भ करें। सर्वप्रथम छात्र के निकट उसका परिवार और शिक्षक ही है। इन दोनों के प्रयास जितने सघन और श्रेष्ठ होंगे, शिक्षा उतनी ही फलवती होगी और समाज भी उतना ही समुन्नत होगा। वर्तमान परिस्थितियों में वातावरण और प्रस्तुतियों पर अधिक ध्यान देना अपेक्षित है। क्योंकि बालक पुस्तकों से उतना प्रभावित नहीं होता जितना वातावरण और प्रस्तुतियो से होता है।

शिक्षा समाज के विकास व अभिवृद्धि का प्रमुख साधन है। इसी के कारण मनुष्य के शुभ एवं अशुभ शिवत्व एवं विनाश दोनो ही प्रकार की स्थितियां निर्मित हो सकती है। शिक्षा यदि अच्छी है तो राष्ट्र व समाज का विकास सम्भव है अन्यथा उन्हे पतन की ओर जाने से कोई नहीं रोक सकता है। शिक्षा का व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों मूल्य होता है। समाज की परिस्थितियां सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता आदि मूल्यों की व्यावहारिक प्रेरणा देती हैं, परन्तु साथ ही शिक्षक के व्यक्तिगत मूल्य का भी विद्यार्थी पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनो ही प्रभाव पड़ता है। अतः हम कह सकते हैं कि मूल्यों से हटकर हम उत्तम शिक्षा की व्यवस्था नही कर

सकते। प्रो. अबर्न ने कहा है कि "मूल्य वह है जो मानव इच्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण मे सहायक हो तथा वही परम रूप से और साध्य रूप से मूल्यवान है जो आत्माओ के विकास या आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाए।" इस रूप मे मूल्य शिक्षा के महत्व को जाना एवं समझा जा सकता है।

आज के आपा-धापी के भौतिकवादी युग में मनुष्य हर तरफ चिन्ताग्रस्त दिखाई दे रहा है। कारण स्पष्ट है कि आज हमने प्राकृतिक (सरल) जीवन जीना छोड़ कर धन के पीछे भागना प्रारम्भ कर दिया है। प्राकृतिक जीवन से यह अर्थ कदापि नहीं है कि कोई व्यक्ति घास-पात खाए, अपितु उसका तात्पर्य तो यह है कि मानव अपने शरीर व मन की भाषा को समझे और उसी के अनुरूप आचरण करे। प्रकृति द्वारा दिन काम करने के लिए व रात विश्राम करने के लिए बनाई गई है, जबकि आज का मानव अधिकतम धन प्राप्ति के लिए मशीन बनकर रह गया है। न समय पर खाना, न समय पर सोना। इसका परिणाम है शरीर व मन पर पड़ने वाला वह बोझ जो मनुष्य को चिन्ताग्रस्त बनाता है और अन्त होता है— मानसिक अवसाद, हाई ब्लड-प्रेशर व कैंसर आदि रोगों के रूप में। मनुष्य का सरल जीवन हो इसके लिए आवश्यकता है, भारतीय संस्कृति के मूलाधार योग को अपनाने की। स्वस्थ समाज में ही स्वस्थ शिक्षा व स्वस्थ आचरण की कल्पना की जा सकती है। शरीर व मन से स्वस्थ शिक्षक ही समाज को सही दिशा प्रदान कर सकता है। यह सब योगदर्शन से सभव है।

आज के समाज की यह धारणा बन चुकी है कि मूल्यों एवं सिद्धान्तों पर न चलने वाले व्यक्ति ही प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान शिक्षा में अनुशासनहीनता, श्रम के प्रति उपेक्षा, कर्तव्यो के प्रति उदासीनता आदि भावनाएं छात्रों तथा अध्यापकों के मानस पटल पर अंकित हो चुकी है। वास्तव में मूल्यों की संकटग्रस्त स्थिति जिस प्रकार जीवन के अन्य अंगों में व्याप्त है उसी प्रकार स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा शिक्षको में भी व्याप्त है। सम्प्रति आवश्यकता है कि सुसंगत तथा व्यवहार मूल्य प्रणाली को ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से लागू किया जाए जो जीवन के प्रति तर्कसगत, वैज्ञानिक तथा नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित हो तभी सही अर्थों में हमारी शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य पूर्ण होगा।

❑❑

हिन्दी विभाग
नायाब अब्बासी गर्ल्स डिग्री कॉलेज
कैलसा रोड, अमरोहा, उत्तर प्रदेश

बहुश्रेणी शिक्षण विद्यालय का सफल प्रयोग

❑ सतीश कुमार यादव

हमारे देश की भौगोलिक स्थिति काफी कठिन है। कहीं पर तो रेगिस्तानी भू-भाग है तो कहीं पर पहाडी क्षेत्र है। कही पर घनी आबादी है तो कही पर कम आबादी के क्षेत्र है। इन सभी स्थितियो में भी संविधान के अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण एक संवैधानिक उत्तरदायित्व है। सभी जगहो पर स्कूलों की सुविधा हो और सभी कक्षाओ मे पढ़ाने के लिए एक कक्षा के लिए कम से कम एक अध्यापक हो। परन्तु यह हमारे जैसे देश के लिए काफी कठिन कार्य है। दूर-दराज के क्षेत्रों मे आबादी कम होने के कारण हर कक्षा के लिए अलग से अध्यापक प्रदान करना, आर्थिक व प्रशासनिक दृष्टि से संभव नही है। इसलिए हमारे देश में प्राइमरी स्तर पर 80 प्रतिशत से भी ज्यादा बहुकक्षीय शिक्षण के विद्यालय है और यही एकमात्र विकल्प है। अब प्रश्न यह उठता है कि बहुकक्षा शिक्षण प्रणाली को कैसे सक्षम बनाया जाए ताकि सभी बच्चों को सुचारू रूप से शिक्षा प्रदान की जा सके। हमारे देश में इस प्रणाली के बहुत से सफल उदाहरण हैं। इस लेख में भी एक बहुकक्षीय शिक्षण विद्यालय की चर्चा है जिसका नाम है– राजकीय प्राइमरी कन्या पाठशाला, चक्करपुर, गुरुगांव, हरियाणा। इस विद्यालय में कुल बच्चों की सख्या 156 है और तीन अध्यापक हैं।

यह विद्यालय अपना कार्य सुचारू रूप से चला रहा है और बच्वो का पढाई में, खेलकूद में व अन्य सभी पहलुओ में विकास हो रहा है। इस लेख मे इस विद्यालय की न्यूनतम कार्य प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है।

सारणी 1
बच्चों का नामांकन

कक्षा	नामांकन
1	34
2	29
3	40
4	27
5	26
कुल	156

बच्चों का जबानी व लिखित रूप से मूल्यांकन बार-बार किया जाता है। कक्षा एक व दो के बच्चों की ज्यादातर मौखिक तौर पर परीक्षा ली जाती है। बच्चों की मासिक, त्रैमासिक व वार्षिक परीक्षाएं ली जाती हैं। इस तरह से बच्चों का लगातार मूल्यांकन कर उनका सम्पूर्ण विकास किया जाता है।

अध्यापक-अध्ययन की कार्य प्रणाली

मुख्याध्यापिका कक्षा एक की इंचार्ज हैं और विद्यालय के सभी प्रशासनिक कार्यो के साथ-साथ इस कक्षा का अध्यापन करती हैं। दूसरी अध्यापिका कक्षा दो और तीन की इंचार्ज है व तीसरी अध्यापिका कक्षा चार और पांच की इंचार्ज है। ये तीनो अध्यापिकाएं बच्चों के अध्यापन के समय तरह-तरह की विधियों का प्रयोग करती है और बच्चों को सुचारू रूप से पढ़ाती हैं।

प्रत्यक्ष अध्यापन

कक्षा एक की अध्यापिका अपनी कक्षा को सभी विषय प्रत्यक्ष रूप से पढ़ाती है। दूसरी अध्यापिका जो कक्षा दो और तीन की इंचार्ज है, वह एक कक्षा को एक बार प्रत्यक्ष रूप से पढ़ाती है और दूसरी कक्षा जिसको

पहले प्रत्यक्ष अध्यापन द्वारा पढाया गया था उसका स्वतः अध्ययन करते हैं या अध्यापक द्वारा जो कार्य दिया जाता है उसे पूरा करते हैं। इस प्रणाली को तीसरी अध्यापिका भी अपनाती है।

समूह कार्य

ये तीनों अध्यापिकाएं बच्चों के लिए छोटे-छोटे कार्ड, चार्ट, मॉडल, वर्कबुक व अन्य सामग्री बच्चो की सहायता से गणित, हिन्दी, पर्यावरण अध्ययन, जो कि उनके विषयों से संबधित हैं, तैयार करवाती है। ये सामग्री पहली कक्षा से पाचवी कक्षा तक हर विषय के लिए अलग-अलग बनाती हैं। इसमें गिनती, पहाड़े, गुणा, जमा, भाग, प्रतिशत, अक्षर ज्ञान, व्यापक उद्धरण, पौधों की संरचना, आने-जाने के साधन इत्यादि की सामग्री होती है।

मॉनीटर की सहायता से

तीनों अध्यापिकाओं ने सभी कक्षाओं में एक-एक मॉनीटर बना रखा है। ये मॉनीटर जब अध्यापिकाएं दूसरी कक्षा को पढ़ाती हैं तो एक कक्षा को मॉनीटर अध्यापक का कार्य करवाते हैं। बच्चों को पहले पढ़ाए गए पाठ की मुश्किलों को हल करने में सहायता करते हैं। कभी-कभी छोटे समूह में कार्य करवाने में अपने साथियो की मदद करते हैं। और कभी उनके गृहकार्य करवाने में भी मदद करते हैं। कई बार कमजोर बच्चों की सहायता करते हैं जबकि दूसरे बच्चे स्वतः कार्य कर रहे हों। ये मॉनीटर समय-समय पर बदलते रहते हैं।

पूरक पठन सामग्री

बच्चो को स्कूल में विभिन्न प्रकार की पूरक पठन सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। कई बार यह सामग्री बच्चों को एस. सी. ई. आर. टी. या डाइट से भी प्राप्त होती है। इस सामग्री से बच्चों में पढ़ने की रुचि उत्पन्न होती है और सीखने व पढ़ने की आदतो का विकास होता है। ज्यादातर यह पूरक पठन सामग्री होशियार बच्चों को पढ़ने के लिए प्रदान की जाती है। इसके साथ ही समूह कार्य में दूसरे बच्चों को भी दी जाती है।

विस्तारित अध्यापन

बच्चो का गृहकार्य स्कूल में ही कराया जाता है। ज्यादातर इन बच्चों के माता-पिता शैक्षिक कार्य में ज्यादा रुचि नही लेते हैं। बच्चे अपना गृहकार्य नहीं करते हैं। तीनों अध्यापिकाएं स्कूल के खुलने से आधा घण्टा पहले और स्कूल की छुट्टी से आधा घण्टा बाद तक बच्चों को स्कूल में बुलाती हैं और उनका, विशेषकर, गृहकार्य कराती हैं।

क्षेत्र यात्राएं

समय-समय पर सभी बच्चों को आसपास के क्षेत्रो का भ्रमण करवाया जाता है। एक बार बच्चों को मारुति फैक्ट्री का भ्रमण करवाया और बच्चों ने देखा कि मारुति फैक्ट्री में कारें कैसे बनती हैं। कार के अलग-अलग पार्ट कैसे बनते हैं। बच्चों को इस भ्रमण से बहुत आनन्द आया और बच्चों के मन में तरह-तरह के विचार आए। अध्यापिकाओं ने बच्चों के प्रश्नों के उत्तर दिए। इस भ्रमण के बाद बच्चों को यातायात से सम्बन्धित पाठ को पढ़ने में कोई समस्या नहीं आई। इसके अतिरिक्त बच्चों ने काफी कुछ सीखा और ऐसे भ्रमण से बच्चों का पाठ्यक्रम बोझ भी कम किया जा सकता है।

समुदाय से संपर्क

स्कूल और समुदाय का एक अच्छा संपर्क है। मुख्याध्यापिका समुदाय के साथ समय-समय पर मीटिंग करती है। स्कूल में भवन की कमी थी। समुदाय की सहायता से स्कूल में एक कमरा और बरामदा बनवाया। इससे अब सभी बच्चों को बैठने के लिए स्कूल में कमरे बन गए हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल के मुखिया ने जन्मदिन के अवसर पर एक लोहे की अलमारी स्कूल को दान दी। गांव के बढ़ई ने स्कूल के कमरे के दरवाजे बनाए और बाकी सभी की मरम्मत की। इसके साथ ही बढ़ई ने छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े बनाकर दिए। बड़े बच्चों ने इन पर गिनती व अक्षर लिखे। छोटे बच्चो को सीखने मे इस साम्रगी से बड़ा आनन्द आता है। इस गांव में एक सेवानिवृत अध्यापक है वह समय-समय पर हमारे यहां कक्षा चार,

पाच को गणित पढ़ाने में मदद करता है। कभी-कभी वह पहली व दूसरी कक्षा के बच्चों के साथ बैठकर मिट्टी की गोलियां व खिलौने बनवाता है। जिससे बच्चे आनन्द से सीखते हैं।

बैठने की व्यवस्था व प्रार्थना की नवीन प्रणाली

प्रार्थना से पहले सभी बच्चे अपनी कक्षाओं की और स्कूल के वातावरण की सफाई करते हैं। उसके बाद प्रार्थना के लिए इकट्ठे हो जाते है।

- प्रार्थना के समय सभी बच्चों को कक्षावार पांच लाइनों में खड़ा किया जाता है। सभी अध्यापक सामने खड़े होते हैं। इस समय बच्चे प्रार्थना करते हैं। उसके बाद बच्चे समूह गान करते है। रोजाना बारी-बारी बच्चे मुख्य खबरें अखबार मे से पढ़कर सभी के सामने रखते हैं। तीनो अध्यापिकाएं बारी-बारी कुछ बच्चों को रोजाना अच्छी बातें बताती है। इसी समय बच्चो को पी.टी कराई जाती है। सभी की हाजिरी भी ली जाती है। इसके अतिरिक्त कोई बच्चा न आता हो तो दूसरे बच्चो को उसके घर पर भेजकर बुलाया जाता है।
- प्रार्थना के बाद बच्चे तीन स्थानो पर बंट जाते हैं। पहली कक्षा अकेली बैठती है, दूसरी व तीसरी एक तरफ और चौथी व पाचवी दूसरी जगह बैठती हैं। पढ़ाई का कार्यक्रम चलता रहता है और जैसा कि ऊपर बताया गया है अध्यापक अलग-अलग कक्षाओं को प्रत्यक्ष व मॉनीटर की सहायता से पढ़ाते हैं। जब समूह में कार्य करते हैं तो होशियार और कमजोर बच्चो को साथ-साथ पढ़ाते हैं।

खेलकूद

आखिरी कालाश में सभी बच्चे खेल के मैदान में खेल खेलते हैं। ज्यादातर बच्चे खो खो, फुटबाल, कबड्डी इत्यादि खेल खेलते हैं। अध्यापिकाएं भी बच्चों के साथ खेल खेलती है।

समय-सारणी

स्कूल में पूरे वर्ष की समय-सारणी बनाई जाती है। परन्तु इस समय-सारणी को हर सप्ताह समयानुसार बदलते रहते हैं ताकि बच्चों को ज्यादा से ज्यादा उनकी आवश्यकतानुसार पढ़ा सकें और उनकी समस्याओं का समाधान कर सकें।

मूल्यांकन

बच्चों का जबानी व लिखित रूप से मूल्यांकन बार-बार किया जाता है। कक्षा एक व दो के बच्चों की ज्यादातर मौखिक तौर पर परीक्षा ली जाती है। बच्चो की मासिक, त्रैमासिक व वार्षिक परीक्षाएं ली जाती है। इस तरह से बच्चो का लगातार मूल्याकन किया जाता है और उनका सम्पूर्ण विकास किया जाता है।

यह बहुश्रेणी शिक्षण विद्यालय सुचारू रूप से कार्य कर रहा है। बच्चों से तरह-तरह की सामग्री बनवाते हैं। समुदाय से लगातार सम्पर्क रखते हैं। बच्चो को सभी विषय आनन्ददायी तरीके से पढाते हैं और बच्चों का सभी पहलुओ मे विकास करते हैं। सभी बहुश्रेणी विद्यालय इस तरह की कार्य प्रणाली को अपनाकर अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते है। इस उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि बहुश्रेणी शिक्षण विद्यालय एक समस्या न होकर एक सफल प्रणाली है। ❑❑

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली

दर्शन एवं पर्यावरण

❒ विनय कुमार सिंह चौधरी

प्राकृतिक आपदाओं के समक्ष असहाय मानव सभ्यताए कई बार काल कवलित हुई हैं, परन्तु पहली बार मानव ने अपनी चिंतन प्रणाली, जीवन शैली एवं क्रियाकलापों से पर्यावरण के संतुलन को नष्ट करते हुए न केवल अपने अपितु धरती के भी सम्पूर्ण जीव-मण्डल के वैश्विक विनाश की आशंका उत्पन्न कर दी है। मानव जाति समेत समस्त प्राणियो का एकमात्र आवास अर्थात् वसुंधरा को मानव स्वयं अपने हाथों क्यों उजाड़ रहा है? क्यों विनिष्ट कर रहा है? मानव के इस व्यवहार मे निहित दर्शन का उद्घाटन आवश्यक है। एक सम्यक दर्शन की खोज भी अपेक्षित है।

दर्शन

दर्शन का अर्थ है— देखना या दृष्टि। सामान्य देखना एक सतही प्रक्रिया है परन्तु दर्शन के रूप मे देखना एक गहन प्रक्रिया है जिसके द्वारा सत्य तक पहुंचने का प्रयास किया जाता है। विभिन्न प्रकार से तर्क-वितर्क तथा परीक्षणों को कसौटी पर कसने के बाद जो ज्ञान आता है, वही दार्शनिक सत्य होता है। इसी से एक दृष्टि उत्पन्न होती है, फलतः मूल्यों की उत्पत्ति होती है (अथवा प्रकट होते हैं)। तत्व के बारे मे विकसित धारणा तथा मूल्य का प्रभाव हमारे व्यवहार पर पड़ता है। इसलिए हमारे व्यवहार मे हमारा जीवन दर्शन अथवा हमारा मूल्य परिलक्षित होता है।

पर्यावरण

पर्यावरण का अर्थ है प्राणी के चारों ओर का आवरण अर्थात् प्राणी के चारों ओर के समस्त कारक जिनका प्रभाव प्राणी के जीवन पर पड़ता है।

पर्यावरण एक स्थैतिक अवधारणा न होकर एक गतिशील अवधारणा है। पर्यावरण अथवा पारिस्थितिकी एक स्वचलित एवं स्वनियंत्रित प्रणाली है। इसके विभिन्न घटक अन्तःक्रियाशील व अन्तःनिर्भर हैं। मानव इस वृहत्तर प्रणाली का एक घटक अथवा अंग है जो इस वृहत्त प्रणाली से प्रभावित होता है और प्रभावित भी करता है।

सम्पूर्ण प्रकृति को निष्प्राण, जड़ या मशीन स्वरूप तथा भोग्या के रूप में देखने से प्रकृति के ऊपर विजय हासिल करने के प्रयास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास कर दोहन के द्वारा हमने इसके स्वाभाविक सन्तुलन को अनदेखा और असन्तुलित किया। परिणाम पर्यावरण संकट के रूप में हमारे सामने है।

दर्शन एवं पर्यावरण

व्यक्ति का व्यवहार उसकी विश्वास प्रणाली (अथवा मूल्य प्रणाली) का द्योतक है और विश्वास प्रणाली व्यक्ति के दर्शन का संकेत। पुनः दर्शन की परिणति व्यवहार में होती है। दूसरी ओर हमारे व्यवहार का प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है। हम मानव अपने क्रियाकलापो के द्वारा पर्यावरण से निरन्तर कुछ ले रहे है और निरन्तर पर्यावरण को कुछ दे रहे हैं।

इस प्रकार हमारे दर्शन का प्रभाव हमारे व्यवहार या क्रियाओं पर पड़ता है। अतः मानव का दर्शन एव पर्यावरण एक दूसरे से सम्बन्धित है।

पर्यावरण संकट एवं दर्शन

पर्यावरण संकट का मूल कारण वह दर्शन है जिसके आधार पर आधुनिक सभ्यता निर्मित व विकसित हुई है। इसका प्रारम्भ बेकन तथा देकार्त जैसे आधुनिक दार्शनिको से होता है। बेकन के विचारो के प्रभावस्वरूप उसी समय से विज्ञान का लक्ष्य वह ज्ञान हो गया, जिसका प्रयोग प्रकृति को नियंत्रित करने तथा उस पर हावी होने में

किया जा सके। प्रकृति के साथ सुसंगति बनाकर रहने के स्थान पर बेकन ने प्रकृति को भिन्न रूप में लिया। उसकी दृष्टि में, प्रकृति को सेवा के लिए बाधो, उसे एक "दासी" बनाओ। वह "नियंत्रण में रखने योग्य है" तथा वैज्ञानिक का लक्ष्य "प्रकृति" का हृदय चीरकर उसका रहस्य निकालना है। इस प्रकार, जहां सुकरात ने ज्ञान को सद्‌गुण के रूप में लिया था, बेकन ने उसे शक्ति के रूप में लिया; ऐसी शक्ति, जिससे प्रकृति को नियंत्रित किया जा सके।

देकार्त ने यह स्थापित किया कि मनस एवं पदार्थ दो भिन्न एवं विपरित सत्ताएं हैं। पदार्थ की सत्ता में चेतना नही है और यह प्रकृति एक मशीन की तरह है। विज्ञान का कार्य इस मशीन रूपी पदार्थ जगत के संचालन के नियमों को जानना है जिससे प्राप्त ज्ञान का प्रयोग प्रकृति मशीन पर प्रभुत्व स्थापित करना है। प्रकारान्तर से प्रकृति का दोहन करना है।

बेकन एवं देकार्त के चिन्तन का प्रभाव आधुनिक सभ्यता पर, विज्ञान पर तथा जीवन शैली पर व्यापक रूप से पड़ा है। सर्वप्रथम, इनके चितन को विज्ञान में साकार किया न्यूटन ने। और तब से विज्ञान एव तकनीकी का विकास प्रकृति को समझने के लिए नहीं, अपितु उस पर स्वामित्व स्थापित करने में, प्रकृति के प्रति अत्याचार करने मे, अत्यधिक दोहन करने में होता रहा है। इसके प्रभाव स्वरूप, जो जीवन शैली विकसित हुई, उसमें व्यक्ति स्वय को प्रकृति का एक अंग नहीं मानता, अपितु प्रकृति से अलग एक इकाई मानता है जिसे प्रकृति पर विजय प्राप्त करनी है। इसे स्पष्ट करते हुए शूमेकर कहते है–

"Modern man does not experiences himself as a part of nature but an outside force destined to dominate and conquer it"

इसी विजय अभियान में आज मानव प्रकृति से, अपने पर्यावरण से एक शत्रुतापूर्ण व्यवहार कर रहा है, जिसका फल पर्यावरण संकट के रूप में हमारे सामने है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के आवेश में मानव यह भूल बैठा है कि यदि जीत उसकी होती है तो भी अन्ततः निर्णायक हार मानव की है; नुकसान मानव को ही है।

अतःएव चितन की धारा को, विज्ञान की दिशा को, प्रौद्योगिकी की दिशा को तथा हमारी मानसिकता एवं प्रकृति को बदलने की अनिवार्यता है; संक्षेप में, हमें अपने दर्शन को संशोधित करने की आवश्यता है।

सम्पूर्ण प्रकृति को निष्प्राण, जड़ स्वरूप, मशीन स्वरूप तथा भोग्या के रूप में देखने से प्रकृति के ऊपर विजय हासिल करने के प्रयास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास कर दोहन के द्वारा हमने इसके स्वाभाविक सन्तुलन को अनदेखा और असन्तुलित किया। परिणाम पर्यावरण सकट के रूप मे हमारे सामने है।

पर्यावरण सकट का दूसरा दार्शनिक पहलू सुखवाद, *व्यक्तिवाद एवं उपभोक्तावाद है। सुखवाद एक पुराना* नैतिक सम्प्रत्यय है (पाश्चात्य दर्शन में ग्रीक के एपीकुरियंस सुखवादी एवं भौतिकवादी थे) परन्तु इसकी व्यापक स्वीकृति एवं चरम परिणति आधुनिक है। सुखवाद ने यह स्थापित किया कि व्यक्ति का सुख ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

सुखवाद को अर्थशास्त्र में बेन्थम ने प्रवेश दिलाया। उन्होने अपनी पुस्तक Principles of Morals and Legislation (1789) में यह स्थापित करने का प्रयास किया कि व्यक्ति के व्यवहार के दो ही स्वामी हैं– सुख और दुख। सुख प्राप्त करना व्यक्ति का अभीष्ट है। इस सुख का मापन किया जा सकता है, जिसे उपयोगिता कहा जाता है। माध्यम मुद्रा है। उपयोगिता अधिकतम करना व्यक्ति के लिए शुभ माना गया।

दूसरी ओर, पुनर्जागरण के दौरान व्यक्तिवाद का जन्म हुआ। व्यक्तिवाद के अन्तर्गत स्वयं के हितों के बारे में निर्णय करने की क्षमता को स्वीकर किया गया। परन्तु व्यक्ति को राज्य तथा अन्य संस्थाएं नियत्रित करती हैं; अतः राज्य को एक बुराई के रूप में देखा गया। व्यक्ति अपनी निर्णय क्षमता का पूर्ण प्रयोग करे, इसके लिए अधिकतम स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया।

बेन्थम ने आर्थिक दर्शन में व्यक्तिवाद एवं सुखवाद की वकालत्त की और इसने एक विचारधारा को जन्म दिया, जिसे दार्शनिक प्रतिक्रियावादी कहते हैं, जिसमें जेम्स

मिल, रिकार्डो, जे.एस.मिल आदि आते है।

इस विचारधारा ने सामाजिक हितो के स्थान पर व्यक्तिगत हितों को प्रश्रय दिया और यह मान्यता रखी कि व्यक्तियों का हित (सुख) अधिकतम होने से स्वतः सामुहिक हित अधिकतम हो जाएगा। चूंकि व्यक्ति अपने सुखों को अधिकतम करने सम्बन्धी निर्णय करने की क्षमता रखता है, अतःएव उसे आर्थिक क्रियाओं में पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए। इसी विचार का आगे विकास नियंत्रणहीन अर्थव्यवस्था के रूप में हुआ।

इस व्यवस्था और इस प्रकार के चिंतन अर्थात् सुखवाद, व्यक्तिवाद एवं पूंजीवाद (नियत्रणहीन अर्थव्यवस्था) ने स्वाभाविक रूप में उपभोक्तावाद को जन्म दिया, जिसका उद्देश्य है अधिकतम पैसा कमाना और अपने सुख-भोग के लिए अधिकतम उपभोग करना। अधिकतम पैसा कमाने और अधिकतम उपभोग करने के दर्शन में न तो व्यापक समाज के लिए कोई स्थान है और न ही प्रकृति या धरती के लिए।

सुखवाद-व्यक्तिवाद-उपभोक्तावाद-पदार्थवाद जिस दिशा की ओर मानव सभ्यता को लिए जा रही है, वह दिशा अन्याय, अत्याचार तथा शोषण की ओर ले जाती है। इसी ओर सकेत करते हुए कार्ल मार्क्स ने संकेत किया था कि पूंजीवादी कृषि न केवल मजदूरो के शोषण की मान्यता पर खड़ी है अपितु भूमि (प्रकृति) के शोषण की मान्यता पर भी खड़ी है और यह शोषण हो रहा है। हमारे दिए हुए पर्यावरण एवं इस जीवन दर्शन के अन्तः विरोध को स्पष्ट करते हए शूमेकर लिखते हैं—

"An attitude to life which seeks fulfilment in single minded pursuit of wealth in short materialism does not fit into the world because it contain within itself no limiting principles while the environment in which it is placed is strictly limited."

अतःएव, ऐसा जीवन दर्शन, जो मानव और प्रकृति को अलग करता हो, दोनों के बीच में अन्त'निर्भरता को नजर अंदाज करता हो, प्रकृति को एक निर्जीव मशीन मानता हो और स्वयं को उसका स्वामी; तथा ऐसे दर्शन जो प्रकृति को प्रताडित करने की भावना उकसाती हो, व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित, स्वार्थी तथा लोभी बनाता हो; तथा अपने लोभ को अधिकाधिक कर इसकी पूर्ति के लिए विज्ञान तथा तकनीकी के विकास तथा प्रयोग कर प्रकृति व पर्यावरण के दोहन की वकालत करता हो, हमारी उत्तर-जीविता के लिए खतरनाक साबित हो रहा है। व्यक्तिवाद, सुखवाद तथा उपभोक्तावाद व्यक्ति को व्यापक एवं दूरगामी हितों के प्रति अधा बना देता है तथा बेकन-देकार्तवाद इस अंधेपन को शक्ति प्रदान करता है। अत. एक वैकल्पिक जीवन दर्शन की व्यापक स्वीकृति पर्यावरण को सतुलित बनाए रखने के लिए अपरिहार्य है।

पर्यावरण संरक्षण एवं दर्शन

पर्यावरण के सन्तुलन को बनाए रखना अति आवश्यक हो गया है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए मानव का प्रकृति के प्रति व्यवहार को बदलना है। व्यवहार मे परिवर्तन के लिए सुख-व्यक्ति-भोगवादी विश्वास प्रणाली को परिवर्तित करना आवश्यक है। और यह विश्वास प्रणाली तब परिवर्तित होगी जब एक भिन्न दर्शन के प्रति हमारी जागरूकता होगी। हम उस पर विचार-विमर्श करेगे और उसकी उपादेयता को आज के सकट के सन्दर्भ में स्वीकार कर पाएंगे। आधुनिक काल में एक ऐसे दर्शन से हमारी सभ्यता निर्देशित होती रही है जहा मानव अपने ही हाथो अपने विनाश का आयोजन कर रहा है। फिर वह सम्यक् दर्शन कौन-सा है, जो हमे अधिक परिपक्व दिशा-निर्देश देता है।

निःसंदेह वह दर्शन आध्यात्मवाद अथवा आदर्शवाद है। आदर्शवाद न तो पश्चिम के लिए कोई नया दर्शन है और न ही भारत के लिए। परन्तु भौतिकवाद के तेज शोर में इसकी आवाज कही दब-सी गई। भौतिकवाद की मूल संकल्पना, कि द्रव्य ही यथार्थ है और जड़-रूप है, अब ध्वस्त हो चुकी है। परन्तु भौतिकवादी मूल्य प्रणाली और दृष्टिकोण अब भी हम पर हावी है, हमारी जीवन शैली इसी पर आधारित है।

आदर्शवाद की आज पुनर्व्याख्या की आवश्यकता है। देकार्तवाद अथवा विश्लेषणात्मक उपागम के स्थान पर

एक समग्रवाद अथवा संश्लेषणात्मक उपागम की परम आवश्यकता है। इस सदर्भ मे भारतीय दार्शनिक चिन्तन हमारा दिशा-निर्देश कर सकता है।

मूल भारतीय चिन्तन, जिसने जनमानस को सदियों से प्रभावित किया है बाह्य जगत को, देकार्तवाद की तरह जड़ तथा मशीन नही मानता अपितु समग्र को ईश्वर रूप मानता है सभी को ईश्वर अथवा परम तत्व का रूप मानता है गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्यांहं न प्रणस्यामि सच मे न प्रणश्यति।।

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण भूतो में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव (ईश्वर, परम तत्व) को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नही होता।

ससार अथवा प्रकृति को ईश्वरमय (सियाराम मैं सब जग जानी—तुलसीदास) देखने की दृष्टि हो, तो फिर प्रकृति के प्रति बैर-भाव या भोग-भाव नही हो सकता। इसलिए ईशावास्योपनिषद का कथन है—

ईशा वास्यमिदुसर्व यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।

अर्थात् विश्व-ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह परमेश्वर से व्याप्त है। अतः इस जगत में ममता एवं आसक्ति का त्याग करके केवल कर्तव्य पालन के लिए ही विषयों का यथाविधि उपभोग करो, ये भोग्य पदार्थ किसी के भी नही है।

स्पष्टतः जहां पर इस प्रकार का जीवन दर्शन हो वहां व्यक्तिगत सुख के लिए अधिकतम भोग करने की बात आती ही नही है। ऐसे चिंतन मे सम्पूर्ण सृष्टि मे एक सहयोगी होने का भाव उत्पन्न होता है। व्यक्तिगत लोभ या कामना के स्थान पर अपनी कामना वैश्विक कामना में रूपान्तरित की जाती है। गीता मे श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है—

लोक सड़गहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।

अर्थात् लोक संग्रह को देखते हुए या सृष्टि को बनाए रखते हुए तुझे कर्म करना चाहिए। दर्शन का यह सम्यक् रूप जहां व्यक्तिगत इच्छाओ को सृष्टि (लोक) की इच्छा में समाहित करने पर बल देता है वही सुख-व्यक्ति-भोगवाद व्यक्ति को संयम न सिखाकर इच्छाओं को अनन्त तक बढ़ावा देता है। लोभ को हवा देता है। अनन्त इच्छाओं, लोभ तथा स्वार्थ की पूर्ति अन्याय और हिसा से ही हो सकती है, कभी व्यापक समाज के प्रति अन्याय करके तो कभी प्रकृति के प्रति। व्यक्तिवाद की भावना दया, करुणा, भावनाओं को निगल जाती है जबकि पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में आदर्शवाद पूर्णरूप से प्रासंगिक है।

भारत के सामाजिक दर्शन में जो जीवन का चरम मूल्य निर्धारित किया गया है, वह पर्यावरण संरक्षण के संगत है और आधुनिक मूल्य से असंगत। आधुनिक मूल्य सुख (काम) तथा धन (अर्थ) को सर्वोपरि मूल्य देता है परन्तु भारतीय सामाजिक दर्शन काम एवं अर्थ को सम्यक् स्थान प्रदान करता है, इन्हें स्वीकार करता है, परन्तु दोनों को धर्म (आदर्शवादी नैतिकता) के अधीन करता है। धर्म संगत काम एव अर्थ ही ग्राह्य है, धर्म विरुद्ध त्याज्य है और धर्म के अन्तर्गत केवल मानव के प्रति ही कर्तव्य नहीं आता है अपितु सभी के कल्याण की कामना की जाती है। यही कारण है कि पाच यज्ञो के निरूपण में एक भूत यज्ञ है, जीवो के प्रति कर्तव्य को स्थान दिया गया है और फिर यज्ञ के समापन में जब शान्ति पाठ किया जाता है तो केवल व्यक्तिगत शान्ति की ही कामना नहीं की जाती, अपितु वनस्पति समेत समस्त विश्व की शान्ति की कामना की जाती है।

इस प्रकार जहां पर्यावरण ह्रास करने वाला सामाजिक दर्शन काम एवं धन को ही सर्वोपरि मूल्य मानता है और इनकी पूर्ति मे जो सहायक है, वही अच्छा माना जाता है, वहीं पर्यावरण को मित्रवत व आत्मवत (आत्मवत् सर्वभूतेषु य· पश्यति स· पडितः) देखने वाला आदर्शवाद, नैतिकता एवं कर्तव्य के अधीन सुख एवं धन को कर देती है, जो कि आवश्यक है।

पर्यावरण एवं समस्त जीवों के प्रति मित्रभाव का दर्शन हमे यजुर्वेद मे भी होता है—

मित्रस्यमा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्यमा चक्षुषा सर्वाणि समीक्षे।
मित्रस्यमा चक्षुषा समीक्षामहे।।
सब जीव मेरी ओर मित्रता की दृष्टि से देखें।
मैं सब जीवों की ओर मित्र दृष्टि से देखूं।
हम सब एक दूसरे की ओर मित्रता की दृष्टि से देखें।

इसी प्रकार के एक समूयक दर्शन का बोध हमें अशोक महान के राजनीतिक दर्शन में होता है—

"राजा का कर्तव्य न केवल नागरिकों की रक्षा करना .... बल्कि प्राणियों के जीवन तथा वनों के वृक्षों की सुरक्षा भी करना है"।

पर्यावरण हितैषी चिन्तन हमे गांधी के दर्शन में मिलता है, जब वह कहते हैं कि धरती हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति तो कर सकती है, हमारे लोभ की नहीं। इस प्रकार उनकी ट्रष्टीशिप की अवधारणा— जहा हम किसी भी सम्पत्ति के, सामाजिक हो या प्राकृतिक, केवल ट्रष्टी होते हैं, हम उसके मालिक नहीं होते कि जो चाहें कर ले। यह पर्यावरण हितैषी धारणा है। अहिसा की उनकी अवधारणा भी पर्यावरण हितैषी है।

अतःएव पर्यावरण हितैषी तथा मानव हितैषी दर्शन आध्यात्मवाद या आदर्शवाद के प्रसार की आज आवश्यकता है, जब हमारा व्यवहार आदर्शवादी मूल्यों से परिचालित होगा, तभी पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षा सम्भव है।

उपसंहार

पर्यावरण का संकट मानव जाति के अस्तित्व का संकट बनता जा रहा है। प्रकृति के ऊपर मानव की श्रेष्ठता के दभ में हमारा यह विश्वास कि हमारे मूल्य-सृजित पर्यावरण-ह्रास की भरपाई तकनीकी विकास से कर लेंगे, खोखला है जैसा कि शूमेकर आदि चिंतकों ने पाया है, कि हर तकनीकी समाधान दस अधिक गम्भीर समस्याएं उत्पन्न कर देते हैं। अत.एव यह दंभ त्याज्य है।

देकार्तवादी उपागम से सोचने के आदी हो चुके हम अब भी पर्यावरण सकट को एक भिन्न संकट मान रहे हैं, जिसका हमारे चिंतन, हमारे मूल्यों, विश्वासो तथा अभिवृत्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। परन्तु सोचने के तरीके का कुपरिणाम हमारे समक्ष है। अतःएव, पूर्ण विनाश के पूर्व प्रकृति के द्वारा दी जा रही चेतावनी को समझने की आवश्यकता है और अपने व्यवहार को परिमार्जित करने की आवश्यकता है। देकार्तवादी चिंतन, बेकन का प्रकृति के प्रति क्रूर दृष्टिकोण, प्रकृति की विजय यात्रा पर निकले मानव को अपने व्यवहार, चिन्तन तथा मूल्यो की पुन. समीक्षा करने की आवश्यकता है।

यह धरती सभी जीवों के रहने के लायक रहे, हमारा पर्यावरण अक्षुण्ण रहे, आने वाली पीढ़ियां सुरक्षित जीवन जी सकें, इसके लिए हमें अपने चिंतन को बदलने की आवश्यकता है। आदर्शवाद हमारा मार्गदर्शन कर सकता है। इस सदर्भ में भारतीय दर्शन, समाज दर्शन तथा भारतीय संस्कृति से हमें मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। और सम्यक दर्शन की व्यापक स्वीकृति, सम्यक मूल्यों के प्रति व्यापक आस्था तथा तदनुरूप व्यवहार ही मानव समेत सम्पूर्ण धरा के जीवन की संरक्षा कर सकता है।

❑❑

अध्यापक शिक्षा संस्थान
कादराबाद, मोदीनगर
जिला-गाजियाबाद
उत्तर प्रदेश

मुस्लिम बालक एवं बालिकाओं में शैक्षणिक पिछड़ापन
(एक अनुभवात्मक अध्ययन)

❐ निशात परवीन

यह वैश्विक सच्चाई है कि बेसिक शिक्षा व्यक्ति की कुशलता में निरन्तर सुधार करती है (योजना वॉल्युम 47, मार्च 2003, पृ. 20)। जब तक कि हम सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं होगा। शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए देश मे अनेकों उपाय किए जा रहे हैं। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है इसमें विभिन्न धर्मो के लोग एक साथ रहते हैं। भारत वर्ष में जनसख्या के हिसाब से मुस्लिम समुदाय की जनसख्या अनुपात मे अल्पसंख्यक है परन्तु फिर भी देश में मुसलमानों की 1981 में कुल जनसंख्या लगभग 7.5 करोड थी जो कि इन्डोनेशिया और पाकिस्तान के बाद विश्व के किसी देश की मुस्लिम जनसंख्या से अधिक है (परिप्रेक्ष्य शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ, अप्रैल 1994-नीपा, पृ. 4-9)

भारत में मुसलमान शैक्षिक और आर्थिक रूप से दूसरे समुदायों की अपेक्षा पिछड़ा है। गावो में अधिकतर लोग कृषि, मजदूरी, टेलरिंग, ऑटो रिक्शा ड्राइवर, टैक्सी ड्राइवर, दुकानदारी इत्यादि कार्यो में लगे हैं। इनकी शैक्षिक स्थिति बहुत ही निराशाजनक है। वे स्वयं शिक्षा में पिछड़े हैं जिससे कि महिला शिक्षा दर और भी कम है। 1911 की जनगणना के अनुसार मुसलमानो की साक्षरता केवल 5 प्रतिशत थी। 1921 की जनगणना के अनुसार पुरुष साक्षरता 9 प्रतिशत और महिला साक्षरता 0.86 प्रतिशत थी। 1931 की जनगणना के अनुसार पुरुष साक्षरता 10.7 प्रतिशत और महिला सारक्षता 1.5 प्रतिशत थी (शेख रहीम मण्डल—1997, पृ. 22)। किसी भी देश के सम्पूर्ण विकास के लिए देश की समस्त जनता का शिक्षित होना जरूरी है। चूंकि मुस्लिम भी भारत की जनसंख्या का एक अग हैं इसलिए जब तक मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति नहीं सुधरेगी तब तक भारत के विकास का पर्याप्त अवसर नही है। जिस प्रकार किसी भी चिड़िया का एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं होता। यह बात स्वामी विवेकानन्द ने भी महिलाओं के संदर्भ में कही है। सर सैय्यद अहमद खां के अनुसार "हिन्दुस्तान एक दुल्हन के समान है जिसकी सुदर्शना और रसीली आंखें हिन्दू और मुसलमान हैं। यदि वह दोनों आपस में कटुता का व्यवहार करेंगी तो प्यारी दुल्हन भैंगी हो जाएगी और अगर एक-दूसरे को बरबाद कर देगी तो कानी बन जाएगी। अतः ऐ हिन्दुस्तान के रहने वाले हिन्दू और मुसलमान अब तुमको अधिकार है कि चाहे इस दुल्हन को भैंगी बनाओ या कानी" (हक अब्दुल मतालाए सर सैय्यद एजुकेशन बुक हाउस, अलीगढ़ पृ. 94)"

> **इतने बड़े समुदाय का किसी भी देश में पिछड़ा होने का अर्थ है कि इसका प्रभाव पूरे देश की प्रगति और विकास की उपलब्धि पर पड़ेगा। वास्तव में भारत शिक्षा की दृष्टि से तब तक उन्नत नहीं माना जा सकता जब तक यहां का मुस्लिम समुदाय शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। इनका शैक्षिक पिछड़ापन न केवल उस समुदाय की समस्या है बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक जटिल समस्या है जिसका समाधान सरकार को करना ही होगा। और दूसरी महत्वपूर्ण बात है कि राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए भी शिक्षित करने की आवश्यकता है।**

"कामत 1981 ने स्वतन्त्रता के बाद मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया है जिसमे शैक्षिक पिछड़ेपन

के कई कारकों का पता किया। खान 1948 ने कर्नाटक के मुसलमानो पर 'प्वाइन्ट एव रूरल डवलपमेन्ट' नामक पुस्तक में मुसलमानो की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक स्थिति का अवलोकन किया है तथा इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा चलाए जा रहे शैक्षिक अभियान की भी जानकारी ली। इनके निष्कर्ष अपने आप में विशेष हैं। इनका कहना है कि शैक्षिक पिछड़ापन मुसलमान होना ही एक कारक है। मोमिन 1973 ने महाराष्ट्र के औद्योगिक शहर मे विभिन्न समूहों मे रहने वाले मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया और पाया कि विभिन्न सामाजिक समूहो की विभिन्न शैक्षिक स्थिति है। शुक्ला 1975 ने 'इडियन मुस्लिम और एजुकेशन' मे मुसलमानो की पिछड़ी शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया और पाया कि आर्थिक स्थिति अच्छी होने के बावजूद शैक्षिक स्थिति अच्छी नहीं है। पीयर 1991 ने भारत के मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया था। यह अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन्होंने बैगलोर शहर में एकत्रित डाटा के आधार पर स्वतन्त्रता के पहले तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया और उसी आधार पर शिक्षा मे नैदानिक सुझाव भी दिए। सिद्दिकी 1984 ने कलकत्ता के मुसलमानो की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया है तथा शिक्षा मे सुधार के लिए कुछ निदानात्मक टिप्स भी बताए।

मण्डल रहीम (1992) ने 'एजुकेशनल स्टेटस ऑफ मुस्लिम' मे विशेषतः पश्चिम बंगाल के मुसलमानों का अध्ययन किया। शिक्षा में उन्नति के लिए कुछ मॉडल भी दिए इसमे मुसलमानों की शिक्षा की समस्याओं का गहन अध्ययन किया गया है।

इतने बड़े समुदाय का किसी भी देश में पिछड़ा होने का अर्थ है कि इसका प्रभाव पूरे देश की प्रगति और विकास की उपलब्धि पर पड़ेगा। वास्तव में भारत शिक्षा की दृष्टि से तब तक उन्नत नही माना जा सकता जब तक यहां का मुस्लिम समुदाय शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। इनका शैक्षिक पिछड़ापन न केवल उस समुदाय की समस्या है बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक जटिल समस्या है जिसका समाधान सरकार को करना ही होगा और दूसरी महत्वपूर्ण बात है, राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए भी शिक्षित करने की आवश्यकता है। भले ही मुस्लिम आरक्षण की आवश्यकता क्यों न पड़े (परिप्रेक्ष्य अप्रैल 1994, नीपा, पृ. 4)। शिक्षा की बुनियादी आवश्यकताएं कुछ हद तक आर्थिक और सामाजिक विकास को प्रभावित करती हैं।

उपर्युक्त सर्वे भारत के उत्तर, केन्द्र तथा दक्षिणी नगरीय क्षेत्रों का अध्ययन है। शेख मण्डल ने बगाल के पूरब तथा उत्तर-पूरब के पाच गांवों का अध्ययन किया है। चूकि एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित चौथे और पांचवें सर्वे 1983-1988 वॉल्युम-1, 1988-92 वॉल्युम-1 मे मैंने देखा कि अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति पर अत्यधिक कार्य हुआ लेकिन मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति पर कम कार्य हुए हैं। इसलिए इस क्षेत्र में अध्ययन करना आवश्यक लगा।

उद्देश्य

- 5-14 वर्ष आयु-वर्ग के मुस्लिम बच्चों की शिक्षा में भागीदारी का अध्ययन करना।
- बालक एवं बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- मुस्लिम बच्चों की शिक्षा पर सामाजिक, आर्थिक कारकों जैसे अभिभावक की शिक्षा, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय, व्यवसाय, परिवारों में सदस्यों की संख्या के प्रभाव का अध्ययन करना।
- मुस्लिम बच्चों (बालक एवं बालिकाओं) की शिक्षा के प्रति उनके अभिभावकों के विचारों एवं धारणाओं का आकलन करना तथा बाधक तत्वों की पहचान कर उनके निवारण हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन विधि

अध्ययन के लिए गोरखपुर जनपद के खण्ड विकास ऊरवा के रौजादरगाह एवं हमीदपुर गांव के मुस्लिम परिवारों को सोद्देश्य न्यादर्श , अध्ययन हेतु चुना और गांव के समस्त मुस्लिम परिवारों की सूची बनाकर यादृच्छिक रीति से 50 प्रतिशत परिवारों का चयन किया गया। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखा गया कि अध्ययन के लिए उन्ही परिवारो को शामिल किया जाए जिनमें स्कूल

जाने वाले बच्चे हो। इनके अतिरिक्त बच्चो की शिक्षा के प्रति उनके विचारो और धारणाओ के आकलन तथा भावी योजना हेतु संकेन्द्रित समूह परिचर्चाओ का आयोजन किया गया। महिलाओं एवं पुरुषों के लिए अलग परिचर्चा आयोजित की गई। प्रत्येक समूह में 10 सदस्य थे। इसके अतिरिक्त कभी स्कूल न जाने वाले एव स्कूल बीच में छोड़ देने वाले बच्चों से बातचीत करके भी सूचनाए एकत्रित की गई।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन के लिए निम्नलिखित उपकरणो का उपयोग किया गया।

- पारिवारिक अनुसूची
- बच्चो की शैक्षिक भागेदारी जानने हेतु इस अनुसूची का उपयोग किया गया जिसके द्वारा चयनित परिवारो के मुखिया से उनके परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थिति, बच्चों से सम्बन्धित शैक्षिक विवरण एव बच्चो (बालक/बालिकाओं) की शिक्षा के प्रति उनके विचारो से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त की गई।
- संकेन्द्रित समूह परिचर्चा निर्देशिका—मुस्लिम बच्चों की शिक्षा मे सक्रिय भागीदारी के प्रति उनके अभिभावाको के विचारों एवं धारणाओं को जानने के लिए इस निर्देशिका का प्रयोग किया गया।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन के लिए चयनित रौजादरगाह एव हमीदपुर रौजा गाव, गोरखपुर जनपद के विकास खण्ड उरुवा मुख्यालय से लगभग 5 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है जिसका क्षेत्रफल 45 वर्ग हेक्टेयर है। 1991 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल आबादी 1078 है जिसमे पुरुष आबादी 575 तथा महिला आबादी 503 है। पुरुष अनुसूचित जाति 200 तथा महिला अनुसूचित जाति 89 है। हमीदपुर रौजा का क्षेत्रफल 17 वर्ग हेक्टेयर है। 35 घर थे, इसकी आबादी 1991 की जनगणना के अनुसार 265 है जिसमे पुरुष जनसख्या 126 तथा महिलाए 139 हैं। रौजादरगाह के शिक्षित पुरुष 335 हैं तथा महिलाएं 199 है। इसी प्रकार हमीदपुर रौजा के शिक्षित पुरुष 33 तथा 6 महिलाए, शिक्षित है। दोनों गाव कृषि प्रधान है परन्तु कुछ लोग अपना जीवन यापन करने के लिए खाड़ी देशो में या देश के दूसरे बड़े शहरो में काम करने के लिए बाहर जाते है। इस गांव से 1 5 किमी. दूर धूरियापार बाजार है इसमे एक प्राथमिक पाठशाला एव 2 या 3 प्राइवेट स्कूल हैं। गांव मे दीनी तालीम के लिए अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा खोला गया मदरसा है जिसकी मस्जिद मे पढाई होती है (जनगणना 1991)।

इस समय रौजादरगाह मे लगभग 75, 76 घर हैं जिनमे 42 प्रोफार्मा भरवाए गए थे और हमीदपुर रौजा से लगभग 40 घर है जिनमे 20 प्रोफार्मा भरे गए थे। 60, 62 पारिवारिक अनुसूचित जाति ली गई है। बालक एव बालिकाओ के शैक्षिक पिछडेपन के कारण और सुझाव 62 लिए गए है। परन्तु कुछ लागो ने एक कारण के स्थान पर 2, 3 कारण बताए है जिसमें इनकी आवृत्ति

तालिका 1

5 से 14 वर्ष के बालक तथा बालिकाओं की शैक्षिक सहभागिता

बच्चों की उम्र वर्षो में	*स्कूल जा रहे हैं*		*स्कूल नहीं जा रहे हैं*		*स्कूल बीच में छोडने वाले बच्चे*		
	बालक	*बालिका*	*बालक*	*बालिका*	*बालक*	*बालिका*	*योग*
5–11	53	31	26	14	-	-	124
12–14	14	12	2	3	5	1	37
कुल	67	43	28	17	5	1	161

कुल बालक = 100

कुल बालिका = 61

तालिका 2

5 से 14 वर्ष के बालकों तथा बालिकाओं की शैक्षिक सहभागिता प्रतिशत में

बच्चों की उम्र वर्षो में	*स्कूल जा रहे है*		*स्कूल नहीं जा रहे है*		*स्कूल बीच में छोड़ने वाले*	
	बालक	*बालिका*	*बालक*	*बालिका*	*बालक*	*बालिका*
5–11	53	50.81	26	22.95	-	-
12–14	14	19.67	2	4.91	5	1.6
कुल	67	70 58	28	27.86	5	1.6

कुछ अधिक हो गई है।

तालिका प्रथम में स्कूल जाने की प्रवृति में लैगिक आधार पर विभिन्नता दिखाई पड़ती है। बालको की संख्या बालिकाओ से अधिक है। 5–11 वर्ष में स्कूल जाने वाले बालक और बालिकाओं की सख्या अपेक्षाकृत 12 व 14 वर्षो में जाने वाले बच्चो से अपेक्षाकृत अधिक है। स्कूल न जाने वाले बालक और बालिकाओं की संख्या भी प्रतिशत में लगभग बराबर-बराबर है। बीच में ही स्कूल छोड़ने वाले बालको की सख्या अधिक है। स्कूल बीच में छोड़ने वाले बच्चों की संख्या प्राइमरी स्तर पर जे. एम. खान (एजुकेशन अमन्ग मुस्लिम पृ. 80) और शेखरहीम के अनुसार भी कक्षा के बढ़ते हुए क्रम में स्कूल न जाने वाले बच्चो की संख्या कम होती जाती है (मॉडल, पृ. 150)। इस प्रकार तालिका को देखने से भी 5–11 वर्ष मे बच्चो की संख्या अधिक है परन्तु 11–14 वर्ष में इनकी संख्या चौथाई कम हो गई है।

तालिका 3

अभिभावक की शिक्षा का स्तर और बच्चों की शैक्षिक सहभागिता

अभिभावकों की आवृत्ति	*शिक्षा का स्तर*	*स्कूल जा रहे हैं*		*स्कूल नहीं जा रहे हैं*		*बीच में स्कूल छोड़ने वाले*		*कुल योग*
		बालक	*बालिका*	*बालक*	*बालिका*	*बालक*	*बालिका*	
8	अशिक्षित	12	5	3	2	1	-	23
26	5–8	30	25	15	7	4	1	82
23	9–12	23	10	8	7	-	-	48
3	महाविद्यालय	2	3	2	1	-	-	8
	कुल	67	43	28	17	5	1	161

कुल बालक = 100

कुल बालिका = 61

तालिका 4

अभिभावक की शिक्षा का स्तर और बच्चों की शैक्षिक सहभागिता प्रतिशत में

अभिभावक की संख्या	शिक्षा का स्तर	स्कूल जा रहे हैं		स्कूल नहीं जा रहे है		बीच में स्कूल छोड़ने वाले		कुल योग
		बालक	बालिका	बालक	बालिका	बालक	बालिका	
8	अशिक्षित	12	8.19	3	3.27	1	-	27.46
26	5—8	30	40.98	15	11.47	4	1.63	103.8
26	9—12	23	16.39	8	11.47	-	-	58.86
3	महावि.	2	4.91	2	1.63	-	-	10.54
	कुल योग	67	70.47	28	27 84	5	1.63	200

(बालक-बालिका का अलग-अलग प्रतिशत निकाला गया है 100, 61)

तालिका 3, 4 को देखने से पता चलता है कि अशिक्षित अभिभावकों की तुलना में शिक्षित अभिभावको में अपने बच्चों को स्कूल भेजने की प्रवृत्ति अधिक पाई गई (एजुकेशन एंड डीमोग्राफिक बीहेवियर-एम. सुन्रापाण्डीयन, देखा है जरनल ऑफ एजुकेशन एण्ड सोशल चेन्ज पृष्ठ 60)। इन्होंने भी शिक्षा का शिक्षित अभिभावक से धनात्मक सह सम्बन्ध पाया। सुधा कुलकर्णी, जयपुरी, 1988, पेरेन्ट एजुकेशनल परस्पेक्टिव एण्ड एप्रोच, बियर्ड 1927, ब्रिम 1959, शिक्षा का बच्चों के शिक्षित अभिभावक का धनात्मक सहसम्बन्ध पाया गया।

शिक्षा के माध्यम से नए विचार, नए प्रत्यय और नए समूह बनते हैं (फाइव 1980)।

मण्डल रहीम की रिपोर्ट, कामत (1981), शुक्ला 1975 सिद्दिकी 1984, रहमतुल्लाह (1989) इत्यादि लेखकों ने मुसलमानों के शैक्षिक पिछड़ेपन, कारण निवारण पर कार्य किया परन्तु यह अध्ययन कम रहा।

तालिका 5

अभिभावक की प्रतिवर्ष आय और उनकी संख्या

आय रुपयों में प्रतिवर्ष	संख्या	संकेत
12000 से कम आय	5	N निम्न
12001 से 20,000	13	NM निम्न मध्यम
20,001 से 40,000	11	M मध्यम
40,001 से 60,000	12	MH मध्य उच्च
60,001 से उच्च आय	17	H उच्च
कुल	58	

(नोट— दो परिवारों ने अपनी आय के बारे में नहीं बताया)

तालिका 6

अभिभावक की आय एवं बच्चों की शैक्षिक सहभागिता

आवृत्ति	आय के स्तर	स्कूल जाने वाले		स्कूल नहीं जाने वाले		बीच में स्कूल छोडने वाले		कुल
		बालक	बालिका	बालक	बालिका	बालक	बालिका	
5	निम्न	7	3	-	-	-	-	10
13	निम्न मध्यम	10	9	18	10	1	1	49
11	मध्यम	15	5	1	4	0	0	25
12	मध्यम उच्च	11	13	2	1	2	0	29
17	उच्च	21	9	1	2	2	0	35
58		64	39	22	17	5	1	148

तालिका 7

अभिभावक की आय एवं बच्चों की शैक्षिक सहभागिता प्रतिशत में

आवृत्ति	आय के स्तर	स्कूल जाने वाले		स्कूल नहीं जाने वाले		बीच मे स्कूल छोडने वाले		कुल
		बालक	बालिका	बालक	बालिका	बालक	बालिका	
5	निम्न	7 69	5.26	-	-	-	-	12.95
13	निम्न मध्यम	10.98	15.79	19.78	17.54	1.1	1.75	66 94
11	मध्यम	16.48	8.77	1.09	7.02	-	-	33.36
12	मध्यम उच्च	12.08	22.81	2.19	1.75	2.19	-	41 02
17	उच्च	23 08	15.79	1.09	3.51	2.19	-	152 7
		70.31	68 42	24.15	29 82	5.48	1.75	200

कुल बालक = 91

कुल बालिका = 57

(नोट– बालक एवं बालिकाओं का अलग-अलग प्रतिशत निकाला गया)

वर्तमान संदर्भ में निम्न एव निम्न मध्यम आय वाले परिवार की तुलना मे उच्च आय वाले परिवारो की संख्या अधिक है। उच्च आय वाले परिवार में निम्न मध्यम आय वाले विद्यार्थियो की अपेक्षा स्कूल जाने की प्रवृति अधिक है। निम्न मध्यम आय वाले परिवारों में स्कूल न जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। इसका प्रमुख कारण आर्थिक तंगी या अभिभावको द्वारा बच्चो के श्रम से आय प्राप्त करना पाया गया ('एजुकेशन एवं इनकम' के.सी. नौटियाल, इनकम कोरिलेटेड एजुकेशन पोलिटिवली पृ. 18) मुखर्जी एण्ड राव (1976)।

अतः शिक्षा का आय से घनिष्ठ सह सम्बन्ध है। वर्तमान शिक्षा के व्यावसायीकरण के कारण भारत की शिक्षा प्रभावित होगी।

तालिका 8
परिवारों की संख्या एवं बच्चों की शैक्षिक सहभागिता

आवृत्ति	परिवार के सदस्यों की संख्या	स्कूल जाने वाले		स्कूल न जाने वाले		बीच मे ही स्कूल छोडने वाले		कुल
		बालक	बालिका	बालक	बालिका	बालक	बालिका	
12	4—5	12	6	3	4	-	-	25
20	6—7	24	17	7	3	2	1	54
25	8 से ऊ.	31	20	18	10	3	-	82
58		67	43	28	17	5	7	161

(नोट— दो परिवारों मे बच्चे नही है)
कुल बालक = 100
कुल बालिका = 61

तालिका 9
परिवारों की संख्या एवं बच्चों की शैक्षिक सहभागिता प्रतिशत में

आवृत्ति	परिवार के सदस्यो की संख्या	स्कूल जाने वाले		स्कूल न जाने वाले		बीच मे ही स्कूल छोडने वाले		कुल
		बालक	बालिका	बालक	बालिका	बालक	बालिका	
13	4 — 5	12	9.84	3	6.55	-	-	31.39
20	6 — 7	24	27 87	7	4.92	2	1 64	67.43
25	8 से ऊपर	31	32.79	18	16.39	3	-	101.18
58		67	70.50	28	27.86	5	1.64	200

वर्तमान सदर्भ में 8 से ऊपर सदस्यों वाले संयुक्त परिवार की सख्या सर्वाधिक है तथा एकाकी परिवार की संख्या कम है। एकाकी परिवार में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या कम है तथा बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या नगण्य है जबकि सयुक्त परिवार में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या अधिक है और स्कूल वीच मे छोड़ने वाले बच्चे भी अधिक हैं। इससे प्रतीत होता है कि संयुक्त परिवार मे अभिभावक अपने बच्चों की पढ़ाई पर कम ध्यान दे रहे हैं।

तालिका 10 मे मुस्लिम बालकों के शैक्षिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण आर्थिक समस्या है (खान 1993, मण्डल 1992)। जबकि बालिकाओ का शैक्षिक पिछड़ापन पर्दाप्रथा, असामाजिक तत्वों से भय (सईद अमीर अली 1932, 232) जबकि 23 लोगों ने बताया कि शैक्षिक पिछड़ेपन का कोई कारण नहीं है (बेवन जान, 1941 हु.उ.)।

शैक्षिक पिछड़ापन अभिभावकों की लापरवाही एवं बालिकाओ की सामाजिक असुरक्षा की भावना भी है।

तालिका 11 को देखने से स्पष्ट होगा कि अभिभावको की दृष्टि में क्या बालको व बालिकाओ को शिक्षित करना जरूरी है। इसमे उन्होंने बताया कि लड़कों

तालिका 10
अभिभावकों की नजर में मुस्लिम बच्चों (बालक एवं बालिका) के शैक्षिक पिछड़ेपन का कारण

कारण	आर्थिक तगी	पढ़ने में बच्चों का मन नही लगता	शैक्षिक पिछड़े पन का कोई कारण नहीं है	अभिभावकों की अशिक्षा	असामाजिक तत्व एवं धार्मिक समस्या (पर्दा आदि)	पास में स्कूल का न होना	अभिभावकों की लापरवाही	योग
बालको के लिए	22	10	6	10	-	5	9	62
बालिकाओं के लिए	3	-	23	-	32	7	-	65
कुल योग	25	10	29	10	32	12	9	127

तालिका 11
अभिभावकों की दृष्टि में क्या बालक तथा बालिकाओं को शिक्षित करना जरूरी है?

कारण	नौकरी के लिए	बच्चों के सुन्दर भविष्य के लिए	समाज के विकास के लिए	अच्छा ढंग सीखने के लिए	खत किताबत व घर को अच्छे ढंग से रखने का ज्ञान	एक अच्छा इसान बनने के लिए	शादी आसानी से होने के लिए
बालको के लिए अभि. के सुझाव	34	23	10	10	-	18	-
बालिकाओं के लिए अभिभावको के सुझाव	5	10	-	5	40	5	13
कुल	39	33	10	15	40	23	13

तालिका 12

मुसलमानों की शिक्षा के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अभिभावकों के सुझाव

सुझाव	अभिभावक बच्चो को शिक्षा के महत्व के बारे में बताएं जिससे वे भविष्य में कुछ बन सके	अभिभावकों को बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए	शिक्षित होने के लिए पैसा होना चाहिए	पास मे स्कूल होना चाहिए	सरकार सहूलियत दे	दीनी तालीम
	18	31	3	4	4	4

की शिक्षा में महत्वपूर्ण कारक नौकरी प्राप्त करना है इसके बाद एक अच्छा इन्सान बनना तथा बालिकाओं के लिए एक अच्छी सुग्रहिणी बनने के लिए तथा खत, किताबत के लिए और अपने बच्चों को सही ढंग से शिक्षित करने के लिए भी मुस्लिम अभिभावकों की नजर में लडकिया समाज के विकास में सहयोग नहीं कर सकती।

तालिका 12 में शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अभिभावको के सुझाव लिए गए हैं। इसमें अभिभावक शिक्षा के प्रति स्वय जागरूक हों तथा बच्चों को शिक्षा के प्रति जागरूक करें और शिक्षा के महत्व पर भी बच्चों को ध्यान दिलाएं जिससे भविष्य मे बच्चे कुछ बनकर अपना नाम रोशन करें। विद्यालय भी पास में होना चाहिए और साथ ही साथ चार लोगों ने विद्यालय की सुविधा के बारे मे कहा, चार लोगों ने धार्मिक शिक्षा पर भी जोर डाला। (मण्डल 1992, The Guardian have just minimum qualification, Guardian were not sincere in discharging the duties have background condition were not found to be not encouraging for achievement) वे अभिभावक जो शिक्षित नहीं हैं बच्चों के कर्तव्य के प्रति सिनसियर नहीं हैं घर की अशैक्षिक पृष्ठभूमि बच्चों की पढ़ाई की उपलब्धि के प्रति उत्साहित नही करती (मण्डल 1992)।

सुझाव

इक्कीसवीं सदी मे मुस्लिम अभिभावक भी लड़कियो को पढ़ाने में पीछे नहीं हैं वे न केवल एक अच्छी गृहिणी बनाने के पक्ष में हैं बल्कि नौकरी कराने के लिए भी तैयार हैं (संकठाजीम, मुस्लिम वीमेन, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली)। यद्यपि वे जानते हैं कि शिक्षा से न केवल उनके व्यक्तित्व में प्रतिभा आती है बल्कि अमीर भी बनाती है। इस प्रकार बालिकाओं की शिक्षा में मुख्य रुकावट पर्दा, सामाजिक असुरक्षा, सामाजिक कुरीति, अशिक्षित अभिभावक, धार्मिक शिक्षा, स्कूल का पास में न होना जबकि अधिक संख्या मे लोगों ने कहा कि शैक्षिक पिछड़ेपन के कोई कारण नहीं हैं।

हमें अल्पसंख्यक (मुसलमानों) को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए तथा उनके समुचित विकास के लिए उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक असुरक्षा की भावना को दूर करना चाहिए। नौकरियों मे जातिगत व्यवस्था को समाप्त करना होगा। धार्मिक ध्रुवीकरण (पोलराइजेशन) को समाप्त करना होगा। मेजोरिटी एण्ड माइनोरिटी गैप को समाप्त करना होगा। इनके अधिकारों को सुरक्षित करना होगा (जियाफरे इवान और एरियन, पृ. 653-678, पेटिग्रिव, टि.एफ. 1998)। सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक असुरक्षा को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि जितनी ये दूरियां होंगी उतना ही अधिक ध्रुवीकरण होगा जो भारत के विकास में बाधक होगा। नौकरियो में, किसी व्यवसाय में स्कूल, कालेज खोलने के सम्बन्ध में जातिगत, पक्षपात पूर्ण निर्णय देश के हित में नहीं होगा और विशेषतः मुसलमानों के विकास में बाधक होगा। इस सम्बन्ध में डब्लयू.जे., 1987 का अध्ययन (सोशल आइसोलेशन एण्ड

जॉब कान्ट्रैक्ट ब्लैक वर्कर ने नॉट की एस कनेक्टेड एस व्हाइट वर्कर) बहुत ही महत्वपूर्ण है।

शिक्षा ही एक ऐसा हथियार है जिससे वांछित सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक वातावरण मे सुधार किया जा सकता है। सफलता का एक पर्यायवायी शिक्षा का विकास है क्योंकि अशिक्षित अपने बच्चों को स्कूल कम भेजते हैं (खान 1993, पृ. 80-81)। इतने बड़े पक्ष का पिछड़ेपन का अर्थ है कि इसका प्रभाव पूरे देश की प्रगति की उपलब्धि पर पडेगा। वास्तव में भारत शिक्षा की दृष्टि से तब तक उन्नत नही हो सकता, जब तक यहां का मुस्लिम समुदाय इस क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। इसलिए इस समुदाय का पिछड़ापन न केवल उनके लिए जटिल समस्या है बल्कि पूरे देश के लिए एक जटिल समस्या है जिसका समाधान देश को ही करना होगा। इसके लिए 2000 ए.डी. मे सभी को शिक्षित करने के लिए लक्ष्य बनाया गया था। परन्तु अब सी एम.पी (कॉमन मिनिमम प्रोग्राम) के अन्तर्गत यह लक्ष्य 2005 रखा गया है (योजना मार्च, 2003, नं. 3, पृ. 18-19)।

प्राइमरी शिक्षा को 2010 में विश्व व्यापक बनाना एक जटिल प्रक्रिया है इसको प्राप्त करने के लिए अत्यधिक परिश्रम की आवश्यकता है (योजना वॉल्युम 47, मार्च 2003 नम्बर 3 पृष्ठ 18) सर्वशिक्षा अभियान भी इसकी एक कडी है (योजना मार्च 2003)।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसमें न केवल मुस्लिम समुदाय को स्थापित, विकसित कर सकते हैं बल्कि राष्ट्र का भी विकास हो सकता है। इसके लिए न केवल प्राथमिक स्तर पर बालक एवं बालिकाओं को शिक्षित करना होगा बल्कि उच्च स्तर पर भी शिक्षित करना होगा। यदि एक बालक को शिक्षित करते हैं तो एक ही व्यक्ति शिक्षित होगा यदि एक बालिका को शिक्षित करेंगे तो सम्पूर्ण परिवार शिक्षित होगा। इसके लिए हमें सभी बाधाओ को तोड़कर बाहर आना होगा वरना अशिक्षित व्यक्ति न केवल समाज के लिए कलंकित होगा बल्कि वह विशेषतः मुस्लिम समुदाय और गौणतः राष्ट्र के लिए भी कलंकित होगा। आज जरूरत है सर सैय्यद अहमद खां अल्लामह शिब्ली नोमानी के विचारों को अपनाने की। इस समय न केवल धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है साथ ही साथ आधुनिक शिक्षा भी अति आवश्यक है और इस क्षेत्र में अधिकाधिक अध्ययन की आवश्यकता है। सरकार को भी इस ओर ध्यान देने की जरूरत है। कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित है।

● मुसलमानो में शिक्षा के प्रसार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता इस बात की है कि मुस्लिम समाज में व्यापक चेतना उत्पन्न की जाए जिससे ये लोग परम्परागत संकुचित मानसिकता से मुक्त हो सकें। जिससे मुस्लिम समाज बालक, बालिकाओं की शिक्षा के महत्व को समझे और उनके प्रचार एवं प्रसार के लिए सचेत रहे।

● बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम को उपयुक्त बनाने के लिए स्थानीय स्तर के समाजसुधारक एवं स्वयंसेवी संस्थाएं, प्रभावशली भूमिका निभा सकती हैं। पल्स पोलियो के अभियान की तरह शिक्षा का अभियान बनाना चाहिए।

● शिक्षा के बुनियादी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा भी उपयुक्त तथा कारगर कदम उठाना चाहिए। इस दिशा में सरकार द्वारा चलाए जा रहे चावल व गेहूं कार्यक्रम की भूमिका गरीब परिवार के लिए शिक्षा में अभिप्रेरणा का कार्य कर रही है परन्तु इसे और आगे बढ़ाने की जरूरत है।

● मुस्लिम अभिभावकों मे शिक्षा के प्रति उच्च स्तर पर जागरूकता लाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा का भी महत्व है। जब तक घर के लोगों की मानसिकता में परिवर्तन नहीं होगा तब तक वे अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति कर्तव्य पर ध्यान नहीं देंगे।

● सरकार को चाहिए कि नौकरियो मे मुस्लिम बालक एवं बालिकाओं को हो सके तो आरक्षण के माध्यम से अधिक से अधिक लिया जाए ताकि उनका पढ़ाई के प्रति जो उद्देश्य है, उसे धक्का न लगे।

● मुस्लिम बहुल क्षेत्र में अधिकाधिक विद्यालय एवं उच्च शैक्षणिक ससाधनों की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत न केवल विद्यालयों मे अध्यापकों की कमी को दूर किया जाना चाहिए बल्कि स्कूल के भवन, ब्लैकबोर्ड, फर्नीचर इत्यादि साधनों की भी पर्याप्त व्यवस्था

की जानी चाहिए।

● जब तक घर की महिलाएं शिक्षा के प्रति जागरूक नही होंगी शिक्षा का उपयुक्त माहौल नही बनेगा। इसलिए महिलाओ को शिक्षित करने के लिए प्राथमिक तथा उच्च स्तर पर अलग से महिला स्कूल तथा कॉलेज होना चाहिए जिससे पर्दे की समस्या का निवारण किया जा सके।

● इन विद्यालयों तथा कॉलेजों मे योग्य, सुशिक्षित एवं निष्ठावान अध्यापिकाओं (यदि महिला कॉलेज हो तो) तथा अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए। अध्यापकों को भी अपने दायित्वों का ध्यान रखते हुए निष्ठा, लगन एव सेवाभाव से निष्पक्ष रूप से अध्यापन कार्य मे लगे रहना चाहिए। समय-समय पर गांव में भी अभिभावकों को स्कूल में बुलाते रहना चाहिए, जिससे शिक्षा का माहौल सुधरेगा और शैक्षणिक पिछड़ापन भी दूर होगा और अभिभावक भी अपने बच्चों की योग्यताओं तथा कमियो से अवगत होते रहेंगे।

● सबसे महत्वपूर्ण है अभिभावकों को शिक्षा के प्रति जागरूक होने की। जब तक अभिभावकों के मन में शैक्षिक लगन नहीं होगी शिक्षा मे किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं होगी।

● मुस्लिम समुदाय के उज्ज्वल भविष्य के लिए तथा महिलाओ मे आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास लाने के लिए महिला साक्षरता के कार्यक्रम को सर्वोच्च महत्व प्रदान किया जाना चाहिए तथा उन्हे उत्तरदायित्व के कार्यो को सौंपना चाहिए, इसमें पुरुष अभिभावकों का सहयोग भी लेना चाहिए।

● समाज के बुद्धिजीवी वर्ग को समय-समय पर शैक्षिक, सामाजिक वातावरण के सृजन के लिए विशेषत महिला शिक्षा के शैक्षिक महत्व पर वाचन के लिए आमन्त्रित करना चाहिए तथा समाज सुधारको एवं बुद्धिजीवियो की शिक्षा के उत्थान मे सम्पूर्णतः भागीदारी होनी चाहिए। मुस्लिम समाज में असुरक्षा की भावना को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समानता के बावजूद शिक्षा के क्षेत्र मे मुस्लिम समाज काफी पिछड़ा हुआ है। उनमें समुचित शैक्षिक विकास नही हो पाया है। हिन्दू मुस्लिम ध्रुवीकरण को भी समाप्त करना होगा, जबकि समानता तथा स्वतन्त्रता का संवैधानिक अधिकार है फिर भी वे शिक्षा मे पिछड़ रहे हैं, शिक्षा को न केवल पुरुषों मे बल्कि महिलाओं में भी सशक्त आन्दोलन बनाना चाहिए तभी हम उन्हे राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ सकते हैं और राष्ट्र के विकास मे सहयोग कर सकते हैं। ❑❑

मौहल्ला जालन्धरी
निकट पहाड़पुर
आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

मानव मूल्यों का ह्रास और शिक्षा

❒ मुन्नेश कुमार
❒ नीलू यादव

आज हमारा देश विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे संसार के अग्रणी देशो मे गिना जाता है वहीं हम अपनी संस्कृति के लिए विश्व विख्यात थे, मगर विगत वर्षों मे पश्चिमी सस्कृति के क्रूर हमले ने हमारे मूल्यों को विलुप्त-सा कर दिया है। हमारी पारस्परिक और सामाजिक संरचना तथा उसके रिश्तो को भी इसने रंग में इस कदर रग दिया है कि हम अपने स्वाभाविक रूप को नकारते नजर आने लगे है, स्वार्थ के लिए राम-रहीम, गांधी-नेहरु को अपना मोहरा बना रहे हैं और बात करते है आदर्श की, सस्कृति की। इस ह्रास के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र मे भी गिरावट देखने को मिलती है। आज समाज मे सामान्य व्यक्ति की यह धारणा है कि मेहनतकश एवं ईमानदार व्यक्ति पिस रहे है और झूठ एव फरेब का रोजगार करने वाले फल-फूल रहे है, ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख माना जाता है।

भूल गए तुम अपना गौरव गए अन्य से हार।
हुए सकुचित हृदय तुम्हारे बन बैठे अनुदार।।

आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं, वह सांस्कृतिक संघर्ष का युग है, भौतिकता, आध्यात्मिकता का संघर्ष और विवेक-अविवेक का सघर्ष। सघर्षो की इस प्रक्रिया मे मानव भ्रमित हो गया है। भारत ही नही पूरा विश्व परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है, विश्व के कुछ प्रमुख देश इस परिवर्तन के दौर में अपनी मानवता और संस्कारो को छोड़ते जा रहे है। इससे भारत भी अछूता नहीं है। भारत अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओ पर सदैव गर्व करता रहा है, परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य धूमिल से हो गए हैं। आज हम स्वतत्रता के नाम पर नग्नता, फूहडता, अश्लीलता और कामुकता का प्रदर्शन कर रहे है, आखिर हमारी कौन-सी ऐसी विवशता है जो हम इस संस्कृति को अपना रहे हैं। स्वयं पर अनास्था का परिणाम है आत्मनाश अर्थात् अपने आदर्शों एवं मूल्यो, अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी चिंतन प्रणाली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी या विदेशी चिंतन प्रणाली को अपनाना। इसके फलस्वरूप हमारे नैतिक मूल्य दब गए हैं। वस्तुतः वे पूर्णतः नष्ट नहीं हुए हैं, अपितु विलुप्त हो गए है। आज भी मानव झूठ, चोरी, डकैती को गलत मानता है, वह परिपीड़न को पाप और परोपकार को पुण्य स्वीकारता है नारी का सम्मान करता है, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारी के प्रति आक्रोश प्रकट करता है।

हम सांस्कृतिक संघर्ष के युग से गुजर रहे हैं। इस संघर्ष के युग में स्वतंत्रता के नाम पर जहां नग्नता, फूहड़ता, अश्लीलता और कामुकता का प्रदर्शन हो रहा है वहां स्वस्थ संस्कृति एवं मूल्यों के विकास की आशा नहीं की जा सकती । मूल्यों का निर्माण होता है– सद्‌चरित्र, नैतिकता, मर्यादा और मानवता से। विकास व प्रगति की दौड़ में हमारे मूल्य प्रभावित हो रहे हैं, अतः हमें मूल्यपरक शिक्षा की आज अत्यन्त आवश्यकता है।

आज के वातावरण ने शिक्षा की अवधारणा में परिवर्तन कर मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता को और भी प्रबल कर दिया है। सामान्यत मूल्यपरक शिक्षा से अभिप्राय

उस शिक्षा से है, जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य समाहित हो। मानव जीवन के दिशा-निर्देश का कार्य मानव के मूल्य करते है, मूल्य वस्तुत: मानव जीवन के रडार है। मानव मूल्य वस्तुतः मानव का मूल्य निर्धारण करते है, मानव की जीवन पद्धति को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि मानव अपने व्यक्तित्व का निर्धारण किन मूल्यो के आधार पर कर रहा है।

मूल्यों के गिरते स्तर पर चिता करते हुए नई शिक्षा नीति में मूल्यपरक शिक्षा पर बल दिया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लोकतात्रिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक मूल्यो को छात्रों के मन में बैठाना नई शिक्षा नीति के लक्ष्य में शामिल है। आज आवश्यकता इस बात की है कि देश और देश की शिक्षा नीतियों पर निर्भर न रहकर प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज, शिक्षण संस्था, वर्ग, जाति, राजनैतिक, धार्मिक, व्यावसायिक दलों को मानव मूल्यों के निर्धारण मे अपना योगदान देना होगा।

प्रत्येक मानव अपना जीवन सुखी एव आनदमय बनाए, यह प्रकृति का नियम भी है तथा मानव को जन्मजात वरदान भी है। आज का भारतीय पाश्चात्य उपभोक्ता संस्कृति का पोषक बन गया है। वह कर्तव्य प्रधान, आस्था भाव वाली संस्कृति का प्रतिनिधि नहीं बनना चाहता, वह भौतिकता की चकाचौंध मे स्वय को विदेशी जैसा प्रदर्शित करने में गर्व महसूस करने लगा है। इसके कुछ उदाहरण हैं–

''वीर· भोग्याः वसुन्धरा'' के अनुसार नैपोलियन ने कहा, ''यदि मुझे सौ वीर माताए मिल जाएं तो मै समस्त विश्व पर राज्य कर सकता हूं क्योंकि वीर माताओं से ही वीर पुत्र उत्पन्न होते हैं।''

विद्वानों ने मां की गोद तथा पिता के संरक्षण को मानव मूल्यों का प्रथम विद्यालय माना है। मगर आज इस विद्यालय की स्थिति भिन्न है, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव मे कुछ माएं अपने निहित स्वार्थो और स्वतंत्रता को ध्यान में रखकर इसे नकारती है, पहले माएं अपने बच्चों को वीर, साहसी, पराक्रमी, आत्मनिर्भर, बुद्धिजीवी बनाने के लिए महान व्यक्तियों के प्रसंग प्रस्तुत किया करती थी, तथा उन्हे खुद निखारती, सवारती थी। आज पश्चिमी सभ्यता के वैभव मे शिक्षित एव धनाढ्य महिलाओ को अपनी 'किटी पार्टी' अपने सौन्दर्य को निखारने, सौन्दर्य प्रतियोगिताओ में भाग लेने, अपने पालतू कुत्तों के साथ टहलने, उन्हे सैर कराने मे समय ही नही हैं, यदि यदाकदा अवसर मिल भी जाए तो बजाय प्रार्थना, ईश्वरीय वदना, महापुरुषो के प्रेरक प्रसगो के, प्यार मोहब्बत के अश्लील गीतों– छइया-छइयां.... ......के साथ गुनगुनाते उन्हे खिलाती नजर आती हैं। वाह री! भारतीय आधुनिक माताओ आपने तो नारी जाति की तथा मां की ममतामयी स्थिति पर प्रश्न चिन्ह (?) लगा दिया है। भारतीय संस्कृति में नारी की महिमा बहुत उच्च और आदरणीय है मगर क्षणिक ख्याति के लिए नारी का देह प्रदर्शन, नारी की महिमा के स्वरूप पर प्रश्न खड़े करता है। ''सुदरता का प्रतिमान शिष्टता, सादगी और मर्यादा है, जिस्म की नुमाइश नही।'' भारत मे ऐसी नारिया मौजूद हैं कि उनकी ''सुदरता के आगे सौन्दर्य पानी भरे'' दरअसल यह विचारधाराओ और वर्गीय चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व है। आज के पिताओं को भी बच्चे के लिए समय कहां है। आधुनिकीकरण और भौतिकता में अधिक से अधिक धन कमाने और आरामदायक वस्तुएं जुटाने में लगे हुए हैं। वे बच्चों को घर में सुख-सुविधाए देकर अपने दायित्व की पूर्ति स्वय स्वीकार लेते हैं। अपने अत्यधिक व्यस्तता वाले जीवन में यदि उन्हे समय मिलता है तो वे बजाय बच्चों के साथ बैठने, उन्हें देखने के अपने मित्रो के साथ राजनैतिक गप-शप करना और अपने बच्चों से नशीले हानिकारक पदार्थों (अपने ही पुत्र से वाइन की दुकान से 8 पी एम) को मंगाना, नशे की हालत में अपनी पुत्री के विषय में कहना कि ''मेरी पुत्री न होती तो मैं शादी कर लेता'' ऐसी विकृत सोच मानव मूल्यों के ह्रास का प्रमुख कारण है। ऐसी स्थिति मे मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

विद्यालय शिक्षा का एक सशक्त साधन है। इसकी समस्त गतिविधियां बालकों में मूल्यों का विकास करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, बालक के संकुचित दृष्टिकोण को विस्तृत करने मे सहायक होती हैं। यहां

बालक में ''मै'' भावना से ''हम'' भावना का विकास होता है, उनमें विभिन्न आदतों, रुचियों, दृष्टिकोणो, क्षमताओ एव योग्यताओं को विद्यालय मे विकसित करने में सफलता मिलती थी, लेकिन आज ये भी शिक्षा माफियाओं के व्यावसायिक अड्डे बने हुए हैं। विद्यालयों में बालक शिक्षको के आचरण से बहुत सीखते हैं। शिक्षक भावी राष्ट्र के निर्माता एवं समाज सुधारक माने जाते है। वे अपने जीवन मूल्यों से बालकों को प्रभावित कर उनमें मूल्यों का विकास करते हैं, उनके हृदय में ज्ञान एवं विद्या की ज्योति जगाकर प्राण फूकते है। लेकिन आज शिक्षको की भूमिका संदिग्ध हो गई है, वे निजी स्वार्थो में फंसकर राजनैतिक गुटबाजी में तल्लीन रहते हैं और विद्यालय के समय में अक्सर अपने समर्थक सहकर्मियो के साथ गप-शप करते है। शिक्षण के नाम पर 'ट्यूशन' को बढ़ावा देते हैं, साथ ही छात्रो को भड़काकर गुटबाजी करते हैं, उनके साथ पक्षपात करते नजर आते हैं, चंद पैसों के लालच मे छात्रो के अक बढ़ाना, निश्चित ही यह सब गलत है। इस प्रकार की घटनाएं मूल्यों के निर्माण मे सहायक नहीं बल्कि मानव मूल्यों का ह्रास ही करती हैं। इसके विपरीत सार्थक और प्रभावी शिक्षा वही है जो वाणी से नहीं आचरण से प्रस्तुत की जाती है, यदि प्रत्येक शिक्षक इस बात को अपने जीवन में उतार ले तो शिक्षार्थी भी अधूरे ज्ञान से वचित न रहेगे और शिक्षक भी शिक्षा के प्रतिफल से धन्य हो जाएंगे। इस स्थिति में मूल्य परक शिक्षा को नकारा नहीं जा सकता।

हमे सारे मूल्य शिक्षा से ही प्राप्त होते हैं, ऐसा नहीं है, मूल्य समाज से भी मिलते हैं। समाज सामाजिक सबंधों का ताना-बाना है। बालक विद्यालय के साथ-साथ समाज के सम्पर्क मे भी अधिक रहता है। वह समाज के रीति-रिवाजो, परम्पराओं, परस्पर रिश्ते-नातों के बारे में समाज से ही सीखता है। वह समाज के लोगों के आचरण का अनुसरण करता है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में शिक्षा के जो आदर्श दिए हैं, वे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को महानता प्रदान कर सकते है और देवत्व की प्राप्ति करा सकते है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्वेत्।।

आज का भारतीय समाज परिवर्तित हो रहा है, परिवर्तन के इस कोलाहल में भारतीय समाज का रूप बदल गया है। वर्तमान मे शहरीकरण, आधुनिकता, औद्योगीकरण एवं पश्चिमी सस्कृति के प्रभाव में भी रिश्ते-नाते छिन्न-भिन्न से हो गए है, संयुक्त परिवार विघटित होकर एकाकी परिवार हो गए है। प्रत्येक व्यक्ति आपा-धापी में लगा हुआ है, चारों ओर सामाजिक कुरीतियों का आडम्बर लगा हुआ है। राजनीतिज्ञों के घोटाले, खिलाड़ियों के घोटाले, घोटाले ही घोटाले, ऐसा लगता है कि जैसे घोटालों का समाज है। ऐसे मे हम मूल्यों की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं? समाज में हत्या, साम्प्रदायिक दंगे, बलात्कार, चोरी, डकैती जैसे आम बात हो गई है। हमारा समाज आग की भट्टी की तरह धधक रहा है, ऐसे में मानव मूल्यों का भस्म हो जाना स्वाभाविक है। भौतिकता के विस्तार से नैतिकता का पतन हो रहा है। आज आवश्यकता है समाज मे हमारे शिक्षक, अभिभावक, राजनेता, प्रशासक राष्ट्र के कर्णधारो को मूल्यों एवं आदर्शों की उपयुक्त प्रस्तुति करने की, जिनका अनुसरण कर नवीन संतति जीवन पथ को परिष्कृत करने में समर्थ हो सके।

भारतीय संस्कृति को विकृत करने मे सचार माध्यमो की भूमिका भी गौण नहीं है। अश्लीलता, कामुकता से भरे दृश्यो को जन-जन तक पहुचाने मे फिल्मो की भूमिका सदिग्ध है। दूरदर्शन के विभिन्न चैनल भी अब इस कार्य मे पीछे नहीं हैं। एक जमाना था कि भरे मौन मे नैननु ही सौ बातें हो जाया करती थीं, लेकिन आज जब अधेड़ नग्न जिस्म बातें करता हो तो नैननु की बात गौण हो जाती है। अप्रितिम सौन्दर्य प्रशसंनीय होता है, लेकिन आज सौन्दर्य तभी तक प्रंशसनीय है जब तक वह मर्यादित रहे। संचार माध्यमों द्वारा परोसी गई नई संस्कृति से बालक, युवा, अल्पवयस्क ही नही बल्कि हम सब प्रभावित हैं। संस्कृति का निर्माण तड़क-भड़क, कामुकता, अश्लीलता या देह प्रदर्शन से नही बल्कि सच्चरित्र नैतिकता, मर्यादा और मानवता से होता है, इसके लिए हमें शिक्षा को मूल्योन्मुखी करना ही होगा।

विकास एवं प्रगति की दौड़ में हमारे मूल्य प्रभावित

हो रहे हैं। विज्ञान के विकास से समुत्पन्न आपा-धापी में जीवन के शाश्वत मूल्य खो गए हैं। सहज जीवन गया और हम बनावटी मुखौटों के सहारे जीने को बाध्य हो गए हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष एव क्रिया को प्रभावित किया है। शिक्षा द्वारा विज्ञान एव मानवतावाद का बंधन, ज्ञान और बुद्धि का बंधन दूर करना है अन्यथा लोग विशेषज्ञ तो होंगे किन्तु मानव नही होंगे। आज जो खतरा है वह यह है कि मानव जाति समाप्त हो, न हो, वरन मानवीय तत्व अवश्य लुप्त हो जाएगा। विज्ञान और तकनीक के विस्तार के साथ विवेक और बुद्धि का संकुचन हो रहा है। ज्ञान बढ़ रहा और व्यक्तित्व का पतन हो रहा है। इस प्रकार ज्ञान और विवेक का असंतुलन हो गया है। अत. हमें इसी शिक्षा के बीच ऐसा प्रकाश जगाना होगा जो मानव की गइराइया छू सके, उसे समझ सके, उसके नजदीक आ सके, उसकी मजबूरियो, सीमाओ आदि को रेखांकित कर सके। इसके लिए हमको शिक्षा को मूल्यवान बनाना होगा। अतः आज की विसंगतियों में समाज तथा उसके प्रत्येक सदस्य का यह दायित्व हो जाता है कि वह मूल्यों के विकास पर बल दे, क्योंकि मूल्यविहीन राजनीति एवं शिक्षा विनाश की ओर ले जाएगी, न कि विकास की ओर। मूल्यो के विकास के लिए हमें पवित्र ग्रंथों ने गीता के अनुसार अपने कर्मो पर ध्यान देना होगा और इस नीति को अपनाना होगा।

"कर्म हमारा धर्म अटल हो कर्म हमारी भाषा।
हो सकर्म ही मृत्यु तुम्हारे जीवन की अभिलाषा।।"

❑❑

बी.एच-20, हिन्दपुरम
मैनपुरी, उत्तर प्रदेश

हिन्दी भाषा का ज्ञान– सोपान दर सोपान

❑ नरेन्द्र सिंह

प्रायः देखा गया है कि प्राथमिक स्तर पर बालक की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होता है। यह स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक भी है क्योंकि बालक जिस परिवेश मे पलता है, जिस भाषा का प्रयोग उसके परिवार तथा समाज मे किया जाता है, उसी भाषा में पढ़ना-लिखना बालक को रुचिकर और आसान लगता है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा के साथ मातृभाषा भी है। शिक्षा का माध्यम भी यही है। हिन्दी पूर्णतः एक वैज्ञानिक भाषा है। इसमें 'यथा उच्यते तथा लिखते' अर्थात् 'जैसा बोलना वैसा लिखना' वाला सिद्धान्त लागू होता है। उच्चारण की शुद्धता हिन्दी में विशेष मायने रखती है। एक अध्यापक के रूप मे मैंने देखा है कि न केवल प्राथमिक स्तर पर अपितु माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर भी विद्यार्थी पढ़ने-लिखने तथा बोलने में बहुत-सी गलतिया करते है। छोटे बच्चे ठीक से अपनी पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ पाते हैं। जो ठीक से पढ़ नही पाएगा वह लिखेगा क्या? हिन्दी भाषा को सरल, सहज एवं रोचक बनाकर पढ़ाया जाना चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं में हिन्दी भाषा का ज्ञान निम्न चरणों में पूरा किया जाना चाहिए–

वर्णमाला का सचित्र परिचय

बालक को सर्वप्रथम हिन्दी वर्णो का ज्ञान विविध चित्रों के माध्यम से कराया जाता है। इसमे 'स्थूल से सूक्ष्म' की ओर वाले शिक्षण-सूत्र का प्रयोग किया जाता है। चित्रो का निर्माण बच्चे के परिवेश को ध्यान मे रखकर किया जाना चाहिए। कक्षा शिक्षण के दौरान प्रत्येक बालक का ध्यान रखा जाए। सभी को सचित्र पढ़ने का अवसर दिया जाए। उनकी पहचान को स्थाई बनाने के लिए निरन्तर अभ्यास कराया जाना आवश्यक है। साथ ही अक्षरों को लिखना भी सिखाया जाए।

हिन्दी भाषा के ज्ञान का खुलासा चरणबद्ध रूप से किया जाना चाहिए। शिक्षार्थी धीरे-धीरे निरन्तर अभ्यास करते हुए भाषा के रूप को जान एवं समझ सकता है। बालक के लिए विषय रुचिकर तथा सुबोध बन जाएगा। इसी में हिन्दी भाषा के शिक्षण की सफलता निहित है।

वर्णो की पहचान

हिन्दी भाषा ज्ञान के दूसरे चरण में आती है— वर्णो की पहचान। जब बालक को चित्रों की सहायता से पूरी वर्णमाला का ज्ञान हो जाए, तब उसे बिना चित्रो के अक्षरों की पहचान कराई जाए। अब उसे 'प' पतंग के स्थान पर केवल 'प' का ही उच्चारण कराया जाए। पहले बच्चों को क्रमबद्ध रूप से वर्णमाला की पहचान कराई जाए। पुन विभिन्न क्रमों में उनसे हिन्दी वर्णमाला को पढ़वाया जाए। यह भाषा-ज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। बच्चो के मानस पटल पर जिस वर्ण की जो तस्वीर अंकित हो जाएगी, आगे चलकर उसी की अभिव्यक्ति सदैव होती रहेगी। अतःएव सतर्कता बहुत जरूरी है।

वर्णो का मिलान या शब्द निर्माण

जब बच्चों को ठीक प्रकार से वर्णमाला को पढ़ना और लिखना आ जाए तब उनसे दो या तीन वर्णो को मिलाकर (जोड़कर) पढ़वाया जाए। पढ़वाने के साथ लिखवाने का भी निरन्तर अभ्यास कराया जाना चाहिए।

जैसे— अ + ब = अब, च + ल = चल, उ + ठ = उठ, स + च = सच, र + थ = रथ, क+ल+म = कलम, क+म+ल + कमल, र+त+न = रतन, स+र+ल = सरल, म+ट+र = मटर आदि।

मात्रा ज्ञान

सरल शब्द-निर्माण के बाद बारी आती है— मात्रा ज्ञान की। भाषा-शिक्षण मे मात्रा ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी को पढ़ने के लिए मात्राओं को लगाना तथा उनका सही उच्चारण करना नितान्त आवश्यक है। मात्रा ज्ञान को निम्न सारणी के माध्यम से आसान बनाया जा सकता है—

मात्रा	चिह्न	मात्रायुक्त शब्द
आ	ा	आज, आम, आठ, नाम, राम, दाम
इ	ि	जिस, किस, मिलन, खिलन
ई	ी	कभी, उसी, बसी, हंसी
उ	ु	बहुत, चुभन, साधु, बिन्दु
ऊ	ू	भानू, भालू, आलू, कालू
ए	े	तेरा, मेरा, मेला, सवेरा, सपेरा
ऐ	ै	मै, मैंने, जैसा, कैसा, वैसा
ओ	ो	ओर, मोर, छोर, ओला, गोला
औ	ौ	और, गौर, ठौर, मौसी, मौत
अं	ं	दंत, सत, अंत, पंत, मंथन
अ.	ाः	अत., प्रायः, दु.ख

बच्चो को विभिन्न मात्राओं वाले शब्द ढूढ़कर लिखने को कहा जाए। उनके बार-बार अभ्यास करने से मात्राओं की पहचान टिकाऊ हो जाएगी। वे आसानी से मात्रा युक्त शब्दो को लिख-पढ़ सकेगे।

शब्दोच्चारण तथा शब्द-लेखन

वर्णो की सही-सही पहचान तथा मात्रा ज्ञान के बाद शब्दों के उच्चारण तथा उनके शुद्ध लेखन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में 'सरल से कठिन की ओर' वाले सिद्धान्त का अनुपालन किया जाना चाहिए। अर्थात् पहले सरल शब्दो और फिर कठिन शब्दों का उच्चारण एवं लेखन सम्बन्धी अभ्यास होना चाहिए। स्वयं शिक्षक को अपने उच्चारण तथा श्यामपट्ट लेखन पर विशेष ध्यान

देना होगा। क्योकि कक्षा के विद्यार्थी आपका ही अनुसरण अधिक मात्रा मे करते हैं। वच्चों को अधिक से अधिक पढ़ने को प्रोत्साहित किया जाए। उनसे समाचार-पत्र, पत्रिकाएं तथा कहानी की पुस्तके पढ़वाई जाए। प्रतिदिन सुलेख का अभ्यास कराया जाए और श्रुत-लेख पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। बच्चों को आसान विषय देकर कक्षाओं में तथा प्रार्थना-सभाओ में बुलवाया जाना उच्चारण सुधारने का एक अच्छा उपाय है।

वाक्य-प्रयोग

शब्द-ज्ञान के बाद भाषा-अध्ययन का अगला चरण है—शब्दो का वाक्यो में प्रयोग। दूसरी कक्षा में बच्चो से छोटे-छोटे तथा सरल वाक्य बनवाए जाने चाहिए। अच्छा हो ये वाक्य उनके परिवेश, कक्षा, परिवार, विद्यालय तथा समाज से सम्बन्धित हों। वाक्य-प्रयोग में मौलिकता बरतनी चाहिए। रटन्त की प्रवृत्ति को अधिक बढ़ावा नही मिलना चाहिए। बच्चो के बढ़ते बौद्धिक स्तर के अनुसार कक्षा तीन, चार और पांच मे वाक्य बनवाए जाने चाहिए। यदि बालक आसानी से वाक्य बना लेता है तो समझिए कि वह भाषा पर अपनी पकड़ बनाने लगा है।

अध्यापकों से अपेक्षाएं

भाषा-शिक्षण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। हिन्दी भाषा के शिक्षक को इस भाषा की बारीकियो, विशेषताओ तथा हिन्दी व्याकरण के ज्ञान को भली-भांति जानना, समझना और आत्मसात् करना चाहिए। आप स्वय से सतुष्ट हों तभी दूसरों को समझा सकते है। आप जिस कच्चे घडे का निर्माण कर रहे है, उसे बहुत दूर तक जाना है। कही कोई खोट या कच्चापन रह गया तो इस घड़े का अच्छा मोल कौन लगाएगा? तभी तो गुरु को कुम्हार की संज्ञा दी गई है—

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर-बाहर चोट।।

प्राथमिक स्तर पर बालक के पठन, उच्चारण, अक्षरों की बनावट, शब्दों के लेखन तथा वाक्य-निर्माण आदि पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। निरन्तर लिखने का अभ्यास कराया जाए। भाषा-शिक्षण केवल शिक्षा मात्र ही नहीं है, यह देश सेवा और राष्ट्र-निर्माण का कार्य है। इसे पूरी लगन, सच्ची निष्ठा और तत्परता के साथ किया जाना चाहिए तभी आप राष्ट्र-निर्माता कहलाने के सच्चे अधिकारी बन सकते हैं।

पाठ्यपुस्तकों में सुधार की आवश्यकता

पहली तथा दूसरी कक्षा की पाठ्यपुस्तकों में सुधार की आवश्यकता है। हिन्दी भाषा की पुस्तकों का निर्माण कुछ इस प्रकार किया जाए कि भाषा-शिक्षण में एक के बाद एक परत खुलती जाए। पहली कक्षा की पुस्तक में सचित्र हिन्दी वर्णमाला, बिना चित्रो के क्रमबद्ध रूप में वर्णमाला तदुपरान्त क्रम रहित हिन्दी वर्णमाला दी जानी चाहिए। छोटे-छोटे अक्षरो के मिलान तथा मात्रा-ज्ञान सम्बन्धी अभ्यास कार्य दिया जाना चाहिए। पुस्तक के अन्त में सरल शब्दावली वाले पाठ तथा कविता आदि का समावेश होना चाहिए। दूसरी कक्षा की पुस्तक में भी पहले दो-तीन पाठ पूर्व-ज्ञान पर आधारित होने चाहिए ताकि वहीं से शुरुआत की जा सके जहां, पहली कक्षा में पुस्तक बन्द की थी। ऐसा करके छोटे बच्चों को नए ज्ञान के लिए तैयार किया जा सकता है। कक्षा तीन से पांच तक की पुस्तकों के अन्त मे हिन्दी व्याकरण का परिचय भी विद्यार्थियो को दिया जाना चाहिए। उन्हे स्वर, व्यंजन, मात्रा, ध्वनि, सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, कर्ता, कर्म, वाक्य सयोजन आदि का ज्ञान भी सहज रूप से कराया जाना चाहिए। जब हिन्दी व्याकरण को पाठ्यपुस्तको मे पढ़ाया जाएगा तभी अभ्यास-पुस्तिकओ में उनका अभ्यास कार्य कराया जा सकता है। अत-एव मेरा विनम्र निवेदन है कि हिन्दी पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा की जानी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा के ज्ञान का खुलासा चरणबद्ध रूप से किया जाना चाहिए। शिक्षार्थी धीरे-धीरे निरन्तर अभ्यास करते हुए भाषा के रूप को जान एव समझ सकता है। बालक के लिए विषय रुचिकर तथा सुबोध बन जाएगा। इसी में हिन्दी भाषा के शिक्षण की सफलता निहित है। ❑❑

निगम बाल विद्यालय
पुष्प विहार से.–5
नई दिल्ली

मूल्य परक शिक्षा एवं संस्कृति

❑ रामगोपाल शर्मा 'बाल'

किसी राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था उसके द्वारा संजोए गए स्वप्नों की यथार्थता की परिचायक है। मनुष्य को आदर्श, चरित्रवान नैतिक रूप से सशक्त बनाने का यदि कोई कारगर उपाय है तो वह है– मूल्य परक शिक्षा। शिक्षा से समाज व्यवस्था मे परिवर्तन लाया जा सकता है यह सभी जानते हैं। किंतु प्रश्न यह है कि क्या पहले पूरा समाज किसी क्रांति द्वारा बदला जाएगा, तब अच्छे मनुष्य बनेंगे अथवा अच्छे मनुष्यो के आधार पर सुन्दर समाज का निर्माण होगा। इस प्रकार की दो विचारधाराएं वर्तमान मे विश्व की सामाजिक व्यवस्था को झकझोर रही हैं– एक है भौतिकवादी विचारधारा और दूसरी है आध्यात्मिक विचारधारा। हमारा भारत आध्यात्मिक विचारधारा का मूल केंद्र माना जाता है।

हमारे देश की सभ्यता व सस्कृति विश्व की अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों से प्राचीन व सनातन मानी जाती है। जो देश, काल, राजनीति के थपेड़ो का सामना करती हुई आज के वर्तमान में भी अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए हुए है। जबकि इसके बाद की समानान्तर वेवीलोन मेसोपोटामिया, मिस्र और सिन्धुघाटी की सभ्यताएं काल के कराल गालों में विलीन हो चुकी हैं

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी'
दुश्मन रहा है सदियों दौरे जहा हमारा।

ऐसी क्या बात है, जो हमारी हस्ती को बनाए हुए है, काल की कराल विभीषिकाओं में अपने अस्तित्व का संरक्षण किस प्रकार होता रहा। सभवतया इसका सक्षिप्त उत्तर सस्कृत की इस सूक्ति मे छिपा हो।

'वृत यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च।
'धन तो आता जाता रहता है किंतु चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए।

जिस जाति व समाज का अस्तित्व मूल्यों पर आधारित है ऐसे मूल्य व्यक्ति व समाज को आंतरिक शक्ति प्रदान करते है। जिस प्रकार सदशिक्षा किसी राष्ट्र की आधार शिला होती है उसी प्रकार संस्कृति भी राष्ट्र के विकास को दृढ़ता प्रदान करती है। प्राचीनकाल से शिक्षा के प्रति "सा विद्या या विमुक्तये" विद्या (शिक्षा) वह है जो मुक्ति प्रदान करे। अर्थात् विद्या से जहां एक ओर जीवनमुक्ति का सदेश है, वही दूसरी ओर सभी प्रकार की स्वतंत्रता का भी संदेश है। विद्या अज्ञानता से स्वतत्रता दिलाकर ज्ञान प्रदान करती है, संकीर्णता से मुक्ति दिलाकर व्यापकता लाती है। जडता से विमुक्त कर गत्यात्मकता लाती है, विचारों को स्वतंत्रता प्रदान करती है तथा जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्रता लाती है– "किं किं न साधयेत् कल्पलतेव विद्या" विद्या (शिक्षा) कल्पवृक्ष के समान किस-किस साधना को पूर्ण नहीं करती।

मूल्य परक शिक्षा का बीजारोपण परिवार से होता है। विद्यालयों में उसका पल्लवन होता है तथा समाज के वातावरण में उसे सात्विकता मिलती है। इसीलिए कहा जाता है कि शिक्षा पर समाज की, समाज पर मूल्यों की और मूल्यों पर संस्कृति की अमिट छाप रहती है। जहां तक चरित्र व नैतिकता का सवाल है, नैतिकता का जाप करने से नैतिकता नहीं आती बल्कि बालकों में नैतिकता के विकास के लिए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण कर देना चाहिए कि शिक्षा लेते समय बालक स्वयं ही नैतिकता की अनुभूति कर सके।

भारतीय समाज में पूर्वकाल से ही मूल्य परक शिक्षा को आचार संहिता के समान माना गया है। इन्हें युगधर्म तथा सनातन धर्म कह सकते हैं। यद्यपि इन दोनों धर्मों में आशिक अंतर है क्योकि युगधर्म परिवर्तित होते रहते हैं जबकि सनातन धर्म शाश्वत होते हैं, फिर भी इन

दोनो मे विभाजक रेखा नही खीची जा सकती।

जहां तक मूल्य के अर्थ का प्रश्न है, शब्दार्थ की दृष्टि से यह कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है किंतु भारत के प्राचीन ग्रंथों में इसके लिए "शील" और "चरित्र" एवं "आदर्श" भी मूल्य के समानार्थी समीपी शब्द माने जा सकते हैं। क्योंकि धारित या आत्मसात् किए हुए मूल्य ही जीवनादर्श बनते हैं। आचरण में लाए हुए ज्ञान को ही यहां महानता की संज्ञा दी जाती है। आध्यात्मिक व नैतिकता के आधार पर ब्रह्मचर्य, सहिष्णुता, करुणा, शिष्टाचार, कृतज्ञता, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, शाति, जिज्ञासा, स्वावलम्बन, राष्ट्रीयता आदि बहुत से सदगुण हमारे यहां बुनियादी मूल्यों की श्रेणी में गिने जाते है और यही हमारी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त हैं।

मूल्य परक शिक्षा का बीजारोपण परिवार से होता है। विद्यालयों मे उसका पल्लवन होता है तथा समाज के वातावरण मे उसे सात्विकता मिलती है। इसीलिए कहा जाता है कि शिक्षा पर समाज की, समाज पर मूल्यो की और मूल्यों पर सस्कृति की अमिट छाप रहती है। जहां तक चरित्र व नैतिकता का सवाल है, नैतिकता का जाप करने से नैतिकता नही आती बल्कि बालकों मे नैतिकता के विकास के लिए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण कर देना चाहिए कि शिक्षा लेते समय बालक स्वय ही नैतिकता की अनुभूति कर सके। यह कार्य सुयोग्य, चरित्रवान अध्यापको के दिशा-निर्देशन में भली-भाति किया जा सकता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि बालकों के विकास का कोई भी पक्ष क्यो न हो, महत्वपूर्ण कारको से प्रभावित होता है। इसमें शिक्षा, वातावरण, परिवेश (शहरी एवं ग्रामीण) आर्थिक स्तर, सामाजिक स्तर, विद्यालय आदि सभी सम्मिलित है। शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षालय इन तीनो का अतर्सम्बन्ध इतना दृढ़ है कि बिना किसी एक के, अन्य दूसरे का कोई विशेष अस्तित्व नहीं है।

जहां तक शिक्षा के माध्यम से संस्कृति सरक्षण का प्रश्न है, बालक की शिक्षा में उसकी सास्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतःएव जब मूल्याधारित शिक्षा दी जाती है उसके साथ स्वमेव संस्कृति का संरक्षण होने लगता है क्योकि मूल्य और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। यद्यपि सस्कृति की निश्चित परिभाषा एक जटिल है। किंतु जिसे हम भारतीय सस्कृति का नाम देते हैं उसकी अवधारणा प्रत्येक भारतीय के सामने स्पष्ट है। हम संस्कृति को एक समग्र प्रतिरूप मानते हैं और हमारे बीच पुरातन काल से सचरण शील सस्कृति का प्रवाह निरंतर गतिशील है। भारतीय सस्कृति व परम्पराओ मे हमारे समाज के विचार व नैतिक मूल्य, धार्मिक अनुभव, अध्ययन चितन, रीति-रिवाज सभी समाविष्ट हैं जो हमारी आंतरिक प्रकृति को व्यक्त करती है। आज जबकि राजनीति का अनावश्यक सक्रमण हमारी भारतीय मान्यता पर चोट कर रहा है, ऐसे समय राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से संकीर्ण क्षेत्रवाद, भाषावाद, प्रातीयता का दृष्टिकोण हमारे लिए खतरा है। समाज मे मूल्यो का क्षरण होता जा रहा है। हमारी नई पीढ़ी पश्चिमी सस्कृति के नकारात्मक पक्षो से प्रभावित है और हम भौतिकवादी समाज में बदलते जा रहे है। नैतिकता के अभाव में हमारी संस्कृति एवं सभ्यता का सुदर भव्य महल ढहता जा रहा है। अतःएव मूल्य परक शिक्षा के माध्यम से सामाजिक संस्कृति को जीवित रखने का सभी भारतीयों का पुनीत कर्तव्य है। ❑❑

जैन शिक्षा महाविद्यालय
मंदसौर, मध्य प्रदेश

प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में निर्धारित दक्षता आधारित अधिगम की कठिनाइयां

❒ प्रवीण दोसी
❒ रमेश उकावत

विज्ञान और तकनीकी के युग में सबके लिए शिक्षा सामान्य रूप से तथा गणित शिक्षा विशेष रूप से आवश्यक है। इसी कारण नई शिक्षा नीति (1986) ने गणित शिक्षा को दसवीं कक्षा तक अनिवार्य विषय के रूप मे रखा है।

प्राथमिक शिक्षा के सुधार हेतु राज्य सरकार ने अनेक प्रयास एव तद्नुसार सुविधाए भी मुहैया कराई लेकिन शिक्षा के स्तर में निरन्तर गिरावट ही होती जा रही है। पूर्व मे हुए शोध अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् भी बच्चों में आवश्यक दक्षताओ का अभाव पाया जाता है जिसके कारण दसवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते अधिकांश बालक या तो फेल हो जाते हैं या विद्यालय छोड़ देते है।

गणित शिक्षा तर्क शक्ति पर आधारित है। नियमों को ठीक से न समझ पाने, विधियों को ठीक से इस्तेमाल नहीं करने से प्राथमिक स्तर के बालको मे कमजोरियां होना स्वाभाविक है। यदि इनका निराकरण समय पर कर दिया जाए तो गणित जैसे रोचक विषय को समस्या बनने से रोका जा सकता है। वी.पी.गुप्ता (1999) ने प्राथमिक स्तर पर इस प्रकार का शोधकार्य किया तथा दक्षताएं निर्धारित करने का प्रयास किया था। शोधकर्ताओं ने वर्तमान समय मे प्राथमिक विद्यालयो में पढ़ रहे छात्रो की गणित विषय में निर्धारित दक्षताओ पर क्या कुछ कठिनाइयां महसूस करते है, जिसकी वजस से वे कक्षा में पिछड़े हुए है, का पता करने का प्रयास किया है।

शोध उद्देश्य

इस प्रायोजना के लिए मुख्य उद्देश्य निम्न रखे गए–

- प्राथमिक स्तर पर गणित के क्षेत्र मे विभिन्न दक्षताओं का पता लगाना।
- प्राथमिक स्तर तक गणित विषय मे निर्धारित दक्षताओं में अधिगम कठिनाइयों का पता लगाने के लिए निदानात्मक परीक्षण का निर्माण करना।
- निदानात्मक परीक्षण के आधार पर विभिन्न दक्षताओं पर विद्यार्थियों की अधिगम कठिनाइयो का पता लगाना।

गणित शिक्षा तर्क शक्ति पर आधारित है। नियमों को ठीक से न समझ पाने, विधियों को ठीक से इस्तेमाल नहीं करने से प्राथमिक स्तर के बालकों में कमजोरियां होना स्वाभाविक है। यदि इनका निराकरण समय पर कर दिया जाए तो गणित जैसे रोचक विषय को समस्या बनने से रोका जा सकता है। वी.पी.गुप्ता (1999) ने प्राथमिक स्तर पर इस प्रकार का शोधकार्य किया तथा दक्षताएं निर्धारित करने का प्रयास किया था।

न्यादर्श एवं उपकरण

- इस शोध हेतु प्राथमिक स्तर पर गणित विषय मे दक्षता निर्धारण के लिए राजकीय तथा प्राईवेट शिक्षकों की राय ली गई। शोधकर्ताओं द्वारा 100 शिक्षको से राय ली गई। पांचवी कक्षा पास होते-होते बालक में क्या-क्या दक्षताएं हो जानी चाहिए। शिक्षको से यह भी पता लगाने का प्रयास किया गया कि बालक गणित विषय में किस प्रकार की त्रुटियां करते हैं।
- इस शोध को पूरा करने के लिए उदयपुर शहर के डबोक गाव के राजकीय प्राथमिक विद्यालयो में पढ़ने वाले 60 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

- उदयपुर शहर के 10 विद्यालयो में छात्रों द्वारा किए जाने वाले गृहकार्य की जाच के आधार पर विभिन्न दक्षताओं पर छात्रों द्वारा की जाने वाली त्रुटियो/कठिनाइयों का पता लगाया गया।

प्राथमिक स्तर पर गणित विषय में प्राप्त हो जाने वाली दक्षताएं

उपरोक्त न्यादर्श से शिक्षकों की राय के आधार पर निम्न दक्षताए निर्धारित की गईं–

- संख्याओं को अकों व शब्दों में पढ़ना व लिखना।
  - सम तथा विषम संख्या का ज्ञान।
  - दो सख्याओं में बड़ी व छोटी संख्या का पता लगाना।
- संख्याओं पर चार मूलभूत सक्रियाओं को पूरे विश्वास के साथ करना।
- दैनिक जीवन से सम्बन्धित सरल प्रश्नों को हल करना।
- विभिन्न प्रकार के मापो जैसे लम्बाई, भार, समय, मुद्रा, क्षेत्रफल, आयतन आदि को समझना तथा उनका उचित उपयोग करना।
- मापों की विभिन्न इकाइयों के परस्पर संबधों को जानना और उनका उपयोग करना।
- वातावरण मे उपलब्ध ज्यामितीय आकृतियो को पहचानना, उनका वर्गीकरण करना।
- लम्बाई, क्षेत्रफल तथा आयतन को मापना।
- घड़ी को देखकर समय बताना।
- विभिन्न नोटों व सिक्कों के समूह का कुल मान बता सकना।

निदानात्मक परीक्षण का निर्माण एवं प्रशासन

शोधकर्ताओं द्वारा प्राथमिक स्तर पर उपरोक्त दक्षताओ पर आधारित प्रश्न-पत्र का निर्माण किया गया। कक्षा 1 से 5 तक के गणित विषय पर निर्धारित दक्षताओ पर प्रश्न-पत्र निर्माण कर 100 शिक्षकों को प्रदान कर उनकी 80 प्रतिशत राय के आधार पर प्रश्नों का चयन किया गया। प्रत्येक प्रश्न का पद विश्लेषण तथा विश्वसनीयता गुणांक ज्ञात करने के लिए पाचवी कक्षा के 40 छात्रो पर प्रशासित किया गया– प्रश्न-पत्र (पूर्व परीक्षण) का विश्वसनीयता गुणांक 82831 प्राप्त हुआ।

इन 30 प्रश्नों के पूर्व परीक्षण को राजकीय प्राथमिक विद्यालय डबोक (उदयपुर) के 66 विद्यार्थियो पर प्रशासित किया गया। पूर्व-परीक्षण के बाद विद्यार्थियो की उत्तर पुस्तिकाओ का विश्लेषण किया गया।

सारणी 1

पूर्व-परीक्षण में विभिन्न दक्षताओं पर आधारित प्रश्नों की संख्या एवं अंक भार

क्र सं.	*दक्षता विवरण*	*प्रश्नों की संख्या*	*अंक भार*
1	*2*	*3*	*4*
1.	अ. संख्याओं को शब्दों में लिखना व पढ़ना ब. संख्याओं में चिन्ह >, =, < अकित करना स. सम तथा विषम संख्याएं बताना	4	18
2	संख्याओं पर चार मूलभूत संक्रियाओ को पूरे विश्वास से करना	6	12
3.	दैनिक जीवन से संबंधित सरल प्रश्नों को हल करना	5	13
4.	विभिन्न प्रकार के माप को समझना तथा उनका उचित उपयोग	6	21
5.	मापो की विभिन्न इकाइयों में परस्पर सबंध को समझना व उपयोग	2	9

1	2	3	4
6.	वातावरण मे उपलब्ध ज्यामितीय आकृतियों को पहचानना, उनका वर्गीकरण करना।	2	6
7.	लम्बाई, भार तथा क्षेत्रफल आदि मापना	2	6
8.	घड़ी को देखकर समय बताना तथा किसी कार्य में लगी समयावधि ज्ञात करना।	3	9

निदानात्मक परीक्षण परिणाम– अधिगम कठिनाइयों का विश्लेषण

30 प्रश्नो के निदानात्मक परीक्षण में छात्रों द्वारा की गई त्रुटियो के आधार पर निम्न अधिगम कठिनाइयां प्राप्त हुई–

दक्षताएं	*अधिगम कठिनाइयां*
1. सख्याओं को शब्दों में लिखना तथा पढ़ना	चार अंकों से ज्यादा की संख्या को शब्दों मे लिख पाने में कठिनाई उत्पन्न हुई। अधिकांश विद्यार्थियों को स्थानीय मान की सकल्पना स्पष्ट नहीं थी– जैसे नीचे लिखी संख्या को शब्दों में लिखो– 378401 तीन लाख सात हजार आठ सौ चालिस एक 507041 पांच हजार सात हजार चार एक 401012 चार हजार एक सौ एक दो
2. संख्याओं को अकों में लिखना	विद्यार्थियो को स्थानीय मान की संकल्पना स्पष्ट नही होने से सख्याओं को अंकों में लिखने मे कठिनाई अनुभव की जैसे– चालीस हजार सात 40,0007
3. सम तथा विषम संख्या	विद्यार्थियों को सम तथा विषम संख्याओं के बारे में बताने में असमर्थ रहे। भाजकता के लिए इस ज्ञान का होना आवश्यक है उन्हें संकेतांक > = < का ज्ञान नही है। जैसे (i) 181 सम 180 (विषम) (ii) 780 < 729 (iii) 4707 < 407 (iv) 69 > 96
4. चार या पांच अको की दो पूर्ण संख्याओं को घटाना	इस प्रकार के प्रश्नों मे जहा अंकों को उधार लेने की बात आती है वहा विद्यार्थी त्रुटियां करता है।

3048
−2089

(i) ऊपर की सख्या छोटी होने की स्थिति में हासिल लेने संबधी त्रुटि।

इकाई संख्या छोटी होने पर 18, हासिल उधार लेकर घटा तो लेते हैं लेकिन दहाई संख्या मे भी 14 के स्थान पर 13 बनाकर 8 घटाते है।

5. चार या पांच अंकों की संख्या को दो या तीन अंको की सख्या से गुणा करना।

अधिकांश छात्र प्रश्न में शून्य से गुणा किसी संख्या से करने में सफल नहीं रहे। 0 × 3 =3 अगर इसमे अगली संख्या का हासिल भी जोड़ना हो तो 3+1 = 4 लिखते है।

```
 3056
  ×23
 -----
10548
7032×
 -----
80868
```

12 प्रतिशत छात्रों ने 3056 को पहले 2 से गुणा किया बाद में 3056 × 3 से गुणा किया।

6. चार या पाच अंकों की संख्या मे भाग देना

1. अधिकांश छात्र जब जोड़, बाकी, गुणा सही नहीं कर सकते तो भाग में त्रुटि स्वाभाविक रहती है
   - अ. बाकी करने में हासिल संबंधी त्रुटि।
   - ब. भाग देने वाली संख्या बड़ी होने पर भाजक की कौन-कौन सी संख्या साथ रखें।
   - स. सख्याओं के बीच में शून्य आने पर क्या किया जाए।
   - द. ऊपर से संख्या उतारने पर भाग देने वाली संख्या बड़ी हो तो भागफल मे शून्य लगाना भूल जाते है

```
12)24024(22
   24
   ----
    ××024
       24
       ----
        ×
```

7. भाजकता के नियम

अ. छात्रों को जब सम, विषम तथा भाजकता के नियम का ज्ञान स्पष्ट नहीं है तो भाग देने में कठिनाई आती है

$\frac{208}{54} = 104/18$

अंश को दो से भाग देकर तथा हर को तीन से भाग देकर सख्या लिख देते हैं।

		ब. अंश तथा हर की सख्या दोनों संख्याओ में किसका भाग जा सकता है, ज्ञान नहीं है। स. 2, 3, 4, 5, 6, 8, 9 भाजकता के नियम से अनभिज्ञ हैं।
8.	लम्बाई, मात्रा तथा समय की इकाइयो व उप इकाइयो में संबंध	(1) लम्बाई तथा समय की इकाइयों व उप इकाइयों में जानकारी नही है– 5000 मिली = 50 लीटर 240 सेकेण्ड = 60 मिनट 5 किग्रा 600 ग्राम = 1000 ग्राम
9.	दैनिक जीवन की सरल समस्याओं को हल करना	छात्र प्रश्न पढ़कर यह नही बता पाते हैं कि समस्या में क्या निकालना है। भाग कब करते हैं? गुणा कब करेगे? जोड़ के लिय क्या होना चाहिए? दैनिक जीवन पर आधारित इबारत वाले कक्षा 3 के प्रश्न को कक्षा 5 के विद्यार्थी हल नहीं कर पाते।
10.	ज्यामितीय आकृतियों आयत, वर्ग के परिमाप तथा क्षेत्रफल	छात्र आयत तथा वर्ग के परिमाप तथा क्षेत्रफल मे अन्तर नही कर पाते। खेल के मैदान की लम्बाई तथा चौड़ाई 10 मी. तथा 5 मी. दिए जाने पर एक चक्कर की दौड़ की दूरी ज्ञात करने में परिमाप का सूत्र ही लगेगा– यह नहीं कर पाते।

अतः निदानात्मक परीक्षण के परिणामों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि पाचवी कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थी गणित की इन मूलभूत अवधारणाओं पर आधारित प्रश्नों को हल करने में कठिनाई अनुभव करते हैं जिसके कारण विद्यार्थियों को आधारभूत अवधारणाओ का ज्ञान नहीं हो पाता और वे आगे की कक्षा में पिछड़ जाते हैं। इस विश्लेषण के दौरान ऐसा अनुभव किया गया कि उचित शिक्षण एवं मार्गदर्शन के अभाव मे विद्यार्थी प्रश्नो को हल करने में ऐसे तरीके खोज लेते हैं जो एकदम गलत होते हैं और आगे की कक्षा में गणित सीखने मे बाधक सिद्ध होते हैं। ❑❑

लोकमान्य शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय
डबोक, उदयपुर
राजस्थान

शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिए शिक्षक कहां तक दोषी है

❐ गजेन्द्र प्रताप सिंह
❐ सुधीर प्रताप सिंह

शिक्षण प्रक्रिया मे पाच स्तम्भ होते हैं– ● शिक्षार्थी ● अभिभावक ● शिक्षक ● प्रबन्धक ● सरकारी तन्त्र।

प्रक्रिया को स्वस्थ एव सुचारू रूप से चलने के लिए पाचो स्तम्भों का स्वस्थ एव सही होना आवश्यक है। जिस प्रकार पांच स्तम्भो पर बने हुए मकान को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए पाचों स्तम्भों का मजबूत एव आपस मे सन्तुलन बनाए रखना निताात आवश्यक है उसी प्रकार शिक्षण प्रक्रिया मे इन पांचों स्तम्भो का सन्तुलन बिगड़ता है या एक स्तम्भ टूटता है तो पूरा ढांचा ही चरमराकर ढह जाएगा। ठीक उसी प्रकार शिक्षण प्रक्रिया में भी होता है। जव पांचों स्तम्भो की भूमिका समान होती है तो शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिए शिक्षक को ही क्यों जिम्मेदार माना जाता है। यह दुर्भाग्य पूर्ण होने के साथ-साथ शिक्षक के लिए अन्याय पूर्ण भी है। शिक्षार्थी को आगे बढ़ने के लिए तीन बातों का ध्यान रखना होगा।

● साधना ● साधन ● तकनीक

क्या आज का शिक्षार्थी उचित साधना कर रहा है? क्या अपने पास रहने वाले साधनों का उपयोग पूरी तरह से कर रहा है? सर्वथा नही। आज वह केवल परिणाम चाहता है केवल फल। और येन, केन, प्रकारेण ही फल प्राप्त करने की इच्छा ही उसे साधना, साधन एव तकनीक के रास्ते से हटाती है तो साधना कैसे की जाए, कौन-कौन से साधन होंगे। किस तकनीक से इसका उपयोग होगा इन सबकी जानकारी शिक्षक देता है लेकिन वह तभी देगा जब शिक्षार्थी मे समर्पण की भावना होगी। जब शिक्षार्थी अपनी जुगाडू विचारधारा से अपने को शिक्षक से आगे समझेगा तो शिक्षक भी अपना हाथ खींच लेगा और उतना ही करेगा जितना उसे अपने हित के लिए आवश्यक होगा।

शिक्षा की गुणवत्ता बने रहना कैसे सम्भव है। जब शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिए पांचों स्तम्भ समान रूप से जिम्मेदार हैं तो केवल यह कहना कि गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए केवल शिक्षक जिम्मेदार हैं सर्वथा अन्यायपूर्ण, अपमान युक्त एवं शिक्षकों के हितों पर कुठाराघात करना है। यदि उपरोक्त परिस्थितियों पर गौर से विचार करें तो आज की शिक्षण प्रणाली में गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए शिक्षक की जिम्मेदारी नहीं के बराबर है क्योंकि पांचों स्तम्भों में से सभी स्तम्भ कहीं न कहीं से टूट रहे हैं।

आज अधिकांश छात्र केवल डिग्री के लिए ही प्रवेश लेते हैं। उन्हें शिक्षा अर्जन या ज्ञान की आवश्यकता नजर नही आती तो शिक्षक कैसे उन्हें ज्ञान की ज्ञानामृत पिलाए। हां! कही-कहीं शिक्षक भी दोषी होता है जिसका प्रतिशत बहुत कम है। कुछ ऐसे भी शिक्षक है जो अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन सही प्रकार से नही कर रहे है। आखिर शिक्षक भी तो इसी समाज का सदस्य है तो समाज का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। प्राचीन काल मे जब शिक्षक गुरु के रूप में शिक्षार्थी के लिए तन, मन, धन से समर्पित रहता था तो शिक्षक निडर एव निश्चिंत होकर यह कार्य करता था। जिससे उसके शिक्षार्थी भी वीर, बुद्धिमान, गुणवान होकर अपनी शिक्षा पूर्ण करते थे। परन्तु आज शिक्षा शिक्षक आधारित नहीं है शिक्षक भी डरा हुआ, सहमा, बेबस, परेशान तथा चिन्ता युक्त रहता है तो कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वह निडर, निर्भीक और निष्पक्ष एवं दोष रहित शिक्षार्थी पैदा करेगा। हमारा समाज तो शिक्षक से प्राचीन परम्परा वाले गुरु की श्रेणी में उनके कर्तव्यों को मानता

है परन्तु अधिकार के रूप मे उसे आज बेचारे शिक्षक, बेचारे मास्टर जी के रूप में स्वीकारता है। जब पूर्व के गुरु जैसी इज्जत उन्हें नही मिल रही है तो वे भी अपने को समाज के अन्य लोगो जैसा ही मानने के लिए मजबूर हो रहे हैं तथा समाज के अन्य लोगों से बराबरी करने के लिए विभिन्न तरीके अपना रहे हैं। जिसे समाज शिक्षक का दोष मान रहा है तथा गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए दोषरोपित कर रहा है जो सरासर अन्याय है। हमारा समाज शिक्षक से एक आर्दश, ईमानदार, नैतिक गुणों वाला, परिश्रमी, दयालु इत्यादि प्रकार के गुणों से युक्त व्यवहार करने की बात करता है परन्तु क्या समाज उनके साथ इसी प्रकार का व्यवहार करने के लिए तैयार है? सर्वथा नही। समाज का नियम है कि जब सब अपने-अपने लिए अच्छे व्यवहार की इच्छा रखते हैं तो आपको भी अच्छा व्यवहार करना पड़ेगा। क्या शिक्षक इस श्रेणी मे नहीं आता। अतः गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए शिक्षक पूर्णतया दोषी नही है।

अभिभावक भी गिरते हुए शिक्षा के स्तर मे बराबर का दोषी है क्योकि वह यह सुनने के लिए तैयार ही नहीं है कि मेरा बच्चा/ बच्ची भी कोई गलत कार्य कर सकता है। उसका ध्यान येन, केन, प्रकारेण भौतिक साधन इकट्ठा करने पर ही रहता है। वह बच्चे को विद्यालय में प्रवेश दिलाकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेता है। यदि शिक्षक किन्हीं कारणों से उसे दण्डित करता है तो छात्र के साथ अभिभावक भी शिक्षक से लड़ने को तैयार हो जाता है। दण्ड की प्रक्रिया मे कभी-कभी शिक्षक से भी गलती हो जाती है जो स्वाभाविक भी है लेकिन उस गलती का शिक्षक को इतना दण्ड दे दिया जाता है कि आगे कोई भी शिक्षक शिक्षार्थी को दण्ड देने के लिए तैयार नहीं। जिसका परिणाम होता है कि छात्र, उग्र, उद्दण्ड, बदतमीज तथा कामचोर हो जाता है। जिसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व शिक्षक के ऊपर डाल दिया जाता है, यह कहां का न्याय है। घर पर अपना बच्चा अपने वश में तो हम कर नही पाते और कहते है कि स्कूल मे यह पूर्णतया शात और शालीन हो जाए, यह कैसे सम्भव है। सच तो यह है कि शिक्षा की गुणवत्ता के अभाव का प्रमुख कारण विद्यार्थियों का बढ़ता सैलाब और प्रबन्धकों द्वारा मनमाने तरीके से प्रवेश, विद्यार्थियों का कक्षा में न आना, प्रबन्धकों की मनमानी, दखलन्दाजी, अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों की देख-रेख मे समाप्ति, बच्चों को निरकुंश बना देना, स्वयं विद्यार्थियों मे अपने अधकारमय भविष्य के कारण निराशा एवं कुन्ठा का होना, राजनेताओं का लाव लश्कर एव भ्रष्ट आचरण द्वारा समाज एवं राष्ट्र की सम्पत्ति का गलत ढग से दोहन, प्रबन्धकों द्वारा अंको में हेरा-फेरी करवाना, प्रयोगशालाओ की कमी एव बैठने की व्यवस्था से अधिक प्रवेश आदि कारण भी शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिए जिम्मेदार हैं। इन परस्थितियो के बीच शिक्षक कहां आता है, जो विचारणीय विषय है। उपरोक्त अव्यवस्था के तहत चाहे, इंग्लैण्ड, ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका से शिक्षक मगा ले शिक्षण में गुणवत्ता सम्भव नहीं है। ये अव्यवस्थाएं विशेष कर सामान्य श्रेणी के विद्यालयों मे पाई जाती हैं। यदि यही अव्यवस्था जाने माने विद्यालयो जैसे दून, नैनीताल, इन्जीनियरिंग कॉलेज, मेडिकल कॉलेज, प्रसिद्ध विश्वविद्यालयो एव शोध सस्थानो मे आ जाए तो वहा के शिक्षण का स्तर हमारे शिक्षण स्तर से हजारो, लाखो गुना नीचे गिर जाएगा।

शिक्षण का पाचवां स्तम्भ भी शिक्षण की गुणवत्ता में गिरावट के लिए कम दोषी नहीं है। मनमाने ढंग से पाठ्यक्रमों में परिवर्तन, बिना कुछ खर्च किए अनुदानो का न मिलना, आए हुए अनुदानो का उपयोग भी उन्ही के मानको के अनुसार करना आदि भी शिक्षा में आ रही गिरावट के लिए दोषी हैं। यदि कोई अनुदान सरकारी तन्त्र से आता है तो उसका 40 प्रतिशत हिस्सा ही कॉलेज के विकास में लग पाता है, शेष ऊपर ही बांट लिया जाता है। विभागो में न कोई बजट है, न कोई अनुदान, न कोई प्रयोगशाला, न कोई पुस्तक फिर भी गुणवत्ता उत्तम रखने की जिम्मेदारी शिक्षक की है यह कहां तक न्यायोचित है। आज शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात भी बुरी तरह बिगड़ चुका है फिर भी गुणवत्ता बनाने की जिम्मेदारी शिक्षक की ही मानी जाती है जो अन्यायपूर्ण है।

आज सरकारी तन्त्र चाहता है कि कागजी कार्यवाही पूर्ण होती रहे, विद्यालय खुलते रहें, परिक्षाएं जैसे-तैसे सम्पन्न

होती रहें, मूल्यांकन का कार्य अतिशीघ्र सम्पन्न हो जाए चाहे वह सम्बन्धित शिक्षक से कराया जाए चाहे किसी अन्य से बस समय से हो जाए। विद्यालय एव विश्वविद्यालय के अधिकारी यह चाहते हैं कि उन पर सरकार की कृपा बनी रहे, यही कोशिश हमेशा करते रहते है। छात्र हित एवं शिक्षक की चिन्ता किसी को नही रहती है।

उपरोक्त परिस्थितियों मे शिक्षा की गुणवत्ता बने रहना कैसे सम्भव है। जब शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिए पाचो स्तम्भ समान रूप से जिम्मेदार है तो केवल यह कहना कि गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए शिक्षक जिम्मेदार है सर्वथा अन्यायपूर्ण, अपमान युक्त एवं शिक्षकों के हितों पर कुठाराघात करना है। यदि उपरोक्त परिस्थितियो पर गौर से विचार करे तो आज की शिक्षण प्रणाली मे गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए शिक्षक की जिम्मेदारी नहीं के बराबर है। जब पांचों स्तम्भों में से सभी स्तम्भ कहीं न कहीं से टूट रहे है तो गिरते हुए शिक्षा के स्तर के लिए केवल शिक्षक को दोषी कहना अन्यायपूर्ण होगा। ❑❑

(1) कृषि प्रसार विभाग
जे.वी. कॉलेज, बड़ौत
(2) हिंदी विभाग
दिगम्बर जैन कॉलेज
बड़ौत, उत्तर प्रदेश

लिंग भेद एवं गणित शिक्षण

❑ पी. के. डीन

(स्थान— कार्यालय कक्ष जहा विशेषज्ञ 'गणित शिक्षक' के पद पर नियुक्ति हेतु अभ्यर्थी के चयनार्थ साक्षात्कार की प्रक्रिया में संलग्न हैं।)

(अचानक सेवक एक अभ्यार्थी को पुकारता है। अभ्यर्थी विशेषज्ञों से अनुमति प्राप्त करके कार्यालय कक्ष में प्रवेश करता है और आसन ग्रहण करता है। विशेषज्ञ अभ्यर्थी से कतिपय प्रश्न पूछते हैं। अभ्यर्थी उनके सटीक उत्तर देता है प्रश्नों का क्रम अभी जारी है. ...)

विशेषज्ञ— हमारे देश को गणतंत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुए 50 वर्षो से भी अधिक समय हो रहा है; परन्तु हम आज भी लिंग असमानता की समस्या का पूर्ण निदान नही कर सके हैं और सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर लिंग भेद जारी है। आपकी दृष्टि में इसके क्या कारण हो सकते है? क्या हमारी शिक्षा प्रणाली मे कोई दोष है?

अभ्यर्थी— वस्तुतः इसके कई कारण हैं यथा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि। परन्तु यहां पर मैं *मात्र शैक्षिक विशेष रूप से गणित शिक्षा से संलग्न कारणों* का ही उल्लेख करूंगा जो कि निम्नलिखित हैं— दोषपूर्ण पाठ्यक्रम, दोषपूर्ण पाठ्यपुस्तकें एवं दोषपूर्ण शिक्षण।

दोषपूर्ण पाठ्यक्रम का अर्थ है— लिंग भेद युक्त पाठ्यक्रम। आज कई विद्यालयी पाठ्यक्रम लिंग भेद से परिपूर्ण हैं *यथा दसवीं कक्षा में छात्राओ हेतु गणित तथा*

गृह विज्ञान मे उपलब्ध विकल्प। इसके विपरीत छात्रों को गणित विषय की अनिवार्यता। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माताओ ने छात्राओ को अशक्त मानकर दसवी कक्षा की परीक्षा में उनके लिए गणित विषय की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया जबकि गणित विषय दोनो ही के लिए महत्वपूर्ण है।

महिलाएं अशक्त होती हैं और वे पुरुषों से कम कार्य करती हैं जो कि लिंग भेद की भावना से परिपूर्ण है। अतः पाठ्यपुस्तकों में ऐसे प्रश्नों का समावेश होना चाहिए जिससे स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही कार्य व व्यवहार में समानता प्रदर्शित हो। इतना ही नहीं पाठ्यपुस्तकों में प्रायः महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार विषयक पाठ्य-सामग्री का अभाव रहता है और पाठ्य-सामग्री प्रायः ऐसी होती है जो कि पुरुष को समाज की मुख्य भूमिका तथा स्त्री को सहयोगी भूमिका में प्रदर्शित करती है जबकि वस्तुस्थिति इस धारणा के ठीक विपरीत है। दुनिया का दो तिहाई कार्य स्त्रियों द्वारा ही सम्पादित होता है।

विशेषज्ञ— दोषपूर्ण पाठ्यपुस्तक से आपका क्या अभिप्राय है?

अभ्यर्थी— दोषपूर्ण पाठ्यपुस्तकों से मेरा अभिप्राय उन पाठ्यपुस्तकों से है जो एक लिग को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। वैसे तो सम्पूर्ण शिक्षा प्राय पुल्लिग मे ही लिखी जाती रही है, परन्तु कुछ विषयो मे यह स्थान स्त्रीलिग को भी प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ, गृह विज्ञान प्राय· स्त्रीलिंग में ही लिखा जाता है जबकि यह विषय ऐच्छिक विषय के रूप में बालक भी लेने लगे है।

मेरे कहने का तात्पर्य है कि पाठ्यपुस्तकों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिससे दोनो ही लिगों की समानता प्रदर्शित हो। मात्रभाषा द्वारा ही नही अपितु विषय-वस्तु द्वारा भी इन पुस्तको मे स्त्रीलिग को अशक्त प्रदर्शित किया जाता रहा है। उदाहरणार्थ कृपया निम्नलिखित प्रश्न पर ध्यान केन्द्रित करे—

"3 पुरुष या 5 स्त्रियां किसी काम को 17 दिन मे पूरा करते हैं। 7 पुरुष और 11 स्त्रिया उसी काम को कितने दिनो मे पूरा करेगे?"

उपरोक्त प्रश्न से प्रदर्शित होता है कि महिलाए अशक्त होती हैं और वे पुरुषो से कम कार्य करती हैं जो कि लिग भेद की भावना से परिपूर्ण है। अत· पाठ्यपुस्तको मे ऐसे प्रश्नो का समावेश होना चाहिए जिससे स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही कार्य एवं व्यवहार मे समानता प्रदर्शित हो। इतना ही नहीं पाठ्यपुस्तकों मे प्रायः महिलाओ के जीवन स्तर में सुधार विषयक पाठ्य-सामग्री का अभाव रहता है और पाठ्य-सामग्री प्रायः ऐसी होती है जो कि पुरुष को समाज की मुख्य भूमिका तथा स्त्री को सहयोगी भूमिका में प्रदर्शित करती है जबकि वस्तुस्थिति इस धारणा के ठीक विपरीत है। दुनिया का दो तिहाई कार्य स्त्रियों द्वारा ही सम्पादित होता है.. ...।

विशेषज्ञ— दोषपूर्ण शिक्षण से आपका क्या तात्पर्य है?

अभ्यर्थी— वस्तुत· हमारे देश मे गणित शिक्षण की दशा अत्यत शोचनीय है। यहा गणितीय सकल्पनाओ के अध्यापन के बिना गणितीय प्रश्नो के हल सिखाए ही नहीं अपितु रटाए भी जाते है। फलस्वरूप गणित शिक्षण इतना प्रभावपूर्ण नहीं है कि महिलाओ की उचित छवि विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके।. ....

विशेषज्ञ— आपके दृष्टिकोण मे गणित शिक्षण द्वारा लिंग असमानता का निराकरण करके समाज में किस प्रकार महिलाओ की उचित छवि विकसित की जा सकती है?

अभ्यर्थी— वस्तुतः गणित शिक्षण द्वारा इस समस्या के निराकरण के बहुत से उपाय हैं, उनमें से कतिपय प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं—

- ☐ प्रत्येक बोर्ड मे सैकेण्डरी स्तर तक सामान्य पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए।
- ☐ विद्यालय के अधिकारियो द्वारा उन पाठ्यपुस्तको का

चयन होना चाहिए जिनमे दोनो लिंगो की संतुलित प्रस्तुति हो।

- शिक्षण के दौरान बालक एव बालिकाओ दोनों को ही गणित के अध्ययन के प्रति समान रूप से प्रेरित करना चाहिए तथा किसी भी दशा में बालिकाओं की क्षमता पर न तो अविश्वास करना चाहिए और न ही उन्हें हतोत्साहित करना चाहिए।
- शिक्षण के दौरान गणितीय संकल्पनाओ के विकास में प्रयुक्त उदाहरण एव समस्याए ऐसी होनी चाहिए जिनमें दोनों लिंगों की संतुलित प्रस्तुति हो और किसी भी दशा में यह प्रदर्शित न करे कि पुरुष महत्वपूर्ण एवं महिलाए सहयोगी कार्यो मे संलग्न होती हैं।
- शिक्षक को प्रसिद्ध पुरुष एवं महिला गणितज्ञों के चित्र कक्षा मे प्रदर्शित करते हुए उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालना चाहिए . ।

विशेषज्ञ– इस विषय पर आपके विचार सृजनात्मक है। इनके कार्यान्वियन द्वारा हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है, "शिक्षक राष्ट्र निर्माता है।" धन्यवाद।

(सबका प्रस्थान) ☐☐

585, संजय नगर
सीतापुर, उत्तर प्रदेश

विद्यालय को प्रभावशाली साधन बनाने के सुझाव

❑ सुरेश नाथ त्रिपाठी

प्रगतिशील व्यक्ति विद्यालयो को एक व्यापक परिवार के रूप मे मानता है जहा सामुदायिक ढंग से जीवन जीते हुए रुचि के अनुरूप विभिन्न और विविध क्रियाकलापों में लोग संलग्न होते हैं और यह अनुभव करते हैं कि वे सब सामान्य प्रयासो मे एक-दूसरे के सहयोगी है। इनमें से प्रत्येक अपने मे यह समझ जागृत करता है कि उसे सम्पूर्ण कार्यकलाप मे अपना महत्वपूर्ण योगदान देना है। अब विद्यालय अपनी औपचारिकता को त्याग अनौपचारिक स्वरूप ग्रहण करते जा रहे है। विद्यालयों को प्रभावशाली साधन बनाने के लिए प्राचार्य, अध्यापक, छात्र और अभिभावकों को अपना प्रभावी योगदान देना चाहिए।

सर्वप्रथम विद्यालय में प्रार्थना सभा को सुचारू रूप से संचालित करना चाहिए। विद्यालयी प्रार्थना विद्यालय के सभी सदस्यों मे शान्ति और शक्ति का संचार करती है। इतना ही नहीं प्रार्थना के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में उन संस्कारो को विकसित करने का प्रयास करती है जिन्हे हम जीवन मूल्य यानि विनम्रता, शिष्टता और अनुशासन कहते हैं। प्रार्थना के द्वारा विद्यालय के सभी सदस्यों मे नैतिकबल और आत्मबल जागता है। प्राचार्य और शिक्षक गण मिलकर प्रार्थना सभा में विविधता और रोचकता लाकर प्रभावी संचालन करें। छात्रो के द्वारा प्रार्थना सभा का प्रभावी आयोजन हो तो छात्रो मे नेतृत्व करने के गुणों का विकास होगा।

प्राचार्य शिक्षण व्यवस्था सुचारू रूप से सचालित तथा शिक्षण से जुड़े सभी कार्यक्रम निर्धारित समय पर पूर्ण करने के लिए देनन्दिनी संधारित करें। शिक्षक विद्यार्थियो मे अध्ययन के प्रति जागरूकता उत्पन्न करे, उनकी जिज्ञासाओं को शान्त करे, नैतिक मूल्यो का विकास करे और राष्ट्र चेतना का विकास करे। इतना ही नहीं पढ़ाते समय शिक्षण सामग्री का उपयोग करें। कक्षा कार्य और गृहकार्य की नियमित जांच करें।

अधिकतर देखा गया है कि छात्र किताबें पढ़कर ज्ञानी हो जाते हैं लेकिन उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी भाषा बोलने में कठिनाई महसूस होती है। विद्यालय में भाषा प्रयोगशाला होनी चाहिए जिसमें छात्रों को भाषा बोलने का शिक्षण दिया जाए। छात्र टेपरिकॉर्डर में भाषा सम्बन्धी 'टेपों' को सुनकर बोलने का अभ्यास करें। इसके पश्चात् अपनी आवाज को टेपरिकॉर्डर में टेप करके सुनें और उसमें सुधार करें। ''फोनेटिक्स'' का शिक्षण लिए हुए अध्यापक छात्रों की बोलने की भाषा को सुधार कर सही और अच्छा बना सकता है। धीरे-धीरे सभी छात्रों में भाषा (हिन्दी और अंग्रेजी) को धारावाहिक बोलने की क्षमता पैदा होगी।

एक शिक्षक के लिए चार या पांच कक्षाओं के 30-30 छात्रों की उत्तर पुस्तिकाओ का गृहकार्य जांचना, सुधारना और कार्यक्रमानुसार अनुसरण को कार्यान्वित करना मुश्किल होता है। ऐसी परिस्थिति मे गृहकार्यो को सुचारू रूप से जांचने के लिए गृहकार्य निरीक्षक की व्यवस्था की जाए। गृहकार्य निरीक्षक विषय को पढ़ाने वाले आध्यापकों के दिए गए गृहकार्यो को सुचारू रूप से जांचेगे, समझेगे,

कार्यक्रमानुसार अनुसरण पर ध्यान देगे और अध्यापको के शिक्षण का मूल्यांकन करके उन्हे सुझाव देगे जिससे छात्रों के अधिगम और लिखित कार्यो मे प्रगति होगी।

अध्यापकों को विद्यालय मे शैक्षणिक कार्यो को करने का वेतन मिलता है, इसलिए स्कूल के समय में अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को विद्यार्थी केन्द्रित बनाए, उसे आनंदमय बनाए और नवीन शिक्षण विधियो द्वारा नया ज्ञान सम्प्रेषित करे। इतना ही नहीं सह शैक्षिक गतिविधियो में प्रतिस्पर्द्धा की पवित्र मनोदशा का विकास करते हुए संभागित्व के लिए इन्हें प्रोत्साहित करे। अध्यापक अपनी ईमानदारी और लगन से कार्य करे तो स्कूल के समय में व्यस्त रहता है।

पढ़ाई मे कमजोर छात्रो को स्कूल के बाद शाम को अतिरिक्त शिक्षण देने के लिए विषय अध्यापकों से अनुरोध किया जाए लेकिन इस कार्य के लिए उन्हे पारिश्रमिक मिलना चाहिए। अगर स्कूल के दस या पंद्रह छात्र शाम को पुस्तकालय का प्रयोग करना चाहें तो पुस्तकालयाध्यक्ष को शाम के समय पुस्तकालय खोलकर छात्रों की सहायता करनी चाहिए लेकिन इस अतिरिक्त कार्य के लिए उसे पारिश्रमिक मिलना चाहिए। इसी प्रकार कोई भी अध्यापक छात्रो को अतिरिक्त समय देकर उनकी प्रतिभाओं को निखारने में मदद करता है तो विद्यालय का कर्तव्य बनता है कि ऐसे अध्यापकों को पारिश्रमिक दे जैसे कि एन.सी.सी. अधिकारी को महीने के 75 रु मिलते हैं। अध्यापको को पारिश्रमिक मिलेगा तो वे खुशी-खुशी अपना काम मन लगाकर शौक से करेगे और छात्रों में अपेक्षित प्रगति होगी।

अध्यापक विद्यालय में उपलब्ध ससाधनो का उपयोग करें। वे अधिक संलग्नता, स्वनिर्णय और स्वविवेक से पढ़ाई, खेलकूद, समाज सेवा, साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक गतिविधियों में अग्रणी रहे और संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार से उत्तम परीक्षा परिणाम दें।

अधिकतर देखा गया है कि छात्र किताबें पढ़कर ज्ञानी हो जाते हैं लेकिन उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी भाषा बोलने मे कठिनाई महसूस होती है। विद्यालय में भाषा प्रयोगशाला होनी चाहिए जिसमे छात्रों को भाषा बोलने का शिक्षण दिया जाए। छात्र टेपरिकॉर्डर में भाषा सम्बन्धी 'टेपो' को सुनकर बोलने का अभ्यास करे। इसके पश्चात् अपनी आवाज को टेपरिकॉर्डर में टेप करके सुनें और उसमे सुधार करें। "फोनेटिक्स" का शिक्षण लिए हुए अध्यापक छात्रों की बोलने की भाषा को सुधार कर सही और अच्छा बना सकता है। धीरे-धीरे सभी छात्रों मे भाषा (हिन्दी और अंग्रेजी) को धारावाहिक बोलने की क्षमता पैदा होगी।

प्राचार्य अध्यापकों के शिक्षण को प्रत्येक दिन और प्रत्येक कालांश में देख नहीं सकता। विद्यालय द्वारा प्रत्येक कक्षा में एक लाउडस्पीकर लगा दिया जाए और उसका सबध प्राचार्य के कमरे मे लगा दिया जाए। प्राचार्य प्रत्येक कालाश मे चाहे तो बटन दबाकर किसी कक्षा मे पढ़ाते अध्यापक की पढाने की आवाज सुन सके। इस प्रकार की व्यवस्था से प्राचार्य अध्यापकों के शिक्षण कार्य और स्कूल में होने वाले शिक्षण पर अकुश रख सकता है। खाली कालाश का ध्यान भी रख सकता है। सभी अध्यापकों के पास कालांशानुसार पाठ्यक्रम है तो उसे अपने कार्य को सही समय में समाप्त करना है। प्राचार्य अपने सभी अध्यापको के निर्धारित शिक्षण कार्यो को सपुरवाइज कर सकता है। सभी कक्षाओ के सभी विषयों की गृहकार्य कॉपियो को भी सुपरवाइज करना चाहिए।

उप-प्राचार्य, प्राचार्य को इस काम मे सहायता दे सकता है। सभी अध्यापक अपना-अपना कार्य ईमानदारी, लगन और परिश्रम से करें तो विद्यालय प्रभावशाली साधन बनेगा। बोर्ड की परिक्षाओं के परिणामों मे संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही प्रकार की प्रगति अवश्य होगी।

शिक्षक अगर निर्धारित कार्यो को निर्धारित समय पर प्राथमिकता से पूर्ण कर ले तो शिक्षा की गुणवत्ता का आधा लक्ष्य स्वतः ही पूरा हो सकता है। विद्यालय भी समाज का एक रूप है और समाज में जितना काम आपसी समझ और परम्परा से होता है उतना आदेशो और निर्देशों से नही। अतः उन्हें किसी भी हालत मे किसी भी कालांश में किसी भी कक्षा को खाली नहीं रहने देना चाहिए। इसे उन्हें नौकरी का नही अपितु नैतिकता का दायित्व मानना चाहिए। विद्यालय में अध्यापक स्वतः

आदर्श व चरित्र का प्रदर्शन कर छात्रों के समक्ष स्वस्थ परम्परा का निर्माण कर सकते हैं।

स्कूल की सभी सहशैक्षिक गतिविधियों को आयोजित करने के लिए शिक्षक प्रभारी छात्रो को दिशा-निर्देश देकर और छात्रो के द्वारा ही सभी गतिविधियां आयोजित की जाएं। यहां तक कि वार्षिक उत्सव और वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिताएं भी छात्रों के द्वारा ही आयोजित की जाएं। खासकर प्रार्थना सभा की व्यवस्था, राष्ट्रीय पर्वो और अन्य पर्वो को मनाने की व्यवस्था का आयोजन छात्र ही करें जिससे उन्हें दुनियादारी के कार्यो को करने का अनुभव प्राप्त हो।

स्कूल में अनुशासन कायम करने के लिए छात्रों की एक अनुशासन समिति बनाई जाए, जिसका प्रभारी वरिष्ठ छात्र हो और इस समिति के सदस्य छात्र और छात्राएं हों। यह समिति अनुशासनहीन छात्रो को निर्धारित सजा दे, जिससे विद्यालय में अनुशासन बना रहे।

सहशैक्षिक गतिविधियों मे ज्यादा से ज्यादा छात्रो को भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए। अधिकतर देखा गया है कि कुछ प्रतिभाशाली छात्र ही सभी गतिविधियो मे भाग लेकर आधे से ज्यादा पुरस्कार जीत लेते है। पूरे विद्यालय के छात्रो को पांच हाउसों मे बांट देना चाहिए। प्रत्येक छात्र को तीन प्रतिस्पर्धाओ मे भाग लेने का अधिकार दिया जाए। हाउसों की प्रतियोगिताओ मे प्रथम आने वाले छात्रों की सहायता से वार्षिक उत्सव मनाने में सुविधा भी होगी। इस प्राकर सभी छात्रो को सहपाठ्यगामी गतिविधियों और शारीरिक खेलकूद में भाग लेने का अवसर मिलेगा।

सभी छात्रों को स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिलता है लेकिन हाथों से कार्य करने का मौका कम मिलता है। समाजोपयोगी कार्य के कालाश में सभी छात्रों को कला कौशल की वस्तुओं के निर्माण के साथ-साथ छोटे से छोटा काम जैसे झाडू लगाना भी सिखाना चाहिए। विद्यालय एक परिवार के समान है और यहा पर छात्रों को सभी प्रकार के अनुभवो का शिक्षण दिया जाए। विद्यालय की सभी प्रयोगशालाओं मे भी सभी छात्रों को सीखने का अवसर मिलना चाहिए।

विद्यालय में 'स्वीमिंग पूल' हो तो सभी छात्रों को तैरना सिखाया जाए। तैरना सीखने के बाद तैरने की प्रतियोगिताओं को आयोजित किया जाए। विद्यालय में समिति हॉल की सुविधा हो तो सभी छात्रों को सामाजिक, ऐतिहासिक और ज्ञानवर्धक फिल्मे दिखाई जाएं। ड्रामा, संगीत और सामुहिक नृत्यो का प्रदर्शन किया जाए।

एडवैन्चर क्लब के अतर्गत ट्रेकिंग, साईकिलिंग और केम्पिग का आयोजन किया जाए जिससे उनमे टीम भावना, एकता और सहायता की भावना का विकास हो। सभी स्कूलों में मेला लगा कर और स्कूल में हथकरघा और वास्तुकला की प्रदर्शनी लगाकर सभी छात्रो को खरीदने और बेचने के अवसर मिलेगे। छात्रो को नौकरी के अलावा दूसर व्यापार और औद्योगिक धंधो मे दिलचस्पी होने लगेगी।

छात्रों को स्काउट्स, ग्राम सर्वेक्षण, श्रमदान, छात्रशाला शासन, शाला प्रजातत्र आदि के द्वारा उत्तरदायित्व और कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ाया जा सकता है। प्रोत्साहन, पारितोषिक, सम्मान आदि के द्वारा छात्रो का चारित्रिक और नैतिक विकास किया जा सकता है।

विद्यार्थियो और अध्यापकों के मध्य अभिभावक एक सेतु है। अतः शिक्षा की गुणवत्ता के लिए अध्यापको और अभिभावकों के बीच सहज सकारात्मक संवाद निरन्तर जारी रहना चाहिए। शिक्षको को समय-समय पर छात्रों के घर जाकर उनकी शैक्षिक प्रगति से अवगत कराना चाहिए। बालकों संबधी जिन विशिष्ट सुविधाओ, देखरेख, सहयोग की अपेक्षा है इससे उन्हे अवगत कराना चाहिए जिससे वे अपने बालको के सर्वागीण विकास में सहायक हो सकें।

वास्तव मे विद्यालय के वातावरण मे बालको को जीवन के विभिन्न जटिल अनुभव एक अनुक्रमित एवं व्यवस्थित रूप मे प्राप्त होते है। ज्ञान प्राप्ति के साधनों का ज्ञान, जिनमें लिखना, पढ़ना आदि सम्मिलित हैं, व्यावसायिक कौशल, विभिन्न विषयों संबंधी ज्ञान ऐसे विशिष्ट अनुभव है, जो बिना विद्यालय के सीखे नहीं जा सकते। विद्यालय में शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षक, अभिभावक, विद्यार्थी और समाज की भूमिका के अलावा विद्यालयी वातावरण, पाठ्यक्रम, परिवीक्षण और मूल्यांकन

पर निर्भर करती है। विद्यालयी वातावरण सुन्दर एव सौम्य होने के साथ-साथ साधन, सुविधायुक्त हो। पाठ्यक्रम आनन्दमयी और रोचक हो और उसे सीखने मे विद्यार्थियो को आनन्द आए। अन्त मे राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मशा के अनुसार यही कहा जा सकता है– "सभी शिक्षक पढ़ाए और सभी विद्यार्थी पढे।"

परिवर्तन के प्रक्रम मे अभिज्ञता, रुचि, मूल्यांकन, जाच और स्वीकरन का शामिल होना आवश्यक है। अगर प्राचार्य और सभी अध्यापक सजग है और स्कूल की सूक्ष्म क्रियाओ का लगातार ध्यान रखते है तो नवीन प्रक्रियाओ के द्वारा स्कूल को श्रेष्ठ बना सकते है। अधिकतर साधारण स्कूलों को चलाने वाले प्राचार्य समझते हैं कि विद्यालय तो चलती का नाम गाडी है लेकिन इस गाड़ी की रफ्तार को तेज करने के लिए तथा उसमे सुख-सुविधाओ को बढ़ाने के लिए नवीन प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार प्रगति और कार्यों में श्रेष्ठता पैदा करने के लिए नवीन प्रक्रियाओ को प्रयोग किया जाए। हमें विद्यालय को प्रभावशाली साधन बनाने के लिए और उसकी उन्नति के लिए विद्यालय के सभी सदस्यो और नवीन प्रक्रियाओ की सहायता लेनी चाहिए। ❑❑

68, गोल्फ कोर्स स्कीम
जोधपुर, राजस्थान

बाल्मीकि रामायण में निहित शिक्षा का स्वरूप

❑ **आर. पी. पाठक**

रामायण किसी भी युग और किसी भी देश के साहित्य को ललकार सकती है, जो श्रीराम अथवा सीता के समान सर्वागीण चरित्रों या पात्रों पर गर्व कर सके। संसार के किसी भी ग्रन्थ मे काव्य और नैतिकता का इतना सुन्दर सम्मिश्रण नहीं हुआ है, जितना इस पवित्र काव्य मे। रामायण में श्रीराम के जीवन को आधार बनाकर मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक सभी व्यवहारणीय आदर्शो का ज्ञान प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षा गति अथवा परिवर्तन के नियमो में आबद्ध होती हुई भी सदैव प्रासंगिक रही है। रामायण महाकाव्य में शिक्षा के सबध में स्फुट विचारो की प्राप्ति होती है।

अयोध्या नगरी के वैशिष्ट्य का वर्णन करते हुए महर्षि बाल्मीकि ने अयोध्यावासियों को धन-धान्य से परिपूर्ण और शिक्षित बताया है। अयोध्या में परिपूर्ण शिक्षा अथवा सम्पूर्ण साक्षरता की अद्यतनी परिकल्पना साकार हुई प्रतीत होती है। चतुर्थ सर्ग के उल्लेखानुसार– अयोध्यापुरी में कोई भी मनुष्य कामी, कंजूस, निर्दयी, मूर्ख और नास्तिक न था, और न ही कोई व्यक्ति असत्यवादी, अल्पश्रुत, परनिन्दा प्रिय, असमर्थ और अशिक्षित था।

नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः।
ना सूयको न चाशक्तों नाविद्वान्विधते क्वचित्।।
कामी वा न कदर्यो वा नृशंस पुरुपः क्वचित्।
दृष्टु शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।।

अयोध्या के वर्णन से ज्ञात होता है कि ज्ञानी ब्राह्मणो को समाज में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। प्रशासनाधिकारी

क्षत्रियगण ब्राह्मणो से विचार-विमर्श करते थे और उन्हीं के अनुकूल व्यवहार करते थे। अत·एव ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ एवं वामदेव राज्य के प्रधान ऋत्विज् थे। अन्य ऋषि-मुनियो व आचार्यो को भी मन्त्री का पद प्राप्त था।

तत्कालीन अध्ययन व्यवस्था पर दृष्टिपात् करने पर ज्ञात होता है कि वेदो का अध्ययन अनिवार्य था। छात्र ऋषियों के आश्रमों में शास्त्रों का अभ्यास करते थे। शास्त्रज्ञान के साथ-साथ व्यवहार कौशल एव आचार संबधी ज्ञान भी प्रदान किया जाता था। शस्त्रविद्या का शिक्षण एवं अभ्यास भी आचार्यो (ऋषियों) के आश्रमों में ही होता था। कुछ रहस्यात्मक विधाओं अथवा यौगिक क्रियाओं का प्रशिक्षण भी ऋषि-मुनियों द्वारा आश्रमों में दिया जाता था। रामायण में ऋषि विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को बला, अतिबला नामक विद्याओ को प्रदान किए जाने का वर्णन है, जिसके प्रशिक्षण के पश्चात् भूख प्यास से व्यथित न होना, थकावट न होना आदि लाभ कहे गए हैं।

शिक्षा गति अथवा परिवर्तन के नियमों में आबद्ध होती हुई भी सदैव प्रासंगिक रही है। रामायण महाकाव्य में शिक्षा के संबंध में स्फुट विचारों की प्राप्ति होती है।

रामादि चारों राजकुमारो की शिक्षा दीक्षा तथा बाल्यकाल का वर्णन करते हुए उन्हें वेदविद् शूरवीर, परोपकारी तथा सर्वगुण सम्पन्न कहा गया है–

सर्वे वेदविद· शूरा· सर्वे लोकहिते रताः ।
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ।।
ते यदा ज्ञान सम्पन्ना सर्वे समुदिता गुणैः।
हीमन्त कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः ।।

लक्ष्मण एव शत्रुघ्न को 'सर्वास्त्रकुशलौ' कहकर उनकी शस्त्रविद्या कुशलता को प्रदर्शित किया गया है। आचार्यो के आश्रमो में संगीत विद्या का प्रशिक्षण भी प्रचलित था। उत्तर रामचरित में बाल्मीकि द्वारा लव, कुश को रामायण गान के निर्देश तथा सज्जा से यह बात परिपुष्ट हो जाती है। रामायण में शस्त्रविद्या, रथसंचालन, नृत्य, संगीत, वेदांत, कल्पसूत्र ब्रह्मज्ञान, योगादि विधाओं के प्रशिक्षण के पर्याप्त संकेत उपलब्ध होते है। सैन्य शिक्षा के कौशलो का अनेकत्र वर्णन है।

रामायण में नारी सम्मान तथा नारी शिक्षा का स्पष्टतः कोई वर्णन उपलब्ध नहीं होता, पुनरपि रामायण के स्त्री चरित्रों को जिस भांति निरूपित किया गया है उससे आभास होता है कि नारी को अध्ययन शिक्षा दीक्षा की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। सीता का राम के वन गमन प्रसंग मे राम से वन जाने की अनुमति के लिए तर्क देना तथा अन्याय प्रसंगों मे व्यवहार कौशल का परिचय देते हुए आचार धर्म की व्याख्या करने से प्रतीत होता है, उन्हें उच्चकोटि की आचार शिक्षा प्राप्त थी।

राजकुल की स्त्रियां (कन्याए) युद्ध विद्या तथा सैन्य संचालन का प्रशिक्षण प्राप्त करती थीं। आवश्यकता पड़ने पर सैन्य संचालन का कार्य भी सम्पादित करती थीं। कैकेयी के रथचालन एव वर याचना की कथा अत्यंत विश्रुत है। इस प्रसग को स्मरण कराते हुए स्वयं कैकेयी ने दशरथ से कहा था– देवासुर संग्राम में शत्रु ने तुम्हें पराक्रमहीन कर दिया था और आप मृतप्राय हो गए थे, उस समय आपकी प्राणरक्षा के लिए सारथी बनकर यत्न किया था, मेरे द्वारा रक्षित हुए होश में आने पर आपने मुझे दो वर दिए थे। कैकेयी का युद्धार्थ जाना तथा रथ संचालन करना इत्यादि से स्पष्ट होता है कि नारी को शिक्षा, शस्त्र-सचालन तथा परिपूर्ण स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त था। सीता के पाणिग्रहण के अवसर पर सीता को 'सहधर्मिणी' 'सहधर्मचरी' कहकर नारी के सामाजिक सम्मान को प्रकट किया गया है। कन्याओं को विवाहादि के अवसरों पर ज्येष्ठा कुलस्त्रियों अथवा माताओं द्वारा आचार व्यवहार की शिक्षा दिए जाने का वर्णन है। कन्याओं को आचरणीय व्यवहारों की शिक्षा अध्ययन काल मे भी दी जाती थी।

नैतदाश्चर्यमार्यायाः यन्मां त्वमनुभाषसे।
विदित तु ममाप्येतद् यथानार्या पतिर्गुरुः।।

इस प्रकार रामायण महाकाव्य में पाठयक्रम के विभिन्न विभागो को प्रदर्शित किया गया है। रामायण महाकाव्य महिलाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण का पूर्ण समर्थन करता हुआ दिखाई देता है।

रामायण में शिक्षा के अंतर्गत जहां शस्त्रास्त्रों सहित संपूर्ण ज्ञान विज्ञान को ग्रहण किया गया है, वहीं शिक्षा शब्द का अत्यंत संकुचित अर्थो मे प्रयोग करते हुए उसे 'युद्ध कौशल' मात्र के अर्थ का निदर्शक बताया गया है। मारीच और सुबाहु राक्षसों को युद्धनिपुण होने से 'सुशिक्षितौ' कहा गया है।

इस काल में शिक्षा के लिए 'गुरुकुल शिक्षा प्रणाली' का प्रचलन था। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में शिक्षा की व्यवस्था होती थी। आश्रम ही शिक्षा के केन्द्र थे। यहां शस्त्रास्त्रो सहित शास्त्रों का अभ्यास कराया जाता था।

आश्रमो का वातावरण शांत तथा प्राकृतिक होता था। ज्यादातर आश्रम निर्जन वन मे होते थे। इन वर्णनों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहा प्रकृतिवादी शिक्षाविद् रूसो की 'प्रकृति की ओर लौटो' उद्घोषणा को मूर्तरूप दिया गया था। आश्रम रमणीक स्थलो में निर्मित थे। सभी प्राचीन आचार्य शिक्षण केन्द्रों को नगर-ग्राम से दूर रखने के पक्ष मे हैं। इन आश्रमो मे निर्धन-धनी, राजा-रंक सभी के लिए समान शिक्षा, समान व्यवस्था तथा नियमो का विधान था, शायद यही शिक्षा व्यापक होकर राष्ट्रीय एकता की पोषिका सिद्ध होती थी। ❑❑

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
कटवारिया सराय, नई दिल्ली

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन का महत्व

❑ कृष्णानन्द मणि त्रिपाठी

मानव जीवन समस्याओ की ऐसी शृंखला है जिसमें वह वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से फंसा रहता है। वह प्रायः अपने को इन समस्याओं से मुक्त करने में असमर्थ पाता है। इसके साथ ही साथ आधुनिक युग मे हुई वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप औद्योगिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। जिससे मानव अपनी सभ्यता और संस्कृति की पुरानी केचुली को त्यागकर नवीन सिद्धान्तो एवं मूल्यों का चोगा पहनने का तेजी से प्रयास कर रहा है। मानव जीवन की परिधि बड़ी व्यापक होती जा रही है, परिधि की व्यापकता के कारण व्यक्ति की समस्याएं भी बहुमुखी होती जा रही हैं। मानव इन विविध प्रकार की समस्याओ के समाधान में सक्षम नही है, अतः निर्देशन की सहायता की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक ही है। अतः निर्देशन एक प्रकार की सहायता है जो मानव या व्यक्ति को विविध समस्याओं के मजबूत पंजों से छुड़ाने का प्रयास करती है। हम सभी समायोजित एवं सुखद जीवन व्यतीत करना चाहते हैं इसलिए समस्याओं के बीच से मार्ग निकालना आवश्यक है।

प्रारम्भ से यदि शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को जीवन मे घटित होने वाली समस्याओं का दिग्दर्शन करा दिया जाए एवं कंटकमय मार्गों से निकलने के उपायो की सूझ उत्पन्न कर दी जाए तो वह समस्याओ के साथ समझौता करने तथा उनके निदान की कला को जान जाएगा। यह कला उसे समस्याओं के साथ अभियोजन स्थापित करने तथा जीवन की राह निकालने में सहायक सिद्ध हो सकती है। वर्तमान समय में जीवन का सबसे बड़ा सुख समायोजन ही है। किन्तु जहां एक ओर व्यक्तिगत भिन्नताएं हैं वहीं दूसरी तरफ वातावरणीय विभिन्नताएं

निर्देशन कार्यक्रमों को शैक्षिक क्षेत्रों में चलाने का अपना अलग ही महत्व है, क्योंकि दो बालकों के मानसिक एवं व्यक्तित्व गुणों में समानता नहीं होती, ठीक उसी प्रकार विभिन्न शिक्षण विषयों के लिए भिन्न प्रकार की योग्यता, रुचि, स्वभाव, प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता होती है। अधिकांश शिक्षार्थी इस बात को नहीं समझते, शिक्षार्थी ही क्यों बहुत से माता-पिता व शिक्षक भी इस तथ्य से अनभिज्ञ होते हैं।

भी हैं। इन्हीं वातावरणीय विभिन्नताओ के साथ व्यक्ति को स्वयं को समायोजित करना होता है। वातावरण को बदलना सम्भव नहीं है, किन्तु बदलते हुए वातावरण के अनुसार मनुष्य स्वंय को न बदल पाए तो समायोजन एवं अन्ततः सुख सम्भव नही है। इसका निर्णय व्यक्ति को स्वयं ही लेना पड़ेगा। परन्तु व्यक्ति की महत्वाकांक्षाएं उसकी क्षमताओं एवं योग्यताओं को भुला देती है। परिणामतः व्यक्ति उस समय तक सही निर्णय नही ले पाता जब तक कि वह स्वयं की क्षमताओं एवं योग्यताओं तथा वातावरणीय जटिलताओ को न समझे। व्यक्ति इन जटिलताओं को शिक्षा के माध्यम से दूर करने का प्रयास करता है। समय के आवर्त से शिक्षा का स्वरूप एव उद्देश्य सदैव परिवर्तित होता रहा है। आज की शिक्षा पहले की तुलना में ज्ञान केन्द्रित न होकर बाल केन्द्रित हो गई है जिससे बालक का सर्वांगीण विकास हो सके तथा वह अपने कल्याण के साथ-साथ सामाजिक कल्याण कर सके। इसी लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाधीजी ने वर्धा सम्मेलन में कहा था कि शिक्षित व्यक्ति वह नही जो शिक्षा को मात्र अपनी रोजी-रोटी एवं आत्मकल्याण का साधन बनाता है, बल्कि सही अर्थो में शिक्षित वह है जो स्वच्छ मन से जनकल्याण करके ईश्वर को पा लेता है। वास्तव में निर्देशन, शिक्षा से कोई भिन्न प्रक्रिया नहीं है वरन् शिक्षा प्रक्रिया का एक अविच्छिन्न तथा महत्वपूर्ण अंग है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन

मानव जीवन के विभिन्न पक्षों के सर्वांगीण विकास में शिक्षा एवं निर्देशन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिक्षा की दृष्टि से प्रमुख बात यह है कि बालक को इस दृष्टि से सक्षम बनाना होता है कि वह शैक्षिक परिस्थितियो से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझा सके। क्योकि इसके बिना उद्देश्यो की प्राप्ति कर पाना सम्भव नहीं है। यहां पर निर्देशन की आवश्यकता, विकल्पों के वरण के समय, शैक्षिक उपलब्धियो मे अपेक्षित प्रगति न कर सकने के समय तथा अवांछनीय आदतें बन जाने पर या समायोजन में कठिनाई आने पर महसूस की जाती है। अतः छात्रों की उचित प्रगति के लिए विद्यालय में विभिन्न स्तरो पर शैक्षिक निर्देशन एक अनुपेक्षणीय आवश्यकता है।

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन की अधिक आवश्यकता होती है क्योकि बालक अपने घर को छोड़कर नवीन वातावरण मे प्रवेश करते है। चूकि ये घर पर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत किए रहते हैं परन्तु विद्यालयी जीवन अधिशासित होता है। यहां पर स्वतन्त्रता के साथ-साथ कुछ प्रतिबध भी होते हैं। बालकों को निश्चित समय पर पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम करने पडते हैं। यह एक ऐसा स्तर होता है जब बालक के प्रत्येक व्यवहार एवं प्रत्येक जिज्ञासा का ध्यान रखा जाना चाहिए। बालकों के प्रति अनपेक्षित कठोर व्यवहार उनमें स्थायी रूप से भय का संचार कर सकता है। उनके प्रति उपेक्षा का भाव उन्हे अनेक प्रकार के दुराभासों का शिकार बना सकता है तथा वे कुसमायोजन के शिकार हो सकते हैं। प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की भूमिका इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण होती है। इस स्तर पर निर्देशन प्रदान करने का दायित्व माता-पिता एवं शिक्षक पर ही होता है। वैसे इस स्तर पर चूंकि बालक में बौद्धिक परिपक्वता का अभाव होता है इस दृष्टि से निर्देशन बहुत प्रभावकारी सिद्ध नहीं होता क्योकि बच्चो की समस्याए शारीरिक एवं व्यवहारगत अधिक होती हैं बुद्धि या मनःगत कम। अतः प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन का स्वरूप

मुख्य रूप से बच्चो की शारीरिक सफाई, उनमें अच्छी आदतो का निर्माण, पढ़ाई के प्रति आकर्षण पैदा करना, बीच मे पढ़ाई न छोड़ देना, अन्य बालकों के साथ मिलकर रहना, माता-पिता, गुरु एवं बड़ों का आदर करना आदि के सम्बन्ध मे निर्देशन दिया जा सकता है। अतः यहां शैक्षिक निर्देशन का न्यूनतम् कार्यक्रम यह होना चाहिए–

- इस बात का पता लगाना कि यदि बच्चे गन्दे रहते हैं तो क्यो?
- पढना नही चाहते तो उसके क्या कारण हैं आर्थिक या अन्य कोई।
- यदि बीच में पढ़ाई छोड़ दी तो क्यो?
- झगडे की आदत पड़ गई है या दूसरे बच्चों के साथ मिलकर नहीं रह सकते तो उसके क्या कारण है?
- कक्षा में पलायन एवं संकोचशीलता की समस्या क्यों?

उपरोक्त का पता लगाकर बालकों को समझाना कि गन्दे रहन-सहन से क्या हानि है, पढना किस प्रकार लाभदायक है, सहयोग से क्या लाभ होते हैं आदि पर निर्देशन किया जा सकता है। इस स्तर पर बालकों में सृजनात्मक कार्यो की तरफ भी निर्देशन होना चाहिए क्योंकि इस आयु के बच्चो मे कोई न कोई कार्य करने की प्रवृति पाई जाती है किन्तु उनको यह ज्ञात नहीं रहता है कि यह कार्य विध्वंसात्मक होगा या रचनात्मक। अत शैक्षिक निर्देशन की सहायता से बालक की इस प्रवृति को रचनात्मक कार्यो की ओर मोड़ा जा सकता है। यथार्थतः इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम बच्चो के साथ-साथ उनके मां-बाप की विचारधारा में वांछित परिवर्तन लाने की दृष्टि से भी चलाया जा सकता है।

माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन

इस स्तर पर निर्देशन सबसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकता है क्योंकि यही वह स्तर है जहां भावी जीवन की आधारशिला रखी जाती है। इसी स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमो का चयन आदि करना होता है जो आगे तक चलता रहता है। साथ ही इस स्तर तक पहुंचते-पहुंचते अधिकांश बालक किशोरावस्था मे प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे मे शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते है जिससे बालक के विचारों में उथल-पुथल मची रहती है। अत इस स्तर पर निर्देशन की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है। किशोर अन्याय को सहन नहीं कर पाता वह इसके लिए अपनी जान की भी परवाह नहीं करता है। ऐसी परिस्थिति मे संवेगो को स्थिर रखने के लिए निर्देशन की महती आवश्यकता है। इस स्तर पर विषयो के चयन की समस्या, आयु के प्रभाव से पनपी मानसिक अस्थिरता की समस्या, योनि विकास के कारण उत्पन्न समस्याएं आदि के संबंध मे निर्देशन दिया जा सकता है। इस स्तर पर शैक्षिक निर्देशन का न्यूनतम कार्यक्रम होगा–

- विद्यार्थियो की शैक्षिक समस्याओ का पता लगाना एवं उनके समाधान के विकल्पों को विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करना।
- विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमो से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना, कहा तथा किस प्रकार की शैक्षिक सुविधाए उपलब्ध हैं तथा उनका व्यय क्या है आदि से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
- गरीब एव होनहार विद्यार्थियों के लिए सरकार या विभिन्न सस्थानों द्वारा दी जाने वाली सहायता के विषय मे विद्यार्थियो को जानकारी देना।
- विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रय की न्यूनतम आवश्यकताओ, अर्हताओं आदि के विषय में सूचना प्रदान करना।
- विद्यार्थियों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद करना।

उच्च स्तर पर शैक्षिक निर्देशन

इस स्तर पर निर्देशन अधिक प्रभावी हो सकता है क्योंकि विद्यार्थियों में बौद्धिक प्रखरता तीव्र होती है। परन्तु इसके साथ ही साथ उनमें आत्मसम्मान की भावना बहुत अधिक पनप जाती है। अतः वे दूसरों की सीख या सलाह से उस समय तक काम लेना पसन्द नहीं करते, जब तक कि वे किसी बहुत बड़ी परेशानी मे न फस जाए। उच्च स्तर पर शैक्षिक समस्याएं बहुत हद तक व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत आ जाती हैं इसलिए कि उनका

स्वरूप शुद्ध रूप से शैक्षिक नहीं रहता है। इस स्तर पर विद्यार्थियों के सम्मुख आए दिन होने वाली हड़तालों की समस्या, भावात्मक एकता के अभाव की समस्या, जीवन मूल्यों में बदलाव की समस्या, योनिगत आधार पर उपजी समस्याएं आदि के सम्बन्ध मे निर्देशन दिया जा सकता है। इस स्तर पर निर्देशन का न्यूनतम कार्यक्रम इस प्रकार रखा जा सकता है–

- सगोष्ठियो, सम्मेलनों, कार्यशालाओं के माध्यम से छात्रो को अभिव्यक्ति का खुला अवसर देना।
- शोध द्वारा विद्यार्थियो के वर्तमान जीवन मूल्यों तथा बदलते हुए मूल्यों और उनके बदलाव के कारणों को समाधानित करते हुए उनके सम्मुख रखना।
- उच्च अध्ययन के क्षेत्रों, अवसरों, उपलब्ध उच्च स्तरीय साहित्यो आदि के सम्बध मे निर्देशन दिया जा सकता है।
- विद्यार्थियो को उनकी स्थितियों से अवगत कराकर सोचने का अवसर उत्पन्न करने मे निर्देशन हो सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विचारो पर यदि सम्यक् दृष्टिपात करे तो हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि निर्देशन कार्यक्रमों को शैक्षिक क्षेत्रो में चलाने का अपना अलग ही महत्व है क्योकि दो बालकों के मानसिक एवं व्यक्तित्व गुणो मे समानता नही होती, ठीक उसी प्रकार विभिन्न शिक्षण विषयो के लिए भिन्न प्रकार की योग्यता, रुचि, स्वभाव, प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता होती है। अधिकांश शिक्षार्थी इस बात को नही समझते, शिक्षार्थी ही क्यों बहुत से माता-पिता एवं शिक्षक भी इस तथ्य से अनभिज्ञ होते हैं। लिहाजा होता यह है कि विद्यार्थी एवं अभिभावक किन्हीं सफल व्यक्तियो को आदर्श मानकर अपनी क्षमताओ एवं रुचि के विपरीत देखा-देखी विषयों का चयन कर लेते हैं और बाद मे दुखी होते है। ऐसे विद्यार्थियों को जो विषयों का चयन विवेकपूर्ण ढग से अपने गुणों एवं सीमाओं को पहचाने बिना करने के लिए विवश होते हैं उन्हें निर्देशन दिया जाना चाहिए। जिससे कि उनकी प्रतिभाओं का समाज एवं राष्ट्र अधिकतम उपयोग कर सके या राष्ट्र को अपना प्रबल योगदान प्रदान कर सके। अतः निर्देशन केवल शैक्षिक क्षेत्रों में ही नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए। जैसे भी हो हमें इस कार्यक्रम को चलाना चाहिए। यदि धनाभाव या अन्य कारणों से इसे औपचारिक रूप में न चलाया जा सके तो अनौपचारिक रूप मे ही चलाया जाना चाहिए। प्राचीन काल में निर्देशन कार्यक्रम अपने यहां चलाया ही जाता था। भगवान कृष्ण ने महाभारत से पूर्व अर्जुन को जो कुछ भी कहा वह एक प्रकार से निर्देशन ही था। अपने यहा धर्मशास्त्रों में इसका काफी उल्लेख मिलता है। और सच भी यही है कि जीवन की समस्याओं को सही रूप से सुलझाने का यदि कोई तरीका हो सकता है तो वह केवल निर्देशन ही हो सकता है। तो आइए इस संगोष्ठी मे यह संकल्प लें कि अपने अनुभवो एंव योग्यताओं के आधार पर अपने विद्यार्थियों एवं समाज के व्यक्तियो को निर्देशन देने का कार्य करेंगे। ❑❑

तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर
उत्तर प्रदेश

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष : 28 अक 4 अक्तूबर 2003

इस अंक में

जीवन-मूल्यों के विकास की प्रथम पाठशाला बच्चे का परिवार

□ आशा शर्मा

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के इस युग मे जहां एक ओर ज्ञानात्मक विकास की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तित्व के भावनात्मक पक्ष का हनन भी बहुत तेजी के साथ हुआ है। दूसरे शब्दो मे यदि कहा जाए तो बढ़ते अग्रेजी व कम्प्यूटर के प्रभाव के कारण एक ओर व्यक्तित्व का बाह्य पक्ष जिस तेजी के साथ जन सामान्य की दृष्टि मे आकर्षण का केन्द्र बना है, वही दूसरी ओर व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष विकास के मानदण्ड से कही ओझल होता हुआ दिखाई देता है।

एकाकी परिवार की प्रचलित सकल्पना भी वर्तमान मे इसका प्रमुख कारण है, जहा पर रहकर बच्चा मानवीय सम्बन्धो की एक सीमित परिभाषा मे कैद होकर रह जाता है। यही कारण है कि प्रारम्भ से ही व्यापक दृष्टिकोण के स्थान पर मानवीय सम्बन्धो रूपी विचारों की एक सकुचित रूपरेखा उसके मन-मस्तिष्क में उपजने लगती है। यही सकुचन की प्रक्रिया कभी-कभी उसके मानवीय व्यवहार के परिष्कार में अवरोधक का भी कार्य करती है।

बच्चा जब इस संसार में जन्म लेता है तब उसकी समस्त क्रियाएं नैसर्गिक व स्वाभाविक होती हैं परन्तु उसमे निहित आन्तरिक एव बाह्य शक्तियो का परिमार्जन तथा शोधन परिवार से ही प्रारम्भ हो जाता है। प्रारम्भिक तीन वर्षो तक मुख्यत. भावनात्मक और गत्यात्मक क्रियाओं का उपयुक्त विकास ही उसके व्यक्तित्व विकास का आधार स्तम्भ बनता है। अत इन्हीं आधार स्तम्भों पर ही मानवीय जीवन का ढांचा अलग-अलग रूपो में निर्मित होता है। इन आधार स्तम्भों को खड़ा करने में बच्चे के परिवार की अहम् भूमिका होती है, जहा से वह प्रारभिक संस्कार रूपी जीवन-मूल्यो को अपने व्यक्तित्व मे समाहित करता है।

दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची आदि के द्वारा सुनाई जाने वाली तरह-तरह की कहानियों से वह न केवल कल्पना लोक में विचरण करता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप में उसके बालमन में नाना प्रकार के विचार हिलोरे लेने लगते है। कभी वह परियों के कल्पना लोक मे विचरण करता हुआ सुन्दर जगत की कल्पना करता है। कभी जीव-जन्तुओ व पशु-पक्षियो की क्रियाओ को जानकर उसमें तरह-तरह की जिज्ञासाओं का अभ्युदय होता है। इन्ही छोटी-छोटी लघुकथाओं के माध्यम से उसका नाना प्रकार की विभिन्न मानवीय सवेदनाओ या सवेगों से परिचय होने लगता है। अपने माता-पिता एवं भाई-बहनो को देखकर उसमे उन्हीं आदतों का विकास होता है जिनको वे करते हैं।

परिवार का स्वस्थ व सुखद वातावरण बच्चे के न केवल व्यक्तित्व विकास में सहायक बनता है बल्कि उसमें विभिन्न जीवन-मूल्यों का भी विकास करता है, जो उसके सम्पूर्ण जीवन को स्थायित्व व दृढ़ता प्रदान करते हैं। अतः बच्चों में जीवन-मूल्यों के विकास हेतु प्रारम्भ से ही उन्हें अच्छे संस्कार देने का प्रयास किया जाना चाहिए।

मा चूंकि जननी है और मा के सानिध्य में बच्चे का सबसे ज्यादा समय व्यतीत होता है। इसलिए बालक के व्यक्तित्व निर्माण में सस्कार रूपी बीजारोपण का कार्य सर्वप्रथम मां ही करती है। इसलिए मां को सर्वप्रथम सुशिक्षित और सुसंस्कृत होना अनिवार्य है तभी वह बच्चे में अच्छी आदतो के विकास के साथ-साथ उन्हे मानवीय व्यवहार को जानने, समझने और क्रियान्वित करने की शिक्षा दे सकती है अर्थात् एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत माता ही स्वस्थ पारिवारिक वातावरण निर्मित कर बच्चे

के व्यक्तित्व का परिष्कार व परिशोधन कर सकती है ताकि भविष्य मे वह एक संगठित व्यक्तित्व वाला नागरिक बन सके।

मां के साथ-साथ पिता के आचार-विचार तथा बुजुर्गो के अनुभवों का लाभ भी बच्चे में जीवन-मूल्यो के विकास में सहायक बनता है। अनेक अध्ययनो से यह दृष्टिगोचर होता है कि जिन बच्चो को अपने माता-पिता का सही मार्गदर्शन एवं नाना-नानी या दादा-दादी के अनुभवो का लाभ तथा सतत् सानिध्य प्राप्त होता है, उनका व्यक्तित्व उन बच्चो की अपेक्षा ज्यादा परिष्कृत पाया गया जिनका पालन-पोषण एकाकी परिवार मे ही हुआ था।

अत' जीवन-मूल्य क्या है? बच्चों मे इन मूल्यो के विकास मे परिवार की क्या भूमिका है? इन महत्वपूर्ण तथ्यों को व्यापक रूप मे जानना व समझना होगा।

जीवन-मूल्य क्या हैं?

मूल्यो का सम्बन्ध किसी 'व्यक्ति' या 'समूह' के व्यवहार से होता है। वही मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करते है और वही उसके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते है। जीवन सम्बन्धी ऐसा व्यवहार व आचरण जो बालक के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त एव विकसित कर सके तथा सामाजिक प्रतिमानो के अनुसार उचित मूल्यो की कसौटी पर परखते हुए मानव कल्याण व मानव एकता मे सहभागी बन सके, जीवन-मूल्यो के अन्तर्गत आता है।

दूसरे शब्दो मे यदि कहा जाए तो जीवन का नियमन और संयम ही मूल्य है। यही व्यक्ति के व्यवहार का नियन्त्रण और मार्गदर्शन करते है। उनमे जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने की क्षमता का विकास करते है। अतः इन्हें जीवन-मूल्य, मानव-मूल्य अथवा जीवन की सस्कार चेतना कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। उन प्रमुख जीवन-मूल्यो को जानना एवं समझना आवश्यक है जो मानव व्यवहार को नियन्त्रित करने के साथ-साथ व्यक्तित्व निर्माण में सहायक बनते है। ये जीवन-मूल्य निम्नांकित है–

☐ अनुशासन	☐ सत्यवाचन
☐ समयपालन	☐ ईमानदारी
☐ कर्तव्यपालन	☐ अहिसा
☐ आत्मनिर्भरता	☐ एकता
☐ आत्मविश्वास	☐ शिष्टाचार
☐ स्वाभिमान	☐ क्रोध न करना
☐ आत्मसंयम	☐ सहिष्णुता
☐ स्वय प्रेरित होकर कार्य करना	☐ निर्भयता
☐ सहयोग की भावना	☐ परोपकार
☐ बड़ो का आदर करना	☐ उत्साह
☐ नि'स्वार्थ भावना	☐ प्रसन्नता
☐ परस्पर पूरकता की भावना	☐ परिश्रम करना

प्रमुख जीवन-मूल्य

जीवन-मूल्यों की आवश्यकता

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस परिवर्तनशील युग मे भौतिकता के बढ़ते प्रवाह के कारण जनमानस की सोच मे बदलाव के साथ-साथ व्यक्तित्व निर्माण के मानदण्ड भी बदल गए है। भौतिक ससाधनो द्वारा सूचना एवं तकनीकी का ज्ञान ही उनके जीवन का अपेक्षित उद्देश्य बन गया है। सामान्यत. उनकी दृष्टि मे यह समय की माग और आवश्यकता है। बालक के चारित्रिक विकास की ओर उनका ध्यान नही है जो कि व्यक्तित्व निर्माण की प्रमुख आधारशिला है। जैसा कि महात्मा गाधी ने कहा था कि ज्ञान चरित्र के बिना मूल्यहीन है। चारित्रिक विकास के बिना बालक गलत व सही में भेद नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि उनमें जीवन पर्यन्त सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास नहीं हो पाता।

आज बालको का बात-बात में झूठ बोलना, अनावश्यक बात पर बहस करना या तर्कहीन बाते करना, गलत चीजो

का सेवन करना तथा जहा चाहे थूक देना, गदगी फैलाना, आक्राभक व्यवहार, गलत शब्दों का प्रयोग करना, काम से जी चुराना, अफवाहें फैलाना व चुगली करना आदि मानसिक गन्दगी उनके बाह्य व्यवहार मे देखने को मिलती है।

बालक गीली मिट्टी के समान होता है। माता-पिता जैसा चाहे उसे आकार दे सकते है। इसलिए बचपन से ही उनमें अच्छी आदतो का विकास करने तथा अच्छे संस्कार देने का प्रयास करना चाहिए ताकि आज की विषम परिस्थितियो में गलत और सही के मध्य भेद कर वह जीवन पथ के सही रास्ते पर चलकर अपना निर्माण कर सके। जीवन-मूल्य बच्चों मे स्वत· विकसित हो सकते हैं यदि उन्हे स्वस्थ व अनुकूल पारिवारिक परिवेश उपलब्ध हो। क्योकि परिवार मे रहकर बालक अधिगम परिस्थितियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते है तथा घर के स्वस्थ वातावरण मे सीखी गई बाते जीवन पर्यन्त स्थायी बनी रहती है। अत बच्चे में सदाचार, सुसस्कार तथा जीवन-मूल्यों को विकसित करने मे परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका एव उसके उत्तरदायित्व को नकारा नही जा सकता।

जीवन-मूल्यों के विकास में परिवार की भूमिका

किसी भी बालक के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में जीवन-मूल्यो का प्रमुख स्थान है। हमारे जीवन-मूल्य किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है, इन्ही के द्वारा हमे व्यक्ति के व्यक्तित्व की चारित्रिक विशेषताओ और उसके चिन्तन का पता लगता है। यही चारित्रिक विशेषताएं और चिन्तन उसकी मनोशारीरिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते है जिसमे विभिन्न रूपो में, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप मे, व्यक्ति में अन्तर्निहित मूल्य प्रदर्शित होते हैं।

किसी भी वालक मे मूल्यो के सचरण की प्रक्रिया गर्भाधान से ही प्रारम्भ हो जाती है। वही उसके प्रारंभिक बीज रूप मे संस्कार भी कहे जा सकते है। मां के आचार-विचार, खान-पान, उसके नित्य के क्रियाकलाप व अध्ययन-मनन, बच्चे में बीजारोपण के रूप में प्रारम्भिक सस्कार बनकर पल्लवित होने लगते हैं। तत्पश्चात् जब बच्चा इस वाह्य जगत मे अपनी आंखे खोलता है, सर्वप्रथम उसे मां के वात्सल्य रूपी सुखद स्पर्श का आभास होता है। यही से वह मानवीय प्रेम की प्रथम अनुभूति करना सीखने लगता है। जब वह विभिन्न रूपो मे वात्सल्य व स्नेह को प्राप्त करने लगता है तो उसमे भी इसी गुण का प्रादुर्भाव होने लगता है और शनै-शनै उसके जीवन के शाश्वत मूल्य के रूप मे पल्लवित होने लगता है जो कि मानवीय जीवन का प्रमुख आधार स्तम्भ है।

परिवार का स्वस्थ व सुखद वातावरण बच्चे के न केवल व्यक्तित्व विकास मे सहायक बनता है बल्कि उसमे विभिन्न जीवन-मूल्यो का भी विकास करता है, जो उसके सम्पूर्ण जीवन को स्थायित्व व दृढ़ता प्रदान करते है। अत बच्चो मे जीवन-मूल्यो के विकास हेतु प्रारम्भ से ही उन्हें अच्छे संस्कार देने का प्रयास किया जाना चाहिए। परिवार द्वारा प्रदत्त यही संस्कार बच्चे मे विभिन्न गुणो का विकास करते है और यही गुण आगे चल कर जीवन-मूल्य के रूप मे परिणित होकर उसके व्यवहार में प्रतिबिम्बित होते हैं।

बच्चो की विभिन्न जिज्ञासाओं को शान्त कर उनमें जीवन-मूल्यो का विकास कैसे किया जाए? यह एक अहम् प्रश्न है। इस दिशा मे मार्गदर्शन के रूप में प्रयास हेतु कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु ध्यान देने योग्य हैं।

ध्यान देने योग्य बातें

- अभिभावकों को बच्चों के मनोविज्ञान का ज्ञान।
- सर्वप्रथम अभिभावको को स्वय जीवन-मूल्यो को समझना होगा।
- बच्चों मे सही आदतों का विकास।
- सही और गलत के मध्य भेद करने की क्षमता का विकास।
- भारतीय सस्कृति से परिचय कराना।
- यथार्थ जगत का ज्ञान।
- यौन शिक्षा के प्रति सही दिशा का निर्धारण करना।
- आध्यात्मिकता के द्वारा बच्चों का चारित्रिक विकास करना।
- बच्चो में सत् साहित्य के स्वाध्याय की आदत का विकास करना।

- प्रेरणास्पद महापुरुषो के जीवन-संस्मरणो से परिचय।
- बच्चे की अभिरुचि को सही दिशा में विकसित करना।
- उपयुक्त निर्देशन व परामर्श।

उपर्युक्त बिन्दुओ को ध्यान मे रखकर यदि माता-पिता तथा परिवार के सदस्य बच्चे का मार्गदर्शन करते हैं तो उनमें न केवल अच्छी आदतो का विकास होता है बल्कि वे जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण को अपनाना भी सीखते हैं।

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। आधुनिकीकरण एव प्रगतिशीलता के नाम पर आज अभिभावकों की दृष्टि मे बच्चो को दिए जाने वाले सस्कारो के प्रति कर्तव्यबोध के मानदण्ड बदल गए हैं। बच्चो को अच्छे सस्कार देने के स्थान पर दिशाहीन भौतिकता का अन्धानुकरण अभिभावकों के कर्तव्यबोध के सामने चुनौती बनकर खडा हो गया है। परिणामस्वरूप किताबी सस्कार तथा आधुनिक तकनीकी संसाधनो युक्त उबाऊ दिनचर्या के मायाजाल मे मानवीय मूल्य विलुप्त होते जा रहे हैं। यही कारण है कि आज परिवार से लेकर शैक्षिक संस्थानो तक मूल्यो के हनन होने की चर्चा होने लगी है। अन्तत शिक्षा मे पाठ्यक्रम के रूप मे मूल्यो ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है।

आज प्रश्न यह उठता है कि पाठ्यक्रम आधारित मूल्योन्मुख शिक्षा क्या हर वर्ग व आयु स्तर के बालको में उन जीवन-मूल्यो का विकास कर सकेगी जो व्यक्तित्व निर्माण के आधार स्तम्भ हैं। जीवन-मूल्यो की जड़ें मुख्य रूप से कहां से खोखली हो रही हैं? बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण का बीजारोपण कहां से प्रारम्भ होता है? इन सब महत्वपूर्ण मुद्दो पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर जीवन-मूल्यो के विकास की बात करनी होगी। सैद्धान्तिक पक्ष के स्थान पर व्यावहारिक धरातल पर उतरकर इस विषय पर सोचना होगा क्योकि व्यवहार सैद्धान्तिक विचारो का प्रतिबिम्ब माना गया है। इस सम्बन्ध मे जीन प्याजे ने कहा है कि व्यवहार हमारे ज्ञान का आधार बिन्दु है।

निष्कर्षत. हम यह कह सकते हैं कि बच्चो में मूल्यो का विकास उनके व्यक्तिगत अनुभवों एवं व्यक्तिगत रुचियों के अनुसार होता है। किताबी ज्ञान के द्वारा व्यवहार मे मूल्यो को नही उतारा जा सकता। दूसरे शब्दों मे यदि कहे तो मूल्यो का पढ़ाया नहीं जा सकता बल्कि यह जीवन मे आत्मसात् करने, उन्हें अनुभव करने तथा बोध करने की क्रिया है। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही बालक परिवार मे घटित होने वाली विभिन्न क्रियाओ तथा अर्जित सस्कारों के माध्यम से विभिन्न जीवन-मूल्यो को आत्मसात् करता है तथा इसके साथ ही जीवन मे घटित होने वाली विषमकालीन परिस्थितियों का बोध करता हुआ अपनी अन्त:शक्ति को जाग्रत करता है, जो उसमें आत्मसंयम के साथ-साथ सही जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

अत आज आवश्यकता है—एक स्वस्थ एवं सस्कारमय ऐसे गृह वातावरण की, जहा पर भावनात्मक सुरक्षा के साथ-साथ बालक के मन मे उठने वाली गहन शंकाओं का समाधान किया जा सके। इस दिशा में अभिभावको की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। उन्हे अपने बच्चों की आवश्यकताओ को समझने के साथ-साथ एक शिक्षक बनकर उन्हें सही जीवन जीने की कला भी सिखानी होगी तभी उनका भविष्य उज्ज्वल बन सकेगा। इसके लिए उन्हें स्वय जीवन-मूल्यो की आनन्दमय अनुभूति के साथ यह कामना करनी होगी कि—

जीवन में आत्मसयम अपनाकर
अन्त मन को जाग्रत कर
मूल्य वोध को साकार कर
तू आगे बढ़, तू आगे बढ़। ❑❑

शिक्षा विभाग
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, पोस्ट नयागांव, जिला सतना, मध्य प्रदेश

उच्च शिक्षा में गुणात्मकता

❐ शशि रानी अवस्थी

शिक्षा प्रगति का द्वार है। मानव ने आदि काल से आज तक जो भी प्रगति की है उसका मूल आधार शिक्षा ही है। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने लिखा है कि शिक्षा वह सर्वोत्तम एवं सुन्दर वस्तु है जिसे विश्व के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति प्राप्त करते है अर्थात् मनुष्य को सच्चे अर्थो मे मानव बनाने वाली शक्ति का नाम शिक्षा है। मनुष्य के सर्वागीण विकास के लिए शिक्षा सजीवनी का कार्य करती है। मानव विकास के विभिन्न आयामों के सापेक्ष शिक्षा को तीन स्तरो पर विभक्त किया गया है यथा—प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा। वास्तव में प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा रूपी वृक्ष का मूल है, माध्यमिक शिक्षा इस वृक्ष का तना और उच्च शिक्षा इस वृक्ष के फूल और फल हैं।

प्राथमिक शिक्षा के द्वारा बालक के विकास की नीव रखी जाती है। माध्यमिक शिक्षा के द्वारा उसे आगे बढाया जाता है तथा उच्च शिक्षा के द्वारा उसे विकास के शीर्षतम शिखर पर ले जाया जाता है। वास्तव मे शिक्षा के तीनो स्तर अपने आप मे काफी महत्वपूर्ण है और एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित है। यहा पर हमारे विचारों का केन्द्र बिन्दु उच्च शिक्षा है। वास्तव में किसी देश की उच्च शिक्षा उस देश का गौरव होती है क्योंकि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही अधिकतर जीवन के विविध क्षेत्रो मे अपना नेतृत्व प्रदान करने मे सक्षम होते हैं। किसी भी देश और समाज को सत्य का अन्वेषण मनीषी, साहित्यकार, उच्च कोटि के वैज्ञानिक, कुशल प्रशासक और अच्छे राजनेता उच्च शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

भारत वर्ष मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा प्रसार के लिए बहुत कार्य किया गया है। उच्च शिक्षा सस्थानों में भारी मात्रा मे बढ़ोतरी हुई है। सख्या की दृष्टि से यदि हम देखे तो पता लगता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत मे मात्र कुछ विश्वविद्यालय कार्यरत थे, अब उनकी सख्या बढ़कर 218 हो गई है। अभी भी कुछ नए विश्वविद्यालयो की स्थापना पर विचार किया जा रहा है। इसके अलावा भारत मे विश्वविद्यालयो के अलावा हजारो महाविद्यालय भी हैं जो उच्च शिक्षा के प्रसार मे अपना योगदान दे रहे है। इन विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयो मे कैसी शिक्षा दी जा रही है, उसका स्तर कैसा है, उसका गुणात्मक स्वरूप कैसा है, इसको मापने का कोई निश्चित मापदण्ड हमारे पास नहीं है। किन्तु परीक्षाओं के परिणाम, प्रतियोगी परीक्षाओं मे सफल छात्रो के प्रतिशत और छात्रो के ज्ञान के स्तर को बढ़ता देखकर एक आम धारणा बन गई है कि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता मे दिनो-दिन ह्रास होता जा रहा है।

केन्द्रीय मूल्यांकन प्रणाली का सकारात्मक पहलू यह है कि अल्प समय में मूल्यांकन प्रक्रिया पूर्ण कर ली जाती है। लेकिन इसका नकारात्मक पहलू यह है कि दो-चार मिनट में छात्र की वर्ष भर की योग्यता का मूल्यांकन सम्भव नहीं है। अतः उच्च शिक्षा स्तर पर परीक्षा के साथ-साथ मूल्यांकन की प्रक्रिया भी दोषपूर्ण है।

उच्च शिक्षा का गिरता हुआ स्तर काफी गम्भीर चिन्ता का विषय बना हुआ है। ऐसा नहीं है कि यह स्थिति एक दिन में आ गई है किन्तु हमने सोचना तब आरम्भ किया है जब स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई है। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर शासक, प्रशासक, शिक्षक और अभिभावक सभी परेशान है और इसमे सुधार के उपायो को लेकर काफी चिन्तित हैं। उच्च शिक्षा मे गुणात्मक सुधार के लिए यू.जी.सी. भी काफी सक्रिय है। सेमिनार और सम्मेलनो के माध्यम से विद्वानो और शिक्षा शास्त्रियो से सुझाव आमन्त्रित किए जा रहे हैं और उच्च

शिक्षा द्वारा किसी समस्या का समाधान करने के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले उस समस्या के कारणो को जाना जाए। उच्च शिक्षा के गुणात्मक स्तर में ह्रास के कारणो का विश्लेषण करने पर कुछ सामान्य कारण सामने आए हैं जो अग्रलिखित हैं यथा—छात्रों का कक्षाओ से अनुपस्थित रहना, पढ़ाई में रुचि न लेना, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयो में शैक्षिक माहौल न बन पाना, छात्रो का प्रयोगशालाओ और पुस्तकालयों में न पहुंचना, गाइड और स्तरहीन पुस्तको को अपने अध्ययन का आधार बनाना आदि। इसके अलावा भी अन्य कई कारण शैक्षिक गुणवत्ता को प्रभावित करते है। इन सभी कारणों पर एक-एक करके विचार करने का प्रयास इस शोध मे किया गया है।

कुछ विद्वानो का विचार है कि उच्च शिक्षा मे गिरावट का एक प्रमुख कारण छात्रो की भीड़ का बढ़ना है। विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों मे छात्रों की सख्या मे लगातार वृद्धि हो रही है। शैक्षिक छात्र अनुपात बुरी तरह से बिगड़ रहा है। इतनी बडी सख्या मे छात्रो को पढ़ाने के लिए न तो हमारे पास संस्थान हैं और न शिक्षक। इस स्थिति से निपटने के लिए कुछ विद्वानो का विचार है कि उच्च शिक्षा केवल उन्ही लोगो को दी जानी चाहिए जो इसके लिए उपयुक्त हों। लेकिन हमारा सवैधानिक और सामाजिक ढाचा ऐसा है कि हम किसी को भी उच्च शिक्षा से वचित नहीं कर सकते। उच्च शिक्षा मे बढती हुई भीड़ का एक प्रमुख कारण हमारे देश की माध्यमिक शिक्षा का निर्बल होना भी है। विश्व के अनेक देश ऐसे हैं जहा माध्यमिक शिक्षा अपने आप में पूर्ण होती है जिसे पाकर छात्र स्वावलम्बी वन जाता है। ऐसे देशों मे पूर्व सोवियत गणराज्य का नाम लिया जा सकता है। किन्तु भारत में काफी प्रयासो के बावजूद इस दिशा मे अधिक प्रगति नहीं हो पाई है।

इसके अलावा हमारी परीक्षा व्यवस्था पर भी प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। वर्तमान परीक्षा को करीव-करीब सभी आयोगो और विद्वानों ने दोषपूर्ण वताया है। लेकिन छात्रो ने पाठ्यक्रम को किस सीमा तक ग्रहण किया है, उनके ज्ञान का स्तर कैसा है, इसको मापने का इसके अलावा कोई दूसरा विकल्प भी नहीं है। अतः अधिकाश लोगों का मत है कि परीक्षाओं के प्रमुख साधन प्रश्न-पत्रों की रचना मे परिवर्तन किया जाए। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कुछ विश्वविद्यालयों में शुरू भी हो गई है। किन्तु मॉडल पेपरो के आने के बाद उसी पैटर्न की पुस्तकें बाजार मे उपलब्ध हो गई हैं, जिनसे परीक्षा पास करना अत्यन्त आसान हो गया है।

परीक्षाओं के साथ ही उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन भी एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसे विश्वविद्यालयो को करवाना होता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय की यही कोशिश रहती है कि जल्दी से जल्दी परीक्षाफल घोषित करवाए जाएं तथा समय पर सत्र आरम्भ किया जाए। वर्तमान समय मे मूल्यांकन के लिए कुछ विश्वविद्यालयो मे केन्द्रीय मूल्यांकन प्रणाली को अपनाया गया है, जहा पर निश्चित समय मे उत्तर पुस्तिकाओ का मूल्यांकन किया जाता है। किसी भी व्यवस्था के दो पहलू होते हैं—

- ☐ सकारात्मक
- ☐ नकारात्मक

केन्द्रीय मूल्यांकन प्रणाली का सकारात्मक पहलू यह है कि अल्प समय मे मूल्याकन प्रक्रिया पूर्ण कर ली जाती है। लेकिन इसका नकारात्मक पहलू यह है कि दो-चार मिनट मे छात्र की वर्ष भर की योग्यता का मूल्याकन सम्भव नहीं है। अत उच्च शिक्षा स्तर पर परीक्षा के साथ-साथ मूल्यांकन की प्रक्रिया भी दोषपूर्ण है।

आज उच्च शिक्षा एक और समस्या से जूझ रही है और यह समस्या विश्वविद्यालयो और महाविद्यालयो मे बढता हुआ राजनीतिक प्रभाव है। बड़े-बड़े राजनीतिक दल अपनी महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए युवा वर्ग को अपना निशाना बनाते है। ये राजनीतिक दल छात्र सघ चुनावो मे परोक्ष रूप से अपने प्रत्याशी उतारते हैं। जिनकी वे धन बल और जन वल दोनो तरह से मदद करते हैं। कभी-कभी तो इन चुनावों के दौरान भीषण हिसा होती है। हिंसा के बाद प्रतिहिसा का जो दौर चलता है उससे शैक्षिक वातावरण को जो हानि पहुचती है उसका अंदाजा सहज लगाया जा सकता है।

छात्र संघों का प्रादुर्भाव प्रशासन मे छात्रों की भागीदारी बढाने तथा उनके हितो की रक्षा के लिए हुआ था किन्तु वर्तमान छात्र सघ के स्वरूप को देखकर लगता है कि आज

छात्र सघ चुनाव केवल ठेकेदारी करने, पैसा वसूलने और राजनीतिक महत्वकाक्षाओ की पूर्ति के साधन बन गए है। जरूरत इस बात की है कि विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयो के शैक्षिक पर्यावरण को सुधारा जाए जिससे विश्वविद्यालय अपने खोए हुए गौरव को प्राप्त कर सके।

शिक्षक और पाठ्यक्रम भी शिक्षा प्रक्रिया के प्रमुख अंग होते हैं। अत. इन दोनों का भी शिक्षा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय मे यह कहा जा रहा है कि शिक्षको मे अपने कार्य के प्रति एक प्रकार की उदासीनता का भाव व्याप्त हो गया है जिसका उनकी रचनात्मकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वर्तमान में शिक्षको का दायित्व है कि वे उदासीनता के घेरे से बाहर आएं और एक ऐसी कार्य सस्कृति का विकास करे, जिसमे काम न करने वाले शिक्षक भी कार्य करने के लिए प्रेरित हो। इसके अलावा पाठ्यक्रम में सुधार की भी पर्याप्त गुंजाइश है। पाठ्यक्रय को लचीला, विविधतापूर्ण और आकर्षक वनाया जाना चाहिए, जिससे छात्रों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सके।

शिक्षा किसी देश के विकास का एक अत्यावश्यक एवं सहयोगी साधन ही नहीं बल्कि विकास का एक अपरिहार्य अग भी है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का शिक्षा और विकास के सम्बन्ध में मत था कि शिक्षा बुद्धि के विकास तथा समाज के पुनर्गठन का आधारभूत साधन है। विकास का अर्थ सिर्फ आर्थिक सुधार तक ही सीमित नहीं है बल्कि विकास का आशय देश के आर्थिक, नैतिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक जीवन सुधारने से है। किसी भी देश की शिक्षा के विकास मे आर्थिक घटक की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इग्लैण्ड और रूस की शिक्षा प्रणाली पर आर्थिक घटक का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। राज्य की शिक्षा व्यवस्था का गुणात्मक स्तर क्या होगा, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय आय का कितना प्रतिशत अपनी शिक्षा पर व्यय करता है। वही भारत में मात्र 6 प्रतिशत राष्ट्रीय आय शिक्षा पर व्यय की जाती है। यह स्पष्ट करता है कि अमेरिका की उच्च शिक्षा की तुलना में भारतीय शिक्षा मे निम्न गुणात्मकता क्यो दिखाई पडती है।

शिक्षा पर सरकार के न्यूनतम व्यय का ही परिणाम है कि देश की लगभग आधी आबादी स्वतंत्रता के पांच दशक उपरान्त भी निरक्षर है। शिक्षा पर अधिकतम व्यय करने में सरकार तो स्वयं ही पीछे थी लेकिन अव तो सरकार पर विश्व बैक का भी दबाव है। विश्व बैंक द्वारा यह कहा जा रहा है कि वित्तीय संकट से जूझने वाले गरीब राष्ट्रों को उच्च शिक्षा पर सब्सिडी घटानी होगी। इसी के तहत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को निर्देश दिया है कि वह विश्वविद्यालयों को अपने खर्चे हेतु आन्तरिक ससाधन जुटाने के लिए प्रेरित करे। उच्च शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि वाजार व्यवस्था से उच्च शिक्षा को जोडने के कारण ही इसका स्तर गिरा है।

सरकार द्वारा उच्च शिक्षा पर धन व्यय करने की असमर्थता के कारण उच्च शिक्षा में स्ववित्त पोषण की एक नई परम्परा ने जन्म लिया है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत छात्रों की शिक्षा की सम्पूर्ण लागत छात्र से ही वसूल की जाती है। हाल ही मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की न्यायमूर्ति पुन्नैया की अध्यक्षता वाली फडिंग इन्स्टीट्यूशन ऑफ हायर एजुकेशन कमेटी की रिपोर्ट मे भी उच्च शिक्षा के लिए फण्ड एकत्र करने की तरकीबो पर चर्चा की गई ताकि बाजार व्यवस्था के दबाव का सामना किया जा सके।

न्यायमूर्ति पुन्नैया की अध्यक्षता वाली समिति ने शिक्षा को एक उत्पाद मे बदलते हुए उसके उपभोक्ताओं अर्थात् छात्रो से ही सारा लागत खर्च वसूलने की जोरदार सस्तुति की है। इस समिति ने शिक्षा शुल्क बढ़ाने के साथ-साथ तमाम सहयोगी शैक्षिक सेवाओं– छात्रावास, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, खेलकूद, सास्कृतिक आयोजनो आदि पर लगने वाले लागत खर्च को पूरी तरह से छात्रों से वसूलने की सिफारिश की। इसके अलावा विश्वविद्यालयों को भी निर्देश दिए गए हैं कि वे अपने आन्तरिक ससाधन बढ़ाएं और विकास कार्यो मे अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करवाए। दिल्ली मे 23-24 जनवरी, 1995 को नीपा (नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन) द्वारा आयोजित सेमिनार की आम राय थी कि उच्च शिक्षा के कोष का 20 से 25 प्रतिशत भाग फीस बढ़ाकर पूरा किया जाए।

उच्च शिक्षा मे सेल्फ फाइनेसिग के समप्रत्यय ने एक समानान्तर शिक्षा व्यवस्था खड़ी कर दी है। इस व्यवस्था में महाविद्यालयों के व्यवस्थापकों को यह अधिकार प्रदान कर दिया है कि वे शिक्षको की नियुक्ति अपने स्तर पर कर सकते है तथा कुछ निश्चित छात्रो का प्रवेश अपने कोटे से कर सकते हैं। शिक्षा की इस व्यवस्था ने शिक्षकों और छात्र दोनो के शोषण का मार्ग प्रशस्त किया है और सबसे

बडी त्रासदी यह है कि शिक्षा की गुणवत्ता को भी काफी नुकसान पहुचा है। उच्च शिक्षा की कुशलता के लिए आवश्यक है कि सरकार इसे आर्थिक सम्बल प्रदान करे। शिक्षा को आर्थिक सम्बल प्रदान करना मात्र ही काफी नही होगा बल्कि राज्य को अच्छे उत्तरदायित्वो को निभाने के लिए शैक्षिक क्षुधातुरो में जागरूकता उत्पन्न करने के प्रयासो के साथ ही प्रतिभाए जहा कही भी छिपी है उन्हे तलाशने के साथ ही तराशना भी होगा क्योकि विषमता वाले भारत में उच्च शिक्षा ही गरीव व निम्न वर्ग को ऊपर उठाने के लिए सामाजिक गतिशीलता प्रदान कर सकती है। वास्तव *में विश्वविद्यालय गुणवत्ता व उत्कृष्टता के जनक के रूप* में माने जाते हैं ऐसे में यदि वे अपनी वित्तीय स्थिति सुदृढ करने मे ही व्यस्त रहेंगे तो शिक्षा की गुणवत्ता कैसे सुधारेंगे।

उच्च शिक्षा मे गुणवत्ता को मापने का एक और मापदण्ड है वह है शिक्षा का मूल्य परक होना। भारत मे सवैधानिक निर्देशो के तहत धर्म को शिक्षा से अलग कर दिया गया था जिससे छात्र स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक मूल्यों से दूर होते चले गए। किन्तु हम उन्हें सामाजिक और नैतिक मूल्यो की शिक्षा भी ढंग से नहीं दे पाए है। आज उच्च शिक्षित लोगो में मूल्यहीनता की स्थिति बढ़ती जा रही है। यह स्थिति सामाजिक आचरण में पतन का कारण भी बन सकती है। जरूरत इस बात की है कि उच्च शिक्षा को मूल्य परक बनाया जाए किन्तु इसकी शुरुआत प्रारम्भिक स्तर से ही करनी होगी।

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो गया है कि उच्च शिक्षा स्तर में गुणात्मक ह्रास अवश्य हुआ है किन्तु निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योकि शायद कोई भी मर्ज लाइलाज नही होता। हमें भी उच्च शिक्षा के स्तर के उन्नयन के सतत् प्रयत्न करने होंगे। जिससे उच्च शिक्षा की उपयोगिता और प्रासंगिकता को वनाए रखा जा सके। मेरे दृष्टिकोण से अग्रलिखित कुछ सुझाव हैं जिनको अपनाकर उच्च शिक्षा की गुणात्मकता को बनाए रखा जा सकता है।

- उच्च शिक्षा सस्थाओ को अपने स्तर को बनाए रखने के लिए प्रवेश के मानक तय करने का अधिकार मिलना चाहिए।
- शैक्षिक कलेण्डर का अनुपालन सुनिश्चित कराया जाए।
- जिस प्रकार विज्ञान के छात्रो को सप्ताह में एक बार पुस्तकालय में जाना अनिवार्य है उसी प्रकार कला के छात्रो को पुस्तकालयो में जाना अनिवार्य किया जाए। (कम से कम सप्ताह मे एक बार)
- छात्रो को शॉर्ट कट नोट्स, गाइड इत्यादि के स्थान पर टेक्स्ट बुक सन्दर्भ ग्रन्थ पढ़ने के लिए प्रेरित *किया जाए।*
- पढ़ाई के अतिरिक्त छात्रो की अन्य रुचियों जैसे लेखन, सभाषण, वाद-विवाद आदि का विकास करने के लिए महाविद्यालयों को प्रयास करने चाहिए। जिससे छात्र अपनी सस्था से और अधिक जुड़ने का प्रयास करे।
- महाविद्यालय स्तर पर अध्यापकों को भी व्याख्यान के अतिरिक्त शिक्षण की अन्य विधियो को अपनाने की कोशिश करनी चाहिए।
- जिन विश्वविद्यालयों में वर्ष मे एक बार परीक्षा होती है उन विश्वविद्यालयो मे यदि सम्भव हो सके तो अर्द्धवार्षिक परीक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इस परीक्षा मे सभी छात्रों का सम्मिलित होना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।
- उच्च शिक्षा में श्रेणी प्राप्त करने का प्रतिशत बढ़ाया जाना चाहिए। प्रथम श्रेणी 65 प्रतिशत, द्वितीय श्रेणी 50 प्रतिशत और तृतीय श्रेणी 40 प्रतिशत पर निश्चित की जानी चाहिए।
- उच्च शिक्षा के स्तर पर छात्रो को एन सी. सी. और एन.एस.एस. जैसे कार्यक्रमों से जुडने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

ये कुछ सुझाव हैं जिन्हें यदि उच्च शिक्षा के स्तर पर अपनाया जाए तो शायद उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने में थोड़ी बहुत मदद अवश्य मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

शिक्षा शास्त्र विभाग
दयानन्द गर्ल्स कालेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश

गणित शिक्षण का संक्षिप्त इतिहास तथा पाठ्यक्रम में गणित का स्थान

❒ राजेन्द्र प्रसाद मौर्य

गणित का इतिहास

भारतीय गणित के इतिहास का शुभारंभ आदि ग्रंथ ऋग्वेद से होता है, इसको निम्न पांच खंडो में विभक्त किया जा सकता है।

- ❒ आदिकाल (500 ई. पूर्व तक)
  - वैदिक काल (1000 ई. पूर्व तक)
  - उत्तर वैदिक काल (1000 ई. पूर्व से 500 ई पूर्व तक)
- ❒ पूर्व मध्य काल (500 ई. पूर्व से 400 ई. पूर्व तक)
- ❒ मध्यकाल (400 ई. पूर्व से 1200 ई. तक)
- ❒ उत्तर मध्य काल (1200 ई. से 1800 ई तक)
- ❒ वर्तमान काल (1800 ई. के पश्चात्)

आदिकाल

यह काल भारतीय गणित के इतिहास मे अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस काल में अंकगणित, बीजगणित एव रेखागणित को विधिवत स्थापित किया जा चुका था।

वैदिक काल–इस काल मे शून्य तथा दाशमिक स्थान मान पद्धति का अविष्कार गणित के क्षेत्र मे भारत की अभूतपूर्व देन है। यह निश्चित रूप से ज्ञात नही है कि शून्य का आविष्कार कब और किसने किया, परन्तु इसका प्रयोग वैदिक काल में होता रहा है। यही पद्धति सारे विश्व में चल रही है तथा इसने ही गणित तथा विज्ञान को प्रगति के उच्च शिखर तक पहुचाया है। इसी काल की गणित की अनेक सक्रियाओं जैसे योग, गुणा, भाग, भिन्न, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि का विशेष वर्णन है।

उत्तर वैदिक काल–इस काल में रेखागणित के सूत्रो का विकास तथा विस्तार किया गया था। इस काल में तीन सूत्रकारो के नाम उल्लेखनीय है– बोधायन, अगस्त्य और कात्यायन।

प्राचीन काल से ही शिक्षा में गणित का सदैव उच्च स्थान रहा है। प्लेटो ने तो अपनी पाठशाला के द्वार पर यहां तक लिख रखा था कि जो व्यक्ति रेखागणित को नहीं समझते, वे इस पाठशाला में शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से प्रवेश न करें। प्रायः सभी महान शिक्षकों, जैसे– हर्बर्ट, फ्राबेल, पेस्टालॉजी, डा. मेरिया, मांटेसरी और सर टी.पी. नन आदि ने गणित को मानव विकास का प्रतीक माना है।

मध्यकाल या स्वर्ण युग

इस काल को भारतीय गणित का स्वर्ण युग कहा जाता है क्योंकि इस काल मे आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य, भास्कराचार्य आदि जैसे महान् गणितज्ञ हुए जिन्होंने गणित की सभी शाखाओ को विस्तृत व स्पष्ट रूप प्रदान किया। वेदो में जो सिद्धात व विधियां सूत्र रूप में हैं वे इस काल में अपनी पूर्ण सभावनाओं के साथ जन साधारण के सम्मुख आई। इस काल के कतिपय महान गणितज्ञों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

आर्यभट्ट प्रथम (499 ई.)

ये पटना के निवासी थे। इन्होंने अपनी पुस्तक आर्यभट्टीय के गणित पाद के 322 श्लोकों में गणित के महत्वपूर्ण एवं मूलभूत सिद्धातो को सार रूप में कह दिया है। इन्होने त्रिकोणमिति में सर्वप्रथम व्युत्क्रम ज्या का प्रयोग किया।

अंकगणित के क्षेत्र में इन्होंने वर्गमूल एव घनमूल ज्ञात करने की विधियो तथा त्रैराशिक नियम का

भी उल्लेख किया।

भास्कर प्रथम (600 ई.)

इन्होने अपनी पुस्तक महाभास्करीय, आर्यभट्टीय भाष्य और लघुभास्करीय मे आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित सिद्धातों को और विकसित तथा विस्तृत किया।

ब्रह्मगुप्त (628 ई.)

इन्होंने गणित की 20 क्रियाओं तथा 8 व्यवहारों पर प्रकाश डाला। बीजगणित में समीकरण साधनो के नियमो का उल्लेख किया तथा अनिर्णित द्विघातीय समीकरण भी बताया। इन्होने समकोण त्रिभुज के शूल्व सूत्र का विस्तृत वर्णन भी किया।

महावीराचार्य (850 ई.)

महावीर ने गणित सार संग्रह नामक अकगणित के वृहद् गणित की रचना की। इसमें अकगणित का विधिवत वर्णन किया गया है तथा इसमे संग्रहित प्रश्न अत्यत मनोरजक है। इन्होंने लघुत्तम समापवर्त्य का आधुनिक नियम ज्ञात किया, जिसका यूरोप मे पहली बार 1500 ई. मे प्रयोग किया गया।

इस युग में ज्योतिषियो को अकगणितीय मूल संक्रियाओ, योग, गुणा, भाग आदि का भी ज्ञान हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल में जैन ग्रंथों में तत्कालीन गणित का विस्तृत विवरण उपलब्ध है।

गणित तथा ज्योतिष के विकास मे जैनाचार्यो का योगदान रहा है। इन आचार्यो ने अपने ग्रथो मे गणित के अनेक अध्ययन तत्वो का मीमासात्मक विवेचन रोचक ढग से उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है। उन्होंने सख्या लेखन पद्धति, बीजगणितीय समीकरण और उनके अनुप्रयोग, क्रमचय-संचय, घातांक एवं लघुगणक के नियम, समुच्चय सिद्धांत आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है। वौद्ध साहित्य में भी गणित को पर्याप्त महत्व दिया गया है।

पूर्व मध्य काल

इस काल मे गणित का पर्याप्त विकास हुआ था जो मध्य युग के आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि के उपलब्ध साहित्य से ज्ञात होता है। स्थानांग सूत्र, भगवती सूत्र और अनुप्रयोग द्वार सूत्र इस युग के प्रमुख ग्रथ है।

वदाली गणित में अकगणित की मूल सक्रियाए दाशमिक अकलेखन पद्धति, भिन्न परिकर्म, वर्ग, घन, त्रैराशिक व्यवहार, ब्याज रीति, क्रय विक्रय सबधी प्रश्नो आदि का विस्तृत विवरण है।

त्रिकोणमिति के विस्तार में भी भारतीयों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस काल में बीजगणित के क्षेत्र मे एक क्रातिकारी परिवर्तन हुआ। इसके ज्ञान से व्यक्त राशि के स्थान पर अव्यक्त राशियो को प्रयोग करके *गणितीय गुत्थिया सुलझाई जाने लगीं। बीजगणित अज्ञात मान वाला* प्रतिपादित गणित है।

मध्यकाल के महान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त (628 ई) का कथन उल्लेखनीय है– धन संख्या और ऋण सख्या का गुणनफल ऋण सख्या, दो ऋण सख्याओ का गुणनफल धन संख्या तथा धन सख्या और धन संख्या का गुणनफल धन संख्या होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बीजगणित का पूर्व के गणितज्ञो द्वारा विस्तार किया जा चुका था। मध्यकाल मे इसका और विस्तार हुआ।

श्रीधराचार्य (850 ई.)

इन्होने अकगणित पर नवक्षतिका तथा त्रिशातिका पढा, गणित और बीजगणित पुस्तकों की रचना की, इनकी रचना शैली अत्यत सरल, सक्षिप्त तथा हृदयग्राही है।

आर्यभट्ट द्वितीय (950 ई.)

आप महाराष्ट्र के निवासी थे। इन्होने महासिद्धांत नामक एक ग्रथ लिखा, जिसके एक अध्याय मे अंकगणित तथा दूसरे अध्याय मे प्रथम घात वाले अनिरधार्य समीकरण का प्रतिपादन किया।

श्रीपति मिश्र (1039 ई.)

इन्होंने "सिद्धातशेखर" एवं "गणिततिलक" की रचना की। इन्होने क्रम चयन और सचय पर विशेष कार्य किया।

नेमीचंद चक्रवर्ती (11वीं सदी)

इनकी प्रसिद्ध पुस्तक गोम्मटसार है। इसमे दो भाग है– कर्मकाड एव जीवकाड। दोनों मे जीव राशिया, उनके कर्मो, आस्तव वंध, निर्जरा, सार्वत्रिक, समुच्चयी, एकैकी संगति, सुक्रमवद्धी प्रमेय आदि की चर्चा है।

भास्कराचार्य द्वितीय (1114 ई.)

वेदो में जो सिद्धात सूत्र रूप में थे, उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति भास्कराचार्य की रचना मे हुई है। इन्ही पुस्तको को आधार मानकर वेदो में प्रस्तुत सूत्रो का प्रयोग वैदिक गणित की आधुनिक कृतियों मे किया जा रहा है।

उत्तर मध्य काल

नारायण पंडित (1356 ई.)

इन्होने अंकगणित पर "गणित कौमुदी" नामक एक वृहत् ग्रथ की रचना की। इसमे अनेक विषयो का प्रतिपादन किया गया है।

नीलकंठ (1587 ई.)

नीलकंठ ने "ताजिक नील कंठी" नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमे ज्योतिष गणित का प्रतिपादन किया गया है। नीलकंठ ने 1500 ई. में एक पुस्तक मे ज्या r का मान निकाला

ज्या $r = r - r^3/3! + r^5/5! - \dots\dots$.

कमलाकर (1608 ई.)

इन्होने सिद्धात तत्व विवेक नामक ग्रंथ की रचना की।

सम्राट जगन्नाथ (1731 ई.)

इन्होने सम्राट सिद्धांत तथा रेखागणित नाम की दो पुस्तके लिखीं।

वर्तमान काल

नृसिंह बापू देव शास्त्री (1831 ई.)

इन्होने भारतीय एव पाश्चात्य गणित पर पुस्तको का सृजन किया। इनकी पुस्तको में रेखागणित, त्रिकोणमिति, सायनवाद तथा अकगणित मुख्य है।

सुधाकर द्विवेदी

इन्होने दीर्घवृत्त लक्षण, गोलीय रेखागणित, समीकरण मीमासा आदि अनेक पुस्तको की रचना की।

रामानुजन (1889 ई.)

रामानुजन सूत्र रूप मे गणितीय एव अन्य सिद्धातो को लिखने व सिद्ध करने की वैदिक परंपरा के आधुनिक युग के महान गणितज्ञ है।

स्वामी भारती कृष्णतीर्थजी महाराज (1884–1960 ई.)

आप वैदिक गणित के प्रधान भाष्यकार है, इन्होंने अपनी पुस्तक वैदिक गणित में सूत्रो को पुनः प्रतिपादित किया और उसमें निहित सिद्धातो और विधियो को इतनी सरल भाषा मे प्रस्तुत किया कि गणित का साधारण विद्यार्थी भी उसे आत्मसात् कर गणित के जटिलतम प्रश्नों को कम समय मे हल कर सकता है।

भारत में गणित पठन, पाठन उत्तर वैदिक काल (ईसा से 1500 वर्ष पूर्व) से ही होता आया है। उस समय के ग्रंथों मे गणित, अंकगणित, रेखागणित एवं बीजगणित और ज्योतिषगणित दृष्टिगोचर होते है। इसी समय यज्ञ वेदी के बनने मे रेखागणित का विकास हुआ था। यज्ञ के उचित व शुभ समय देखने के कारण ज्योतिष का विकास हुआ। इसी काल मे अन्य विषयो के साथ गणित व ज्योतिष मे बहुत उन्नति हुई। ब्राह्मणीय शिक्षा के पाठ्य विषय की सूची छान्दोग्य उपनिषद मे कथानक है जो इस प्रकार है– एक बार नारद, सनत्कुमार ऋषि के पास गए और उनसे ब्रह्म विद्या पढ़ाने की प्रार्थना की। सनत्कुमार ने नारद से पूछा वे कौन-कौन सी विद्या पहले से ही पढे हुए है, जिससे वे विचार कर सकें कि उन्हे क्या पढाना अब शेष रहा है। इस पर नारद जी ने उन सब विद्याओं को गिनाया जो वे पढ चुके थे। इसी सूची में नक्षत्र विद्या और राशि विद्या भी सम्मिलित थीं। इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि उस समय भी गणित और ज्योतिष विषय पढ़ाए जाते थे।

हिन्दुओ की शिक्षा मे गणित भी प्रमुख विषयो मे से एक था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा हुआ है कि चूडाकर्म के बाद विद्यार्थी को लिपि और सख्या लिखनी चाहिए। हाथी गम्फा के अन्तर्लेख से पता चलता है कि कलिंग नरेश खारवेल ने अपने जीवन के नौ वर्ष यानी 16 वर्ष की अवस्था से लेकर 25 वर्ष की अवस्था तक लिपि रूप और गणना के अध्ययन में व्यतीत किए थे। राजकुमार गौतम ने 8 वर्ष की अवस्था में अध्ययन आरंभ किया था– पहले पढ़ना, लिखना सीखा था उसके बाद अकगणित, जो उस समय के 72 विज्ञानो और कलाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण

था। जैन आगम ग्रंथो में भी लेखा रूप और गणना का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन काल मे भारत में गणित पढ़ाने का उद्देश्य यह था कि उससे वस्तुओं के मूल्य निकालने मे और हिसाब रखने में सहायता मिलती थी। उस समय कार्य प्रणाली की अपेक्षा फल पर अधिक जोर दिया जाता था। बालकों को पहाड़े तथा गुरु याद कराए जाते थे। पाठशालाओं में गणित उस समय इसलिए पढ़ाई जाती थी कि इसका सबध धर्म पुस्तकों, गणित– ज्योतिष, फलित ज्योतिष आदि से था। ग्रहण, त्यौहार आदि की तिथियों को निकालने मे इसकी आवश्यकता पड़ती थी। मदिर और पूजा की वेदी बनाने में गणित के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती थी। बुद्धि के विकास के लिए उसका उपयोग किया जाता था। प्रायः विद्यार्थी गणित की पहेलियां बनाते थे और हल करते थे। इस प्रकार उनका मनोरंजन भी हो जाता था।

इस्लामी शिक्षा में भी गणित को स्थान प्राप्त था। उस समय बालकों के लिए मकतब मे प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था की। वहां पर उनको पढ़ने तथा लिखने की शिक्षा के अतिरिक्त अवजद अर्थात् अक्षरो की संख्या से गणना और शकुन विचार भी सिखाया जाता था। उच्च शिक्षा के मदरसे थे, इनमें शिक्षा दो प्रकार की होती थी– लौकिक और धार्मिक। लौकिक शिक्षा के अंतर्गत ज्योतिष एव गणित भी पढ़ाए जाते थे। अबुलफजल ने आइने अकबरी में लिखा है– "प्रत्येक बालक द्वारा नीतिशास्त्र, अंकगणित समस्याएं, कृषि शास्त्र, क्षेत्रमिति, ज्योतिष विद्या, मुखाकृति विद्या, गृहशास्त्र, राजतंत्र, औषधि विज्ञान, तर्कशास्त्र, तिबी (चिकित्सा और शरीर विज्ञान), रियाजी (गणित, ज्योतिष, सगीत और शिल्प ज्ञान), इलाही और इतिहास आदि सभी ज्ञान प्राप्त किए जाते थे। अकबर ने आगरा और फतेहपुर सीकरी मे कई मदरसे भी बनवाए। इनमें गणित व ज्योतिष की भी उच्च शिक्षा दी जाती थी। हुमायू ने दिल्ली मे एक मदरसा खोला जिसमें ज्योतिष तथा भूगोल पढ़ाए जाते थे।

परंतु फिर भी गणित की प्रतिष्ठा पाठ्य-विषय की हैसियत से हमारे देश की पाठशालाओ में अठारहवी शताब्दी तक नहीं थी। यहा पर ब्रिटिश काल मे गणित पर बहुत जोर दिया जाता था। यहां तक कि हाईस्कूल के अतिरिक्त इंटर कक्षाओं मे भी गणित अनिवार्य था। माध्यमिक कक्षाओ मे भी गणित पर ही सबसे अधिक जोर दिया जाता था। प्रश्न-पत्र भी कठिन बनाए जाते थे। गणित में अच्छे अंक प्राप्त करने वाले छात्रो को प्रोत्साहन भी दिया जाता था। उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के राजकीय विद्यालय मे तो बहुत समय से प्रतिवर्ष गणित की प्रतियोगिता होती आ रही है, जिसमें प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले छात्रो को पारितोषिक वितरण किया जाता है। विश्व स्तर पर गणित विषय में ओलम्पिक प्रतिस्पर्धा भी सम्पन्न की जाती है।

सन् 1937 में बेसिक शिक्षा का सूत्रपात्र हुआ। इसमें भी गणित विषय को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परतु इसमे गणित पढ़ाने की विधि पहले से भिन्न थी। यहा पर गणित को क्राफ्ट के आधार पर पढ़ाने पर जोर दिया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर भारत के सम्मुख सारजेट योजना आई। इसमे हाईस्कूल को दो भागों में विभाजित कर दिया गया–साहित्यिक और व्यावसायिक हाईस्कूल। व्यावसायिक हाईस्कूल में गणित पाठ्यक्रम मे रखा गया, परतु साहित्यिक हाईस्कूल में नहीं।

परतु स्वतत्र भारत मे यह विचार किया गया कि शिक्षा का उद्देश्य अच्छे नागरिक बनाना है न कि क्लर्क पैदा करना। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नागरिक शास्त्र, पर्यावरण शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा आदि विषय पाठ्यक्रम मे सम्मिलित किए गए। फिर भी सोचा गया कि इन सबसे बालको के ऊपर भार हो जाएगा। इसलिए गणित के अध्ययन और पाठ्यक्रम को हल्का कर दिया गया। ऐसा करने मे गणित के अध्यापन को अधिक अथवा पहले जैसा महत्व नहीं दिया गया और धीरे-धीरे कई राज्यों में गणित हाई स्कूल मे एक ऐच्छिक विषय तक बन गया।

उत्तर प्रदेश में स्वतत्रता प्राप्त होने के पश्चात्

अकगणित को रेखागणित और बीजगणित से पृथक कर दिया गया। अकगणित अनिवार्य विषय बना दिया गया और बीजगणित व रेखागणित को ऐच्छिक विषय माना गया। परतु यह क्रम सिर्फ तीन साल तक चला। सन् 1950 ई. मे अकगणित हाईस्कूल कक्षा से बिल्कुल हटा दिया गया, परंतु गणित की अन्य शाखाओ को ऐच्छिक विषय के रूप मे ही रखा गया। सन् 1952 से उत्तर प्रदेश शिक्षा बोर्ड ने बालको की सुविधा के लिए एक और प्रकार का गणित चला दिया, जिसका नाम प्रारंभिक गणित रखा गया। इस प्रकार के गणित मे अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित तीनो ही शाखाए सम्मिलित थी। इसमें पाठ्यक्रम कक्षा 8 तक का था। सन् 1956 से गणित लड़कों के लिए अनिवार्य हो गया है, लड़कियो के लिए अब भी ऐच्छिक विषय है।

गणित की बनावट तथा प्रकृति

प्रत्येक विषय की अपनी बनावट या ढाचा होता है जो कि विषय को एक विशिष्ट अस्तित्व देता है। विषय की जिस प्रकार की बनावट होगी, उसी तरह से विषय स्थायी या अस्थायी होगा। गणित का ढाचा या बनावट अन्य सभी विषयो से अधिक बलशाली है जिसके कारण गणित अन्य विषयो की अपेक्षा अधिक स्थायी है। इसके बाद भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा जीव विज्ञान विषयों का स्थान आता है। विषय के ढांचे के आधार पर उसकी सत्यता तथा भविष्यवाणी अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक स्थायी है। जैसे-जैसे विषय का ढांचा कमजोर होता है वैसे-वैसे ही विषय में सत्यता तथा भविष्यवाणी कम होती जाती है। इसी निश्चित बनावट या ढाचे के आधार पर प्रत्येक विषय अपना एक विशिष्ट अस्तित्व रखता है। इसी बनावट के आधार पर विषय की प्रकृति निर्भर करती है।

गणित की प्रकृति

प्रत्येक विषय जो पाठ्यक्रम मे रखा जाता है उसका एक विशिष्ट उद्देश्य होता है। इसके अतिरिक्त विषय की अपनी प्रकृति भी होती है। प्रकृति के आधार पर एक विषय की भिन्नता दूसरे विषय से की जाती है। गणित की प्रकृति का उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है—

- गणित की अपनी भाषा होती है। भाषा का तात्पर्य उसके पद, प्रत्यय, सूत्र, संकेत तथा सिद्धात से है। ये विशेष प्रकार के होते है जो कि उसकी भाषा को जन्म देते हैं, इसके उदाहरण लंबाई, चौडाई, त्रिभुज, लाभ, हानि, कोष्ठक, संख्याए, आयतन, माप तौल आदि हैं।
- गणित मे संख्याओ, स्थान, मापन आदि का अध्ययन किया जाता है। इनका अध्ययन अन्य विषयों में बाद में किया जाता है। प्रारभ मे इनका विकास गणित से ही हुआ था।
- गणित मे वातावरण में पाई जाने वाली वस्तुओं के आपस मे सबंध तथा संख्यात्मक निष्कर्ष निकाले जाते हैं, चूंकि ये निष्कर्ष संख्या से सबंधित होते है, इसलिए इन पर भरोसा किया जा सकता है।
- इस विषय के ज्ञान का आधार हमारी ज्ञानेन्द्रिया होती हैं जिन पर विश्वास किया जा सकता है क्योंकि इस ज्ञान का एक निश्चित आधार होता है।
- गणित का ज्ञान समस्त जगत मे समान रूप का होता है तथा उसका सत्यापन किसी भी स्थान तथा समय पर किया जा सकता है। यह ज्ञान समय तथा स्थान के साथ परिवर्तित नहीं होता है।
- गणित में ज्ञान ठीक, स्पष्ट, तार्किक एवं क्रम में होता है जिससे उसको एक बार समझने पर आसानी से भुलाया नहीं जा सकता।
- गणित द्वारा जीवन के अमूर्त प्रत्ययों की व्याख्या की जाती है तथा उसको समझा जा सकता है तथा अमूर्त को स्थूल रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।
- गणित के ज्ञान का अनुप्रयोग भिन्न-भिन्न विज्ञान जैसे भौतिक, रसायन, जीव विज्ञान तथा अन्य विषयो मे किया जाता है। उपर्युक्त विषयो की

प्रगति तभी सभव है जब गणित मे प्रगति हो। गणित सभी विषयों की आधारशिला है तथा उनको एक सगठित तथा दृढ़ आधार प्रदान करता है।

- गणित के ज्ञान द्वारा प्रत्येक ज्ञान स्पष्ट होता है। उसमें एक निश्चित उत्तर संभव होता है। इसमे किसी प्रकार का सदेह नही होता। इसमें उत्तर 'हा' या 'न' में सभव होता है।
- गणित में सामान्यानुमान, निगमन, आगमन के लिए पर्याप्त सीमा भी होती है।

पाठ्यक्रम में गणित का स्थान

गणित का पूर्व सम्मानित स्थान

प्राचीन काल से ही शिक्षा मे गणित का सदैव उच्च स्थान रहा है। प्लेटो ने तो अपनी पाठशाला के द्वार पर यहां तक लिख रखा था कि जो व्यक्ति रेखागणित को नही समझते, वे उस पाठशाला मे शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से प्रवेश न करे। प्राय. सभी महान् शिक्षको जैसे– हर्वर्ट, फ्रावेल, पेस्टालॉजी, डा मेरिया, मांटेसरी और सर टी.पी. नन आदि ने गणित को मानव विकास का प्रतीक माना है। इन्होने गणित की शिक्षा को मनुष्य के वौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास का सर्वश्रेष्ठ साधन मानकर शिक्षा के पाठ्यक्रम में उच्चतम स्थान दिया है। नेपोलियन जैसे महान् योद्धा, शासक एवं राजनीतिज्ञ के कथनानुसार– गणित की उन्नति के साथ देश की उन्नति का घनिष्ठ सबंध है।

· गणित के बारे में तो जैन गणितज्ञ श्री महावीराचार्य जी ने गणित सार संग्रह नामक पुस्तक में अत्यत प्रशसा की है। वे लिखते है– लौकिक, वैदिक तथा सामाजिक जो भी व्यापार है, उन सब में गणित का उपयोग है। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, पाकशास्त्र, गधर्वशास्त्र (गायन), नाट्यशास्त्र, भवन निर्माण शास्त्र, आयुर्वेद आदि मे छन्द, अलकार काव्य, तर्क, व्याकरण इत्यादि कलाओं के समस्त गुणो में गणित अत्यत उपयोगी है। सूर्य आदि ग्रहो की स्थिति व गति जानने मे, ग्रहण का समय ज्ञात करने मे, दिशा, देश तथा समय ज्ञात करने मे, चन्द्रमा के परिलेख आदि में सर्वत्र गणित का काम पड़ता है। द्वीपों, समुद्रों और पर्वतो की सख्या, व्यास व परिधि, लोक–अन्तर्लोक, ज्योतिर्लोक, स्वर्ग एवं नरक के रहने वालों के मकानो में, सभा भवनों एव गुम्वदाकार मदिरो के परिमाप तथा अन्य बाते गणित की सहायता से जानी जाती हैं। वहा पर प्राणियो के स्थान, उनकी आयु और आठ गुण, मात्रा तथा सहिता आदि से सबध रखने वाले विषय सभी गणित पर निर्भर है।

गणित विषय को पाठ्यक्रम में एक विशेष स्थान देने के मुख्य कारण

गणित एक यथार्थ विज्ञान है

इसका अध्ययन करने का मुख्य कारण यह है कि इस विषय के अध्ययन द्वारा स्पष्टता पैदा होती है तथा छात्र अपने कार्य में सही तथा स्पष्ट रहता है। गणित विषय मे प्रश्न का 'हा' या 'न' में उत्तर आता है तो वह कुछ गलत तथा कुछ सही नही हो सकता है बल्कि एक ही हो सकता है। उदाहरण के रूप मे 2+5 = 7, यह 6 या 5 नही हो सकता।

गणित तार्किक दृष्टिकोण पैदा करता है

प्रत्येक समस्या हल करने में छात्र को तर्क के आधार पर समस्या को हल करना पड़ता है। प्रत्येक पद का संबंध दूसरे पद से किसी निश्चित तर्क पर आधारित होता है।

गणित का जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है

गणित को व्यापार का प्राण तथा विज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। गणित का गणितज्ञ, इजीनियर आदि व्यवसाय से सीधा सबध होता है। उपरोक्त व्यवसायों में प्रवेश तथा सफलता तभी सभव है जब गणित का अध्ययन किया जाए। इसके अतिरिक्त अन्य व्यवसायों जैसे मशीनो का प्रयोग, भवन निर्माण, दैनिक कार्यक्रम में बिना गणित के ज्ञान के सफलता मिलनी कठिन है। आधुनिक युग में सभ्यता की नींव गणित पर ही आधारित है।

गणित वैज्ञानिक विषयों की आधारशिला है

विज्ञान के भिन्न-भिन्न विषय जैसे–ज्योतिष विज्ञान, नक्षत्र

विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान आदि जिनका आधुनिक युग मे विशेष महत्व है, का आधार गणित ही है। गणित के ज्ञान के अभाव में इनका विकास संभव नही है। उदाहरण के रूप मे दबाव की मात्रा, भार, आयतन, घनत्व, गुणात्मक ज्ञान, परमाणुओ की संख्या का बोध, औषधियों का निर्माण तथा अन्य माप सभी का आधार गणित है। इकाई (यूनिट) का प्रत्यय गणित ही है। वैज्ञानिक विषयों के अतिरिक्त विद्यालय के अन्य विषय भी गणित के बिना अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकते।

गणित एक विशेष प्रकार से सोचने का दृष्टिकोण पैदा करता है

गणित एक निश्चित, क्रमानुसार सत्य, तार्किक रूप में सोचने का दृष्टिकोण पैदा होता है। प्रत्येक गणित की समस्या को हल करने मे छात्र सत्य, निश्चित, एक क्रम, तर्क का प्रयोग करता है, जिससे धीरे-धीरे उसका दृष्टिकोण एक निश्चित रूप का बन जाता है जो कि अन्य विषयों से भिन्न होता है।

गणित अनिवार्य विषय

गणित इतना उपयोगी होते हुए भी अनिवार्य क्यों न रखा जाए। कितने ही प्रदेशो में पाठ्यक्रम मे से बालको को गणित को छोड़ देने की पूर्ण स्वतत्रता दे दी है। यह उनकी बहुत बडी भूल है। इसका प्रभाव छोटी कक्षाओं पर भी पड़ता है और पडना जरूरी भी है। आजकल जब बालकों के मन मे मैट्रिक तथा उसकी परीक्षा ही आराध्यदेवी बनकर बैठी हो, तब गणित की ऐसी अवज्ञापूर्ण दशा मे बालको के मन मे गणित के प्रति श्रृद्धा कभी जागृत नही हो सकती।

अधिकाश बालक मैट्रिक पास करके व्यावहारिक जीवन मे प्रवेश करते है। उनको जीविकोपार्जन हेतु बैंकों, दफ्तरो और दुकानों आदि में काम करना पड़ता है, जहां पर उनको संख्याओ, स्टाको और शेयरों, लाभ-हानि और तत्काल धन से काम पड़ता है। बालक गणित के ज्ञान के अभाव में इन बातों में पीछे रह जाता है। यदि पाठ्यक्रम में गणित की अवहेलना की गई तो बालको को आगामी जीवन में बड़ा नीचा देखना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त गणित के अध्ययन से जो मानसिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है वह भी खटाई मे पड़ जाएगा। अत· इन सब बातो से पाठ्यक्रम मे गणित का अनिवार्य होना जरूरी है।

कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को इंजीनियर या मिस्त्री तो बनना नही है, जिससे व्यवसाय मे गणित का ज्ञान काम आ सके। इसलिए सब विद्यार्थियो को गणित अनिवार्य बनाकर पढ़ाने से क्या लाभ? बात भी सही है। प्रत्येक विद्यार्थी डाक्टर या इंजीनियर नही बन सकता। परतु क्या मालूम कौन क्या बनेगा। हमारा काम तो यह है कि मैट्रिक के विद्यार्थियों को अधिक से अधिक ज्ञान दें ताकि उनको अपनी रुचि के अनुसार कोई भी व्यवसाय चुनने में जरा भी कठिनाई न हो। हाईस्कूल तक के विद्यार्थियों को उस बात का ज्ञान नही होता कि वे कौन-सा विषय लें जो उनके भविष्य मे लाभदायक हो। प्रायः अपने सहपाठियों तथा मित्रों की सलाह से मनचाहे विषय चुन लेते है। परतु जब वे विषय व्यवसाय मे लाभदायक नहीं होते अथवा छोड़े हुए विषयो की कमी के कारण व्यवसाय में कठिनाई प्रतीत होती है, तब वे अपने पहले अज्ञानतापूर्ण निर्वाचन पर हाथ मलते हैं और सलाह देने वालों को कोसते हैं। अत· गणित को अनिवार्य विषय बनाने पर यह कठिनाई प्रतीत नही होगी।

गणित को हाईस्कूल कक्षाओं मे ऐच्छिक विषय करने में इस बात पर भी असर पडता है कि जिन विद्यार्थियो की हाईस्कूल कक्षाओ में गणित नही होता, उनका व्यवसाय संबंधी निर्वाचन बहुत सकीर्ण रह जाता है। यहा तक कि जो छात्र महाविद्यालयो मे प्रवेश करते हैं, उनके अध्ययन विषय जैसे— जीव विज्ञान और अर्थशास्त्र आदि तक की पढ़ाई मे गणित की अज्ञानता बाधा डालती है।

गणित के अतिरिक्त स्कूल पाठ्यक्रम मे कोई भी ऐसा विषय नहीं है जो बिना अधिक अध्ययन किए जीवन मे प्रयोग हो सके। गणित ही एक ऐसा विषय है जिसका

हाईस्कूल कक्षाओं तक का ज्ञान जीवन मे प्रयोग हो सकता है। कुली से लेकर, जो मुश्किल से अपनी जीविका कमा पाता है, वित्त मंत्री तक जिसका अरबों और खरबों रुपयो का बजट बनता है, पान वाले से लेकर जो कि सिर्फ रुपए और पैसे तक हिसाब रख पाता है, बड़े-बड़े उद्योगपति जो करोड़ों रुपए का व्यवाय करते हैं, साधारण बढ़ई से लेकर बडे-बड़े इजीनियरों तक जो संसद जैसे विशाल भवन का निर्माण करते हैं, सभी को अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार गणित के ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः जीविका के उद्देश्य से ही यदि पाठ्यक्रम बनाया जाए तो भी गणित का स्कूल के पाठ्यक्रम में सर्वप्रथम स्थान होना चाहिए।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली ने एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का ढांचा विद्यालयी शिक्षा के लिए तैयार किया है जिसमें गणित के वहु आयामी प्रयोग को देखते हुए इसको हाईस्कूल कक्षाओ तक अनिवार्य बनाने का दस्तावेज प्रस्तुत किया है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि गणित मनुष्य के लिए उसके जीवन के कदम-कदम पर अनेक प्रकार से उपयोगी है। इसके बिना वह जीवन मे तनिक भी उन्नति के पथ की ओर नही चल सकता। स्कूल के अन्य सभी विषय इसी के आधार पर मनुष्य के लिए उपयोगी हो सकते है। इसके बिना सभी विषय निरर्थक प्रतीत होते है। अत. गणित का स्कूल पाठ्यक्रम मे सर्वप्रथम तथा प्रतिष्ठित स्थान होना अति आवश्यक है। ❑❑

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
अजमेर, राजस्थान

प्राथमिक स्तर खेल द्वारा मूल्य शिक्षा

❑ बी.सी. दूबे

बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था तक के समय में खेल के सिद्धांतों के अनुरूप खेल-खेल में मूल्य की शिक्षा प्रदान की जा सकती है और अगर मूल्य बाल्यावस्था तक परिपक्व एवं आदत के रूप में वर्णित हो जाएं तो फिर यही मूल्य बालक के व्यवहार का दिशा निर्देश का कार्य करेंगे। फिर देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अनैतिकता, असामाजिक व्यवहार इत्यादि अपने आप समाप्त हो जाएंगे। आज का बालक ही कल का भविष्य निर्माता है।

अति प्रचीन काल में मनुष्य पशुवत जीवन जीता था। तब उसे जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता था। उस समय शक्तिशाली ही जीवित रह सकता था। अत' मनुष्य को अपना बल बढ़ाना होता था। तब सम्भवतः सघर्ष और शक्ति ये ही उसके जीवन मूल्य रहे होंगे। धीरे-धीरे मनुष्य प्राकृतिक जीवन से सामाजिक जीवन की ओर अग्रसर हुआ। ऐसे सामाजिक जीवन की ओर जिसमे संघर्ष और शक्ति के स्थान पर प्रेम सहानुभूति और सहयोग का महत्व था, जिसमे निर्बल लोगो का जीवन भी सुरक्षित हुआ। इसी प्रेम, सहानुभूति और सहयोग को हम मूलभूत सामाजिक नियम, आदर्श, सिद्धात, व्यवहार, मानदंड अथवा मूल्यो की सज्ञा दे सकते हैं। पर जैसे-जैसे हमने अपना विकास किया हमारे समाज का रूप संश्लिष्ट होता चला गया। उसके विभिन्न आयाम विकसित हुए— सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक— इन्ही के साथ-साथ सभी समाजो मे इन आयामो से सबधित विश्वास, आदर्श, सिद्धांत और व्यवहार मानदड विकसित हुए। मनुष्य इन विश्वासो, आदर्शो, सिद्धातो और व्यवहार मानदंडों को समाज के बीच रहकर सीखता है। सामान्य रूप से आज इन्हे ही मूल्य की सज्ञा दी जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मूल्य तो व्यक्ति अपने समाज की विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने से स्वय ग्रहण करता है, इन्हें औपचारिक रूप से सिखाने अथवा विकसित करने की क्या आवश्यकता है? दूसरा प्रश्न यह है कि यदि हमे वच्चो को मूल्यो की शिक्षा देनी है तो वह किन मूल्यो की? और प्रमुख प्रश्न यह है कि बच्चो को अगर मूल्यो की शिक्षा देनी है तो वह कब और किस प्रकार दी जाए? अगर विश्लेषणात्मक विचार किया जाए तो हमारे समाज मे बच्चे-बच्चे की जुबान पर सत्य, अहिसा और ब्रह्मचर्य विराजमान है। प्रेम, दया, दान, सहयोग और सेवा इन सबसे भी हम परिचित है। कर्म का सिद्धात तो हमारी अपनी थाती है, पर इसको कितने लोग जीवन मे उतार रहे है। आज हमारे देश में लोकतान्त्रिक शासन के तहत विधायक, सासद, मंत्री सभी गोपनीयता एव राष्ट्रहित की कसम खाते है परतु इस पर अमल कितना किया जा रहा है, प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। किसी भी विभाग मे काम कम और रिश्वत अधिक दिखाई देगी। सब एक-दूसरे का शोषण करने पर उतारू है। आखिर यह सब क्यो हो रहा है? इसका एक ही उत्तर है— मूल्य का अभाव। मूल्यो के अभाव मे भाषा अर्थहीन हो गई है, व्यवहार अनिश्चित हो गया है, लोगो का एक-दूसरे से विश्वास उठ गया है, सब एक-दूसरे को शका की दृष्टि से देख रहे है, समाज मे नगा नृत्य हो रहा है और मनुष्य तनावपूर्ण जीवन जी रहा है। हमे लगता है कि अगर हम समय रहते नही चेते तो वह दिन दूर नही जब हम पुन' बर्बरता के युग में प्रवेश कर जाएगे। यदि हम मानव सभ्यता और सस्कृति की सुरक्षा चाहते हैं तो हमे 'मूल्य' शिक्षा पर बल देना होगा। इस युग मे हमारे देश सहित अन्य देशो में जितने भी शिक्षा आयोग और समितियो का गठन हुआ है सभी ने किसी न किसी रूप मे मूल्य शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है।

कोठारी आयोग 1964-66 ने मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने की बात कही। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 द्वारा इस बात पर चिता व्यक्त की गई कि विद्यालय बालक में उचित मूल्यो का निर्माण करने मे सक्षम है और इस बात पर बल दिया गया कि विद्यालयो को अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए। किन मूल्यों की शिक्षा दी जाए; एन.सी.ई.आर.टी. ने अपने तत्संबंधी दस्तावेज मे निम्न मूल्यो की सूची तैयार की है– ● दूसरों के सास्कृतिक मूल्यो की सराहना, ● अस्पृश्यता का विरोध, ● नागरिकता, ● दूसरों की चिता, ● दूसरो का ध्यान रखना, ● सहयोग, ● सामान्य अच्छाई, ● प्रजातात्रिक निर्णय लेना, ● व्यक्ति की महत्ता, ● शारीरिक कार्य का सम्मान, ● साथी भावना, ● अच्छे आचरण, ● राष्ट्रीय समाकलन, ● आज्ञा पालन, ● समय का सदुपयोग, ● ज्ञान की खोज, ● सयम, ● करुणा, ● सामान्य लक्ष्य, ● शिष्टाचार, ● भक्ति, ● स्वास्थ्य कर जीवन, ● अखंडता, ● शुचिता, ● निष्कपटता, ● आत्म-नियत्रण, ● साधन सम्पन्नता, ● नियमितता ● दूसरों का सम्मान ● वृद्धावस्था का सम्मान, ● सादा जीवन, ● सामाजिक न्याय ● स्वानुशासन, ● स्व-सहायता, ● स्व-सम्मान, ● आत्मविश्वास, ● स्व-समर्थन, ● स्वाध्याय, ● आत्म-निर्भरता, ● आत्म-नियंत्रण ● समाज सेवा, ● मानव जाति की एकात्मकता ● अच्छे बुरे मे विभेद के भाव ● सामाजिक उत्तरदायित्व के भाव, ● स्वच्छता, ● साहस, ● जिज्ञासा, ● धर्म, ● अनुशासन, ● सहनशीलता, ● समानता, ● मित्रता, ● वफादारी, ● स्वतंत्रता, ● दूरदर्शिता, ● सज्जनता, ● कृतज्ञता, ● ईमानदारी, ● सहायकता, ● मानवतावाद, ● न्याय, ● सत्यता, ● सहिष्णुता, ● सार्वभौमिक सत्य, ● सार्वभौमिक प्रेम, ● राष्ट्रीय व जन सम्पत्ति का महत्व, ● नवीन पहल, ● दयालुता, ● जीवों के प्रति दया, ● धर्म-परायणता, ● नेतृत्व, ● राष्ट्रीय एकता, ● राष्ट्रीय चेतना, ● अहिसा, ● शांति, ● देशभक्ति, ● समाजवाद, ● सहानुभूति, ● धर्मनिरपेक्षता, ● पृच्छा का भाव, ● दल-भावना, ● समय की पाबंदी, ● दल कार्य। एन सी ई.आर.टी के ही कुछ लोगो को यह सूची बहुत लम्बी और अटपटी लगी और उन्होने बहुत मथन और चितन के बाद स्कूली शिक्षा के लिए पच मूल्य सूत्र– सफाई, सच्चाई, श्रम, समानता और सहयोग की सूची प्रस्तुत की।

अब मुख्य प्रश्न यह है कि मूल्य शिक्षा कब और कैसे दी जाए। समाजशास्त्रियों के अनुसार मनुष्यों मे मूल्यों का विकास समाजीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ होता है लेकिन अगर सूक्ष्म दृष्टि से मूल्याकन किया जाए तो मूल्यो का निर्माण 'स्व-सस्कृति ग्रहण' की प्रक्रिया द्वारा होता है। इसमे मुख्य भूमिका परिवार, समुदाय और विद्यालय की रहती है। अतः निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य शिक्षा शिशु काल से ही शुरू कर देनी चाहिए और इसके लिए बच्चों को उचित सामाजिक एव सांस्कृतिक पर्यावरण देने हेतु बच्चो के खेल का सहारा लिया जा सकता है क्योंकि बच्चो के खेल का अपना सिद्धांत है। अत. पहले खेल के सिद्धात पर चर्चा करनी आवश्यक है।

अतिशय शक्ति सिद्धांत

वचपन मे प्रत्येक प्राणी के पास अतिशय शक्ति का भंडार रहता है। कुछ शक्ति तो उसके शारीरिक विकास मे व्यय हो जाती है और शेप वह खेल-कूद मे व्यय करता है। अत. खेल अतिशय शक्ति को व्यय करने का साधन है। अगर अतिशय शक्ति खेल द्वारा वाहर नही निकाली जाए तो वालक की शक्ति अवरोधित होती है तथा प्रौढ अवस्था तक व्यक्ति शिथिल बन जाता है।

मनोरंजन का सिद्धांत

बच्चा अपनी थकावट को दूर करने तथा मनोविनोद के लिए खेलता है। मनोविनोदात्मक नाडी मडल (Nurveous System) नए पथो की शक्तियो का उपयोग करते हे और थके हुए पथो को अवकाश देते हैं। इस अवकाश के कारण थके हुए पथो मे थकान के कारण जो जहरीला पदार्थ एकत्रित हो जाता है वह समाप्त हो जाता है। थके हुए पथ पर चयन क्रिया (Anabalism) द्वारा शक्ति संचय कर लेते हैं और इसलिए बच्चे में स्फूर्ति आ जाती है।

पूर्वाभिनय सिद्धांत

मेलब्राक, कार्लग्रुस का अध्ययन है कि बच्चा खेल मे अपनी बौद्धिक शक्तियो तथा निधियो का प्रदर्शन करता है और अपनी उन मुख्य रुचियों की खोज करता है जो उसके प्रौढो को आती हैं जैसे– बिल्ली का बच्चा ऊन की गेंद से शिकार करने जैसे खेलता है क्योकि उसे बाद मे शिकार करना है। कुत्ते का बच्चा अपने भाई का पीछा करता है और उसे पछाड़ता है क्योकि उसे अपने शिकार का पीछा करना है।

ग्रुस महोदय का मानना है कि 'मनुष्य तथा पशु तब तक तरुण रहते है जब तक उन्हें प्रौढ़ जीवन की गंभीर तैयारी के लिए खेलना आवश्यक है।'

चर्चिल महोदय ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है 'उन्होने फौजी जीवन इसलिए अपनाया क्योंकि बचपन मे वे खिलौनो के सिपाहियो से खेला करते थे।' बचपन मे लड़किया गुड़ियों से खेलती है क्योंकि आगे चलकर उन्हे मां बनना होता है और बच्चो का पालन पोषण करना होता है।

जाति स्वभाव पुनरावर्तन स्वभाव

स्टेनलीहाल का मानना है कि बच्चा खेल द्वारा अपनी जाति के इतिहास की पुनरावृत्ति करता है। बच्चों को लुक-छिपकर खेलना, शिकार करने का खेल खेलना, गेंद फेंकने का खेल खेलना, छोटे-छोटे मकान बनाना आदि खेल की क्रिया विरेचन का काम करती है। 'मनुष्य अपनी क्रूरता व बुराई की पुरानी प्रवृत्तियों का सर्वथा उन्मूलन नहीं कर सकता परंतु खेल द्वारा उन बुराईयो को दूर कर उन्हें नैतिक मूल्यो वाली भावनाओ मे बदलने का प्रयत्न करता है। यह विरेचन सिद्धात पुनरावर्तन सिद्धात की व्याख्या करता है।

अत. पूर्वाभिनय सिद्धांत तथा जाति स्वभाव पुनरावर्तन का सिद्धांत दोनों एक-दूसरे के पूरक है क्योंकि बच्चे के खेल एक ही समय मे पूर्वजों की क्रियाओ का पुनरावर्तन तथा प्रौढों की क्रियाओ का पुर्वाभिनय कर सकते है।

गाधीजी द्वारा आत्म कथा मे वर्णित घटनाओं की अगर चर्चा की जाए तो उन पर राजा हरिश्चंद्र नाटक एवं माता के साध्वी स्वभाव की अमिट छाप थी जिन्होने बाद मे चलकर सत्य, अहिंसा को धारण किया। अत. खेल के द्वारा बच्चों में मूल्य का विकास किया जाए तो वह उनके जीवन की प्रौढ़ अवस्था तक स्थायी रूप से बच जाएंगे और समाज के व्याप्त बुराईयों से इस बालक को बचाया जा सकता है।

अत. वच्चो के शिक्षण का प्रारम्भ और उसी अवस्था से मूल्य शिक्षा की शुरुआत अगर साथ-साथ की जाए तो यह मूल्य स्थायी एवं अपरिवर्तनीय होगा। सबसे पहले शिक्षा की उम्र एव वालक की अवस्था का वर्गीकरण करना होगा। कोठारी आयोग– 1964-66 ने प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राथमिक शिक्षा के शिक्षा क्रम को निम्न प्रकार बाटा है–

- ☐ पूर्व-प्राथमिक किडन गार्डन, माटेसरी आयुक्रम (3 वर्ष से 5 वर्ष)
- ☐ प्राथमिक कक्षा 1 से 7 या 8 तक आयुक्रम(6 से 14 वर्ष) इसे दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है–
  - निम्न प्राथमिक कक्षा 1 से 4 तक आयुक्रम (6 से 9 वर्ष)
  - उच्च प्राथमिक कक्षा 5 से 7 या 8 तक (10 से 14 वर्ष)

पूर्व प्राथमिक (3 वर्ष से 5 वर्ष) स्तर पर मूल्य शिक्षण

- ★ इन बच्चो के समक्ष शिक्षक उसके जीवन की वह निधि है जिसके आगे बालक अपने माता-पिता एव समाज के किसी भी व्यक्ति को निम्न समझता है। अत बच्चो के सामने शिक्षक को आदर्श 'मूल्य' प्रस्तुत करना परम आवश्यक है। बच्चे की उम्र अतिशय शक्ति सिद्धांत की होती है। अतः वह खेल अपने अतिरिक्त ऊर्जा को व्यय करने के लिए खेलते है।
- ★ बच्चों को उत्साह एवं वीरता पूर्ण खेल खिलाया जाना चाहिए क्योकि वालक अतिशय ऊर्जा सिद्धांत से सचालित होता है।

★ बालक को पढ़ने हेतु पाठ्यक्रम बोझ के रूप में प्रस्तुत न करके उसके मनोरंजन के रूप मे प्रस्तुत किया जाए।

★ छात्र के समक्ष बाहदुर सिपाही, न्यायप्रिय परी, ईमानदार राजा जैसी मूल्य परक कहानी प्रस्तुत की जाए तथा छात्रो को उसी के अनुरूप व्यवहार करने हेतु प्रोत्साहित किया जाए।

★ छात्रों को रचनात्मक खेल खेलने हेतु प्रोत्साहित किया जाए व शिक्षक उनके साथ-साथ सहभागी अवलोकन करते रहे तथा समय-समय पर उसके व्यवहार मे आवश्यकतानुसार सुधार करे।

★ छात्रों मे बड़े एवं छोटे के साथ छोटे और बडे भाई का व्यवहार प्रदर्शित करने का अभ्यास कराना चाहिए।

प्राथमिक (6 से 9 वर्ष)

★ प्रार्थना (सर्वधर्म), अच्छे कार्य करने वाले वालकों को आगे बुलाना तथा उनकी प्रशंसा करना, (जरूरत पर पुरस्कृत भी किया जा सकता है) सत्य बोलने वाले छात्रों को उनके द्वारा की गई गलती को माफ कर देना। अहिंसा और न्याय की प्रतिदिन दस मिनट की कहानी सुनाना तथा बच्चो से स्वय ऐसी कहानी सुनना।

★ इस अवस्था मे बालक मनोरजन के सिद्धात द्वारा सचालित होता है। अत उनकी शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था मनोरजन द्वारा की जानी चाहिए जैसे—

● बच्चो को खेल-खेल में गणित का ज्ञान देना, जैसे— टोली बनाना और बच्चों को स्वय गिनने के लिए कहना।

● वस्तु का वितरण करना तथा प्रत्येक बच्चे से उसका हिसाब पूछना तथा लिखवाना।

● एक टोली के बच्चों को दूसरी टोली में डालना और निकालना तथा उसकी छात्रो से गणना कराना।

● बच्चो से प्रश्नों के माध्यम से टोली के हेर-फेर तथा खेल-खेल मे गुणा, भाग, जोड़, घटाना इत्यादि का शिक्षण कराना।

★ भाषा का ज्ञान खेल के माध्यम से जैसे आप अपनी टोली का नाम लिखे।

★ टोली का नाम महापुरुषों के नाम पर रखना तथा प्रत्येक बालक को उस महापुरुप की कहानी, जीवन परिचय से परिचित करना तथा उनके अनुसार व्यवहार करने हेतु प्रोत्साहित करना।

उच्च प्राथमिक (10 से 14 वर्ष) स्तर पर मूल्य शिक्षा

इस अवस्था मे बालक मे चितन करने की क्षमता का विकास हो चुका होता है। अतः खेल के चारो सिद्धांत परिपक्वता की अवस्था में पहुंच चुके होते हैं तथा खेल खेलने की अभिव्यक्ति तथा प्रदर्शन में परिपक्वता का समावेश होता है। बालक के हर खेल में चिंतन तथा उसकी सोच एव विचार तथा प्रारम्भिक मूल्य का प्रभाव होता है। अत शिक्षक को यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस भी मूल्य की शिक्षा छात्र को दी जाए उसे खेल-खेल में दी जाए तथा बार-बार पुनरावृत्ति ए अभ्यास से स्थायी भाव का निर्माण कर आदत में बदलने का प्रयास किया जा सकता है। क्योकि यही आदत य स्थायी भाव वालक के कार्य का निर्देशन उसके जीवन पर्यत करते रहते हैं। उदाहरणार्थ— हिंदू धर्म के बालक अपने परिवार के साथ-साथ मदिर मे जाते-जाते मंदि में जाना तथा प्रतिमा के सामने शीश झुकाने वाले मूल्य का विकास कर लेते हैं जो उनके जीवनपर्यत चलत रहता है, इसकी शिक्षा उन्हे फिर दुबारा नही देनी पड़त है। अतः मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य इत्यादि मूल्य की शिक्षा बालक को इस अवस्था मे खेल द्वारा देन. अधिक उपयुक्त होगा।

★ खेल द्वारा शिक्षा हेतु विद्यालय मे छात्रो के लिए प्रतिदिन एक घटे का समय निर्धारित किया जाना चाहिए।

★ साप्ताहिक तथा मासिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया जाना चाहिए जिसमे ग्राम स्तर, जिला स्तर

तथा राज्य स्तर पर बालकों के खेलो का आयोजन कराया जाना चाहिए तथा वांछित मूल्य निर्धारित व्यवहार प्रदर्शित करने वाले छात्रों को उचित पुनबर्लन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

★ विद्यालय के बालकों के लिए मूल्य परक व्यवहार की पहचान तथा पुरस्कार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

★ विषम परिस्थिति में मूल्य के अनुरूप व्यवहार प्रस्तुत करने वाले बालकों को राज्य स्तरीय पुरस्कार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

★ बालको के समक्ष शिक्षक को हमेशा आदर्शात्मक व्यवहार प्रस्तुत करना चाहिए।

★ वांछित मूल्यों को प्रोत्साहित तथा अवाछित मूल्यों को निरुत्साहित किया जाना चाहिए।

★ विद्यालय मे मानसिक, शारीरिक, मनोरजनात्मक, खेल का आयोजन किया जाए तथा खेल का निर्धारण मूल्य को ध्यान में रखकर किया जाए।

★ प्रत्येक वालक को उसकी रुचि, क्षमता, योग्यता इत्यादि को ध्यान मे रखकर खेल का अवसर उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

★ सृजनात्मक खेल तथा सृजनात्मक तरीके से मूल्य का निर्माण किया जाना चाहिए तथा इसके लिए प्रत्येक शिक्षक की योग्यताओ तथा अनुभवो का पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए।

अत' निष्कर्ष स्वरूप हम यह कह सकते है कि बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था तक के समय में खेल के सिद्धांतों के अनुरूप खेल-खेल मे मूल्य की शिक्षा प्रदान की जा सकती है और अगर मूल्य बाल्यावस्था तक परिपक्व एव आदत के रूप मे वर्णित हो जाएं तो फिर यही मूल्य बालक के व्यवहार के दिशा निर्देश का कार्य करेगे। फिर देश मे व्याप्त भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अनैतिकता, असामाजिक व्यवहार इत्यादि अपने आप समाप्त हो जाएगे। आज का बालक ही कल का भविष्य निर्माता है। ❑❑

शिक्षा विभाग
शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय
एम. जे. पी. रुहेलखंड विश्वविद्यालय
बरेली, उत्तर प्रदेश

मानव अधिकार के प्रति जागरूकता

❒ मधुरिमा

मानव इतिहास के सम्पूर्ण काल में सभी समाजो और संस्कृतियो में कुछ ऐसे अधिकार और सिद्धात लागू रहे हैं जिनका न केवल सम्मान किया जाता था बल्कि उनका संरक्षण भी किया जाता था। इसी आधार पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मानवाधिकारों की आवाज बुलद हुई। प्रत्येक मनुष्य को अधिकारो के उपभोग और संरक्षण का अधिकार है। विश्व भर मे सभी क्रातिकारी आदोलनो ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य के अधिकार अहरणीय (अहस्तातरणीय) और पवित्र हैं। मानवाधिकारों की समकालीन सकल्पना को बीसवी शताब्दी और दो विश्व युद्धो के सदर्भ में देखा जाना चाहिए। मानव इतिहास मे सयुक्त राष्ट्र का आविर्भाव एक युगातकारी घटना है।

सयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र मे मौलिक मानवाधिकार, मनुष्य की गरिमा एवं महत्व, स्त्री-पुरुष और छोटे-बड़े राष्ट्र के समान अधिकारों में पूर्ण विश्वास व्यक्त किया गया है। सार्वभौमिक घोषणा के बाद अन्य घोषणाएं की गई। मनुष्य के कुछ नागरिक और राजनीतिक अधिकार है जो स्वतत्रता को सर्वोच्च महत्व देते हैं। बाद मे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सुरक्षा से संबधित अन्य अधिकार घोषित किए गए। हाल मे ही मानवता के लिए खतरा बनी कुछ नई समस्याओं और मुद्दो के सदर्भ में अन्य कई मानवाधिकार उभरे हैं। ये पर्यावरण, संस्कृति और विकास के मुद्दो से संबधित है। इन अधिकारो का संबंध समूहो और लोगों से है, इनमे शामिल हैं– आत्मनिर्णय का अधिकार और विकास का अधिकार।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित मानवाधिकारो के संबध मे प्रस्तावना के अतिरिक्त 30 अनुच्छेद भी है। इन अधिकारो को मूल रूप से दो भागो मे विभाजित कर सकते है– राजनीतिक नागरिक अधिकार और आर्थिक-सामाजिक-सास्कृतिक अधिकार। पहली श्रेणी मे व्यक्तिगत स्वतत्रता, घूमने-फिरने की स्वतत्रता तथा राज्य द्वारा कई हस्तक्षेपो से स्वतत्रता आदि आते है। दूसरी श्रेणी के अधिकारो में रोजगार का अधिकार, शिक्षा, न्यूनतम जीवन स्तर को बनाए रखने हेतु कपडा, मकान और भोजन आदि का अधिकार आता है। साथ ही साथ जीवन को विपम परिस्थितियों जैसे– बीमारी, बुढ़ापा अथवा शारीरिक अक्षमता आदि में राज्य से सुरक्षा की गारटी भी सम्मिलित है।

मानवाधिकारों को भारतीय संविधान में नीति निर्देशक सिद्धांतों में समाहित करने का प्रयास किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सभी मानवाधिकार जो व्यक्ति को मानव रूप में जन्म लेने के कारण प्रकृति प्रदत्त हैं, वास्तव में क्या वे उपयोग में आते भी हैं या नहीं।

भारतीय संविधान और मानवाधिकार

भारतीय संविधान में सभी मानवाधिकारो को शामिल किया गया है। प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धात मिल कर मानवाधिकारो की वैश्विक घोपणा और नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारो के समझौतो तथा आर्थिक-सामाजिक व सास्कृतिक अधिकारों की भावना को व्यक्त करते है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि सभी भारतवासियों ने अपने समस्त नागरिकों को 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय', विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता, व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बधुता बढ़ाने का सत्यनिष्ठा के साथ सकल्प लिया है।

भारत के सविधान मे निम्नलिखित मानवाधिकारो को सम्मिलित किया गया है–

क्रम संख्या	*विषय*	*मानवाधिकार अनुच्छेद*	*भा.संवि.कानून*
1.	कानून के समक्ष बराबरी	7	14
2.	धर्म, लिंग, जन्म स्थान, जाति आदि के आधार पर भेदभाव पर रोक	2(1)	15
3	सार्वजनिक संस्थानो मे नौकरी के समान अवसर	21(2)	16(1)
4.	अभिव्यक्ति, सभा करने, संघ बनाने की आजादी	19,20 (1,2) 24(4)	19(1)
5	दोष प्रमाणित होने से पूर्व निर्दोष माने जाने का अधिकार तथा ऐसे कार्यो के लिए सजा से सुरक्षा जो उस कार्य को करने के समय कानून मे अपराध नही हो	11 (1, 2)	20(1)
6.	जीवन एव व्यक्तिगत स्वतत्रता की सुरक्षा	3,9	(21)
7.	मनुष्य के व्यापार पर एवं जबरन काम कराने पर प्रतिबंध	4	23(1)
8.	किसी भी धर्म मे विश्वास करने तथा उसके प्रचार करने की आजादी, अंत.करण की आजादी	18	25(1)
9	अल्पसख्यकों के हितो की सुरक्षा	22	29(1)
10	अल्पसंख्यको को शिक्षण संस्था खोलने और उनको प्रशासित करने का अधिकार	26(3)	30(1)
11.	अधिकारों के हनन के सवैधानिक प्रतिकार का अधिकार	8	32, 226
12.	उत्पीडन विरोधी व्यवस्था	5	भा.दं.सं -330, 331, कानूनी अधिकार
13	न्यायोचित एवं निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार	10	सवैधानिक
14.	सम्पत्ति रखने का अधिकार	17	कानूनी
15.	सरकार में प्रत्यक्ष या प्रतिनिधियों द्वारा भाग लेने का अधिकार/वयस्क मताधिकार द्वारा सरकार बनाने का अधिकार	21	सवैधानिक
	वे अधिकार जिन्हें संविधान में स्थान नही मिल पाया (1996 तक)		
1.	सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, आर्थिक, सामाजिक एव सास्कृतिक अधिकार जो व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हों	22	–
2	काम का अधिकार, उचित मजदूरी का अधिकार।	23	–
3.	ऐसे जीवन स्तर का अधिकार जो व्यक्ति के जीवन स्तर के लिए आवश्यक हो– घर, भोजन, कपड़ा, बीमारी आदि से इलाज आदि का अधिकार	25	–
4.	शिक्षा का अधिकार	26	–

इन मानवाधिकारों को भारतीय संविधान मे नीति निर्देशक सिद्धांतो में समाहित करने का प्रयास किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सभी मानवाधिकार जो व्यक्ति को मानव रूप में जन्म लेने के कारण प्रकृति प्रदत्त हैं, वास्तव मे क्या वे उपयोग में आते भी हैं या नही। ये मानवाधिकार कई कारणों से बाधित होते हैं– एक तो मानवाधिकार विरोधी कानून बनाकर, दूसरा जानबूझकर इनको न मान कर, तीसरा समाज की मानवाधिकार विरोधी प्रथाओं एवं गलत परम्परा का अनुकरण कर। निर्धन और अशिक्षित समाज मे मानवाधिकारों का हनन सर्वाधिक होता है। *सर्वाधिक हनन नारी के अधिकारों का होता है। पुलिस* की ज्यादतियां भी इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। बाल श्रमिकों का शोषण, बधुआ मजदूरो का शोषण, आदिवासियों का शोषण एवं विकास के नाम पर विस्थापन और जल, जगल, जमीन पर उनके अधिकारो को चुनौती आदि मानवाधिकार के हनन के उदाहरण है।

मानवाधिकार के प्रति जागरूकता क्यों?

मानव मात्र होने के कारण उसके स्वय के विकास एवं क्षमताओं के प्रस्फुटन के लिए कई व्यवस्थाओं की सुनिश्चितता आवश्यक है। इन व्यवस्थाओं, दशाओ अथवा परिस्थितियो को ही व्यक्ति के मानवाधिकार के रूप मे समझा जा सकता है जैसे– जीने का अधिकार। भारतीय परिप्रेक्ष्य मे सामान्यत मानवाधिकारों के प्रति आम जनता में जागरूकता का अभाव-सा परिलक्षित होता है। फलत शोषण, अन्याय, उत्पीडन, अत्याचार, लोगो के अधिकारों का हनन आदि सामान्य रूप से प्रचलित हैं। वस्तुत देश व समाज के समग्र विकास के लिए, लोकतात्रिक व्यवस्था की सुचारूता के लिए यहां के लोगों मे इन अधिकारो के प्रति जागरूकता का होना अत्यत आवश्यक है। जागरूक व्यक्ति से ही जागरूक समाज और राष्ट्र का निर्माण सम्भव है। संक्षेप में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता की आवश्यकता को निम्न शीर्षकों मे व्यक्त किया जा सकता है–

- ☐ व्यक्ति के अस्तित्व के लिए।
- ☐ शोषण व अन्याय के प्रतिकार के लिए।
- ☐ आजीविका की प्राप्ति हेतु।
- ☐ लोगो मे कर्तव्य भावना की जागृति के लिए।
- ☐ नागरिकता बोध विकसित करने के लिए।
- ☐ समाज मे समानता की स्थापना के लिए।
- ☐ सास्कृतिक सुरक्षा व सरक्षण के लिए।
- ☐ मूल्य आधारित व्यवस्था की स्थापना के लिए।
- ☐ स्वस्थ लोकतत्र की स्थापना हेतु।
- ☐ राष्ट्र के समग्र विकास के लिए।

जागरूकता का प्रसार कैसे?

पाठ्यक्रम में शामिल करके– वैसे तो 'मानवाधिकार' शब्द पर्याप्त प्रचलित हो चुका है, किंतु इसकी अवधारणा के विषय मे व्यापक अनभिज्ञता देखने को मिलती है। अत यह आवश्यक है *कि मानवाधिकारों के सम्बध मे गभीरतापूर्वक* छात्रो को जानकारी दी जाए। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने मानवाधिकार को एक विषय के रूप मे विद्यालयो और पुलिस प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित करने की दिशा मे कुछ पहल की है। मानवाधिकार में प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम, डिप्लोमा पाठ्यक्रम विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा वर्तमान में चलाए जा रहे है। हालाकि कई मानवाधिकार संस्थान भी इससे संबधित विभिन्न प्रकार के सक्षिप्त पाठ्यक्रमो को सस्थागत एवं पत्राचार माध्यम से सचालित कर रहे है, किंतु इसे और बढ़ाने की जरूरत है।

संचार माध्यमों का उपयोग– विभिन्न प्रकार के सचार माध्यमो का उपयोग हम मानवधिकार के प्रति जागरूकता के प्रसार के क्षेत्र मे कर सकते है। सचार क्राति के इस युग में टेलीविजन, रेडियो एवं सिनेमा का इस दिशा में बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त परम्परागत सचार माध्यमो जैसे– कठपुतली, नुक्कड़ नाटक, सांस्कृतिक आयोजन, धार्मिक समारोहो के द्वारा भी लोगों मे जागरूकता का फैलाव किया जा सकता है।

विधिक साक्षरता कार्यक्रमों द्वारा– आम जनता विशेष कर ग्रामीण जनता जो कि निर्धनता के साथ ही निरक्षरता से पूरी तरह ग्रस्त है, को विभिन्न प्रकार के विधिक साक्षरता शिविरो के माध्यम से मानवाधिकारो के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कानून, सवैधानिक व्यवस्थाओ जैसे– मूल अधिकार आदि व राष्ट्रीय मानवाधिकार के कार्य व अधिकार के सबध मे विधिवत जानकारी प्रदान की जा सकती है। हमारे यहां श्रम के क्षेत्र में असंगठित श्रमिकों का शोषण व उत्पीडन ज्यादा है जैसे– कृषि, भवन निर्माण आदि। इन लोगो के बीच

भी इस तरह के साक्षरता कार्यक्रमो का आयोजन किया जा सकता है।

सरकारी संगठनों/विभागों का मानवाधिकार के प्रति अभिमुखीकरण— शासन अपने विभिन्न सगठनो/विभागों के माध्यम से राज्य के विकास के लिए कार्य करता है। वर्तमान मे यह देखा जा रहा है कि अनेकों सरकारी विभागो/संगठनो जिनका आम जनता से सीधा संबध है, के द्वारा मानवाधिकारो की लगातार उपेक्षा की जा रही है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि इसके द्वारा असमानता, भेद भाव व शोषण को प्रश्रय भी मिल रहा है, जैसे— पुलिस,वन पचायती राज्य आदि विभाग। एक उदाहरण के रूप मे देखे तो पुलिस विभाग जिसके पास लोगो की सुरक्षा का दायित्व है, को विशेष रूप से मानवाधिकार के प्रति सवेदित किया जाना चाहिए। अभियुक्तों के साथ किया जाने वाला अमानवीय व्यवहार, क्रूरता, थानो मे महिलाओ के साथ होने वाली अभद्रता, पुलिस जनों का अमानवीय आचरण इस विभाग की भयावह तस्वीर दिखलाता है। इन्हे अभिमुखीकरण के द्वारा मानवाधिकार सवेदित व्यवहार अपनाने की ओर प्रेरित किया जाना चाहिए।

स्वैच्छिक संगठनों का मानवाधिकार के प्रति संवेदीकरण—

- *नेटवर्को का सवेदीकरण*— स्वैच्छिक सगठनों के राष्ट्रीय नेटवर्को जैसे— वाणी (वालेटरी एक्शन नेटवर्क इडिया) विहायी (वालेटरी हेल्थ एशोसिएशन ऑफ इडिया तथा प्रादेशिक नेटवर्को जैसे— उपवन (उ.प्र. वालेटरी एक्शन नेटवर्क) तथा क्षेत्रीय नेटवर्को जैसे— वान (देवरिया), सहयोग (गोरखपुर), राही इडिया (झांसी) आदि को मानवाधिकार के प्रति सवेदित किया जाए ताकि ये नेटवर्क अपने से जुड़े हुए सैकड़ों सदस्य संगठनो को इस दिशा मे कार्य करने को प्रेरित कर सके।
- *मानवाधिकार के प्रति कार्यरत संस्थाओं का चिन्हीकरण*— राष्ट्रीय, प्रादेशिक और क्षेत्रीय स्तर पर आज अनेको स्वैच्छिक संस्थाएं सफलतापूर्वक मानवाधिकार से जुडे मुद्दो के प्रति समुदाय से जुड़ कर सघन रूप से काम कर रही है। स्त्री शिक्षा, महिला उत्पीडन, बाल अधिकार, आदिवासियों के विकास, पर्यावरण संरक्षण व जल, जगल, जमीन जैसे मुद्दे इस सदर्भ मे उल्लेखनीय है। कुछ सगठन जैसे—पी.यू.सी. एल., पी यू.डी आर., पैरवी (नई दिल्ली), एन.सी.पी. एन आर. (केरल), वेटी फाउडेशन (लखनऊ), वात्सल्य (लखनऊ), प्रयास (दिल्ली), जी ई ए.जी (गोरखपुर) मानवाधिकार के क्षेत्र में प्रमुख रूप से कार्य कर रहे हैं। इस तरह की और सस्थाओं को चिन्हित कर उनके अनुभवो का दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए तथा मानवाधिकार के मुद्दे पर और अधिक काम करने की आवश्यकता के प्रति इन्हे संवेदित किया जाना चाहिए।

वस्तुतः किसी भी राज्य में लोगो के सर्वागीण विकास के लिए मानवाधिकारो की स्थापना व उनके संरक्षण की व्यवस्था का होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु वहा के लोगो का इन अधिकारो के प्रति जागरूक होना भी आवश्यक है। मानवाधिकार को शैक्षणिक पाठ्यक्रम का अग बनाकर औपचारिक रूप से छात्रों की एक बेहतर समझ विकसित करने के साथ ही उनके माध्यम से लोगो में इसके प्रति सजगता का प्रचार, प्रसार किया जा सकता है। जनसचार के आधुनिक व परम्परागत साधनो का उपयोग जागरूकता के प्रसार मे बेहतर ढग से आज दृश्य श्रृव्य माध्यम अत्यत प्रभावशाली व शक्तिशाली रूप से उभर कर आया है, इसके माध्यम से मानवाधिकार के क्षेत्र मे प्रयास करने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए। अत मे, लोकतत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में स्थापित स्वैच्छिक क्षेत्र को, मानवाधिकार के मुद्दे को जनता के बीच मे ले जाने के लिए मजबूती के साथ जोड़ा जाना चाहिए। यह वह क्षेत्र है जिसका स्थानीय समुदाय के साथ गहरा जुड़ाव है तथा जो जनभागीदारी के माध्यम से कार्यक्रम क्रियान्वयन मे विश्वास रखता है। मानवाधिकार के प्रचार, प्रसार व जागरूकता के लिए इन सगठनों द्वारा जन आदोलन भी खड़ा किया जा सकता है। ❑❑

शिक्षाशास्त्र विभाग
डी.जी. (पी.जी.) कालेज
सिविल लाइन्स, कानपुर
उत्तर प्रदेश

गणितीय विकलांगता और गणित अधिगम में समस्याएं

❑ स्मिता भवालकर
❑ अर्चना श्रीवास्तव

अधिगम की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है। यह एक क्रमिक तथा विविध चरणो की परस्पर सम्बद्ध प्रक्रिया है। विविध चरणों का अन्तर्सम्बन्ध अधिगम की दक्षता को प्रभावित करता है। शालेय पाठ्यक्रम मे सम्मिलित गणित विषय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, क्योकि यह केवल अन्य कई विषयो जैसे भौतिकी, रसायन, जीव विज्ञान, विज्ञान, वाणिज्य, भूगोल इत्यादि विषयो से सहसबधित है, वरन् व्यावहारिक जीवन मे भी कतिपय गणनाओ मे दक्षता भी व्यक्ति को सामान्य जीवन मे श्रेष्ठ कार्यक्षमता प्रदान करती हैं।

गणित विषय एक ओर मूर्त प्रकृति दर्शाता है, जहां हम अंकों की गणनाओं का उपयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर इस विषय की प्रकृति अमूर्त प्रतीत होती है; जब हम सकेतो का प्रयोग करते है जो इसे जटिल बनाते हैं। शालेय स्तर पर प्रायः देखा जाता है कि गणित विषय के प्रति 'भय' या 'अरुचि' का भाव विद्यार्थी के मन में रहता है। यह भय या अरुचि विषय की जटिलता के कारण न होकर उस विषय की जटिलता मान लिया जाता है। कॉपिट्ज (1971) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया कि 88 प्रतिशत बच्चे अपने अध्ययन के लिए अधिगम विकलांगता की श्रेणी के थे एवं गणितीय गणना मे अपेक्षित श्रेणी स्तर से पीछे पाए गए। गणित अधिगम के दौरान विद्यार्थियो द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियो का विश्लेषण करने पर कुछ त्रुटियां प्रायः दिखाई देती हैं, जैसे एक विद्यार्थी 6 को 9 की तरह या + को × की तरह देखता है तो उसका उत्तर गलत हो जाता है। सामान्यत· विद्यार्थियो द्वारा गणित में की जाने वाली त्रुटियो का विश्लेषण करने पर कुछ प्रमुख त्रुटिया उदाहरणस्वरूप आगे तालिका में प्रस्तुत हैं। यह उदाहरण उज्जैन शहर के विभिन्न विद्यालयो के प्राथमिक एव माध्यमिक स्तर के लगभग 200 विद्यार्थियों के मासिक परीक्षण के कार्य आधार पर लिए गए है।

गणितीय विकलांगता गणित अधिगम से संबंधित सम्प्रत्यय है, जिसकी अभिव्यक्ति गणित अवबोध व संक्रियाओं में प्रयुक्त उद्दीपनों (जिनमें संख्यांक, पारिभाषिक शब्द, चिन्ह व संकेत प्रमुखता से सम्मिलित हैं) में भ्रम होने अथवा विभेद करने की अक्षमता, मौखिक गणना में असफलता व गणितीय संक्रियाओं हेतु आवश्यक तर्कपूर्ण चिंतन में अक्षमता के रूप में होती है व परिणामस्वरूप विद्यार्थी की अपेक्षित उपलब्धि तथा वास्तविक उपलब्धि में सार्थक अंतर दिखाई देता है।

तालिका में प्रदर्शित उदाहरण दर्शाते हैं कि दोषपूर्ण अवधारणा अथवा अवधान की न्यूनता के कारण गणितीय संक्रियाओं में विद्यार्थी त्रुटियां करते हैं। इसी प्रकार घडी देखने अथवा समय सम्बन्धी इबारती प्रश्नों, भिन्न आधारित प्रश्नों, बीजगणित सम्बन्धी प्रश्नो व रेखागणितीय प्रश्नो मे इसी तरह की त्रुटिया व कठिनाईया देखी जाती है। परिणामस्वरूप गणित अधिगम में असफलता व्यक्त होती है।

अधिगम की असफलता विद्यार्थी के ज्ञानोपार्जन स्तर व अको के उपलब्धि स्तर को प्रभावित करती है। परिणामत· विद्यार्थी में नैराश्य व कुण्ठा भी विकसित होने की संभावना बढ़ती है।

गणित विषय के अधिगम मे आने वाली इस असफलता के निदान को लेकर शिक्षक व अभिभावक

तालिका
विद्यार्थियो द्वारा की जाने वाली त्रुटियों का विश्लेषण

	त्रुटिया		विश्लेषण
1	'छ. हजार पन्द्रह' को अको मे– 600015	1.	शब्दों को अको मे लिखने में कठिनाई
2	'24500' को शब्दो मे– 'दो हजार पैतालिस सौ'	2.	अंको को शब्दो में लिखने मे कठिनाई, स्थानीय मान से अनभिज्ञता
3	190 + 213 + 3999 का योगफल (अ) 190 213 + 3999 8029	3	(अ) स्थानीय मान के अनुसार सख्याए व्यवस्थित करने मे कठिनाई
	(ब) 190 213 + 3999 4302		(ब) योग की सक्रिया मे हासिल की सख्या की त्रुटिपूर्ण समझ
4	53 × 24 का गुणनफल 4. अ) 53 × 24 212 86× 1072 ब) 53 × 24 212× 106× 318		गुणलफल की सक्रिया करने मे कठिनाई
5.	234 ÷ 15 अ)15) 234 (8 120 10 अ)15) 234 (11 15 154 15 ××4	5	भागफल की सक्रिया करने मे कठिनाई

त्रुटियां		विश्लेषण	
6.	$\frac{1}{3} < \frac{1}{7}$	6	भिन्न की बड़ी व छोटी संख्या पहचानने मे कठिनाई
7.	$\frac{1}{3} + \frac{1}{5} = \frac{2}{8}$	7.	भिन्न की संख्या मे जोडने की सक्रिया मे कठिनाई
8.	$8.08 < 8.008$	8	दशमलव की बड़ी व छोटी सख्या पहचानने मे कठिनाई
9	22 12 × 4 4 अ) 22 12 ×4.4 8.848 8848× 968228 ब) 22 12 ×4 4 88 48 88.48× 97.328	9	दशमलव के स्थान की अभिज्ञनता के कारण गुणनफल मे कठिनाई
10.	8 कुर्सियो का मूल्य रुपए 640 है तो एक कुर्सी का मूल्य क्या होगा? 640 ×8 5120	10.	इबारत वाले प्रश्नो मे उचित सक्रिया का चयन व तर्क लगाने मे कठिनाई

हताशा का अनुभव करते है। ऐसे प्रकरणो का विश्लेपण दर्शाता है कि ये विद्यार्थी मूलत. मंदमति या निम्न बुद्धि लब्धि श्रेणी के नहीं हैं। इन्हे अधिगम विकलागता की श्रेणी मे रखा जाना चाहिए। अधिगम विकलागता को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– "अधिगम विकलांगता अवबोध की आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मे दोष, भाषा के लिखित या वाचित उपयोग में दोष अथवा श्रवण, चिन्तन, वाचन, लेखन, वर्तनी में दोष, गणितीय सक्रियाओ मे दोष अथवा अवधान में न्यूनता एवं/अथवा अपर्याप्त व अनुपयुक्त निर्देशन के फलस्वरूप उत्पन्न अधिगम समस्या है। जिसके कारण विद्यार्थी की अपेक्षित उपलब्धि व वास्तविक उपलब्धि में सार्थक अन्तर दिखाई देता है। इस श्रेणी के विद्यार्थियों मे दृश्येन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय या अन्य शारीरिक विकलागता तथा मानसिक मंदता से ग्रस्त विद्यार्थी सम्मिलित नही होते।'

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि यह विद्यार्थी अधिगम विकलांगता के एक पक्ष गणित विषय मे अधिगम विकलागता या गणितीय विकलांगता की समम्या से ग्रस्त है। पठन सम्बंधी विकलांगता के क्षेत्र की तुलना मे गणितीय विकलागता के क्षेत्र मे शोध कार्य कम हुए है। अतः गणित अधिगम के संदर्भ मे गणितीय विकलागता की अवधारणा के प्रति सामान्य अध्यापक की जागरूकता व चिन्तन पर्याप्त नही है।

हेसन (1919) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि विशिष्ट पठन सबंधी विकलांगता व 'अक अंधत्व' स्वतत्र रूप से पाए जा सकते है।

कॉस्क (1904) ने वास्तविक विकलांगता को उसके लक्षणों के आधार पर निम्नलिखित छ वर्गो में विभाजित किया है–

- **शाब्दिक गणितीय विकलांगता**–गणितीय शब्दावली एव सकेतों के शाब्दिक उपयोग मे कठिनाई।
- **प्रेक्टोग्निस्टिक डिसकेलकुलिया**–लक्षणों मे अंतर पहचानने या कुछ आयामों में भिन्नता रखने वाली वस्तुओ मे तुलना करने में अक्षमता, उदाहरण के लिए आकार सबंधी भिन्नता।
- **भाषायी गणितीय विकलांगता**– अक. संकेत या कई अको की संख्याओ को पढने मे कठिनाई।
- **लेखन संबंधी गणितीय विकलांगता**– बोले गए अंकों को लिखने या संकेत नकल करने में कठिनाई।
- **आइडियोग्निस्टिकल डिसकेलकुलिया**– गणितीय विचार को समझने और 'मन-गणित' करने मे कठिनाई।
- **संक्रियात्मक गणितीय विकलांगता**– मूलभूत संक्रियाए जैसे जोड़ना, घटाना इत्यादि करने मे कठिनाई, सक्रियाओं के मध्य और उपयुक्त कलन विधि में भ्रम।

रोर्के (1978) ने निष्कर्ष निकाला कि जो बच्चे पढ़ने और शब्द विन्यास मे सामान्य हों, लेकिन गणितीय प्रदर्शन मे विशेष रूप से कमजोर हो, उनमे 'दांए मस्तिष्क गोलार्द्ध से संबंधित दोष' हो सकता है, उसी तरह वे दांए गोलार्द्ध के द्वारा किये जाने वाले कार्यो में विशेष रूप से कमजोर प्रदर्शन कर सकते है।

इसके बाद लूरिया (1980) ने सुझाव दिया कि गणितीय विकलागता मस्तिष्क के पिछले बाहरी भाग के क्षेत्र की स्थानगत दोषपूर्ण क्रिया से संबधित है, जिसका परिणाम संख्याक में भ्रम है और गणना या अंक चिन्ह तथा सकेत (+, x, =) मे अतर करने मे अक्षमता। इस प्रकार की समस्या 'प्राथमिक अंकगणितीय बाधा या प्राथमिक गणितीय विकलांगता' थी। बाए कनपटी के फूले हुए भाग से संबधित दोषपूर्ण क्रियाविधि के कारण पदो के क्रम या मानसिक अथवा मौखिक गणना अथवा तर्कक्षमता मे सम्मिलित जटिल सक्रियाओं मे विशेष रूप से कठिनाई होती है। यह 'द्वितीयक अंकगणितीय बाधा' थी।

वुड (1980) ने सुझाव दिया कि कई अधिगम विकलांग बच्चों मे आधुनिक गणित समझने में कठिनाई देखी गई, जिसके कई कारण हो सकते हैं– प्रथम, उन्होने पाया कि आधुनिक गणित मे उपयोग की जाने वाली भाषा और शब्द भडार बहुत कठिन है। द्वितीय, संख्यांक लिखने मे दिशा संबंधी समस्या। तृतीय, कई अभिभावक आधुनिक गणित से परिचित न होने के कारण बच्चों की घर पर मदद करने मे सक्षम नहीं होते। भारत मे प्रचलित गणित पाठ्यक्रम मे प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर सम्मिलित प्रमुख अवधारणाओ का अध्ययन करने मे भी एक विशिष्ट शब्दावली प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिए, स्थानीय मान, सकलन, व्यवकलन, निरपेक्ष मान, परिमेय, समुच्चय, प्राकृत संख्या, पूर्ण संख्या, कलन विधि, प्रमेय इत्यादि शब्द ऐसे है जो भाषिक स्तर पर विद्यार्थियो को कठिन लग सकते हैं।

जॉनसन (1987) ने बताया कि अधिगम विकलागता के कई लक्षण गणितीय कठिनाई से संबधित हैं। भाषा, सम्प्रत्यय, दृश्य-स्थानगत योग्यता और स्मृति ये सभी तत्व गणित अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उपरोक्त विचारको (हेंसन, 1919, कॉस्क, 1974, रोर्के, 1978, लूरिया, 1980, वुड, 1980, जॉनसन, 1987) द्वारा प्रस्तुत व्याख्या के आधार पर अधिगम विकलांगता की अवधारणा के आधार पर गणितीय विकलांगता के प्रत्यय को समझने हेतु यहा इस प्रत्यय को इस प्रकार परिभाषित किया गया–

'गणितीय विकलांगता गणित अधिगम से सबंधित सम्प्रत्यय है, जिसकी अभिव्यक्ति गणित अवबोध व सक्रियाओ मे प्रयुक्त उद्दीपनो (जिनमे संख्यांक, पारिभाषिक शब्द, चिन्ह व सकेत प्रमुखता से सम्मिलित है) मे भ्रम होने अथवा विभेद करने की अक्षमता, मौखिक गणना में असफलता व गणितीय संक्रियाओ हेतु आवश्यक तर्कपूर्ण चिंतन में अक्षमता के रूप में होती है व परिणामस्वरूप विद्यार्थी की अपेक्षित उपलब्धि तथा वास्तविक उपलब्धि में सार्थक अतर दिखाई देता है।'

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि गणितीय विकलागता ऐसी अवधारणा है जो विद्यार्थियो की गणित अधिगम सबधी समस्याओ को हल करने में सहायक हो

सकती है। साथ ही यदि गणितीय विकलांगता के बने रहने की स्थिति में बौद्धिक क्षमता से परिपूर्ण व योग्य विद्यार्थी की शैक्षणिक उपलब्धि नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है। अतः यह ऐसी अवधारणा है जिस पर गणित अध्यापकों का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। विविध संक्षिप्त प्रशिक्षण कार्यक्रमो के माध्यम से इस अवधारणा को अध्यापकों तक सम्प्रेषित किया जा सकता है।

गणितीय विकलांगता के आरम्भिक लक्षण एवं विशेषताएं

कुछ बच्चों में सख्या संबंधी कठिनाई आरम्भिक अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चो को वस्तुओं को दक्षता से गिनने, मिलान करने, छांटने, तुलना करने और समझने की योग्यता तथा स्थान, रूप, क्रम, समय दूरी या मात्रा की समझ के लिए तैयार करना चाहिए। जो विद्यार्थी कम ध्यान केन्द्रित कर, दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण कौशल या दोषपूर्ण गत्यात्मक विकास या दक्षता की गतिविधि के क्षेत्र मे अपर्याप्त अनुभव रखते हैं, वे गणित अधिगम मे अपेक्षित परिणाम नही दर्शा सकते।

बच्चो मे आरम्भिक स्तर पर मात्रा के सम्प्रत्यय मे भाषा का उपयोग प्रभावी होता है, जैसे– छोटा, बड़ा, गोल, चौकोर, त्रिकोण इत्यादि। सामान्य तौर से छोटे बच्चे खिलौनों से खेलने के साथ अवधारणाओं को सीखते है। उदाहरण के लिए, विविध आकारों के पात्र, आपस में जुड़ने वाले घन और बड़े पात्र मे रखी जाने वाली वस्तुए, ये सभी गतिविधियां स्थान, क्रम और व्यवस्था की समझ विकसित करने मे मदद करती हैं। बाल्यकाल के ये अनुभव गणितीय अधिगम मे सहायक होते है। यदि बच्चे इन अनुभवों को भूल जाते है तो संभव है उनमे गणित अधिगम के सबंध मे कठिनाई देखी जा सकती है। अतः यह उचित लगता है कि इस तरह के अनुभव प्रदान करने वाली गतिविधियो को कक्षा शिक्षण के दौरान आवश्यकतानुसार समायोजित किया जाए।

कक्षा में विद्यार्थियो की निम्न उपलब्धि होने पर उन्हें निम्न या सामान्य से कम बौद्धिक क्षमता का मानकर पिछड़ा बालक या मदबुद्धि की श्रेणी में रखा जाना उचित निदान नही है। वे गणितीय विकलांगता की समस्या से ग्रस्त श्रेणी के हो सकते हैं। अतः गणितीय विकलांगता की पहचान के लिए शिक्षक को उनकी विशेषताओ की जानकारी होना आवश्यक है जो इस प्रकार है–

संज्ञानात्मक विशेषताएं– विद्यार्थी के कार्य पूर्ण करने के लिए आवश्यक कौशल, व्यूह रचना एवं स्रोतो के प्रति कम सजग रहते है। परिणामतः वे कार्य को पूर्ण करने के लिए गणित के प्रश्नों को हल करने हेतु आवश्यक समस्या समाधान प्रक्रिया, सूचना-स्रोतों के चयन, सूचनाओं को व्यवस्थित करने मे भी असफल होते हैं। निसंदेह उन बच्चों को गणित में भी समस्या होगी। वेंकटेश्वरलू (2003) के अनुसार इन बच्चो को विशेष रूप से जो समस्याएं आती हैं वे इस प्रकार हैं– ● समस्या समाधान के लिए उनकी योग्यताओ का मूल्याकन, ● उपयुक्त आव्यूह रचना की पहचान एवं चयन, ● सूचना संगठन, ● समस्या समाधान प्रक्रिया का निर्देशन, ● समस्या मूल्याकन मे सत्यता और ● उपयुक्त परिस्थिति की सामान्यीकृत आव्यूह रचना।

अधिगम विकलांग बच्चों मे गणितीय विकलागता के निदान के लिए सूचना प्रक्रम प्रतिमान विविध आयाम प्रदान करता है। सूचना प्रक्रम सिद्धात इस पर ध्यान केन्द्रित करता है कि क्या सूचना प्राप्त की जाए व उसे कैसे प्राप्त किया जाए तथा प्राप्त सूचना से विविध आवश्यक निष्कर्ष कैसे निकाले जाएं। इसके आरम्भिक लक्षणो में ध्यान केंद्रण, सवेदना और प्रत्यक्षीकरण, अल्पकालिक स्मृति, दीर्घकालिक स्मृति और प्रतिक्रिया सम्मिलित है (बोस एवं वॉन 1994)। यह स्वाभाविक है कि गणितीय विकलाग बच्चे लगातार न्यूनतम गणित उपलब्धि प्रदर्शित करते हैं, क्योकि वे कुछ अन्य समस्याओं से भी ग्रस्त रहते हैं। इन समस्याओं मे प्रमुख है– ध्यान केन्द्रण मे कमी, स्मृति समस्या (स्ट्राग एव रोर्के, 1985 जेंटिल एवं फर्किस, 1993), सूचना प्रक्रम न्यूनता (टार्गसन, 1990), दृश्य-स्थानगत कठिनाई (गारनेट, 1992) व श्रवण प्रक्रम कठिनाई (स्मिथ, 1994) । कई शोधकर्ता (स्वानसन, 1990, मॉटेग एवं एप्पलगेट, 1993) दृढ़तापूर्वक दावा करते हैं कि गणितीय विकलाग बच्चों में सज्ञानात्मक न्यूनता होगी ही यह तथ्य आंशिक रूप से सत्य है। उन्होंने

महसूस किया कि कई विद्यार्थी संज्ञानात्मक आव्यूह रचना का उपयोग करते हैं, लेकिन उनके द्वारा प्रयोग की गई आव्यूह रचना समस्या समाधान के लिए पर्याप्त नहीं रहती। गणितीय समस्याओ मे जहां भाषायी और सख्यात्मक सूचनाओ को (विस्तृत व्याख्या, दृश्य रूप और परिकल्पनात्मक रूप के द्वारा) गणितीय समीकरणो और अन्य सक्रियाओ जैसे कलन विधि के रूप में बदलना होता है, वहां विद्यार्थी कठिनाई महसूस करते है।

सामाजिक और संवेगात्मक विशेषताएं– अधिगम विकलांगता से ग्रस्त विद्यार्थियों के गणितीय प्रदर्शन में महत्वपूर्ण चर के रूप में भावात्मक पक्ष को भी पहचाना गया है। चरकर जुल्कोस्की (1985) के अनुसार विद्यालयी असफलता की लगातार पुनरावृत्ति का परिणाम आत्मविश्वास का निम्न स्तर और गणितीय अधिगम के प्रति भावात्मक निष्क्रियता है।

कुछ व्यक्तियों में गणित के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रिया नकारात्मक होती है, जो गणित के प्रति दुश्चिता विकसित करती है। स्लाविन (1991) के अनुसार यह स्थिति भय या असफलता तथा निम्न आत्मविश्वास से उत्पन्न होती है तथा जो परिणामत· विद्यार्थियों मे अधिगम, गणितीय समस्या को हल करने की उनकी योग्यता या गणित के अन्य क्षेत्रो मे अनुप्रयोग दोषपूर्ण होने का तनाव उत्पन्न करती है। कोटे (1991), जेटिल एवं जेटिल (1983) के अनुसार संभ्रमित चितन, असंगठन, उपेक्षापूर्ण व्यवहार और गणित के प्रति डर सामान्य परिणाम है।

अन्य विशेषताएं

अधिगम विकलागता की समस्या पर विचार करते हुए विद्यार्थी मे पूर्व आवश्यक कौशलो का अभाव भी एक विचारणीय बिंदु है। गणित सबंधी निर्देशन के पूर्व विद्यार्थियो को अवश्यक गणितीय कौशलों में पारगत करना लाभप्रद हो सकता है। ऐसे विद्यार्थियों के लिए आरम्भिक अंक सम्प्रत्यय व कौशलो के अनुभव की अधिक आवश्यकता होती है। वैडियन एव गुल्लीकियन (1983) ने इस समूह में सामाजिक-वैयक्तिक लक्षणों का निम्न स्तर पाया। जॉनसन एवं माइकलबस्ट (1967) ने बताया कि गणितीय विकलाग बच्चों का सामाजिक गुणाक का औसत शाब्दिक बुद्धि गुणांक के औसत की तुलना मे सार्थक रूप से कम पाया गया। इसके साथ ही इस समूह के बुद्धि परीक्षण के कार्यात्मक परख के प्राप्तांक शाब्दिक परख के प्राप्ताकों से काफी नीचे थे। इससे स्पष्ट होता है कि यह विद्यार्थी साकेतिक उद्दीपनो के प्रत्यक्षीकरण व अनुप्रयोग में अक्षम रहे होगे जो कि (सांकेतिक उद्दीपन जैसे +, Δ ,<, %,÷ इत्यादि) गणित अधिगम में महत्वपूर्ण अवधारणाओं को सीखने मे अक्षम होते हैं।

गणितीय विकलांग बच्चों में ध्यान केंद्रण मे कमी, प्रत्यक्षीकरण न्यूनता, श्रवण वाचिक सयोजन मे न्यूनता, अल्पकालिक स्मृति मे न्यूनता की स्थिति देखी जाती है। जिस कारण गणित उपलब्धि मे न्यूनता देखी जाती है, जो इनकी गणित विषय मे विकलांगता प्रदर्शित करती है।

गणितीय विकलागता की अवधारणा एव यहां प्रस्तुत परिभाषा से स्पष्ट है कि गणित अध्यापन व अधिगम मे अनुभव की जाने वाली इस प्रकार की समस्या का निदान कक्षागत स्थितियो मे विशेष प्रकार के उपचार से संभव है। साथ ही गणितीय विकलांगता की पहचान हेतु विद्यार्थियो की विशेषताओ का वर्णन गणित अध्यापको को अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की समस्याओं को सुलझाने मे सहायक हो सकता है। इसके उपरांत समस्या के विशिष्ट उपचार का विचार भी किया जा सकता है। कुछ सरल नियोजित अभ्यास उपचार रूप मे विद्यार्थियो से करवाए जा सकते है। जिनसे विद्यार्थी की गणित उपलब्धि को अपेक्षित स्तर तक ले जाने मे सहायता मिल सकती है। अतः शिक्षण अधिगम के क्षेत्र में इस आधार पर गणितीय विकलागता की अवधारणा पर विचार किया जाना आवश्यक और उचित लगता है।

❑❑

(1) सी- 4/24-25, ऋषिनगर, उज्जैन, मध्य प्रदेश
(2) लोकमान्य तिलक शिक्षा महाविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश

पाठ्यक्रम, परीक्षा और बच्चे

❒ रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

इस दुनिया के बच्चो में इंसान से जुड़ी हुई हर चीज को जानने और उससे जुड़ने की एक ललक, तीव्र इच्छा होती है, जिसकी पूर्ति हेतु वह कुछ काम अपने मन से भी कर डालता है। कभी वह तोड़-फोड़ करता है, कभी विभिन्न अभिनय और कभी-कभी तो पाठ्यक्रम से हटकर पत्र-पत्रिकाओं में या पुस्तकों मे रमा हुआ मिलता है अथवा टीवी मे दिलचस्पी दिखाता हुआ बार-बार चैनल बदलकर कुछ न कुछ ढूढ़ता है। इन स्थितियो में वह सब कुछ भूल जाता है, यहां तक कि खाना-पीना भी भूल जाता है। ऐसे मे किसी का हस्तक्षेप उसे मायूस कर देता है। बच्चे कुछ पाना चाहते है और हम उन पर किसी न किसी बहाने प्रतिबध लगाते है। स्वभावगत यह एक आम धारणा बनी हुई है कि यदि बच्चा पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पढ़ने लग जाएगा तो वह अपना "कोर्स" कब पढ़ेगा और यदि "कोर्स" नही पढ़ेगा तो कम अंक पाएगा अथवा अनुत्तीर्ण हो जाएगा, जिससे उसका जीवन अधकारमय हो जाएगा। बच्चो के "कैरियर" व उनके भविष्य को लेकर चिन्ता, अभिभावक व अध्यापक मे एक बहुत ही स्वाभाविक सोच है।

जार्ज बर्नाड शॉ के अनुसार–"आदमी को जैसे जीने का अधिकार है, वैसे ही जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है। यह बुनियादी और बिना शर्त मान्यता है कि ज्ञान प्राप्ति जीवन की तरह एक परमावश्यक चीज है।" सही मायने मे सुख-शाति का अर्थ है कि संसार के सभी इसानो को, बिना भेदभाव के अपनी जिन्दगी को पूरी तरह से जीने का अवसर मिलना है, इसमे बच्चे भी शामिल है, उनके भी अधिकार है और उनकी अपनी आवश्यकताएं है। मेरी अपनी मान्यता है कि एक अच्छी किताब पढ़कर, पढने वाला वही नही रह सकता है, जो पढ़ने के पहले होता है। इसलिए जब तक बच्चे किसी भी बाहरी भय से भयभीत हैं, आतक के धागे से बधे हैं, तब तक संस्कार, सभ्यता, सुख-शाति, समृद्धि, विजय, विकास आदि का कोई मतलब नहीं निकल सकता और न ही ऐसे विचारो का विकास होता है।

उच्च श्रेणी के प्रसिद्ध स्कूलों में तमाम बच्चे 70-80 प्रतिशत अंक पाकर भी क्षुब्ध रहते हैं और मनचाही जगह में प्रवेश से वंचित हो जाते हैं। डोनेशन देकर नामांकन लेते हैं या कोई जुगाड़ करके दबाव से प्रवेश पाते हैं। ऐसी स्थिति में योग्यता या पात्रता पर प्रश्न चिन्ह लगता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस परीक्षा प्रणाली से बच्चे गुजरते हैं उसमें पढ़ाने वाला कोई, प्रश्न-पत्र बनाने वाला दूसरा कोई और परीक्षक के रूप में अंक देने वाला कोई तीसरा होता है।

हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे बच्चे "क्या होगा" के भय से भयभीत है, वे बंधनमुक्त नही है और पाठ्यक्रम के गलियारे मे पढ़ते तथा बढ़ते हुए परीक्षा के परिणाम से पीड़ित हैं। वे केवल कर्म करने या पढ़ने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि "कैरियर" या अनिश्चित भविष्य को लेकर चिन्तित है। उनकी पीड़ा भीतर है, उनकी चिन्ता की विवशता तर्कहीन नहीं है, भविष्य को लेकर उनके मन की तमाम आशकाए स्वाभाविक हैं। ऐसी चिन्ताएं प्रायः आत्मविश्वास की कमी के कारण ही घेरती है। यह भी सत्य है कि बच्चे ही देश की नींव हैं, वही हमारे भविष्य है। अतः जरूरी है कि बच्चो को निडर और निश्चित बनाने के उपाय किए जाएं। उन्हें सही दिशा देकर ही हम उनकी दशा दर्शनीय बना सकते हैं और सबका भविष्य संवार सकते है।

"कोर्स" का चश्मा लगाकर देखा जाए तो कहना पड़ेगा कि आज की स्कूली शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मात्र

परीक्षाए पास करना और डिग्री प्रदान करके नौकरी दिलाने तक ही सीमित रह गया है। यद्यपि वह इसमें भी पूर्ण सफल नहीं है और न ही पढ़ने-पढ़ाने वाले को आश्वस्त कर सकती है कि "अमुक डिग्री" के बाद अथवा फला श्रेणी में उत्तीण होकर "कैरियर" के लिए भटकना नहीं होगा। शायद इसलिए आज समाज मे दायित्वहीनता, वफादारी में गिरावट, देशभक्ति की भावना भागती नजर आ रही है। नैतिकता मिटती जा रही है, मानवता मरती जा रही है और अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी बच्चा मन के उत्साह से नही बल्कि अच्छे नम्बर एव अच्छी नौकरी के लिए ही बस्ते का बोझ ढो रहा है।

एक देखने और सोचने की बात है कि परिवार में किस तरह की पाठ्य-सामग्री लाई जाती है। क्योकि बच्चे अपने पढ़ने के साथ ही साथ यह देखते हैं कि उनके घर मे/समाज मे बड़ो द्वारा क्या चीज पढ़ी जा रही है। बच्चो में एक स्वभावगत इच्छा होती है कि उन्हे भी उसी तरह की सामग्री पढने को मिले, जिसे पाने के लिए वे कोई न कोई बहाना ढूंढ़ते हैं और प्राप्त करने की कोशिश करते है। छिपाने की प्रवृत्ति और बहाना बनाने की कला इसी तरह विकसित होती है।

दु:ख और आश्चर्य की बात है कि हमारी व्यवस्था बच्चो के प्रति उतनी उदार और सजग नही है, जितनी होनी चाहिए। आज जो सार्थक और समर्थ पुस्तकें है उनके मूल्य आसमान छूने को लपक रहे है। इसलिए जो भी सुधी जागरूक पाठक पढना और पढ़ाना चाहते है, वे भी दुविधा की स्थिति मे फसे हुए है और एक असहाय की स्थिति से जूझ रहे है। गौरतलब है कि पाठ्यक्रम ही अतिम सच और साधन नहीं है, बल्कि "कोर्स" के अलावा भी पढ़ाई पुस्तके सफल अस्त्र-शस्त्र है, जिन पर प्रतिबध घातक हो सकता है।

प्रचलित पाठ्यक्रम को एक स्थापित व्यवस्था से पूर्ण किया जाता है। बच्चों में व्यवस्था की अनिश्चितता की आशंका भी होती है। अपने उसी स्कूल से उत्तीण होने के उपरांत उसी स्कूल मे अगली कक्षा में पढ़ने के लिए प्रवेश परीक्षा देता हुआ असुरक्षित महसूस करता है और हीन भावना से ग्रसित होता है। पढ़ाई के लिए पहला कदम रखते ही परीक्षाओ का दौर प्रारम्भ हो जाता है। एक ही बात के लिए तीन-तीन परीक्षाएं—प्रारम्भिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा, साक्षात्कार— झेलता है। परीक्षा कैसी भी हो और वह किसी भी अवस्था या व्यवस्था मे हो अनेक तनावो व चिन्ताओं को पैदा करती है, जिसका प्रभाव उससे जुड़े हुए सभी लोगो पर पड़ता है। अच्छे नम्बर लाने के लिए परीक्षाओ मे "नकल" जैसे हथकण्डे भी अपनाए जाने लगे हैं, जिसके लिए बच्चे ही नहीं, अभिभावक व अध्यापक अधिक जिम्मेदार हैं। आज ट्यूशन एक 'फैशन' जैसा हो गया है, बल्कि "स्टेटस सिम्बल" बन गया है। अतः सभी ट्यूशन के बारे मे सोचते है, जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर भी ट्यूशन करानी पड़ती है। बच्चे आत्मनिर्भर होकर पढना चाहते है किन्तु फिर भी हम बच्चों को ट्यूशन पढ़ाते है और अपनी क्षमतानुसार धन व समय खर्च करते हैं। बच्चे ही नही, अध्यापक और अभिभावक भी परीक्षा परिणाम को लेकर चिन्तित रहते है, फिर भी अनेक परीक्षाओ/बोर्ड की परीक्षाओं मे आधे से कम बच्चे उत्तीर्ण होते है। नकल की बढ़ती प्रवृत्ति और ट्यूशन के जोर-शोर के बावजूद हाईस्कूल में ही 13 से 15 वर्ष के लाखों, करोड़ों बच्चे फेल हो जाते है, कुछ तृतीय श्रेणी मे उत्तीर्ण किए जाते है और वे अपमानित होकर जीते हैं, इनमें कई पढ़ाई भी छोड़ देते हैं और अनेक आत्महत्या कर लेते हैं।

उच्च श्रेणी के प्रसिद्ध स्कूलो मे तमाम बच्चे 70-80 प्रतिशत अंक पाकर भी क्षुब्ध रहते हैं और मनचाही जगह मे प्रवेश से वंचित हो जाते है। डोनेशन देकर नामांकन लेते है या कोई जुगाड़ करके दबाव से प्रवेश पाते है। ऐसी स्थिति में योग्यता या पात्रता पर प्रश्न चिन्ह लगता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस परीक्षा प्रणाली से बच्चे गुजरते है उसमें पढ़ाने वाला कोई, प्रश्न-पत्र बनाने वाला दूसरा कोई और परीक्षक के रूप में अंक देने वाला कोई तीसरा होता है। यही स्थिति अन्य कक्षाओं में भी होती है। यह अलग बात है कि बाद मे बच्चे कुछ बडे हो जाते हैं,

जिससे उत्तीर्ण होने का प्रतिशत बढ़ जाता है। परीक्षाओं का सामना पग-पग पर करना पड़ता है, जिसका बच्चो के तन-मन पर कितना अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह एक विचारणीय विचार है।

अपवाद स्कूलों को छोड़कर मासूम बच्चों को कदम-कदम पर अभाव, अन्याय, साधन की कमी, अध्यापक की कमी, भवन नहीं या जर्जर, पीने का पानी नहीं, मैदान नहीं, पुस्तकालय नहीं, बिजली-पंखा नहीं, खेलकूद नहीं, आए दिन हड़ताल, बच्चों की भावनाओं की उपेक्षा, अड़ियल रवैया या किसी न किसी बहाने छुट्टी आदि को झेलना पड़ता है। अलग-अलग क्षेत्र के विभिन्न स्कूलों में अपनी तरह की भिन्न व्यवस्था, नियम-उपनियम और अलग-अलग पढ़ाई के घन्टे व दिन बच्चों को देखने, भोगने पड़ते हैं।

इतना ही नहीं, यदि एक ही उत्तर पुस्तिका की कई प्रतिया बनाई जाएं और उन्हे विभिन्न स्कूलों के परीक्षकों से जंचवाया जाए तो सभवत· भिन्न-भिन्न स्थितियां, अंकों की प्राप्तिया सामने आएंगी। सुनने मे तो यहां तक आया है कि परीक्षको की नियुक्तियों मे निर्धारित मापदण्डो का पालन नहीं किया जाता और फलस्वरूप परीक्षकों को उस विषय की उत्तर पुस्तिकाए दे दी जाती है जिन्हे वह न ही पढ़ाता है या जानता है। अब सोचने और देखने की बात है कि क्या वर्तमान निर्धारित पाठ्यक्रम और उसकी परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है और वह आर्थिक दृष्टि से कमजोर बच्चों के लिए हानिकारक है, क्या अबोध बच्चों के साथ किसी न किसी तरह अन्याय हो जाता है? परीक्षाओ में असफल बच्चों का भविष्य किसके हाथ में है, क्या शिक्षकों के करने से कुछ नही होगा, क्या प्रचलित स्थापित व्यवस्था में सभी अपनी-अपनी जिम्मेदारी ईमानदारी से निभा रहे है? सर्वपल्ली राधाकृष्णन आयोग का एक ऐतिहासिक वाक्य है–"यदि हमें भारतीय शिक्षा में सुधार का एक सुझाव देना हो तो वह परीक्षा का ही होगा।" ❑❑

एल.आई.यू., कोतवाली कैम्पस
फतेहगढ़, उत्तर प्रदेश

किरण-विकिरण

❑ जय नारायण कौशिक

"उफ! यह न सहा जा सकने वाला ताप, यह घुटन, बादलो से भी सघन काला धुआ, आसपास का चीत्कार और क्षण भर मे तहस-नहस, नाचते गाते बस्ती के भवन। क्या यह स्वप्न है? जहां पहाडी पर दर्शकों की भीड़ उफनती रहती थी, जहा गलबैया मुद्रा में युवक-युवतिया चहलकदमी करते थे वहा दुर्गन्धयुक्त पानी की झील और उस पर मनुष्यो और पशुओ की तैरती लाशे। यह वास्तविकता नही हो सकती, कोई डरावना स्वप्न है, हा डरावना स्वप्न।"

"नही, नही यह स्वप्न नही है। यह सत्य है, सत्य। घिनौना सत्य। यह सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

"सत्य! घिनौना सत्य!! सत्य के अतिरिक्त और कुछ नही है!!!"

"हा, हर शब्द को ठीक दोहराया आपने।"

"आप कौन है, सत्य का साक्षी देने वाले?"

"हां, मै भी सत्तावान पदार्थ हू। मैंने अपनी आंखो से यह सब कुछ घटित होते देखा है।"

"ऐसा?"

"हां, ऐसा।"

"आपने शहर को इस हालत मे पहुंचाने वाले को हाथ पकड़ कर झकझोरा और समझाया क्यो नही।"

"क्यो समझाता?"

"क्यों?"

"क्योकि मै भी उसमे सहभागी था।"

"नरसंहार मे सहभागी। मेरी आंखों के सामने आओ। जरा देख लू कितने विशालकाय योद्धा है आप। अपने अस्त्र-शस्त्र तो मुझे दिखाओ। मैं उन्हें चूम लूं। नहीं नही धिक्कारू, मन भर कर धिक्कारू।"

"मैं तो आपके सामने हूं। मै क्यों छिपू, क्यो डरूं, सत्य कहते क्यो रुकूं।"

"मेरे सामने।"

"हां, साक्षात् आपकी खुली आखों के सामने।"

"क्या आप कोई देवता है जो दिखाई नहीं देते और जिसकी छाया भी नहीं वनती। नही, आप देवता नही हो सकते। देवता सृष्टिपालन के लिए होते है, नरसहार और सृष्टि विनाश के लिए नही।"

"यह तो आप के अनुमान का विषय है। मैं हू सो हू। सृष्टि के आरभ में भी मै था और अन्त तक रहूगा।"

जो ऊर्जा परमाणुओं के टूटने से बनती है उसे परमाणु उर्जा या ऐटोमिक एनर्जी कहते हैं। कोयले या तेल को जलाने से जो ऊर्जा प्राप्त होती है उसे रासायनिक या आणविक ऊर्जा कहते हैं। यह ऊर्जा अणुओं के संयोजन और वियोजन से बनती है। इन क्रियाओं में परमाणु टूटते नहीं, ज्यों के त्यों बने रहते हैं।

"फिर तो आप वरदान प्राप्त कोई दैत्य हैं।"

"नहीं।"

"फिर शिष्टाचार के नाते आप अपना परिचय दीजिए। अपना नाम, कुल, देशकाल के संदर्भ मे कुछ तो बताइए। आप अदृश्य क्यो हैं? आपका क्या रग-रूप और आकार-प्रकार है।"

"वाह जिज्ञासु, एक ही प्रश्न में अनेक प्रश्नो की बौछार।"

"हां, आप जैसी अदृश्य शक्ति के बारे में शीघ्र बहुत कुछ जानने के लिए उतावला हू।"

"बावले भी और उतावले भी"

"जो भी समझो"

"तो सुनो, मैं हूं परमाणु, अणु परिवार का सदस्य। द्रव्य का वह सूक्ष्मतम तत्व जिसका आगे विभाजन नहीं

हो सकता। सूक्ष्मतम अश को आप आखों से देख भी कैसे सकते हैं। मेरी स्थिति जल-थल तथा वायुमंडल में सब स्थानो पर है। मै अनादि हू। वैशेषिक और न्यायदर्शन मे मेरी चर्चा हुई है। कणाद ऋषि ने मेरी सत्ता के बारे मे काफी विचार किया है। मै चंचल स्वभाव का हू। मैं क्षण भर भी स्थिर नहीं रह सकता। मैं वायु मे धूल कणो पर बैठ कर थिरकता रहता हूं। और तो और यूरेनियम, थोरियम जैसी ठोस धातुओ में मैं शांत नही बैठता। वहां भी मै आवेशी भक्त की तरह कापता रहता हू। हा, मेरे कंपन को कपनमापी सूक्ष्म यंत्र ही अनुभव कर सकते है। मेरा रंग वही है जिसका मैं अंश हूं। मेरा आकार अभी भी कल्पना का विषय है।"

"वाह, कणाद ऋषि के प्यारे परमाणु।"

"और डाल्टन, टामसन, आइस्टाइन जैसे वैज्ञानिकों के दुलारे भी।"

"वह कैसे?"

"इन वैज्ञानिकों ने गत दो सौ वर्षो से मेरे उपयोग के बारे मे जी तोड अनुसधान किए है, अपनी जान को जोखिम में डालकर।"

"जान जोखिम में डालकर?"

"हां। मैं सगठित होकर जिस समय अणु का एटम रूप धारण कर लेता हू तो मेरा स्वभाव गर्म ही नहीं अत्यन्त ज्वलनशील हो जाता है। मेरा स्वामी भी मेरे साथ थोड़ी असावधानी बरते या छेड़छाड करे तो मै अपने विकिरण से उसे भी सदा के लिए गोद मे सुला लेता हूं।"

"स्वामी के प्रति इतनी असहनशीलता और क्रूरता?"

"मै स्वभाव से लाचार हूं।"

"फिर आपके निर्माण की आपके स्वामी को क्या आवश्यकता पडी?"

"जन कल्याण के लिए, समाज कल्याण के लिए, सुखी जीवन के लिए, प्रकृति की सम्पदा की रक्षा के लिए।"

"जन कल्याण की आड़ मे विनाशकारी छद्‌म वेश। लगता है आप कूटनीतिज्ञ और राजनीतिज्ञ भी हैं। वे भी जन कल्याण के नाम पर क्या कुछ नही कर गुजरते।"

"अस्त्र-शस्त्र तो अस्त्र-शस्त्र ही है। यह तो उसके प्रयोग करने वाले पर है कि वह उसका प्रयोग विनाशकारी शक्तियो को नष्ट करने के लिए करता है, आत्मरक्षा के लिए करता है, स्वार्थ सिद्धि के लिए करता है या फिर मात्र आमोद-प्रमोद के लिए करता है।"

"किन्तु मेरे सामने तो आपका विनाशकारी रूप है। कानों सुनी बात झूठी हो सकती है, आंखों देखी नही।"

"आंखो देखी बात भी झूठी हो सकती है क्योंकि सत्य का विश्लेषण करना पडता है। जिनका विनाश हुआ है क्या उनके इरादे तो नापाक नही थे। क्या वे सीमा उल्लंघन कर किसी मर्यादा का मर्दन करने पर तो उतारू नही थे। खैर जो हो? हर व्यक्ति पक्ष-विपक्ष मे अगणित तर्क-वितर्क और कुतर्क दे सकता है। आपने मेरी उपयोगिता की बात पूछी थी उस पर चर्चा कर लें।"

"हा, बताओ"

"तो सुनो"

"हां, सुनाओ।"

"जो ऊर्जा परमाणुओं के टूटने से बनती है उसे परमाणु उर्जा या ऐटोमिक एनर्जी कहते हैं। कोयले या तेल को जलाने से जो ऊर्जा प्राप्त होती है उसे रासायनिक या आणविक ऊर्जा कहते है। यह ऊर्जा अणुओं के संयोजन और वियोजन से बनती है। इन क्रियाओ मे परमाणु टूटते नही, ज्यो के त्यो बने रहते हैं।"

"वाह, आणविक और परमाणविक ऊर्जा मे भी भेद"

"हा, यही तो बात समझने की है। आणविक ऊर्जा की अपेक्षा परमाणवीय या परमाणविक ऊर्जा की मात्रा अत्यधिक होती है।"

"वह कैसे?"

"इस बात को मोटे रूप से यों समझो। केवल एक ग्राम यूरेनियम के परमाणुओं के टूटने से जितनी ऊर्जा प्राप्त हो सकती है उतनी ही 45 लाख ग्राम यानी लगभग 120 मन कोयला जलाने से प्राप्त होगी।"

"इतना बड़ा अनुपात।"

"हां, इतना बड़ा अनुपात। इतनी ही ऊर्जा 9 लाख गैलन तेल जलाने से मिलती है।"

"आश्चर्य। कौतुक! हैरानगी।"

"वैज्ञानिकों ने इसीलिए मेरी शक्ति से मित्रता का हाथ मिलाया। ससार में कोयले के भडार सीमित हैं। तेल और पैट्रोल 50-60 वर्षो में चुक जाएगा। जंगलों के वृक्ष भी वामन अवतार की तरह बौने होने की अवस्था मे हैं। फिर ऊर्जा का विकल्प ही क्या रह जाएगा।"

"मुझे बहकाइए मत। मैं सस्ती कोड़ियो से नहीं खेला हूं। जल और वायु भी तो ऊर्जा उत्पन्न करने के साधन हैं।"

"हां, है। जल का उपयोग ऊर्जा के रूप मे करने पर भी पहाड तोड़े जा रहे है, वृक्ष काटे जा रहे है, इस प्रयोजन में कितने गावों को जल समाधि लेनी पड़ रही है। चिपको आन्दोलन वाले इसका भी विरोध कर रहे है। वायु ऊर्जा भी यथेष्ट नहीं है। मानव के उच्च स्तर के जीवन की भूख मिटाने के लिए परमाणु ऊर्जा के अतिरिक्त कोई चारा नही है। यदि मेरी ऊर्जा नही मिली तो उद्योगो का चक्का जाम हो जाएगा।"

"तो क्या परमाणु शक्ति का प्रयोग उद्योगों के लिए ही हो रहा है। इधर तारापुर (मुम्बई), कलपक्कम (तमिलनाडु), नरौरा (उत्तर प्रदेश), कोटा (राजस्थान) आदि कई स्थानो पर आणविक भट्टियो से जो बिजली बन रही है उसका प्रयोग मात्र कारखानों तक बिजली पहुंचाने के लिए है।"

"वह तो है ही। साथ-साथ बडे-बडे शहरो के निवासियो के लिए घरो मे यही बिजली भेजी जा रही है।"

"लेकिन इससे आप की किरणो से विकिरण का खतरा"?

"हा, वह तो सदा बना रहता है। यदि मेरी किरणों के विकिरण का अंश पानी में जा मिले तो उसका प्रयोग करने वाले काल के गाल मे गए समझो। यदि वायु के झोको के साथ गलबैयां कर ले तो मीलों तक के मैदान चौपट और अगर वर्षा की बूंदो में स्नान करने लगे तो अनुमान स्वयं लगा लीजिए। यहां तक कि उस घास को चरने वाले पशु या तो धराशायी हो जाएंगे या उनका दूध पीने वाले शिशु सदा की नींद सो जाएंगे।"

"आप की किरणो का नृत्य तो साक्षात् शिव का तांडव नृत्य है। सब ओर विनाश, महाविनाश।"

"हां, जापान निवासी 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा और तीन दिन बाद नागासाकी पर अमरीका द्वारा गिराए गए परमाणु बमो को कभी भी नही भूल सकते जिसमें पलक झपकते साठ हजार व्यक्ति काल के ग्रास बन गए थे। कुछ वर्ष पूर्व सोवियत रूस के चेरनोबिल परमाणु भट्टी के हिसाब का स्मरण करिए।"

"शोक! महाशोक!!"

"नहीं बीती ताहि बिसार दे। मेरी परमाणु भट्टी के निर्माण मे हर प्रकार की सावधानियां बरती जाती है। अव्वल तो ये नगर से मीलो दूर सुनसान मे लगाई जाती है। वहां चिड़ी का बच्चा भी पख नही मार सकता। इसके आसपास भवन या उद्योग निर्माण की कोई अनुमति नही है, या फिर समुद्र के जल मे बनाई जाती है ताकि इसे ठडा रखने मे सुविधा हो। भट्टी के ऊपर कार्बन स्टील का एक मोटा आवरण होता है। भट्टी के ऊपर या नीचे या चारो ओर जल होता है ताकि वहा शीतल वातावरण बना रहे। फिर ऐसे स्वचालित यंत्र है जो दुर्घटना की स्थिति मे स्वत: सुरक्षा का कार्य करते हैं।"

"फिर भी दुष्ट वृत्ति का कोई देश इन पर गोलाबारी करके भट्टी मे छिद्र कर दे तो क्या होगा?"

"बात सभव है, नकारी नही जा सकती किन्तु पड़ोसी देश को अपनी सुरक्षा भी तो चाहिए। विकिरणयुक्त पवन के झोके राजनीतिक सीमाओं मे तो नही बधे। भारत और पाकिस्तान ने भी समझौता किया हुआ है कि वे एक-दूसरे देश के परमाणु संयंत्रो पर आक्रमण नहीं करेगे।"

"लेकिन परमाणु भट्टियों में भी तो किसी माई के लाल काम करते है। उनकी सुरक्षा का क्या प्रबंध है। क्या वे किरणो के विकिरण से प्रभावित नही होते।"

"पूरी तरह सुरक्षा की बात तो नही कही जा सकती। काजल की कोठरी मे कितना भी समझदार जाए एक छोटी सी काजल की रेखा किसी न किसी अंग पर अवश्य लग जाती है। हा, वह कोठरी से निकले तो उसका मुह काला नही होना चाहिए। मनुष्य एक सीमा तक इन किरणो के विकिरण को सहन कर सकता है। इन कारीगरों को विशेष प्रकार के दस्ताने, चमड़े के वस्त्र आदि पहनाए जाते हैं। ये कुछ ही मिनट तक किरणों के सामने काम करते हैं। बारी-बारी से यह सिलसिला चलता रहता है।

अगर सस्ती ऊर्जा सैकड़ो वर्ष तक प्राप्त करनी है और प्राकृतिक साधनों को बचाना है तो कुछ जोखिम तो उठाना ही पड़ेगा। बिना जोखिम कैसा लाभ?"

"नही ऐसा करना साहस नही, दुस्साहस है, दुस्साहस। मैं इस दुस्साहस भरी कहानी को आगे नही सुनना चाहता।"

"यह कैसे सभव होगा। पिछले दिनों आप अपने फोडे का इलाज कराने गए थे। क्या उसमे एक्स और गामारे विकिरण का प्रयोग नहीं किया गया था।"

"नही, वह तो एक्स रे था, एक्स रे। बस थोडी बिजली की गरमी की टकोर थी, हल्की सी सेक।"

"वाह भोले लाल। इस इलाज मे परमाणु किरणो का प्रयोग किया गया है। "रे" का अर्थ ही किरण होता है और एक्स का अर्थ हुआ जो चर्म, मांस-मज्जा, हड्डी आदि को पार करके शरीर की दूसरी तरफ निकल जाए।"

"राम राम, मेरे अन्दर से परमाणु किरणो का विकिरण। मै चला, मेरा दिल तो डूबा।"

"घबराइए नही, इस प्रकार का इलाज करने वाले बडे सिद्धहस्त होते हैं। वे मशीनो का उपयोग बहुत सावधानी से करते है। बिना इन किरणो के अन्दर से गुजरे केंसर आदि के कीटाणु नष्ट नही होते। ये किरणे इतनी हल्की मात्रा मे होती है कि शरीर का दूसरा भाग प्रभावित नहीं होता। हा, बार-बार एक्स रे कराने का वहम सिर पर सवार नहीं होना चाहिए।"

"फिर भी किसी न किसी समय तो दुर्घटना हो ही सकती है।"

"हा शत् प्रतिशत् रूप से तो नही कहा जा सकता। इसी प्रकार अनेक औषधियों को कैप्सूल मे भरने या डिब्बा बन्दी से पहले किरणों से उपचारित किया जाता है। यद्यपि ऐसा करने के अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण है किन्तु कहीं-कही यंत्रों और कार्यकर्ताओ की क्षणिक असावधानी के कारण दुर्घटनाओ की संभावना बनी रहती है। अधिक विकिरण से औषधियों की गुणवत्ता और रोगी दोनो ही प्रभावित हो सकते है।"

"बात तो ठीक है शरीर पर पड़ने वाली विकिरण से अधिक घातक शरीर के अन्दर जाने वाली गलत औषधि हो सकती है।"

"लेकिन अन्न, फल, सब्जी आदि को भी रेडियो धर्मी किरणों से उपचारित किया जाता है। विश्व भर के लोग इन उपचारित वस्तुओ का सेवन कर रहे है।"

"वह क्यां"

"कृषक गेहूं, चावल, आलू, मूगफली और अन्योन्य अन्न और फलों का उत्पादन करता है। इन्हे भंडारण करने, मडियों तक पहुचने और उपभोग करने के बीच महीनो का अन्तर होना है। इस काल मे इनके गलने-सड़ने, रग बदलने अथवा पौष्टिकताहीन होने का डर बना रहता है। यदि इनको उपचारित न किया जाए तो आधी-तिहाई खाद्य सामग्री नष्ट हो जाएगी।"

"वाह, एक ओर आप रेडियोधर्मी किरणो के विकिरण को घातक बताते हैं और दूसरी ओर खाद्य सामग्री के उपचार मे इनके प्रयोग की हिमायत करते है।"

"मै हिमायत नहीं, सूचनामात्र दे रहा हूं। पहले तो इन किरणो से अन्न के अतिरिक्त सीलेपन को सुखाया जाता है। इससे फफूदी आदि लगने का भय नही रहता। फिर इनको कीटाणु रहित करने में भी ये किरणे सस्ती पड़ती हैं। डी. डी. टी, पारे की गोली आदि का अंश तो अन्न-फल आदि मे समा जाता है और इनके प्रयोक्ता के पेट मे भी जाने के उदाहरण है, लेकिन इन किरणो को कीटनाशक दवाईयों से अधिक सुरक्षित और कम लागत वाला माना जाता है।"

"क्या इस प्रकार खाद्य सामग्री को उपचारित करते समय कर्मचारियो को इन किरणो से प्रभावित होने का कोई भय नहीं होता।"

"यह कार्य दो प्रकार से किया जाता है। मानव निर्मित आइसोटोप इस कार्य को करते हैं। दूसरी ओर बिजली द्वारा संचालित मशीनें किरणे उत्पन्न करती है। स्वचालित मशीने खाद्य सामग्री को भंडारों के अन्दर तक ले जाती है और उचित मात्रा में किरणे विकिरण करती हैं। हर खाद्य सामग्री उसकी आवश्यकता और ऋतु के अनुसार उपचारित की जाती है। मास, मछली, मुर्गी आदि को उपचारित करने के बाद 2 डिग्री सेटीग्रेट से 5 डिग्री सेंटीग्रेट तक तापमान मे रखा जाता है।"

"किन्तु क्या हर व्यक्ति को रेडियोधर्मी किरणो से

खाद्यान्न को उपचारित करने का हक है?"

"नहीं, ऐसा नहीं है। विश्व खाद्य संगठन जैसी संस्थाए पंजीकृत व्यापारियों पर निगरानी रखती हैं। लेकिन पिछले 40 वर्षो के इस प्रयास में इस प्रयोग के दुरुपयोग के उदाहरण निरन्तर मिलते रहते हैं। अनेक बार इस प्रकार की सामग्री जब खोली गई तो वह मानव के खाने के लिए उपयुक्त नहीं पाई गई।"

"हा, हम बात-बात मे राह भटक गए। परमाणु बम के खतरे की बात बीच मे रह गई।"

"इस समय अमरीका, इंग्लैंड, फ्रास, जर्मनी, चीन आदि देशो के पास परमाणु बमों का भंडार है तो सोवियत संघ रूस के विखंडन के बाद रूस के अतिरिक्त इससे अलग हुए कई राज्यों के पास भी एटम बम हैं। इनके दुरुपयोग की सभावना से इनकार नही किया जा सकता। अन्य देश भी आणविक शक्ति के देश बनना चाहते हैं। भारत के पास भी आणविक बम बनाने की क्षमता की चर्चा होती है लेकिन भारत आणविक शक्ति का प्रयोग शातिप्रिय विकास के कामो में करने के लिए वचनबद्ध है।"

"मुझे तो संक्षेप में परमाणु बमो के युद्ध की बात की जानकारी दो।"

"न मालूम कौन देश प्रतिशोध की भावना से इसे किसी से उधार मांग कर अपने कलेजे को ठंडा करने की बात सोच बैठे। न मालूम कौन देश धार्मिक प्रमादवश विधर्मियो पर परमाणु बम दाग दे। न मालूम कौन देश व्यापारिक हित चिन्तन के लिए इसको आयुध के रूप में काम में लाए। आजकल धनी देश आमोद-प्रमोद के लिए भी इसका प्रयोग कर सकते है। कहावत भी है चिड़ियो की मौत और मूर्खो की हसी। किन्तु आप इतने *मुर्गी दिल न बने। अभी समय रहते तेल देखें और तेल* की धार देखे। यदि किरण है तो उसके विकिरण होने की संभावना से कौन इनकार कर सकता है। कोई महाप्रलय नहीं आने वाली है। हां खंडप्रलय अवश्य हो सकती है। अभी तो कलियुग का प्रथम चरण चल रहा है। अभी आराम की नीद सोइए और फिर मित्रो के साथ मृत्यु तो उत्सव के समान कही गई है।"

"होगा वही जो राम रचि राखा।"

"निर्णय आप पर है।" ❑❑

सी-605, सरस्वती विहार, दिल्ली

शिक्षक प्रतिबद्धता तथा अकादमिक आर्दशविहीनता

❑ अमृता माहेश्वरी

वर्तमान समय में शिक्षक आरोपों के कटघरे मे खड़ा है। समाज मे उसकी सामाजिक छवि तथा स्थिति दोनो में ही ह्रास हुआ है। उसकी प्रतिबद्धता पर प्रश्न चिन्ह लगाए जाने लगे है। क्या वास्तव में शिक्षक छात्र, समाज, संस्था व राष्ट्र के प्रति सवेदनहीन हो गया है? क्या वह अपनी पेशेगत प्रतिबद्धता खो बैठा है? यदि ऐसा है तो उसके लिए कौन-सी परिस्थितिया उत्तरदायी है? क्या शैक्षिक, सामाजिक संरचना उसे ऐसा करने के लिए बाध्य कर रही हैं? एक स्वस्थ राष्ट्र के लिए इन प्रश्नो पर विचार किया जाना आवश्यक है।

शिक्षक प्रतिबद्धता का आदर्श प्रारूप

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि शिक्षक प्रतिवद्धता का आदर्श प्रारूप क्या है? यदि हम शिक्षक की परम्परागत अवधारणात्मक छवि पर विचार करे तो शिक्षक करुणा दया, त्याग, ममता, विद्वता एव ज्ञान की गरिमा से ओत-प्रोत दिखाई देता है। 'सादा जीवन उच्च विचार' ही उसका जीवन दर्शन और जीवन शैली है। आज भी समाज मे शिक्षक से ये परम्परागत अपेक्षाए बनी हुई है। शिक्षक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय परिषद् ने भी शिक्षक-प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रस्तुत करते हुए शिक्षक प्रतिबद्धता के पाच आयाम बताए गए है–

- अधिगमकर्ता के प्रति प्रतिबद्धता
- समाज के प्रति प्रतिबद्धता
- उद्यम के प्रति प्रतिबद्धता
- उत्कृष्टता प्राप्ति के लिए प्रतिबद्धता
- मौलिक मानव मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता

स्वाभाविक ही शिक्षक की प्रथम प्रतिबद्धता तो 'शिष्य' के प्रति है। उसे अपने शिष्यो से प्रति प्रेम होना चाहिए और उनके सर्वागीण विकास का प्रयत्न करना चाहिए। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह यथा सम्भव सभी अधिगमकर्ताओ के बीच समान स्नेह और करुणा का व्यवहार करेगा। उनकी त्रुटियो के प्रति सहनशील होगा, उनकी आवश्यकताओ के प्रति सवेदनशील होगा और उनके अधिगम के विकास और वृद्धि के लिए सदैव तत्पर होगा।

शिक्षक के व्यक्तित्व में सहनशीलता, नम्रता, सुशीलता, स्नेह आदि गुणों का समावेश होना चाहिए। शिक्षक समाज के विवेक का रखवाला है, मार्गदर्शक है। वह सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आधुनिक मानव समाज विश्वास के साथ नई पीढ़ी के समाजीकरण और शिक्षा दीक्षा हेतु उन्हें अपनी संतान सौंपते है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिक्षक को अपने समस्त दायित्वों के प्रति प्रतिबद्ध होना ही चाहिए।

दूसरी प्रतिबद्धता 'समाज के प्रति' है। एक शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने वृहद् समाज और समीपस्थ समुदाय दोनो की समस्याओं के प्रति न केवल जागरूक होगा वरन् उनके समाधान खोजने और करने मे सहभागिता के लिए प्रयत्नशील होगा। तभी तो वह सच्चे अर्थो में राष्ट्र निर्माता कहला सकता है। शिक्षक जैसे प्रबुद्ध वर्ग को अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति न केवल जागरूक होना चाहिए वरन् उनका निर्वहन भी करना चाहिए। शिक्षक का अभिभावको के साथ घनिष्ठ सम्पर्क व सम्बन्ध इन दायित्वों को निभाने में सहायक हो सकता है। वह स्कूल और समुदाय के मध्य एक सेतु वन सकता है, वह स्कूल के विकास के लिए सामुदायिक

संसाधनो को प्रवाहमान वना सकता है, इसी प्रकार स्कूल को सामुदायिक विकास के लिए सक्रिय कर सकता है।

तीसरी प्रतिबद्धता 'उद्यम' आधारित हे, शिक्षक को अपने पेशे पर गर्व होना चाहिए। जी सी. भट्टाचार्य ने लिखा है "अपने उद्यम के साथ एकरूपता तथा एकात्मीयता की अनुभूति से उद्यमगत नीतियो के अनुपालन की योग्यता विकसित होती' है। उद्यम के सभी कार्यक्रम तथा क्रियाकलापो में सहयोगिता, प्रतिभागिता तथा आन्तरिक प्रतिबद्धता से उन क्षेत्रो में उत्कृष्टता की प्राप्ति हो सकती है। साथ ही ज्ञान और उत्कृष्ट की चाहत, उपयुक्त ढग से सम्प्रेषण की इच्छा तथा वैयक्तिक और उद्यमगत संस्कृति के विकास को भी इसके लिए आवश्यक माना गया है।"

चौथी प्रतिबद्धता 'श्रेष्ठता प्राप्ति के लिए प्रतिबद्धता' को माना गया है। शिक्षक से अपेक्षा की गई है कि वह कक्षा, स्कूल तथा समुदाय में जो भी कार्य करेगा उसे यथा सम्भव उत्कृष्ट ढग से करेगा। उसका व्यवहार तो अनुकरणीय होना ही चाहिए तभी तो उसके छात्र भी श्रेष्ठता की उपलब्धि के लिए प्रेरित हो सकेगे।

पाचवीं अर्थात् अन्तिम शिक्षक प्रतिबद्धता मौलिक मानवीय मूल्यो से सम्बन्धित है। शिक्षक में ईमानदारी, सहयोग की भावना, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता बौद्धिक ईमानदारी, राष्ट्र-प्रेम और भक्ति, सहयोग भावना, नियमितता और समयानुवर्तिता जैसे मूल्यों के अभाव में वह अपनी उपरोक्त चारो प्रतिबद्धताएं भी नहीं निभा सकेगा।

स्पष्ट है कि शिक्षक प्रतिबद्धता का बहुआयामी प्रारूप है और यह आयाम अन्त:सम्बन्धित है। एक आयाम की प्रतिबद्धता के व्यवहार आदर्श दूसरे आयाम की प्रतिबद्धता मे भी सम्मिलित हो सकते है। शिक्षक की सम्बद्ध प्रतिबद्धता की अवधारणा के सुगम बोध एव उसकी व्यापकता को समझने की दृष्टि से इन आयामो मे वर्गीकृत किया गया है। शिक्षक प्रतिबद्धता की उपरोक्त व्याख्या यह भी स्पष्ट करती है कि शिक्षक से अपेक्षाए तो गगनचुम्बी है, वे उच्च आदर्शो को प्रकट करती है, उनमे परम्परागत शैक्षिक आदर्शो की निरन्तरता दिखाई देती है। वे शैक्षिक जगत की कठोर यथार्थ वास्तविकताओं से नही उपजी हैं, वरन् हमारी सास्कृतिक परम्पराओ पर आधारित हैं। चूकि शिक्षक प्रतिबद्धता के ये आदर्श प्रारूप न केवल समाज के जनसाधारण के मन में रचे-बसे हैं, वरन् शैक्षिक एव सामाजिक जननेताओ की मानसिकता मे भी विद्यमान है। शिक्षक सामाजिक आलोचना का शिकार हो गया है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योकि उसके व्यवहार और योगदान को मापने और उसकी भूमिका निर्वहन का मूल्याकन करने का पैमाना तो यही है।

शैक्षिक जगत की वस्तुस्थिति : अकादमिक आदर्शविहीनता

शिक्षक की प्रतिबद्धता एव भूमिका निर्वहन की आनुभाविक जाच करने से पहले यह उचित होगा कि शैक्षिक जगत की वस्तुस्थिति को जान लिया जाए, क्योकि शिक्षक किसी आदर्श जगत या शून्य में व्यवहार नहीं करता। वह भी उसी सामाजिक संरचना का एक घटक है, जिसमे रहकर वह अपने दायित्वो का निर्वहन करता है। समाज मे होने वाली हलचलों, परिवर्तनों और विसगतियो से शिक्षक अछूता नहीं रह सकता। सामाजिक संरचना के दोष और सीमाए उसके व्यवहार को निर्धारित करते हैं।

आज यदि हम शैक्षिक जगत पर नजर डाले तो वहा शैक्षिक आदर्शविहीनता की स्थिति दिखाई देती है। स्कूल और कालेज राजनीति के अखाड़े बने हुए है। तथाकथित शिक्षक नेताओ और राजनेताओ में एक गठवधन है। ये दोनो ही एक-दूसरे के हितो की पूर्ति करते रहते है। सामान्य शिक्षक न केवल विस्मृति के गर्त मे पड़ा है वरन् उसे अपने शैक्षिक दायित्वो के निर्वहन मे भी पग-पग पर कठिनाईयो का सामना करना पडता है। शिक्षक पद की प्राप्ति अथवा भर्ती भी शैक्षिक भ्रष्टाचार से अछूती नही है, वहा पर भी नियुक्तियां योग्यता के आधार पर न होकर धन, पहुच और सम्पर्क-सूत्रों के आधार पर होने लगी है। जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव, पक्षपात होता है। यही हाल प्रोन्नति का है। ऐसी दशा मे शिक्षक से आदर्श अपेक्षाएं करना सरल है किन्तु शिक्षक द्वारा उन्हे पूरा करना कठिन कार्य है। हर कालेज मे गुटबन्दी है, यही नही शिक्षक इसे अपने

दैनिक कार्यक्रम में भी बाधित महसूस करता है। परीक्षा के दौरान तो वह छात्राओ, छात्रो को दुश्मन ही दिखाई देता है। छात्र अनुचित साधनों का प्रयोग करना अपना अधिकार समझने लगे है। परीक्षा अवधि युद्ध-काल-सा दिखाई देता है। जो शिक्षक पूरी ईमानदारी से निरीक्षण कार्य करता है और अनुचित साधन प्रयोग करने वाले छात्र को पकडता है, तो वह ऐसा अपना जीवन जोखिम मे डाल कर करता है। ऐसे उदाहरणों की कमी नही है, जब शिक्षको पर बदले की भावना से प्राणघातक हमले हुए है। आज के अभिभावक भी येन-केन-प्रकारेण अपने पालित को अगली कक्षा मे प्रोन्नत किए जाने के लिए निर्लज्ज भाव से अनेको दबाव बनाते है, शिक्षक को भ्रष्ट करने की कोशिश करते है। शैक्षिक प्रशासन भी आकण्ठ भ्रष्टाचार मे डूबा है। यदि शिक्षक को अपने जनरल प्रॉविडेण्ट फण्ड से एडवांस लेना हो, वेतनवृद्धि से प्राप्त हुए एरियर को प्राप्त करना हो या अवकाश प्राप्ति करनी हो, सभी जगह उसे रिश्वत देनी पड़ती है, तो काम होता है। भ्रष्टाचार तो एक ऐसा विषैला रोगाणु है जो जिसको भी एक बार काट लेता है, चाहे रिश्वत लेने वाला हो या रिश्वत देने वाला उसकी नस-नस मे विष व्याप्त हो जाता है। आज शिक्षक यह नही समझा पा रहा है कि किन आदर्शो का पालन करे। उसके दिमाग मे भी शिक्षक के परम्परागत आदर्शो की प्रतिमा मौजूद है। किन्तु व्यावहारिक जीवन उसे साधनो की अनैतिकता की अनदेखी करने के लिए बाध्य करता है। फ्रास मे चिन्तक दुर्खीम ने ऐसी स्थिति को ही 'अनोमि' अथवा आदर्शविहीनता कहा था, उनके अनुसार अनोमि वह सामाजिक दशा है जब पुराने आदर्श प्रभावहीन हो रहे होते है, और नए आदर्श पूरी तरह स्थापित नही हो पाते और समाज की आदर्श संरचना अपनी नियन्त्रक शक्ति खो बैठती है, अर्थात् सामूहिक नैतिक व्यवस्था, अति महत्वाकाक्षा, लोभ और असीम इच्छाओं को रोकने में असफल हो जाती है। क्या आज की भारतीय शैक्षिक वस्तुस्थिति ऐसी ही नहीं है?

तनिक सामाजिक सरचना पर भी दृष्टि केन्द्रित करे, तो स्थिति और भी गभीर है। जीवन के हर क्षेत्र मे भ्रष्टाचार बढ रहा है। चारो ओर अनैतिकता, छल-कपट, बाहुबल, भ्रष्टाचार, धनबल का बोलबाला है। राजनेता भ्रष्ट है, प्रधानमत्री पद तक पर भ्रष्टाचार के आरोप लग चुके है। बडे-बडे आर्थिक घोटाले होना आम बात हो गई है। राजनेता-अपराधी-अधिकारी तन्त्र अपवित्र परिणय-सूत्र मे वंधे है। अपराध का राजनीतिकरण तथा राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। नैतिक लोग आतकित है और माफिया निर्भय हो गए है। विकास के स्तर की दृष्टि से भारतीय समाज आज बहुस्तरो पर जी रहा है। महानगरो मे विशेषत. उच्च वर्ग में आधुनिकता दिखाई दे रही है, तो कस्बो और गांवों मे वही पिछडापन है। भारतीय जनजातियां तो आदिम युग मे ही जी रही है। सामन्तशाही मनोवृत्ति से छुटकारा नही मिला है। आज भी दहेज हत्याए, जाति पचायतो द्वारा प्रेमी-युगल को पेड से लटका कर फासी, यहा तक कि सती प्रथा, बधुआ मजदूरी, धन ऐठने के लिए अपहरण जैसी घटनाओ से दैनिक अखवार भरे होते है। जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, सवर्ण-अवर्ण, अगड़े-पिछडे, सम्पन्न-दलित, धार्मिक उन्माद, उग्रवाद, साम्प्रदायिक दगों, आतंकवाद जैसे अभिशापो से भारतीय समाज अभिशप्त है, ऐसी परिस्थितियो मे आचरण के उच्च आदर्श कहीं खो गए है। चारित्रिक पतन सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है।

हम यह नही कहना चाहते कि शिक्षा या समाज मे सभी भ्रष्ट और निम्न चरित्र वाले है, यह भी नही कहना चाहते कि भारतीय समाज में कुछ भी अच्छा नही है। यदि ऐसा होता तो शिक्षा व समाज विनष्ट ही हो गए होते। आज भी भारत का आम जन धर्मभीरू और ईमानदार है। आम शिक्षक भी अपने दायित्वो को निभाने का प्रयास करता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि समाज का प्रभावशाली वर्ग जिसका आम जन अनुकरण करते है, भ्रष्टाचार के दलदल मे फसा है। वह इतना अनैतिक है कि वह इसे सामान्य स्थिति समझ रहा है, उसने एक सामानांतर व्यवस्था खड़ी कर दी है। जिसके माध्यम से गुजर कर लक्ष्यो की प्राप्ति की जा सकती है, संस्थागत व्यवस्था की प्रभाविकता तिरोहित होती जा रही है। दो नैतिक सत्ताए एक साथ मौजूद है– एक

वह जो दूसरो को उपदेश देने के लिए या यू कहिए कथनात्मक स्तर पर प्रयोग की जाती है, और एक वह जो स्वहित मे अपनाई जाती है।

कुछ सुझाव

उपरोक्त सामाजिक और शैक्षिक आदर्शविहीनता तथा नैतिक दृष्टि से द्वैतसता की स्थिति में शिक्षक की सामाजिक प्रतिष्ठा या स्थिति कैसी होगी इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। आज शिक्षा की स्थिति गिरी है, कोई भी साधन-सम्पन्न व्यक्ति अपने लड़के को शिक्षक नहीं बनाना चाहता। लोगो के लिए शिक्षण अन्तिम शरणस्थल है। वे इस पेशे मे तव ही आते है, जव अन्यत्र दाल नही गलती। पैट्रिक मनु ने उचित ही प्रश्न उठाए है कि आज शिक्षण व्यवसाय इतना कलकित क्यो हो गया है? क्यो बहुत से लोग अपने को शिक्षक बताने मे शर्माने लगे है। वे स्वय उत्तर देते है कि 'वास्तव में आज ऐसे अनेक लोग है जो शिक्षण कर रहे है, क्योकि उनके लिए शिक्षण अन्तिम आश्रय है।

हम भौतिकतावादी युग मे जी रहे है जहा उपभोगवाद का वर्चस्व है। अधिक-से-अधिक धन, सम्पत्ति तथा दिखावे का उपभोग जीवन के सर्वोच्च मूल्य या साध्य बन गए है। ऐसे मे शिक्षक के सामाजिक दर्जे में ह्रास होना कोई आश्चर्य की बात नही है। वह तो राजनेताओ और अधिकारियो का स्कूल या कालेज के परिसर में माल्यार्पण कर स्वागत करता है, उनके स्वागत मे गान गवाता है, वह स्ववित्त पोषित शैक्षिक दुकानों के मालिको के यहां बंधुआ मजदूर की तरह कार्य करता है। वह अपने पेशे पर गर्व करे भी तो कैसे? वस्तुस्थिति यह है कि वह अलगाव से पीडित है।

जहा अध्यापक हतोत्साहित, प्रताडित, अलगावग्रस्त होता है तो वह न तो कक्षागत दायित्वो को ठीक से निभा पाता है और न ही बाहर के। ऐसी आदर्शविहीन ओर अलगाव पीडित परिस्थितियों में शिक्षक से जिस उच्च प्रतिबद्धता की अपेक्षा की जा रही है वह तथ्यो के यथार्थ धरातल पर आधारित नही है, आदर्श के स्तर पर यह ठीक है, लेकिन क्रियान्वयन के स्तर पर वह खोखली है। यदि हम सचमुच चाहते है कि शिक्षक एक प्रतिबद्ध समाज सेवा को समर्पित व्यक्ति बने, 'गुरु' के परम्परागत आदर्शो का पालन करे तो हमें कुछ निश्चित उपाय करने पड़ेंगे जिन्हे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

- शिक्षक प्रतिवद्धता को शिक्षक की भूमिकाओं के सदर्भ मे व्यावहारिक दृष्टि से परिभाषित करना होगा कि उनसे कहा और कितनी प्रतिबद्धता की अपेक्षा है।
- शिक्षक प्रतिबद्धता के आंकलन के लिए यथार्थवादी ठोस मापदण्ड भी निर्धारित करने पड़ेगे, जिनके द्वारा समय-समय पर शिक्षक की प्रतिवद्धता का आंकलन किया जा सके और उस आकलन के आधार पर उसे भावी निर्देश दिए जा सके। ये भावी दिशा-निर्देश सम्बन्धित शिक्षक के साथ विचार-विमर्श के उपरान्त ही तय किए जाए।
- समय व राष्ट्र को शिक्षक के कार्यो की महत्ता का अहसास होना चाहिए और उसी के अनुरूप शिक्षको को समाज में प्रतिष्ठा व सम्मान प्रदान किया जाना चाहिए। आज कही भी जो कोई उच्च वैज्ञानिक, व्यापारी या श्रेष्ठ अधिकारी मिलता है, या उसके द्वारा लिखे सस्मरण पढने को मिलते है तो यही देखने मे आता है कि उन्होंने अपनी उच्च उपलब्धियों का श्रेय अपने विशिष्ट शिक्षको को दिया है। जिनके प्रति आभार प्रकट करने में वह सदैव स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है। यह देश तो प्राचीनकाल से महान आचार्यो, गुरुओ का ऋणी है जिन्होने भारतीय समाज को एक अलग पहचान और अक्षय जीवन्त आत्मा प्रदान की है।
- आज भी यशस्वी और आदर्श शिक्षको को आचार्यो की भाति व्यवहार करना चाहिए ताकि युवा व नए शिक्षक उनके आचरण से कुछ सीख सके और उनकी आचरण संहिता का अनुकरण करने के लिए प्रेरित हो सके। शिक्षक चिन्तन-मनन, अध्ययन-अध्यापन तथा अनुसंधान से सम्बन्धित

कार्य है, यह कवि, रचनात्मक कल्पना, तीव्र बोध, सृजनात्मक क्षमा और सम्प्रेषण के कौशल की माग करता है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक भौतिक व मानसिक स्तर पर सुरक्षित व सन्तुष्ट महसूस करता रहे। तभी वह स्वयं की सृजकता को पोषित कर सकेगा, अभिव्यक्ति दे सकेगा। एक प्रज्वलित दीपक ही दूसरे दीपक को ज्योतिर्मय कर सकता है।

- यह नहीं हो सकता कि समाज आचरण की दोहरी सहिता अपनाए, एक सहिता व्यापारियो, अधिकारियों, राजनेताओ की हो और दूसरी आचरण सहिता केवल शिक्षकों के लिए। शिक्षको की ओर उगली उठाने वाले लोग जरा अपने भी गिरेबान मे झांकें तो उन्हे सही वस्तुस्थिति का पता लगेगा।

सच्चाई यह है कि डाक्टरी और वकालत जैसे पेशे जो उच्चवृत्तिक समूह माने जाते हैं, उनमे भी व्यावसायिक प्रतिबद्धता समाप्तप्रायः है, उनके धन्धे में भ्रष्टाचार इतना व्याप्त हो गया है कि लोग डाक्टर को 'कसाई' और वकील को 'दलाल' कहने से नही चूकते। अत' समाज के सभी वर्गो के जननायको को उच्च आचरण का आदर्श प्रस्तुत करना ही होगा। इनमे शिक्षक भी शामिल है।

अन्त मे हम यह भी स्वीकार करना चाहेंगे कि शिक्षको की समाज मे एक विशिष्ट भूमिका है। वे यह कह कर अपने दोषो से मुक्ति नही पा सकते कि समाज में और लोग भ्रष्ट हैं तो हम भी भ्रष्ट हो गए तो क्या हो गया? आज समाज मे जो कुछ भी विसगति मौजूद है, उसके लिए वह स्वय भी कुछ हद तक जिम्मेदार है, क्योकि यह भ्रष्ट पीढ़ी भी कही-न-कही, कभी-न-कभी अपने शिक्षको की कक्षाशालाओ से ही निकली होगी, उनके बनाने में हम शिक्षको का भी कुछ-न-कुछ हाथ है। शिक्षक आंशिक रूप से ही सही, जिम्मेदार तो है। इसलिए इस पेशे मे जो भी आए, यह सोचकर आए कि उसे एक मिशन पूरा करना है, न कि रोजी-रोटी कमाने का साधन मात्र उपलब्ध करना है। ठीक ही कहा है कि "समाज, समुदाय तथा राष्ट्र को सिर्फ इस वर्ग से अपेक्षा ही रखते हुए, उन्हें अपनी उपेक्षा का शिकार बनाने के अलिखित अधिकार का त्याग भी पहले करना होगा। उन्हे वेतनभोगी कर्मचारी बनाने से बाज आना होगा और जिन कर्तव्यो व दायित्वों के निर्वाह की उनसे अपेक्षा हो, उन्हे स्पष्ट करते हुए स्वय अपनाने के लिए पहले तत्पर होना पडेगा। आचार सहिता अध्यापक के लिए अपरिहार्य है, समाज व जननेताओ के लिए नही। यदि यह आधारभूत अवधारणा हो तो द्वैतसत्तात्मक यह समाज विनाश के माध्यम से ही सुधर सकता है, विकास के माध्यम से नही।"

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि आज भी शिक्षक राष्ट्र का हितैषी है, छात्रो के उन्नयन के लिए सदैव प्रयत्नशील है। परन्तु समाज व राष्ट्र को भी 'प्रतिबद्ध राष्ट्रनिर्माता' हेतु अपना कर्तव्य वहन करना होगा तथा अकादमिक, सामाजिक आदर्शविहीनता को दूर करना होगा। ❑❑

शिक्षा संकाय
यू.आई एम.टी.
मोदीनगर, गाजियाबाद
उत्तर प्रदेश

बदलते सामाजिक परिवेश में शिक्षा का स्वरूप और शिक्षक का दायित्व

❑ नरेश कुमार

शिक्षा के दायित्वों को भली-भांति सहन करने वाला व्यक्ति ही सच्चा शिक्षक हो सकता है। शिक्षा द्वारा बच्चों को जो भी संस्कार दिए जाने हैं, जो विद्या और मूल्य प्रदान किए जाने हैं शिक्षक का उन सभी में पारंगत होना बहुत ही आवश्यक है। विनोबा भावे ने आदर्श शिक्षक के बारे में कहा था–"वह विद्यार्थी-निष्ट होता है और स्वदेशी धर्म का पालन करता है अर्थात् उसमें कर्तव्य और राष्ट्र के प्रति प्रेम कूट-कूट कर भरा होता है"।

आधुनिक युग विज्ञान एव तकनीकी का युग है। अनेक वैज्ञानिक परिवर्तनो के चलते सामाजिक परिवेश मे भी निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। इस बदलते हुए परिवेश मे शिक्षाविदो एव दार्शनिकों का शिक्षा के स्वरूप, ढ़ाचे और शिक्षक की भूमिका की तरफ झुकाव होना स्वभाविक बात है। वास्तव मे समाज का स्वरूप ही शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करता है। शिक्षा किसी देश एव समाज के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक अच्छी व प्रभावशाली शिक्षा प्रणाली जहां एक सभ्य समाज का निर्माण करती है, वही दूसरी तरफ अनुचित शिक्षा प्रणाली असभ्यता को जन्म देती है। अत शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो किसी व्यक्ति के भौतिक विकास के साथ उसका आध्यात्मिक विकास भी करे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली केवल भौतिक विकास पर आधारित है। आज की शिक्षा मनुष्य के अन्दर अच्छे संस्कारो व मूल्यो का निर्माण कर उसे अच्छा व चरित्रवान नागरिक नहीं बनाती। चरित्रवान नागरिक ही देश एव समाज को सही दिशा मे ले जाकर एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण करने मे महत्वपूर्ण योगदान देते है। अतः शिक्षा द्वारा व्यक्ति के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनो तरह के विकास होने चाहिए।

वास्तव मे शिक्षा की भारतीय अवधारणा पाश्चात्य विचारो से कुछ अलग, मौलिक तथा गहन है। मूल रूप से शिक्षा बालक अथवा विद्यार्थी के अन्दर छिपी दिव्यता को प्रकट एव पुष्ट करने का उद्देश्य लिए हुए है। भारत के विश्वविख्यात शिक्षक दार्शनिक सन्त स्वामी रामतीर्थ का कहना है– "वास्तविक शिक्षा तो उस समय प्रारम्भ होती है जब मनुष्य सभी प्रकार की वाह्य सहायताओ से मुंह मोड़कर अपने अन्दर के स्रोत की ओर अग्रसर होता है। वास्तविक शिक्षा का आदर्श यह है कि हम भीतर से कितनी विद्या निकाल सकते है, यह नही कि हम कितनी अन्दर डाल सकते है। लौकिक एव व्यावाहरिक दृष्टि से देखा जाए तो भी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो छात्र को सुसंस्कार देकर सुयोग्य व्यक्ति एवं आदर्श नागरिक बनाए। शिक्षा का उद्देश्य है कि विद्यार्थी का व्यक्तित्व बने, निखरे और उसके अन्दर गौरव, गरिमा आए। उसके सदगुण उभरे, विकसित हो और उसकी चेतना का स्तर भी ऊचा उठे। मानव की शरीर रचना तो ससार मे प्रायः समान है। मानवीय सुख, सुविधाए भी आजकल अतीत की तुलना में कही ज्यादा है। कमी है तो केवल और केवल सुसस्कारों की, इसके अभाव के कारण व्यक्ति आज दीन, हीन बना हुआ है। आज स्थिति यह है कि मनुष्य उपभोक्तावादी एव भौतिकवादी सस्कृति से ग्रस्त है। मानवतावादी एवं आध्यात्मवादी सस्कृति का मनुष्य मे बहुत अभाव है। आज का व्यक्ति नैतिक रूप से इतना कमजोर है कि दुर्गुण उस पर हमला करके सहज ही उसके अन्दर प्रवेश पा लेते

है। ये दुर्गुण कुसस्कारों के रूप में व्यक्ति के अन्दर घर कर लेते हैं। कुसस्कार समाज एव देश के विकास में बाधक है। कुसस्कारो के कारण समाज मे औपचारिक प्रवृत्तिया निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। संस्कारो के बिना व्यक्ति श्रेष्ठ और शक्तिशाली कैसे बन सकता है? उसमें शालीनता कैसे आ सकती है? एक श्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली मे इन सभी तत्वों का समावेश होना जरूरी है। एक श्रेष्ठ मूल्य परक शिक्षा ही एक सभ्य, शालीन एव शिष्ट समाज का निर्माण कर सकती है।

शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य सिर्फ क्लर्क, अफसर, डाक्टर, इन्जीनियर आदि बनाना नही है बल्कि उसके अन्दर मनुष्यता व देवत्व को जगाना है। केवल ये सब कुछ बनना, परीक्षाएं पास करना या कराना शिक्षा का उद्देश्य नही हो सकता। अब प्रश्न यह भी उठता है कि परीक्षा मे प्राप्त अच्छे अक क्या किसी भी परीक्षार्थी का सही मापदण्ड है? कई बार अच्छे अक विद्यार्थी की पाठ रटने की प्रवीणता का फल होते है। सरकार द्वारा विद्यालयो मे लागू की गई नई नैतिक शिक्षा की सार्थकता तभी है जब विद्यार्थी परीक्षा पास करने के साथ-साथ व्यावाहरिक रूप से भी नैतिक हो। एक विद्यार्थी जो नैतिक शिक्षा की परीक्षा मे अच्छे अंक ले रहा है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह वास्तविक जीवन मे भी नैतिक हो। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम बच्चो को ऐसी शिक्षा दें जो व्यावाहरिक रूप से बच्चों का विकास करे। सच तो यह है कि परीक्षाओ और उनमे प्राप्त अंको के आधार पर ऊंच-नीच पर टिकी एक नई किस्म की जात-बिरादरी खड़ी हो जाती है जिसमें भ्रष्टाचार का भी काफी बोलबाला हो रहा है। शिक्षा के द्वारा बच्चो को व्यावाहरिक ज्ञान दिया जाना चाहिए न कि केवल परीक्षा का ज्ञान।

शिक्षा का उद्देश्य छात्रो को सिर्फ कमाऊ अथवा जीविकोपार्जन मे सक्षम बनाना भी नही है। यदि कमाना और आर्थिक स्वावलम्बन ही शिक्षा का एकमात्र अथवा मुख्य उद्देश्य हो तो इसकी पूर्ति वश परम्परा से भली-भांति की जा सकती है। बाप-दादाओ के धन्धो मे कुशलता और प्रवीणता तो कम पढ़े लिखे होने पर भी सहज ही प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए समय गवाना बुद्धिमता नहीं है। मस्तिष्क मे दुनिया भर के आकड़े और जानकारिया भरना भी शिक्षा का उद्देश्य नही हो सकता। यह कार्य तो विभिन्न विषयो के कोष, विश्वकोष तथा कम्प्यूटर भली-भांति कर सकते है।

शिक्षा की सार्थकता तो मनुष्य की स्वतत्र चेतना को कुसंस्कारों से मुक्त करने मे है। उसे इस योग्य बनाने मे है कि वह जीवन का स्वरूप समझ सके और समस्याओं की तह तक पहुंच सके, यथार्थ निर्णय कर सके और औचित्य को अपनाने मे साहसपूर्वक अड़ सके। विचारक टॉम्स हक्सले का कहना है कि "शिक्षा का बहुमूल्य फल यह हो कि तुम्हे जो जब करना चाहिए तब कर सको, चाहे तुम उसे पसन्द करते हो अथवा नही"। महात्मा गाधी ने भी कहा है कि "दिमाग में बहुत-सी बाते भर लेने या विविध पुस्तकें पढ़कर परीक्षाए पास कर लेने में सच्ची शिक्षा नहीं है, पत्युत्तर चरित्र सगठन ही सच्ची शिक्षा है" सक्षेप मे कहा जाए तो श्रेष्ठ और सही जीवन-मूल्यो का चयन ही सही शिक्षा है।

अब शिक्षक के दो दायित्वों, कर्तव्यो और भूमिका पर विचार करे। स्पष्ट है कि शिक्षा के दायित्वो को भली-भाति सहन करने वाला व्यक्ति ही सच्चा शिक्षक हो सकता है। शिक्षा द्वारा बच्चों को जो भी सस्कार दिए जाने हैं, जो विद्या और मूल्य प्रदान किए जाने है शिक्षक का उन सभी मे पारंगत होना बहुत ही आवश्यक है। विनोबा भावे ने आदर्श शिक्षक के बारे में कहा था—"वह विद्यार्थीनिष्ट होता है और स्वदेशी धर्म का पालन करता है अर्थात् उसमे कर्तव्य और राष्ट्र के प्रति प्रेम कूट-कूट कर भरा होता है"।

महान दार्शनिक एवं विचारक अरविन्द घोष ने भी शिक्षक के बारे में कहा है "अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं जो सस्कारो की जड़ों मे अपने ज्ञान की खाद देते हैं और अपने श्रम से सींच-सींच कर उन्हें महाप्राण शक्तिया बना देते है"।

शिक्षक वह महान विभूति है जो तालीम को आध्यात्म का अधिष्ठान देता है। योग, उद्योग और सहयोग से सचालित उसकी प्रयोगात्मक क्रियाए स्वार्थी को परार्थी

बना देते हैं। शिक्षक दण्ड शक्ति और हिंसा शक्ति की जगह समाज मे प्रेम शक्ति और विश्वास शक्ति को परिवर्तित करते हैं, हृदय परिवर्तन करते है और दिशा परिवर्तन की दिशा खोलते हैं ताकि स्पर्धा के स्थान पर सहयोग तथा सहार के स्थान पर सृजन हो सके।

ओशो अपनी ओजस्वी वाणी मे बताते हैं कि कोई व्यक्ति शिक्षक तभी हो सकता है जब उसके अतर मे विद्रोह की अत्यन्त ज्वलन्त अग्नि हो वरना वह किसी ना किसी नीति, स्वार्थ, समाज, धर्म अथवा राजनीति का ऐजेट होगा। शिक्षक के अन्दर धधकती आग हो विद्रोह की, चिंतन की और विचार हों इसके बिना शिक्षक कहा जाने वाला व्यक्ति शिक्षक न होकर दुकानदार है। वे आगे कहते हैं कि आजकल शिक्षक की व्यवस्था प्रेम पर नही अपितु प्रतियोगिता पर आधारित है जहा दूसरो को नीचा दिखाने, दूसरो के सिर पर पैर रखने, आगे निकलने की कुत्सित भावना हो वहां प्रेम कैसे हो सकता है? शिक्षक की यह जिम्मेदारी है कि वह राजनितिज्ञो से बचे उनके हाथ का हथियार ना बने क्योकि राजनीतिज्ञो का उद्देश्य होता है येन-केन-प्रकरेण सत्ता की कुर्सी हथियाना और उनके हथियार होते है आपसी फूट और एक-दूसरे को आपस मे लडाना। शिक्षक का मुख्य कर्तव्य एवं जिम्मेदारी केवल और केवल बच्चों के बारे मे सोचना, चिन्तन करना एवं उनका विकास करना है। बालक विकासाधीन ईश्वर है। बालक को मानव का पिता भी कहा जाता है। शिक्षक का उसकी शिक्षा-दीक्षा के प्रति भारी कर्तव्य है। उसे बालक को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो केवल शब्दों और उद्देश्यों पर आधारित न हो बल्कि आदर्शो के प्रस्तुतीकरण पर आधारित हो। शिक्षक का जीवनादर्श ही विद्यार्थी की शिक्षा का सर्वाधिक उपयोगी और सफल साधन है। शिक्षक को यह सोचना एवं समझना चाहिए कि बच्चा एक भगवान का रूप है और उसकी भूमिका एक उपासक और साधक की है। आधुनिक समय में हमारे देश में गुरु-शिष्य परम्परा का भारी ह्रास हुआ है जबकि प्राचीन समय मे यह सम्बन्ध शालीनता एव गौरव से परिपूर्ण था। कभी सदगुरु शिष्य के लोक-परलोक का पूरा दायित्व लेकर उसे आध्यात्मिक ज्ञान देता था तथा मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर करता था। अनेक प्रकार के गुरु आजीवन विद्यार्जन और विद्यादान मे लीन रहते थे और किसी वेतन की आशा ना करके दान दक्षिणा पर ही निर्भर रहते थे। अब तो वेतनधारी शिक्षको की जमात खड़ी हो गई है। जो वेतन वृद्धि के लिए सतत् आदोलनरत रहते है। आज सच्चे शिक्षक की कमी देश की सबसे बडी समस्या है। जहा तक भारत की प्राचीन गुरुकुल पद्धति का प्रश्न है उसके चालू होने का तो कोई सवाल ही उत्पन्न नही होता। एक आधुनिक अध्यापक का जीवन प्राचीन गुरुओं की भांति सरल एवं सादा नही हो सकता। परतु यह आशा अवश्य की जाती है कि वह अपने व्यवसाय के प्रति मानसिकता एक आदर्श गुरु की प्रदर्शित करे।

एक अध्यापक से सामान्यतया तीन बातों की अपेक्षा तो की ही जाती है। वह सन्तोषी हो, अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठावान हो तथा अपने विद्यार्थियो अथवा शिष्यो का हित चिन्तक हो। अध्यापक ज्ञान की अपेक्षा धन के प्रति विशेष चिन्तनशील एव प्रयत्नशील नही होना चाहिए क्योकि इससे ज्ञानार्जन मे बाधा उत्पन्न होती है। आजकल बहुत से अध्यापक ट्यूशन के प्रति ज्यादा लालायित रहते हैं। वास्तव में ट्यूशन करना कोई बुरी बात नही है बशर्ते कि वह ट्यूशनखोरी का रूप धारण ना कर ले। जो बच्चे पढ़ने में दुर्बल है वे यदि ट्यूशन चाहते हैं तो उनकी आवश्यकता की पूर्ति अवश्य करनी चाहिए, इसके विपरीत यदि ट्यूशन कराने के लिए किसी छात्र-छात्रा को विवश किया जाए और कक्षा में पूरे मनोयोग से ना पढ़ाया जाए तो वह अध्यापक के पद व गरिमा को धूमिल करने वाला कार्य कहा जाएगा। इसी प्रकार वेतन वृद्धि के लिए अध्यापक मजदूरों की तरह तालाबन्दी अथवा नारेबाजी का सहारा लेता है तो यह छात्र एंव छात्राओ के प्रति अन्याय है। इस स्थिति मे अध्यापक बच्चों के सामने एक बुरा उदाहरण है।

किसी भी स्तर पर व्यक्ति को विवशता की स्थिति मानकर अध्यापक नहीं बनना चाहिए। इस व्यवसाय के प्रति तभी उन्मुख होना चाहिए जब अध्यापन के प्रति रुचि हो तथा इस कार्य को गौरवपूर्ण माना जाए। कुछ

ऐसे भी अध्यापक देखने मे आए हैं जो आजन्म हीन भाव द्वारा ग्रसित रहते है तथा उस अवसर की तलाश मे रहते है जब वे किसी अन्य व्यवसाय को अपना सके। ऐसे व्यक्ति कभी भी निष्ठावन अध्यापक नही बन सकते और वे जीवन मे कभी भी सुखी नहीं रहते। हम जहा भी है अगर पूरी निष्ठा से काम करें तो हमें परम सतोष प्राप्त होता है।

अध्यापक किसी भी महान पुरुष की अपेक्षा बडा होता है क्योकि महानतम् व्यक्तियो को अध्यापक ही पढ़ाता है। एक अध्यापक को डा राधाकृष्णन की तरह यह सोचना चाहिए कि विश्वविद्यालय महापुरुषो का निर्माण करने वाले कारखाने हैं और अध्यापक उनमे काम करने वाले कारीगर। समाज एव राष्ट्र निर्माता के रूप मे यदि आप अध्यापक बनना चाहते है तो माता सरस्वती को हृदय मे धारण करके आगे बढ़ जाइए कल्याण सुनिश्चित है।

हमारे प्राचीन गुरु अपने कर्तव्य की त्रिवेणी मे सदेव आकण्ठ रहा करते थे। यही कारण है कि वे परमपूज्य थे और उनका स्मरण करते हुए उनके शिष्य गर्व का अनुभव करते है। एक सच्चे अध्यापक के सामने उसे शिष्य सदेव नतमस्तक रहते है। भावी अध्यापकों को संस्कृत के महान नाटककार कालिदास के इस कथन पर गम्भीरता पूर्वक विश्वास करना चाहिए कि जो अध्यापक केवल जीविकोपार्जन के लिए विद्या पढ़ाता है वह पडित नही ज्ञान बेचने वाला दुकानदार कहा जाता है।

भावी अध्यापकों को यह बात याद रखनी होगी कि अध्यापक बन जाना जितना सरल है अध्यापक बना रहना उतना ही कठिन है। इस ओर कदम बढाने से पहले भली-भाति सोच लेना चाहिए। ❑❑

1110/30 गोपाल नगर
गढ़ी घसीटा, सोनीपत
हरियाणा

बाल्यावस्था में संस्कार सृजन माता-पिता का योगदान

❑ **नीरोत्तमा शर्मा**

आधुनिक समाज पथ भ्रष्ट होकर कुमार्ग पर जा रहा है। चोरी, हिंसा, हत्या व बलात्कार जैसे अपराध निरंतर बढ़ रहे हैं। चारो ओर बेईमानी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, स्वार्थ व लिप्सा का वातावरण है। युवाओ के आदर्श राम, कृष्ण व गौतम न होकर माइकल जैक्सन, टायसन व अडर टेकर हैं। जीवन के किसी क्षेत्र में असफल होने पर या तो वे आत्महत्या कर लेते है या फिर मादक द्रव्यों का सहारा लेकर कल्पना लोक मे विचरण करने लगते है। यहा तक कि विवाह जैसी पवित्र परम्पराओ को नकार इन्होने एड्स जैसी आफत को गले लगा लिया है।

ऐसे मे समाज के बुद्धिजीवी वर्ग का चिंतित होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि आज शिक्षा के माध्यम से मूल्यो के संरक्षण की बात की जा रही है। मूल्यो पर आधारित शिक्षण मे अध्यापक की भूमिका की चर्चा की जा रही है।

क्या संस्कारो का सृजन केवल अध्यापक की जिम्मेदारी है? क्या विद्यालय स्तर पर किया गया प्रयास ही काफी रहेगा? जबकि हम सब जानते है कि छः वर्ष की आयु तक बालक के व्यक्तित्व विकास की लगभग 89% प्रक्रिया पूरी

हो जाती है। और इस अवस्था तक वह अपना अधिकाश समय घरेलू वातावरण मे माता-पिता के ससर्ग मे व्यतीत करता है।

यह अवस्था मन की कोमल भूमि पर सस्कारों के बीजारोपण की है। ऐसे मे बालक को सुसस्कृत करने व उसके व्यवहार को परिमार्जित करने मे घरेलू वातावरण व माता-पिता का योगदान बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

अपनी संतान के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इस विषय में हमारे शास्त्रो ने एक सूत्र दिया है—

लालयेत् पन्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत्।

प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रे मित्रवत् आचरेत्।।

अर्थात् प्रथम पाच वर्ष बालक का लालन-पालन करे, बाद के दस वर्ष उसका ताडन करे और सोलह वर्ष का होने पर उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करे।

प्रायः माता पिता जिन कार्यो को करने से बच्चे को मना करते हैं, उन्हीं के सामने स्वयं करते हैं। बच्चा झूठ बोलता है उसे डांट पड़ती है जबकि पिता झूठी बीमारी का बहाना कर दफ्तर से छुट्टी लेकर घर बैठा है। बच्चा बड़ों का सम्मान न करे तो उसे बेइज्जत होना पड़ता है लेकिन वही लोग अपने बड़ों के लिए अपशब्दों का प्रयोग करते हैं। बच्चा चोरी करे तो उसे सजा मिलती है वहीं मां-बाप रात को कुंडी डालकर बिजली की चोरी करते हैं, साथियों में हंस-हंस कर बताते हैं कि आयकर की चोरी में उन्होंने सरकार को किस प्रकार चूना लगाया। यह दोहरा व्यक्तित्व क्यों?

लालन-पालन करना अर्थात् उसे प्रेम करना। बालक के लिए बौद्धिक प्रकार का प्रेम पर्याप्त नहीं होता उसे मानसिक प्रेम की आवश्यकता होती है। हमे उसकी इच्छाओं को सर्वोपरि मानकर पूर्ण करना चाहिए। इस अवस्था तक बालक इतना निर्दोष होता है कि उसे कभी अनुचित इच्छा होती ही नही। उसकी सभी इच्छाए आवश्यकताए ही होती है। जिन्हे हम अनुचित इच्छा कहते है वह तो हम उसमे आरोपित करते हैं। बालक को चॉकलेट और आइसक्रीम का स्वाद लेना हम सिखाते है। टीवी देखना, मारना-पीटना व गाली देना हम सिखाते हैं।

यदि इस अवस्था तक बालक का सही ढंग से पालन-पोषण किया जाए तो उसमे आत्मविश्वास एव आत्मसम्मान का भाव पैदा होता है। उसकी शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक क्षमताएं उन्नति करती हैं। उसमे उत्साहपूर्ण आनद जागृत होता है। जीवतता बढ़ती है, कार्य शक्ति बढ़ती है, मन की एकाग्रता बढ़ती है। कहने का भाव यह है कि सही पालन पोषण द्वारा बालक मे इस अवस्था तक सभी मूल्यों का सचार किया जा सकता है।

लेकिन होता बिल्कुल विपरीत है। आधुनिकता की दौड़ मे सयुक्त परिवार बिखर गए है। घर में दादा-दादी, ताया-ताई, चाचा-चाची के लिए कोई जगह नही है। जो बालक को गोद मे लेकर दुलार सके, उसमें सुरक्षा की भावना भर सके व उसे धार्मिक व पौराणिक कहानिया सुनाकर न केवल उसका मनोरजन करे अपितु अप्रत्यक्ष रूप मे उसके व्यक्तित्व मे, सामाजिक नैतिक व चारित्रिक मूल्यों का संचार कर सकें।

आज माता पिता के पास बच्चो को देने के लिए धन तो बहुत है मगर समय नहीं है। वे उसमें अज्ञात भविष्य को सवारने के लिए ज्ञात वर्तमान को बर्बाद कर रहे हैं।

बालक मां की गोद में बैठना चाहता है वह या तो बहुत व्यस्त है या थकी हुई है। पिता से कुछ पूछना चाहता है मगर पिता तो कभी घर मे नहीं होते। हताश बालक अपना समय वीडियो गेम खेल कर, टीवी देखकर बिताता है मगर उसे पूछने वाला कोई नहीं।

प्राय· माता पिता जिन कार्यो को करने से बच्चे को मना करते हैं, उन्ही के सामने स्वयं करते है। बच्चा झूठ बोलता है उसे डांट पडती है जबकि पिता झूठी बीमारी का बहाना कर दफ्तर से छुट्टी लेकर घर बैठा है। बच्चा बडो का सम्मान न करे तो उसे बेइज्जत होना पडता है लेकिन वही लोग अपने बड़ो के लिए अपशब्दों का प्रयोग करते हैं। बच्चा चोरी करे तो उसे सजा मिलती है वहीं मा-बाप रात को कुंडी डालकर बिजली की चोरी करते है, साथियों

में हंस-हस कर वताते हैं कि आयकर की चोरी मे उन्होंने सरकार को किस प्रकार चूना लगाया। यह दोहरा व्यक्तित्व क्यो?

यदि हम वास्तव मे बालक के व्यक्तित्व मे सद्गुणों का संचार करना चाहते है तो घर के वातावरण व माता-पिता के व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहिए क्योकि बाल्यावस्था में सस्कार ग्रहण करने की क्षमता सर्वाधिक होती है। बालक सीखता है अपने वातावरण से, जैसा देखता है, वैसा करता है। जैसा सुनता है, वैसा बोलता है। जैसा व्यवहार उसके साथ होता है वैसा ही व्यवहार वह अन्य लोगो के साथ करता है। अनुकरण ही उसका स्वभाव है। दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले दृश्य, रग, प्रकाश, ध्वनि आदि उसके मन पर बुरा प्रभाव डालते है। आजकल जिस प्रकार का संगीत सुनने को मिलता है उसके प्रभाव से बालक का मन हमेशा उत्तेजनापूर्ण रहता है। भोजन ऐसा कि शारीरिक स्वास्थ्य, मन की स्थिरता, भावनाओं की सात्विकता आदि सभी की हानि होती है। माता-पिता का व्यवहार तो बच्चे के मन को अत्यत विचलित कर देने वाला होता है। आज गला काट प्रतियोगिता के दौर मे वे अपने बालक को जबरदस्ती धकेलते है या यू कहिए कि बालक के कधे पर बैठकर प्रतियोगिताओ मे भाग लेते है। हर समय अपने बच्चे को प्रथम स्थान पर देखना चाहते हैं। चाहे इसके लिए उन्हे कितनी ही अनैतिकता का सहारा लेना पड़े या वालक को कितना ही मानसिक दबाव झेलना पडे।

अभी पिछले माह एक संस्था द्वारा अलग-अलग आयु-वर्ग के बच्चो मे चित्रकला प्रतियोगिता करवाई गई। रविवार का दिन था। माता-पिता बच्चों को लेकर आए। खुले मैदान मे 5-6 साल के बच्चे ध्यान मग्न होकर चित्रकारी कर रहे थे। मगर माता-पिता आवाजे लगा कर उनका ध्यान विचलित कर रहे थे। कोई चिल्ला कर झडे के साथ रस्सी बनाने का निर्देश दे रहा था तो कोई पतंग में लाल रग भरने का। कईयो का बस चलता तो जाकर बच्चो को थप्पड़ मार देते या खुद चित्र बना कर दे देते। कैसी प्रतियोगिता है यह? क्यों नही हम चाहते कि हमारा बच्चा अच्छा डाक्टर, इजीनियर या पेटर वनने से पहले अच्छा इसान बने।

अच्छी बातें सीखने के लिए अच्छी बुद्धि चाहिए। जिस प्रकार भूमि होने पर भी बीज बोने से पहले उसमे खुदाई करना व खाद डालना आवश्यक है, जिस प्रकार दूध डालने से पहले पात्र को स्वच्छ करना व सीधा रखना आवश्यक है उसी प्रकार मूल्यों की शिक्षा से पूर्व बालक की बुद्धि को सक्षम बनाना आवश्यक है।

बुद्धि विकास होता है निरीक्षण से, परीक्षण से, पृथक्करण से, समस्या हल करने से, ज्ञानेन्द्रियो के माध्यम से अनुभव करने से, कर्मेन्द्रियों के माध्यम से क्रियाशील होने से। इसके लिए बालक को भय रहित, स्वच्छ, शुद्ध वातावरण उपलब्ध करवाया जाए। उसे अनुभव के अवसर प्रदान किए जाए व उसका सही मार्गदर्शन किया जाए।

हम सदा बालक पर अपने विचार थोपते हैं। अपने पैमाने से उसे नापते है। बालक की पसद के चित्र, खिलौने, पुस्तके आदि घर मे होते ही नहीं।

माता-पिता ने बच्चे के जन्म दिवस पर 500 रु की रेलगाड़ी भेंट की, बच्चे को दिखाई परतु स्पर्श नही करने दिया। स्वय ही चला कर दिखाई। सब खुश हुए। बालक उसे छूना चाहता था, उसे चलाना चाहता था उसके साथ खेलना चाहता था। परतु मा-बाप ने मना कर दिया। सामने कांच की अलमारी मे बद कर दिया मेहमानो को दिखाने के लिए। इसका क्या प्रयोजन है? बालक उसे देखकर दुखी होगा, यह कैसा अत्याचार है? हम कहते है कि बालक हमे बहुत प्रिय है, हम उसके लिए कुछ करने को तैयार हैं। मगर वास्तविकता यह है कि हम अपनी खुशिया व जरूरतें देखते हैं, बालक क्या चाहता है इसकी परवाह नही करते। हम उसके चारित्रिक विकास हेतु अपना व्यवहार तक वदलने को तैयार नही है।

मम्मी-पापा को पिक्चर जाना है तब बालक का क्या करेगे यह समस्या बालक के सामने दोहराई जाती है। पड़ोसी व रिश्तेदारो की निदा व औरो को बेवकूफ बनाने की युक्ति, प्रयुक्ति की चर्चा बालको के समक्ष ही होती है। मम्मी-पापा एक-दूसरे के साथ लडने या प्रेम करने का कार्य भी बच्चो के सम्मुख ही करते है। यह समझ कर कि बालक नासमझ है। परंतु बालक सब समझता है। वह किताबो से तो सीखने पर भी नहीं सीखते लेकिन वातावरण व व्यवहार से वे अद्‌भुत ढग से सीख लेते हैं। अत: बालको मे मूल्यों का

प्रतिस्थापन करने से पूर्व माता-पिता को मूल्यो की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

हम बालको को होटल, थियेटर, पार्टियो मे तो अपने साथ ले जाते है, क्या उन्हे लेकर वृद्धाश्रम, अनाथाश्रम या अपराश्रम गए हैं? कैसे उपजेगी उनके मन में समाज के प्रति सद्भावना व सहानुभूति?

बालक स्वभाव से ही भावुक होता है आइए उसकी भावनाओ को दिशा प्रदान करे, घुमने दे उसे फूलो के बीच, दौड़ने दें, उसे तितलियो का पीछा करने दे, उसे कंकर, पत्थर व लकड़ी के टुकड़े इकट्ठे करने दे। तैराने दे उसे बारिश के पानी में कागज की किश्ती। इन्ही से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होगा, उसके चरित्र का विकास होगा। पुस्तके तो ज्ञान का साधन मात्र हैं। असली ज्ञान तो वह है जो बालक अपने अनुभव से सीखेगा। वह पशु-पक्षियों व वनस्पति से प्रेम करेगा उसमे अपनत्व की भावना होगी।

बच्चो के छोटे हाथो, चांद सितारे छूने दो।
वरना चार किताबे पढ़कर हम जैसे हो जाएंगे।।

आइए बालको का चारित्रिक विकास करने से पहले अपने चरित्र का निर्माण करें। उसे सच्चाई का पाठ पढ़ाने से पहले खुद सच बोलना सीखे। उसे शालीन वातावरण, उत्तम साहित्य व सद्भावना पूर्ण व्यवहार प्रदान करे। तानाशाह की तरह यह न करो वह न करो के आदेश न देकर उसके सामने कारण स्पष्ट करे। जो उसे सिखाएं स्वय उसका आचरण करे क्योकि बालक का प्रथम विद्यालय घर है, प्रथम शिक्षक माता-पिता है।

एक बार नीव मजबूत हो गई तो कितने ही प्रलोभन क्यों न आएं वह चरित्रवान बालक वट वृक्ष की तरह खडा रहेगा न केवल स्वय दृढ रहेगा बल्कि आसपास की मिट्टी को भी जकड़ कर रखेगा।

जिस दिन भी ये नन्हे तारे,
नभ मे मिलकर चमके सारे,
सारे तम को हर लेगे,
जग को आलोकित कर देगे।
देने होगे इनको सस्कार,
यही हमारा है उपहार,
दौलत ये स्वयं कमा लेगे,
आदर्श तो इनको हम देगे। ❑❑

मालवा सैन्ट्रल कालेज ऑफ एजुकेशन फॉर वूमैन
सिविल लाइन्स, लुधियाना, पंजाब

प्राथमिक स्तर पर बालकों में मूल्यों का विकास समाज की आवश्यकता

❑ फरहान अहमद सैफी

आज भारत ही नहीं वरन् पूरे विश्व मे इस विपय पर दुख और चिता प्रकट की जा रही है कि लोगो के तथा विशेष रूप से नई पीढ़ी के जीवन-मूल्यो का ह्रास होता जा रहा है। बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, अपराध तथा अनैतिकता जीवन-मूल्यों के ह्रास के साक्षी है। वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली को उचित रूप मे मूल्योन्मुख करे। इस बात पर जोर देना चाहिए कि शिक्षा के सभी स्तरो पर विद्यार्थियो के मन मे उचित मूल्यो को बैठाने की ओर ध्यान दिया जाए ताकि देश का भावी मार्ग प्रशस्त हो। आज के बालक ही कल के नागरिक है। अत. हमे जिस प्रकार का भारत बनाना है उसकी शुरुआत विद्यालयो से ही होनी हे। शिक्षा आयोग का यह कथन कि 'भारत के भाग्य का निर्माण उसके विद्यालयो में हो रहा है,' बिल्कुल सत्य है।

सामाजिक अत क्रिया के दौरान समाज या सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षो के प्रति समाज के सदस्यो का एक विशेष दृष्टिकोण पनप जाता है। इन दृष्टिकोणो के आधार पर ही इस बात की सामाजिक माप की जाती है कि अमुक वस्तु या सामाजिक घटना अच्छी है या बुरी, उचित है या अनुचित, समाज के लिए महत्वपूर्ण है या व्यर्थ। इन्हीं विचारो या सामाजिक मापों के आधार पर समाज मे कुछ मानदंड पनप जाते हैं और उन्हीं मानदंड के आधार पर हम विभिन्न सामाजिक घटनाओ की सामाजिक दृष्टिकोण से कीमत लगाते हैं अर्थात् उसकी अच्छाई-बुराई, महत्व या व्यर्थता का अनुमान लगाते है। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक घटनाओ के सबध में सामाजिक अत·क्रियाओं के दौरान पनपने वाली 'सामाजिक कीमत' को ही मूल्य कहते हैं।

मूल्य एक सामाजिक-सास्कृतिक विरासत है और इसीलिए इसकी प्राप्ति हमें सामाजिक अत क्रियाओ के दौरान सामाजिक-सास्कृतिक सस्थाओ व समितियो से होती है। बच्चा सर्वप्रथम अपने परिवार मे जन्म लेता है। यह परिवार बच्चो का न केवल पालन-पोपण करता है बल्कि उन्हे परिवार तथा समाज से सम्बद्ध प्रमुख मूल्यो से भी परिचित करवाता है। परिवार से ही बच्चा सीखता है कि किस देवी-देवता का कितना महत्व है, किसकी पूजा करनी है, माता-पिता का परिवार मे क्या महत्व है, भाई-वहन का रिश्ता कितना पवित्र है, रोज नहाना उचित है या नही, अपशब्द कहना, अनैतिक कार्य करना उचित है या अनुचित। ये सभी व्यवहार या उचित-अनुचित का निर्धारण किसी न किसी मूल्य से सम्बद्ध होते है और इनके अनुसार कार्य करते-करते ये मूल्य बच्चे के व्यक्तित्व का एक अग बन जाते हैं।

भाषाओं में महान लेखकों, कवियों व महापुरुषों के पाठ, कविताएं तथा जीवनियां उन आदर्श विवरणों के साथ दिए जाएं जो उन्होंने अपने जीवन में ग्रहण किए हों। पाठ में आए मुहावरों, कहावतों, पात्रों के संवादों से विशिष्ट संस्कृति तथा सामाजिक प्रथाओं व मान्यताओं से संबंधित मूल्यों की शिक्षा मिलती है। परंतु इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि विषय-वस्तु के प्रस्तुतिकरण से यह आभास न हो कि बालकों पर नैतिकता थोपी जा रही है। यह बालकों की शारीरिक व मानसिक आयु के अनुरूप होना चाहिए।

सबसे पहले बालक को प्रभावित करने वाला पारिवारिक सदस्य 'माता' होती है। माता यदि बालक को 'फरिश्ता' कह कर पुकारती है तो वह भी स्वयं को

फरिश्ता समझकर ही व्यवहार करता है और इसके विपरीत यदि माता 'बदमाश' कहकर पुकारती है तो वह वैसा ही व्यवहार करता है। माता के बाद बालक के व्यवहार व आचार-विचार को 'पिता' प्रभावित करता है। वह पिता के आचरण का अनुसरण करके भावी सामाजिक मूल्यों का विकास करता है। अनुशासन और सामाजिक मान्यताओं की शिक्षा वह पिता से ही प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त भाई-बहन का व्यवहार, अनुशासन आदि भी बालक के मूल्यों के विकास में सहयोग देते है। माता-पिता के बीच झगड़ा होना, उनका सयमहीन होना, बालक के प्रति पक्षपात पूर्ण रवैया, अनुशासन का न होना व पारस्परिक वैमनस्य के कारण बालक के मूल्यो मे गिरावट आती है। अतः एक स्वस्थ परिवार में इन सभी बातो की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

परिवार के बाद बच्चा पडोस मे जाता है तथा वहां दूसरे बच्चों के साथ मिलकर खेलता है। यहा बच्चा, ईमानदारी, कर्तव्यपालन तथा बातचीत के माध्यम से खेलकूद सम्बंधी मूल्यो का ज्ञान प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, उसमे यह मूल्य पनप जाता है कि खेल मे बेईमानी करना या झूठ बोलना उचित है या अनुचित।

इसके बाद बच्चा स्कूल एवं कालेज मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता है। वहां वह पुस्तकों से, सहपाठियों से तथा शिक्षको से अनेकों मूल्य ग्रहण करता है। स्कूल मे अध्यापकों द्वारा उसे जीवन के विभिन्न पक्षो से संबधित आदर्शो, व्यवहारों अर्थात् मूल्यों की प्राप्ति होती है जिन्हे बच्चा अध्यापको की प्रतिष्ठा के कारण स्वीकार करता है।

इसके अतिरिक्त समाज की अन्य समितियो, संस्थाओ एवं संगठनो से बच्चे को सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति होती है जैसे आर्थिक समितियां व सगठन आर्थिक मूल्य प्रदान करते हैं, धार्मिक संगठनो से धर्म, ईश्वर, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क आदि से सबधित मूल्य प्राप्त होते हैं, राजनैतिक सगठनो से राजनीति से सम्बधित मूल्यों की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार अन्य सगठनो से व्यक्ति पारस्परिक अंत क्रिया करते हुए विभिन्न मूल्य प्राप्त करता है।

प्रत्येक समाज मे, चाहे वह आदिम हो या सभ्य, सरल हो या जटिल, मूल्यों का बहुत महत्व होता है। मूल्य समूह एव समाज का आधार कहे जाते हैं। बिना मूल्यो, सद्गुणों एव आदर्शो के निर्माण व पुनर्निर्माण के समाज का अस्तित्व सम्भव नहीं है। जीवन-मूल्य एक प्रकार के स्थायी विश्वास होते है। इसलिए प्रारम्भ मे एक बार जिन मूल्यो का बीज बालक में बो दिया जाता है उसमे परिवर्तन करना असम्भव नहीं परतु कठिन जरूर हो जाता है। इस व्यस्त समाज में जबकि शिक्षा का समस्त दायित्व विद्यालयो पर आ गया है तो जीवन-मूल्यो के विकास की ओर ध्यान देना भी विद्यालयो का महत्वपूर्ण कार्य हो गया है। विद्यालयो के पाठ्यक्रम मे प्राथमिक स्तर से ही मानवीय मूल्यों के विकास हेतु प्रयास किए जाने चाहिए। इस दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षको पर बालकों का निर्माण करने का महान उत्तरदायित्व है। उनका प्रमुख कार्य यह होना चाहिए कि विद्यालय का समस्त वातावरण इस प्रकार का बनाए कि बच्चो मे उचित मानवीय मूल्यों का सचार हो। चूकि शिक्षक का प्रभाव बालकों पर अवश्य पडता है अत. जो भी नीतिपरक मूल्य छात्रो को आत्मसात् कराने हैं, उन्हें पहले शिक्षकों को व्यवहार में लाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर मूल्यों की शिक्षा के लिए दो प्रकार की विधियो को अपनाया जा सकता है।

प्रत्यक्ष विधियों द्वारा मूल्यों की शिक्षा

मूल्यो की शिक्षा के लिए नियमित पाठ्यक्रम मे कुछ अध्याय शामिल किए जा सकते हैं। जैसे—

नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में

प्राथमिक स्तर पर सभी कक्षाओं मे नैतिक शिक्षा के लिए विशिष्ट व्यवस्था की बहुत आवश्यकता है। प्राथमिक स्तर पर धर्म गुरुओ, संतो तथा महान व्यक्तियों के विचार, जीवनियो तथा प्रमुख घटनाओ को कहानी के रूप में सुनाया जाए।

सामाजिक विषय एवं भाषाओं के पाठ्यक्रम में

इतिहास— इस विषय मे देशभक्त वीरो तथा समाज सुधारको के महान कार्यो का अध्यापन उदाहरणों द्वारा

किया जाए। इससे सत्य, अहिसा, प्रेम, दया, क्षमा, धैर्य, उदारता तथा सहानुभूति आदि मानवीय मूल्यो का विकास किया जा सकता है।

भूगोल– भूगोल संकीर्ण मानसिकता के दायरे से निकलकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' जैसे उच्च आदर्श की स्थापना करता है। इसके माध्यम से प्रकृति प्रेम, विविधता मे एकता का ज्ञान, जनतत्र के वास्तविक स्वरूप व प्रकृति के सौदर्य के प्रति प्रेम का भाव उत्पन्न करना सहज व स्वाभाविक होगा।

भाषाओ मे महान लेखको, कवियो व महापुरुषो के पाठ, कविताएं तथा जीवनिया उन आदर्श विवरणो के साथ दिए जाए जो उन्होंने अपने जीवन में ग्रहण किए हों। पाठ मे आए मुहावरो, कहावतो, पात्रों के सवादो से विशिष्ट सस्कृति तथा सामाजिक प्रथाओं व मान्यताओ से सबधित मूल्यो की शिक्षा मिलती है। परंतु इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि विषय-वस्तु के प्रस्तुतिकरण से यह आभास नही होना चाहिए कि बालको पर नैतिकता थोपी जा रही है। यह बालकों की शारीरिक व मानसिक आयु के अनुरूप होना चाहिए।

विज्ञान के पाठ्यक्रम में

महान वैज्ञानिकों की जीवनियो व उनके द्वारा किए गए अनुसंधानो का अध्ययन कराकर बालको मे दृढ़ विश्वास, लगन, साहस, महत्वाकांक्षा, निडरता, तर्कशक्ति, कठोर परिश्रम व आत्मविश्वास आदि मूल्य विकसित किए जा सकते है। विज्ञान के द्वारा कीड़ों, उनसे होने वाली बीमारियों, बीमारियो से बचाव व स्वच्छता आदि के साथ ही सम्पूर्ण मानव जाति के लिए सेवा भावना उत्पन्न की जा सकती है।

मीडिया, शिल्पकला व रचनात्मक क्रियाओं द्वारा रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म व इंटरनेट जीवन-मूल्यो की शिक्षा के प्रसार में प्रभावी भूमिका अदा करते हैं। विभिन्न शिल्पकलाओं व रचनात्मक कार्यो से भी मूल्यों का विकास किया जा सकता है। बेकार बची सामग्री से फूल बनाना, कशीदाकारी, चित्रकारी आदि के माध्यम से खाली समय के सदुपयोग, मित्रता, आत्मविश्वास, सहयोग, आत्मनिर्भरता आदि मूल्यो का विकास किया जा सकता है।

परोक्ष विधियों द्वारा मूल्यों की शिक्षा

विद्यालय मे सम्पन्न होने वाली क्रियाओ का भी मूल्यो के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान है जैसे– दैनिक प्रार्थना, दिन का सुविचार, सभी धार्मिक पुस्तको के अशो के प्रवचन से विद्यार्थियो मे ईश्वर के प्रति प्रेम, सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, प्रेम तथा क्षमा आदि मूल्यों का विकास होता है।

दो मिनट का मौन रखने से धैर्य का मूल्य उत्पन्न होता हैं। विशेष दिवस जैसे– स्वतंत्रता दिवस, गणतत्र दिवस, शिक्षक दिवस, बाल दिवस आदि मनाने से आदर, देशभक्ति, सेवा भावना आदि मूल्यो का विकास होता है। समाज सेवा के कार्यक्रमों मे भाग लेने से परोपकार, त्याग, दीन दुखियो के प्रति सहानुभूति, श्रमदान, मित्रता आदि मूल्यों का विकास होता है।

पाठ्य सहगामी क्रियाएं

सांस्कृतिक कार्यक्रम–समय-समय पर सास्कृतिक एवं धार्मिक कार्यक्रम पर विभिन्न धर्मो व राज्यो से सबंधित नृत्य, गीत, नाटक आदि प्रस्तुत किए जाएं। इससे विद्यार्थियो में सभी धर्मो एवं संस्कृतियों के लिए प्रेम, एकता, सहयोग तथा सौदर्य के प्रति प्रेम की भावना विकसित होगी।

साहित्यिक क्रियाए–इन क्रियाओ के अतर्गत देशप्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, आज्ञापालन आदि विषयो पर लेख एवं कविता लिखने, पढ़ने व बोलने के अवसर दिए जाए। इससे बच्चों मे समानता, नेतृत्व, सहयोग तथा आत्मविश्वास आदि मूल्यो का विकास होगा।

शारीरिक क्रियाएं व खेलकूद–इनके माध्यम से सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक तथा राष्ट्रीय मूल्यों का विकास होता है। अलग-अलग खेलों के माध्यम से नेतृत्व, अनुशासन, मिलजुल कर काम करने की भावना, दया, सहयोग व क्षमा आदि मूल्य विकसित होते है।

चित्र, चार्ट एवं पोस्टर–महान व्यक्तियो, धर्म गुरुओं,

धार्मिक पुस्तको के महत्वपूर्ण नारो तथा श्लोको को विद्यालय की कक्षाओ एव बरामदो मे लगाया जाए। इसके द्वारा विद्यार्थियो को उद्देश्यपूर्ण कार्यकलापो को करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

विद्यालय मे समाज सेवा, राष्ट्रीय कैडेट कोर, प्रौढ़ शिक्षा तथा सरकारी कार्यक्रमो का आयोजन करने से बालकों को अपने देश व उसकी परिस्थितियों को समझने की भावना, सहनशीलता, प्रशसनीय दृष्टिकोण व परिश्रम के प्रति रुचि की प्रेरणा मिलती है। प्राथमिक स्तर पर पाठ्य-सहगामी क्रियाओ को प्रभावी बनाने मे भी शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अत शिक्षको को भी कुछ विशेष बातो को स्मरण रखना चाहिए।

शिक्षको को विद्यार्थियो पर केवल आदर्श लादना ही नही चाहिए बल्कि खुद अच्छे मूल्यो को व्यवहार मे लाना चाहिए ताकि शिक्षको की 'कथनी व करनी' मे अंतर न हो। शिक्षको का दृष्टिकोण निरपेक्ष होना चाहिए, किसी भी धर्म की निदा नही करनी चाहिए, विद्यार्थियो को अनावश्यक दड नहीं देना चाहिए तथा आक्रोश की भावना नही रखनी चाहिए और न ही अधिक हिंसात्मक होना चाहिए।

यदि शिक्षक, छात्रों मे मानवीय मूल्यो के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न कर सके और उनका प्रभावी ढग से उपयोग कर सके तो उस स्तर को प्राप्त कर लेंगे जिसकी हमारी शिक्षा पद्धति से उम्मीद की जाती है। ❑❑

एफ. आर. इस्लामिया इण्टर कालेज, बरेली
उत्तर प्रदेश

अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावक

❑ सत्यनारायण पंवार

प्रत्येक अभिभावक अपने नवजात बच्चे के फलने-फूलने की आशा करता है। अभिभावक अपने बच्चे की काबलियत की परवाह नही करते हुए उससे बहुत बडी उम्मीदे रखता है। इन अभिभावकों की उम्मीदो के अनुरूप बालक कामयाब नहीं हो पाते तो ये अभिभावक मायूस हो जाते हैं। कभी-कभी तो अभिभावको की उम्मीदों और बालकों की कामयाबी के बीच इतनी बड़ी दरार पड़ जाती है कि बालक की कार्यक्षमता बढ़ने के बजाय घटने लगती है क्योकि बच्चा हताश हो जाता है।

प्रत्येक अभिभावक अपने बच्चो से अच्छे व्यवहार की आशा करता है। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए वह अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी सुविधाएं और अवसर प्रदान करता है जिससे वे उनकी उम्मीदो को साकार कर सके। लेकिन सभी बच्चो की बौद्धिक क्षमता और शारीरिक क्षमता एक-सी नहीं होती। अभिभावक अपने पड़ोसी के समान उम्र वाले बच्चे से अपने बच्चे की कामयाबी की तुलना करते है और उनकी उम्मीदो पर कभी-कभी पानी फिर जाता है। वास्तव में सब बच्चो का मानसिक विकास और शारीरिक विकास का क्रम एक ही खास उम्र में नही होता। जैसे एक छोटा बच्चा 9 महीने की उम्र में पैदल चलने लगता है जबकि दूसरा बच्चा 12 महीने की उम्र मे पैदल चलता है। कुछ बच्चे 3 साल की उम्र में अल्फाबेट सीख जाते है तो कुछ बच्चे 6 साल की उम्र मे सीख पाते हैं। इसलिए अभिभावको

चाहिए कि वे अपने बच्चो की क्षमता की दूसरो के बच्चो की काबलियत से तुलना न करे। हालाकि बच्चों के विकास मे अभिभावकों का बहुत बड़ा हाथ होता है लेकिन बच्चों पर कड़ा अनुशासन थोपकर अपनी उम्मीदे पूरी करवाने की कोशिश नही करनी चाहिए क्योकि ऐसा करने से बच्चे दु खी हो जाते हैं और उनके विकास मे बाधा आ जाती है। बच्चे अभिभावको की आदतों और परिवार के परिवेश से प्रभावित होकर अपना मानसिक और शारीरिक विकास करते हैं वही प्राकृतिक विकास थोपे हुए अप्राकृतिक विकास से कई गुणा अच्छा होता है।

महत्वाकांक्षी अभिभावक अपने बच्चों को वार्षिक परीक्षाओं में अच्छे अंक (80% से ऊपर) प्राप्त करने के लिए घर पर खुद पढ़ाते हैं या ट्यूशन कराते हैं। लेकिन उनके बच्चे अपनी काबलियत से ज्यादा अंक प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसी परिस्थिति में ये अभिभावक अध्यापकों से अंकों की भीख मांगते देखे गए हैं या अध्यापकों के बारे में पक्षपात की शिकायत करते देखे गए हैं। कुछ अभिभावक के बच्चे कम अंक प्राप्त करते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि समाज में उनकी इज्जत कम हो गई है।

आजकल बच्चे तो बस महत्वाकाक्षी माता-पिता के दिमाग की कठपुतली बनकर रह गए है। उन्मुक्त निश्छल बचपन पर उन्होने महत्वाकाक्षी एवं प्रतिस्पर्धाओ का ऐसा कर्फ्यू लगाया है जिसमे ढील तक नही दी जाती। ये चन्द लम्हे ही तो बालक के अपने होते हैं जिन्हें वह निर्द्वद्व एवं निर्मलता की वासिता में जीता है लेकिन उसकी आत्मिक अनुभूति एव नैसर्गिक आनन्द के भावलोक मे अनाधिकृत हस्तक्षेप करते है। ढाई वर्ष की उम्र मे ही बच्चों को स्कूल भेज दिया जाता है जहां उन्हे ए.बी. सी डी . रटाते है व वन, टू, थ्री . करते हैं और इन्हे अंग्रेजी मे कविता बोलते देखकर फूले नहीं समाते। अभिभावक अपने सपनों को तरजीह देने मे "बच्चो के मन" की चिन्ता नही करते। ढाई वर्ष के बच्चे को स्कूल के नियम और अधिनियमो मे बांधकर उसे औपचारिक शिक्षा देना अन्याय है। वास्तव मे घर परिवार के सभी सदस्य और प्रत्येक वस्तु बच्चे के लिए शिक्षक का कार्य करते हैं और परिवार की पाठशाला में जीवन के मूल्यो की शिक्षा ग्रहण करता है फिर उसे किसी स्कूल के कठोर अनुशासन मे बद क्यो किया जाए? उसे तो स्वतत्र चिड़िया की तरह पहले 4 वर्ष तक घर और बाहर के वातावरण में फुदकना और विकसित होना चाहिए।

चार वर्ष की उम्र के बाद अभिभावक चाहे तो बच्चे को नर्सरी स्कूल मे भर्ती कराए जहा पर औपचारिक शिक्षा न देकर उसको शारीरिक और इन्द्रियों की शिक्षा दी जाए जैसे– तैरना, कूदना, गाना, नाचना और स्वतंत्रता से अपनी भावनाओं को व्यक्त करना। इस उम्र मे अग्रेजी (विदेशी भाषा) में ए बी.सी और स्पेलिंग का रट्टा लगाना अग्रेजी की कविता का बिना मतलब समझे रट्टा लगाकर बोलना ठीक नही। महत्वाकाक्षी अभिभावक बच्चो की भावनाओ से खिलवाड़ करके अपनी उम्मीद को साकार करने की कोशिश कर रहे है। लेकिन उन्हे नाउम्मीदी का सामना करना पड़ रहा है। वास्तव में महत्वाकाक्षी अभिभावक बच्चो के खेलने वाले बचपन को छीन रहे है।

मेरे विचार से 5 वर्ष की उम्र वाले बच्चो को औपचारिक शिक्षा के लिए स्कूल मे भर्ती करना चाहिए। स्कूल मे बौद्धिक और शारीरिक विकास के लिए अध्यापक निर्धारित पाठ्यक्रम का प्रयोग करते है लेकिन अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावक चाहते है कि उनके बच्चो को अधिक से अधिक गृहकार्य दिया जाए और उनके बच्चे कम से कम प्रत्येक विषय की परीक्षाओ मे 90 प्रतिशत या अधिक अक प्राप्त करे परन्तु सभी बच्चे 90 प्रतिशत अंक प्राप्त नही कर सकते क्योकि सभी बच्चों मे बौद्धिक क्षमता एक-सी नही होती। अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावक अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए घर पर ट्यूटर लगाते हैं। यहां तक कि खुद पढ़ाते है और उनकी आशा के अनुरूप विकास न होने पर कभी-कभी बच्चो को पीटने लगते है और उन्हे डराते, धमकाते है। वास्तव मे 5

वर्ष के बच्चो को स्कूल मे रहने की आदत डालने के पश्चात् अध्यापको द्वारा शिक्षा देना काफी है। कक्षा प्रथम और द्वितीय के बच्चो को भारी बस्तो का बोझ और गृहकार्य का बोझ ढोने के लिए मजबूर न किया जाए क्योकि घर पर बच्चों को अपने परिवेश मे ही अपने आप सीखना है।

महत्वाकाक्षी अभिभावक अपने बच्चो को वार्षिक परीक्षाओ मे अच्छे अंक (80% से ऊपर) प्राप्त करने के लिए घर पर खुद पढ़ाते हैं या ट्यूशन कराते है। लेकिन उनके बच्चे अपनी काबलियत से ज्यादा अंक प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसी परिस्थिति मे ये अभिभावक अध्यापको से अंको की भीख मागते देखे गए है या अध्यापको के बारे मे पक्षपात की शिकायत करते देखे गए है। कुछ अभिभावक के बच्चे कम अक प्राप्त करते है तो उन्हे ऐसा लगता है कि समाज में उनकी इज्जत कम हो गई है। महत्वाकांक्षी अभिभावको के बच्चे अपने अभिभावको की आंखो मे अपनी इज्जत को बरकरार रखने के लिए परीक्षा मे नकल करने के लिए प्रेरित हो जाते हैं या अंक तालिका को बदलने की कोशिश करते है। कभी बच्चे अपनी प्रोग्रेस रिपोर्ट पर अभिभावको के झूठे हस्ताक्षर बनाकर लौटा देते है और झूठ का सहारा लेकर अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावको को खुश करने की कोशिश करते है। ऐसे महत्वाकाक्षी अभिभावक अपने बच्चो के चरित्र को नेस्तानाबूद कर रहे है। शिक्षा जब तक विद्यार्थियो के आचरण व व्यावहारिक जीवन मे न झलके तब तक मात्र कक्षा मे पढ़ाए विषयो का अध्ययन प्रभावी और सार्थक नही कहा जा सकता।

अधिकतर महत्वाकांक्षी अभिभावक अपने बच्चों की काबलियत की ओर ध्यान न देकर उनसे इंजीनियर, डाक्टर और आई ए एस ऑफिसर बनने की आकाक्षा रखते है क्योकि समाज मे इन्ही लोगो की ज्यादा इज्जत है और ये लोग ज्यादा पैसा कमाते है। ऐसे अभिभावक अपने तृतीय श्रेणी वाले बच्चो को एक लाख या दो लाख रुपए का डोनेशन देकर उन्हे इजीनियरिंग कालेज मे भर्ती करा देते है लेकिन ऐसे बच्चे इजीनियरिंग की परीक्षा पास नही कर पाते और उन्हे वापिस बिना डिग्री के घर लौटना पडता है। कभी-कभी ऐसे बच्चो के अभिभावक प्रोफेसरो को खरीद कर डिग्री ले लेते हैं तो वे अपनी नौकरी मे अपने कार्य को सुचारू रूप से नहीं कर पाते। इसी प्रकार अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावक अपने बच्चो की जिन्दगी से खिलवाड़ कर रहे है। बच्चो को वोकेशनल गाईडेन्स ब्यूरो की सहायता से उन्हे अपनी पसन्द की शिक्षा लेनी चाहिए जिसे वे आनन्दपूर्वक पास कर सकें और अपने क्षेत्र मे अपना नाम कमा सकें।

कुछ अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावको के बच्चे उनकी आकाक्षाओं को पूरा नही कर पाते तो वे उनकी अवहेलना करते है यानि उनकी परवाह नही करते और ऐसे बच्चे मानसिक तनाव से ग्रसित हो जाते हैं। कहते है कि बम्बई के नायर अस्पताल मे एक 10 साल का बच्चा अल्सर से पीडित है क्योकि उसे परीक्षा मे फेल होने का भय खाए जा रहा है। महत्वाकाक्षी अभिभावको के बच्चे कभी-कभी उनकी उम्मीदो को पूरा न करने पर भय से अपने को कसूरवार समझने लगते है। उनके दिमाग का संतुलन बिगड़ जाता है और उनका भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

अतिमहत्वाकांक्षी अभिभावको को अपने बच्चो की काबलियत का ध्यान रखकर उनसे उम्मीद करनी चाहिए जिससे उनका उचित मानसिक और शारीरिक विकास हो। बच्चो को बिना भय के तथा अपनी रुचि के विषयो का अध्ययन करने का अवसर दिया जाना चाहिए जिससे वे फलें-फूले और हमेशा खुश रहें। इतना ही नही अभिभावकों को अपने बच्चो की कमी दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करते रहना चाहिए लेकिन जरूरत से ज्यादा उम्मीदों के पुल बांध कर नही रखने चाहिए। ऐसे पुल हमेशा टूटते नजर आते हैं। अभिभावक अपना कर्तव्य करें यानि बच्चों की शिक्षा के लिए सुविधाए और अवसर प्रदान करे और बच्चे समय पर परिश्रम करके अपने कार्य को सुचारू रूप से करें जिससे उन्हें जीवन में सफलता मिले। ❑❑

68 गोल्फ कोर्स स्कीम
जोधपुर, राजस्थान

हम और हमारा पर्यावरण

□ नरेश कुमार सचदेवा

आओ बच्चो तुम्हे बताएं।
एक काम की बात सिखाएं।।
हमारे चारो तरफ जो भी है तत्व।
उनका हमारे जीवन मे बहुत ही महत्व।।
पेड़-पौधे, वायु, जल, अग्नि व आसमान।
पूजा इनकी करो व करो इनका सम्मान।।
हो गया इनमें से अगर किसी का भी अभाव।
इसका हमारे जीवन पर पड़ेगा बहुत बुरा प्रभाव।।
जल हमारा जीवन है, व्यर्थ इसे मत गवाओ।
पेड़-पौधे बहुत उपयोगी अधिक से अधिक उगाओ।।
मिट्टी हमें प्रदान करती अनेकों तत्व उपयोगी।
बिना इनके शरीर हमारा .बन सकता है रोगी।।
वायु हमे देती है, जीवन के लिए प्राण।
प्यारे बच्चों पर्यावरण-सरक्षण पर लगा दो अपना ध्यान।।
निरन्तर दूषित हो रहा पर्यावरण इसको भी हम जाने।
पर्यावरण के लाभो को हम सब मिलकर पहचाने।।
हमारे अपने ही कारनामो से वातारण हो रहा है दूषित।
मानवता हो रही खत्म निरन्तर भावनाएं हो रही हैं कलुषित
जी नही सकते इनके बिना हम, यह अच्छी तरह से जाने
कैसा होगा यह सुधार आओ इसको भी हम पहचानें।।

धूम्रपान

धूम्रपान एक सामाजिक बुराई।
नहीं समाज की इसमें है भलाई।।
इससे लगते रोग है बड़े घातक।
कोई लाभ हुआ नहीं इससे आज तक।।
इससे निरन्तर फैल रहा है प्रदूषण।
प्रभावित हो रहा है इससे जन-जन।।
जो भी है इस लत का शिकार।
समाज से उसको नही है प्यार।।
इससे होता रोग है कैन्सर।
सरकार को चाहिए इस पर करना सैंसर।।
आओ इससे बचे और बचाएं।
ताकि पर्यावरण हमारा स्वच्छ बन जाए।।

जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थान
बीसवां मील बढ़मलिक, सोनीपत, हरियाणा

रुष्ट-आक्रोशित मां

❐ अलका अग्रवाल

गणतन्त्र की स्वर्ण जयन्ती पर,
एक प्रचंड इतिहास रच गया।
गूंज रही थी वंदे मातरम की,
चारों ओर पुकार।
झंडा फहराने को था, हर भारतीय तैयार।
खुशियों से मन भरा हुआ था।
मान सम्मान वतन का छलक रहा था।
अंग-अंग भी देखो थिरक रहा था।
सहसा,
धरती मां ने रोष दिखाया।
पलक झपक तांडव मचाया।
ऊंचे-ऊंचे गगन चुम्बी भवन
भवन में बसते असंख्य स्वप्न,
हो गये क्षण में विध्वस
कहां गई,
ये नन्हे मुन्नों की चपलता,
नई नवेली दुल्हन की आकुलता।
बड़े बूढ़ो की सौम्यता।
एकाएक, मलवे का ढ़ेर हो गए।
सच खाक हो गए।
शहर के शहर शमशान घाट हो गए।
कौन बांचेगा इनमे छिपे शक्स को?
हंसते खेलते घर को।
मां!
आशंकित हैं तेरे इस रुख से
जग जननी हे धरती मां,
युग युगो से तुम बोझ हमारा सहती रहीं
क्या आज हम भारी हो गए
या पापी अभिमानी हो गए?'
मां डबडबाई बोली—
'मत करो विस्फोट मुझ पर बार-बार
सह ना सकूंगी परमाणु लावा बार-बार
मेरे हरितम आंचल को काट-काट
मत पहनाओ वीरानी का चोला बार-बार
अनवरत बदलते रहे मेरी नियति को
मत करो खिलवाड़ मुझसे बार-बार
भूली नहीं हू नागासाकी हिरोशिमा की मार
देख न सकूंगी विकृत, विकराल मानसिकता
का यह संसार'
चीख चीख कर कहती हूं
कहीं टूट न जाए मेरा धीरज अब की बार।
कहीं टूट न जाए मेरा धीरज अब की बार।

राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नं. 1
लाजपत नगर, नई दिल्ली

विचार

शिक्षक का गिरता सम्मान– कारण एवं निवारण

❐ राम प्रकाश सैनी

व्यक्तित्व के विकास, समाज के उन्नयन, सांस्कृतिक उत्कृष्टता की दृष्टि से यदि हम प्राचीन भारतीय शिक्षकों पर दृष्टिपात करे तो हमे यह ज्ञात होगा कि ये शिक्षक अपने आप में सक्षम, परिपूर्ण एव अनुपमेय थे। प्राचीन काल में शिक्षक शिष्य के सर्वागीण विकास के लिए प्रयास करते थे, अपने जीवन काल मे सभी सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते थे। प्राचीन भारतीय शिक्षक, जिन्होने शिष्यो को मनुष्यता का पाठ पढ़ाया तथा जिन्होंने शिष्यों को आध्यात्मिक गंगा में डुबकियां लगाना सिखाया, यह शिक्षक का ही ओजपूर्ण कार्य था।

प्राचीन भारत मे शिक्षक प्रकाश का एक स्रोत था। वह शिष्यो के चिंतन और मनन पर बल देता था, उसमे धार्मिक निष्ठा का संचार करता था। उसे सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए अदम्य प्रेरणा प्रदान करता था तथा उसे चारित्रिक गुणो से युक्त कर उसे महान बनाता था। प्राचीन शिक्षको के इन्हीं लक्षणो ने भारतवासियों को ससार के अन्य निवासियों से सच पूछिए तो कुछ विशिष्ट बना दिया था।

उस समय शिष्य अपने गुरु का बड़ा आदर और सम्मान करते हुए आदर्शमय जीवन व्यतीत करते थे। छात्रो का जीवन संयम और सदाचार से परिपूर्ण था। वह एक महान साधक बनकर गुरु के चरणो में बैठकर शिक्षा प्राप्त करता था। छात्र जीवन मे उसका एक मात्र उद्देश्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करना एव गुरु की सेवा करना होता था। उसकी दिनचर्या नियमित होती थी। विनय, विनम्रता, अनुशासन, त्याग एव परिश्रम करने की प्रवृत्तियां जो ज्ञानार्जन के लिए आवश्यक है, उसमे पर्याप्त मात्रा मे होती थी।

प्राचीन भारत में शिक्षक को ईश्वर से भी महान माना गया है। सस्कृत का यह प्रसिद्ध श्लोक यही दर्शाता है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु' गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवै नम·।।

गुरु की महानता का वर्णन सत कवियो ने अपनी कविताओं मे भी किया है–

कविरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रूठते, हरि नहि होत सहाय।।
कबीर 'नीति के दोहे''

शिक्षक के प्रति आम नजरिया पूरी तरह बदल चुका है। सचमुच उसका आभामंडल धूल धूषित हो चुका है। अब वह पापी पेट के लिए जरूरी उद्यम में लगे हुए किसी दूसरे व्यक्ति से बिल्कुल अलग नहीं समझा जाता है। ऊपरी आमदनी का कोई ठोस जुगाड़ न होने के कारण उसे थोड़ा-सा हेय और दयनीय माना जाता है। आज समाज में जितने स्तर हैं, उतने ही किस्म के शिक्षक भी हैं।

अब तो प्राचीन भारत के गुरुकुल अतीत की धरोहर बनकर रह गए हैं। अब गुरु और गुरुकुल दोनो ही बदल गए हैं। प्राचीन काल में जहां गुरु अपने शिष्यों के सर्वागीण विकास के लिए प्रयास करते थे, अपने जीवन काल में सभी दायित्वो का निर्वाह करते थे, वही शिष्य भी अपने गुरु के प्रति पूर्ण रूप से श्रद्धानवत थे। वे गुरु के लिए सब कुछ अर्पण करने को तैयार रहते थे। एकलव्य, कर्ण आदि अनेक ऐसे उदाहरण है

जो गुरु के प्रति शिष्यो के समर्पण को दर्शाते है। गुरु के प्रति इतनी श्रद्धा, इतना अनुराग और वो सम्मान जो पहले शिष्यों मे था आज कही दिखाई नही देता। कहा अदृश्य हो गया है, वो श्रद्धा, सम्मान और अनुराग? कौन से ऐसे कारण है जिन्होंने शिक्षक के उस चमकते हुए आभामडल को छीन-सा लिया है? आज शिष्य अपने गुरु का अपमान तक कर देते है, शिक्षक के साथ मारामारी पर भी उतर आते हैं। आज भारतीय समाज में शिक्षक का वो स्थान नही रहा, जो पहले हुआ करता था। आखिर क्यो?

आइए वर्तमान पर कुछ नजर डालें

बाजार बनते जा रहे भारतीय समाज की नियामक शक्तियों ने शिक्षक का आभामंडल छीन-सा लिया है। ओज, गौरव और आत्मसम्मान से दमकता उसका वह मुकुट गांव के ढहते प्राइमरी स्कूलों और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की डिग्रिया बेचने वाली दुकानों के बीच कही लुढ़का-सा पड़ा हुआ है। इसे झुककर उठाने की कोशिश को अब साहस नही दुस्साहस ही माना जाएगा, क्योकि अब शायद वैसी शिक्षा और वैसे शिक्षकों की किसी को जरूरत नहीं है। वह जमाना और था जब डा राधाकृष्ण सर्वपल्ली मुग्ध कर देने वाले व्याख्यानों से कहा करते थे कि – 'शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नही है, न ही यह विचारो की सवर्धन स्थली है और न ही नागरिकता की पाठशाला है। यह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश की दीक्षा है, सत्य की खोज मे लगी मानव आत्मा का प्रशिक्षण है।'

अब का प्रतिश्रुत सत्य यही है कि शिक्षा जीविकोपार्जन की ही सीढी है, जिसे अपनी हैसियत के हिसाब से दाम देकर खरीदा जा सकता है। जितनी अच्छी कीमत देने की हैसियत होगी, उतनी ही अच्छी शिक्षा और नौकरी आप हासिल कर सकते हैं। शिक्षा जहाज पर लदा व्यावसायिक माल है। नई व्यवस्था मे शिक्षक की भूमिका एक सेल्समैन की रह गई है। मेरे इस कथन पर पुराने गुरुजन नाराज हो सकते हैं, लेकिन क्या करे, कल्याणकारी लोकतत्र की तलछट मे अब ऐसे ही कड़वे सच बचे हैं।

शिक्षक के प्रति आम नजरिया पूरी तरह बदल चुका है। सचमुच उसका आभामडल धूल धूषित हो चुका है। अब वह पापी पेट के लिए जरूरी उद्यम मे लगे हुए किसी दूसरे व्यक्ति से बिल्कुल अलग नहीं समझा जाता। ऊपरी आमदनी का कोई ठोस जुगाड न होने के कारण उसे थोडा-सा हेय और दयनीय माना जाता है। आज समाज मे जितने स्तर है, उतने ही किस्म के शिक्षक भी हैं। उदाहरणार्थ–मांटेसरी स्कूलों मे 300-400 रुपए की तनख्वाह पर पढाने वाले मुर्झाए बेरोजगारों से लेकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियो के लिए एग्जीक्यूटिव तैयार करने वाले संस्थानो मे माल बेचने की तरकीबें बताते प्रशिक्षको तक के रूप मे वे पाए जाते है। हर कही एक बात समान रूप से चुभती है कि आजादी के बाद के सफर के भीड़-भडक्के मे शिक्षक की सामाजिक भूमिका और उसकी गरिमा पता नही चुपचाप कहा खो गई है?

शिक्षक के अगर गिरते हुए सम्मान के कारणो की ओर देखें तो इसमे समाज, सरकार और सबसे अधिक स्वयं शिक्षक ही दोषी नजर आता है।

- ☐ समाज के दोष से अभिप्राय अभिभावको द्वारा अपने बच्चो के लिए ट्यूटर (शिक्षक) रखने से है। गलत ट्यूटर (शिक्षक) के नियोजन से अन्य अच्छे शिक्षको का भी सम्मान गिरता है।
- ☐ देखा गया है कि पूर्व माध्यमिक शिक्षक अध्यापन कार्य मे कम और अन्य कार्यो में अधिक व्यस्त रखे जाते है। उनसे चुनाव, जनगणना, पशु गणना, पल्स पोलियो अभियान, मतगणना, सिंचित एव असिचित भूमि का आकलन कराया जाता है। इन सारे कार्यो को करते हुए शिक्षक टूट-सा जाता है। ऐसे शिक्षको का उपयोग भारत मे ज्ञानदाता के रूप मे नही बल्कि बाबुओं के रूप मे होता है। कितना घिनौना मजाक है यह प्राथमिक शिक्षक के साथ?
- ☐ शिक्षक की समाज मे वर्तमान स्थिति के लिए शिक्षक मे पाई जाने वाली चारित्रिक विकृतियां– धूम्रपान, मद्यपान, समाज विरोधी व्यवहार, यौन अपराध– अधिक दोषी हैं। लेकिन कतिपय 25 प्रतिशत शिक्षक ही ऐसे हैं जो ऐसी चारित्रिक विकृतियो के दोषी

हैं और उन्होंने शिक्षक समाज रूपी पूरे तालाब को गदा कर रखा है।

- शिक्षकों का अपने विषय मे अधिकाधिक पारंगत न होना भी बहुत बड़ा दोष है।
- अनेक पुनीत अवसरो पर हमारे राजनेता मंच पर बातें तो भारत के अतीत की करते है लेकिन इस तथ्य से अपनी आखे मूंद लेते है कि इसी प्राचीन भारत मे शिक्षक का दर्जा राजाओं से भी ऊपर था। वह समाज और राज्य का नियामक था। बड़े-बड़े राजे-महाराजे उसके आगे नत मस्तक होते थे, उसको सम्मानित कर अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते थे; लेकिन आज परिस्थितियो बदल गई है। शिक्षक को मात्र वेतन भोगी मान लिया गया है और उससे यह आशा की जाती है कि किसी बड़े नेता के आगमन पर उसके छात्र स्वागतार्थ सड़कों पर पक्तिबद्ध खड़े हो और वह स्वयं नेताजी को माला पहनाकर अपने को धन्य माने। क्या यह समाज मे पद की प्रतिष्ठा और शिक्षकों की गरिमा का अवमूल्यन नही है? आखिर इस समाज को हम कौन-सा संदेश देना चाहते हैं? शायद दोष हम शिक्षकों का भी है जो सब सहज भाव से स्वीकार करते चले जाते हैं। इससे मुक्ति का उपाय भी हम शिक्षकों को ही सोचना होगा।

ऐसे शिक्षक जिनके ऊपर भारत का अतीत निर्भर रहा है और आगे भी जिनके ऊपर भारत का भविष्य निर्भर है, जो भारत के भविष्य के कर्णधारों के निर्माता है। ऐसे शिक्षको की उपेक्षा और असम्मान से देश या राष्ट्र उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। वह व्यक्ति (शिक्षक) जो राष्ट्र के भविष्य का निर्माता है, जिसके ऊपर राष्ट्र का सबसे बडा दायित्व है, समाज को जिससे बहुत सारी अपेक्षाए हैं; ऐसे शिक्षकों की गरिमा, मान-सम्मान और आदर समाज मे बना रहे, इसके लिए समाज, सरकार को आगे आना होगा तथा सबसे अधिक दायित्व शिक्षक को ही निभाना होगा। उन्हे ऐसे गुण अपने अदर विकसित करने होगे जिससे समाज स्वयं ही उनका आदर-सत्कार करे—

- अभिभावक अपने बच्चों के लिए ट्यूटर का चयन करते समय अधिकाधिक सावधानी बरते कि वह शिक्षक बच्चो के लिए उपयोगी एवं चारित्रिक विकृतियो से मुक्त हो।
- विद्यालय प्रबधन या सरकार ऐसे शिक्षको का चयन करे, जो चयनित कक्षा के छात्रों को पढ़ाने मे समर्थ हों।
- विद्यालय प्रबंधन जब भी विद्यालय के लिए शिक्षको का चयन करे तो यह जांच ले कि उसमे कोई चारित्रिक विकृति का दोष न हो। यदि भविष्य मे सेवा करते समय उसमे कोई ऐसा दोष पाया जाता है तो जुर्माने सहित विद्यालय की सेवा से वचित कर दिया जाए।
- विद्यालय प्रबधन को भी कम से कम इतना पारिश्रमिक अदा करना चाहिए जिससे कम से कम उसकी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।
- सरकार शिक्षकों को अध्यापन कार्य के अलावा कोई अन्य कार्य न सौंपे।
- ऐसे शिक्षको का चयन किया जाए जो शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूप से स्वस्थ हो।
- शिक्षको को चारित्रिक विकृति से मुक्त होना चाहिए।
- गुरु हमेशा अपने शिष्यों के लिए अनुकरणीय होता है। इसलिए ऐसा कोई व्यवहार समाज में न करे जिससे शिष्यों पर बुरा असर पड़े।
- शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह केवल विद्यालय के अंदर ही शिक्षक नहीं होता। शिक्षक की अपनी एक अलग पहचान होती है और वह समाज के लिए हर समय गुरु ही होता है।
- शिक्षको को लालच से दूर रहना चाहिए।
- शिक्षक को शिक्षार्थियों के साथ एकात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- जिस प्रकार सरकारी शिक्षक अपनी मांगों को लेकर भूख हड़ताल, कलमबंद हड़ताल, नारेबाजी आदि अनेक उपद्रव करते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपने कर्तव्य एव दायित्व को निभाने के लिए भी प्रयास करना चाहिए। मानव जीवन का स्वरूप भी तभी तक सुदर है जब तक उसमें किसी के अधिकार

का हरण न हो।

आज शिक्षकों को वेतन भोगी माना जाता है पर हम वेतनभोगी बनकर भी काफी हद तक अपने सम्मान एव गरिमा को सुरक्षित बनाए रख सकते है। माना हमारे सामने एक निश्चित पाठ्यक्रम है और हमारी क्रियाओ का क्षेत्र भी निश्चित है, पर हम इस निश्चित दायरे मे रहकर अपने खोए हुए सम्मान को नहीं पा सकते। हमें इस दायरे से बाहर निकलना होगा, शिष्यों और समाज से आत्मीय संबंध स्थापित करने होगे।

उपरोक्त के अतिरिक्त शिक्षकों को अपने सम्मान को बनाए रखने के लिए निम्नाकित गुणो का समावेश होना चाहिए--

- शिक्षक केवल उन्हीं लोगों को बनाया जाए, जो बहुत ही विद्वान, कर्मठ एव चितनशील हों।
- केवल अध्यापन ही उनका लक्ष्य न हो अपितु उसे अपने छात्रों का स्नेह एव आदर भी मिलना चाहिए और ये सब तभी अर्जित हो सकते है जब शिक्षक सही मायने मे गुरु होगा।
- शिक्षक का काम अधिक से अधिक ज्ञानार्जन करना और उसे जन-जन में बांटना होना चाहिए। उसे ज्ञान का दीपक बनकर उसकी लौ को चारो ओर प्रज्ज्वलित करना चाहिए।
- उसको जीवन मे 'सादा जीवन उच्च्य विचार' की उक्ति को चरितार्थ करना चाहिए तभी समाज में भगवान के तुल्य पूजित हो पाएगा और तभी सब एक ही आवाज में कह उठेगे--

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविद दियो बताय।।

❑❑

शोध छात्र
ए.एन.डी. कालेज, कानपुर
उत्तर प्रदेश

जाकिर हुसैन व उनका शिक्षा दर्शन

❑ **बलबीर सिंह**

मानसिक जीवन तो किसी मानसिक जीवन से ही पैदा होता है। यह दीपक हमेशा किसी दूसरे दीपक से ही जलाया जा सकता है। मानसिक जीवन मे 'तू' न हो तो 'मै' का अस्तित्व भी न हो। मानसिक जीवन के लिए इसानी जीवन व समाज का अस्तित्व अनिवार्य है। शरीर से किसी अंग के कट जाने पर उसमें कुछ कमी आ सकती है लेकिन अंग का कोई महत्व नही रह जाता। पेड में हर डाली और पत्ती भी अपना अलग अस्तित्व रखती है, लेकिन डाली या पत्ती के टूट जाने से पेड खत्म नहीं होता। पेड़ से अलग होकर डाली और पत्ती के लिए सिवाय मिटने के और कुछ नही।' शिक्षा के संबध मे कुछ ऐसी ही सोच थी-- डा. आकिर हुसैन जी की।

आज की जरूरतों का ध्यान रखकर तथा भविष्य की जरूरतो को ध्यान मे रखकर हमें अपनी नस्लों को पढ़ाना चाहिए। केवल किताबों में लिख देने से हमारा इतिहास जीवित नहीं रह सकता। इसको जीवित रखने के लिए एक उपाय है कि वह समाज के हरेक व्यक्ति के दिल और दिमाग के रेशे-रेशे में जीवित हो। शिक्षा बहुत कुछ कर सकती है।

शिक्षा बस कुछ बोल रट लेने या चद बाते जान लेने का ही नाम नहीं है। शिक्षा तो मानव मस्तिष्क के पूर्ण परिपोषण का नाम है। मानसिक पोषण समाज की कलाओ से, समाज के धैर्य से, समाज के उद्योगो से, सामाजिक चरित्र के सिद्धातो से, समाज के कानून से, समाज की परम्पराओं से, समाज के महापुरुषों के जीवन से, समाज के पारिवारिक जीवन के आदर्शो से, समाज के गांव-कस्बे से व समाज के शासन विधान से मिलता है। शिक्षा वास्तव मे किसी समाज की जानी-बूझी, सोची-समझी कोशिश का नाम है जो वह इसीलिए करता है ताकि उसका अस्तित्व बाकी रह सके तथा उसकी व्यक्तियों में इतनी सामर्थ्य उत्पन्न हो कि वे बदली हुई परिस्थितियो के साथ समाज के जीवन मे उचित व आवश्यक परिवर्तन कर सके। स्कूलो का उद्देश्य चलते-फिरते किताब घर बनना नही है। अपनी गतिविधियों व क्रियाशीलता के दायरे मे हर बच्चे को दूसरो की सहायता व सेवा का पाठ भी पढना होगा। पाठ्यक्रम मे ऐसे पाठ हो जिनमे सच्चाई व दर्शन की गहराई साथ-साथ हो। सतुलित जीवन जीने का बोध भी मिले। पुस्तक मे लिखे शब्दो का अर्थ, भाव, मूल्य व भूमिका का बोध कराना न भूले।

बुनियादी शिक्षा के बारे में डा. हुसैन का कहना था कि कम से कम सात वर्ष की निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध हो। इसे अनिवार्य भी बनाया जाए। उनका मानना था कि जैसे-जैसे राज्यों के साधन बढ़ेंगे वैसे-वैसे ही सरकार अवधि को भी बढ़ा देगी। यह सात साल की शिक्षा मातृभाषा में हो। हम शिक्षा के संबंध में जब भी काम की चर्चा करें तो हमें वही काम ध्यान में रखना चाहिए जिससे शिक्षा मिले, मस्तिष्क का विकास हो।

आज के युवा समस्याओं को देखकर एकाएक सोचते है सब कुछ समाप्त कर दें। ऐसी कोई समस्या नही है जिसे थोड़े से आवेश मे आकर हल किया जा सके। जरूरत है काम की, लगातार सच्चे व खामोश काम की। शिक्षा को धीरज रखना सिखाना होगा। शिक्षा में स्वभाव की आतुरता वाले व्यक्ति इस काम को अच्छी तरह से नही कर सकते। यह काम वही कर सकता है जिसे हर असफलता और ज्यादा मेहनत करने के लिए उभारती हो। हिंदुस्तान के भाग्य में प्रकृति ने यह रच दिया है। यहा परस्पर भिन्न प्रवृत्ति के मनुष्य एक-दूसरे से मिलकर एक ऐसा 'मानव' बनाए जो यहा की सभ्यता व सस्कृति को नया रूप दे सके। प्रकृति के इस विचित्र प्रयोग मे सहायता करना हमारा कर्तव्य है। शिक्षा से जुड़े लोग इस काम मे सतही मदद कर सकते हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है कि हर बच्चा जो पैदा होता है, वह इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर अभी मानव से निराश नहीं हुआ। अध्यापको व अभिभावको को बच्चो को मनुष्यता का अग्रदूत समझना होगा। उसे कभी अकेले बढ़ने दे, उसकी प्राकृतिक क्षमताओं व प्रवृतियो का सम्मान करे। उन्हे यह भी समझना होगा यह छोटा-सा जीव अपने विकास की क्रियात्मक पूर्ति की ओर खुद कदम उठाता है। हर हृदय उस प्रकाश को पाने का अधिकारी है, जिससे विकास होता है। हर बच्चे मे विशेष क्षमता होती है। किसी के मस्तिष्क का विकास गणित से होता है तो किसी का साहित्य से। व्यक्तिगत विभिन्नता के सिद्धात का ध्यान रखते हुए हमे नए-नए प्रयोग करते रहना चाहिए। सीखने मे कठिनाई महसूस करने वाले छात्रों पर नाराज नही होना चाहिए। शिक्षा से जुड़े लोगों को अपने व बालको के सदर्भ मे बस यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि कहीं वे बडी दुनिया के प्रतिनिधि के रूप मे अपनी पहचान को हानि तो नही पहुचा रहे।

बुनियादी शिक्षा के बारे मे डा. हुसेन का कहना था कि कम से कम सात वर्ष की नि शुल्क शिक्षा का प्रबध हो। इसे अनिवार्य भी बनाया जाए। उनका मानना था कि जैसे-जैसे राज्यो के साधन बढेगे वैसे-वैसे ही सरकार अवधि को भी बढा देगी। यह सात साल की शिक्षा मातृभाषा मे हो। हम शिक्षा के सबध में जब भी काम की चर्चा करे तो हमे वही काम ध्यान में रखना चाहिए जिससे शिक्षा मिले, मस्तिष्क का विकास हो। इनका मानना था कि जब भी कोई काम करना है– चाहे वह काम हाथ का हो या चाहे दिमाग का– इसका लाभ तभी हो सकता जब वह काम के लिए अपनत्व का कुछ त्याग करे, अपने ऊपर नियत्रण

करे। हर काम शिक्षा का काम नही होता। काम का संबंध शिक्षा से तभी हो सकता है जब इसके शुरू मे मस्तिष्क कुछ तैयारी करे। काम से पहले काम का नक्शा व रूपरेखा मस्तिष्क में बनाना जरूरी है। फिर उस रूपरेखा को कार्यान्वित करने के साधन खोजना, उस साधन से काम करना। अंतिम कदम ये होना चाहिए कि किए हुए को परखना जो नक्शा बनाया था नतीजा वैसा है या नही। क्या काम को आगे बढ़ाया जा सकता है। इससे ही कुछ शिक्षा के काम बन सकते हैं। वास्तव में इनकी नजर मे शिक्षा का वही काम हो जो किसी ऐसी मान्यता की सेवा करे जो हमारी स्वार्थ भावना से परे हों, जिसे हम मानते हों। हमें ऐसी शिक्षा की रचना करनी है जिससे आदमी का आदमी से निर्वाह हो सके। आदमी अपने कर्तव्य के प्रति इतना सजग हो, जिससे समाज का हर काम प्रत्येक का बन जाए। पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए। अगर वह सफल नही हो रहा है तो उसमे परिवर्तन कीजिए। परिवर्तन को लागू कीजिए स्वय परखिए। लेकिन इस स्तर पर नामों की न ही पूजा करनी चाहिए न ही नामो से भड़कना चाहिए।

वच्चो के विकास के वारे में उनका मानना था– आदमी के वच्चे से अधिक अचम्भे मे डालने वाली शायद कोई और चीज नही। वे बच्चो की स्वतंत्रता के हिमायती थे। इस आयु मे बच्चो को मदद, निर्देश, सहानुभूति, स्नेह व समझने-समझाने की जरूरत होती है। वाल्यकाल में विभिन्न अनुभव उसमे कल्पना शक्ति को जागृत कर देते हैं। इस आयु-वर्ग मे हीनता का अनुभव और हीन भावना का निवारण ये दो चीजें जीवन का केंद्र बिंदु होती है। बनावटी प्रोत्साहन देने से बचना चाहिए। बोझिल एकांगी व सीमित आशाओ को बोझ बच्चो पर नही डालना चाहिए। वच्चे को ईश्वर का अंश समझना चाहिए। उसे अभिभावको व अध्यापकों को ईश्वर व मनुष्यता की धरोहर समझना चाहिए। उसे जो प्रवृत्तिया प्रकृति ने दी हैं, उन्हे न बहुत उकसाए और न ही बहुत दबाएं। स्कूल मे पढ़ते हुए बालकों पर नजर रखते हुए अध्यापक को देखना चाहिए कि कोई बालक गुम-सुम तो नही रहता। उसकी हिम्मत बढ़ाएं। स्कूलो में अध्यापकों व बच्चों की बोलचाल की भाषा बहुत लगावपूर्ण व स्नेही होनी चाहिए। बच्चों पर स्कूल के प्रबंध व अनुशासन का गहरा प्रभाव पड़ता है। स्कूल में बच्चों के साथ मे पक्षपातपूर्ण व्यवहार नही करना चाहिए। हमे समझना चाहिए कि हमे बेबस वच्चे के साथ-साथ चलते हुए स्वतत्र नैतिक व्यक्तित्व तक पहुचाने का प्रयत्न सचमुच बडा ही सराहनीय है।

वे अच्छे अध्यापक के गुणो के बारे मे बताते हुए कहते हैं कि इसकी स्वाभाविक प्रवृति बच्चो और नवयुवकों के विकासोन्मुख व्यक्तित्वो की ओर होती है। वह बस स्कूल तक ही अध्यापक नही होता, वल्कि हर समय इसका मन अपने शिष्यो में अटका रहता है। अच्छा अध्यापक बच्चो की भलाई के लिए बच्चो की ही तरह स्वाभाविक रूप से विना अधिक सोचे-समझे ही अपना काम कर डालता है। सुधारकों व पैगम्बरो की तरह अध्यापक का वने बनाए व्यक्तित्वो से वास्ता नहीं पड़ता बल्कि उसका वास्ता उनसे होता है, जो अभी वन रहे हैं। सहज बुद्धि व अतःप्रेरणा को मिलाने की आवश्यकता होती है। बच्चो को पढ़ाने के लिए उमंग व उत्साह भी होना चाहिए। साथ ही भावुकता, उदारता, गंभीरता व दृढ़ता भी होनी चाहिए। जिसकी आत्मा मे स्वत्व और सत्यता, रूप और सौंदर्य, नेकी और पवित्रता, न्याय और स्वतत्रता है, वही अपने शिष्यों के शील को खरा वना सकता है। अध्यापक वही व्यक्ति हो जो वहा आशा जगाता है जहा दूसरे हार बैठते हों। उसे वहा प्रकाश दिखाई दे जहा दूसरे अधेरे की शिकायत करते है। वह बड़े की महत्ता के साथ छोटे के महत्व की भी उपेक्षा नहीं करता। लगातार अध्ययनशील व मनोविज्ञान के सिद्धात का ज्ञान होना भी किसी अध्यापक की अच्छे अध्यापक बनने की प्रेरणा हो सकती है।

शील के विकास की शिक्षा के बारे में उनका कहना था कि शिक्षा मे बाहरी और भीतरी रूप, अनुशासन और स्वतंत्रता, दूसरे की बताई राह पर चलना और अपने-आप राह निकालना और उसे तय करना इन दोनो को निश्चित सीमाओ और परिणामो का प्रश्न महत्वपूर्ण और साथ ही कठिन भी है। शील के निर्माण मे दृढ़ इच्छा शक्ति, चिंतन की शक्ति, पदार्थो और मनुष्यो से सपर्कित होना, दूसरों से प्रभावित होने की शक्ति का एक छोटे-से-छोटे रूप और मन की भावुकता महत्वपूर्ण है। शिक्षा का लक्ष्य ही अतीत

की कर्मशील चेतना को आत्मीय चेतना में परिणत करना और जागृत करना है। एक पवित्र अंकुर अपनी जड़ों को मनुष्य के अंतस्तल में दृढ़ता से जमाकर अपनी शाखाएं आसमान तक पहुंचा सकता है। ऐसा जीवन व इसका आदर्श हजारों लाखो नहीं करोड़ों मनुष्यों के लिए मगलकारी बन जाता है। एक दुर्विचार किंतु आकर्षक आदर्श दीर्घकाल तक, जीवन के स्रोतों को विषैला बना सकता है। एक स्वार्थ, एक हठ, एक अदूरदर्शिता अगणित राष्ट्रों के जीवन को विषैला बना सकती है।

समाज में उस संस्कृति के निर्माण करने की जटिल किंतु परम् न्यायोचित मांग हमेशा यह रही है कि निर्माता अपना निर्माण स्वयं करे। प्रकृति ने व्यक्ति को जो क्षमताएं, शक्तिया, वृत्तियां, विशेषताएं, प्रवृत्तियां और अभिरुचियां प्रदान की हैं उन्हें क्रमबद्धता से विकसित करे। उनमें सुसम्बद्धता व एकरसता उत्पन्न करे, उस स्वतंत्र नैतिक व्यक्तित्व का समुन्नत रूप प्रदान करे। व्यक्तित्व से शील, शील से व्यक्तित्व, यही होती है निर्माताओं की निर्माण पद्धति। उनका मानना था कभी किसी की एक प्रेरणा, कभी जीवन की कोई एक विशेष घटना से हुई कोई बड़ी उथल-पुथल अतीत के अभावो को पूरा कर देती है। नैतिक शक्ति मनुष्य को पूर्ण नैतिक मान्यताओ का एकमात्र संरक्षक बना देती है। व्यक्ति में दृढ़ संकल्प पैदा होता है। इसी से मनुष्य जीवन जीना सीखता है वह कभी भी सुविधाओ की दौड़ में शामिल नहीं होता। कुछ लोग व्यावहारिकता की जीवन के हर क्षेत्र मे मांग करते हैं लेकिन चीजों को व्यवहार में लाने के अवसर बस महज कहकर नही आते। होता ये भी है जब ऐसा रोना रोने वालों के सामने अवसर भी आ जाते हैं तो वे भौंचक्के भी रह जाते हैं। कुछ प्रभावशाली व उपयोगी करने के स्थान पर ये जो भी बनता है वही कर डालते हैं। इस स्थिति में उनसे उम्मीद रहती है कि वे सही व मांग की वास्तविकता के संदर्भ मे कुछ करे। कुछ करने व अपना उदाहरण दूसरो के सामने रखने के अवसर बार-बार नही आते। मनुष्यो के सम्पर्क में काम करने के विविध अनुभवों में, तरह-तरह की सगति में, जीवन में अनवरत निरकाम प्रयासो से शील का निर्माण होता है। तर्क पूर्ण चिंतन के विकास के लिए जरूरी है आप दूसरों की छाया न बनें। ऐसा करने से व्यक्तित्व से शील व शील से मनुष्यता तक पहुंचने का सफर मंजिल से पहले ही खत्म हो सकता है। केवल सैद्धातिक अभ्यास ही इस काम के लिए काफी नहीं होता। अध्यापको को बच्चों से ऐसा काम करवाना चाहिए जिसके प्रत्याशित परिणामों से ज्यादा व नए काम करने का प्रोत्साहन मिले। अपना व बच्चे का विकास करने का मतलब है आत्मा को हीन और महान, बड़े और छोटे, सफल और असफल आदि वृत्तियो से निकालकर एक महान चरित्र के उत्तुंग शिखर पर पहुचाना। इस नैतिक अतर्दृष्टि के लिए जरूरी है आपमें सच्चाई व ईमानदारी हो।

ऐसी आदतो के लिए अभ्यास व अभ्यास के लिए अवसर की जरूरत रहती है। जरूरी है जीवन के हर मोड़ पर इसके लिए अवसर मिले। जो इससे काम लेता है वह अपनी आदतें सुधारता जाता है। अपने काम पर दूसरो जैसी आलोचनात्मक दृष्टि रखना अपने सकल्प, मनोवृत्ति और व्यवहार को परखते रहने की आदत मानवता के विकास के लिए जरूरी है। प्रायः छोटे-छोटे नि:स्वार्थ काम करके भी शील को मजबूत बनाया जा सकता है। अगर आदमी इस सलग्नता से जुड़ा रहे तो ये बढ़कर व फैलकर विविध रूपों में व्यक्तित्व में बस जाती है। जो शील उच्चतर मान्यताओ का अनुगामी बन जाता है, जो शील अपने को स्वयं ही पूर्ण मान्यताओं का सेवक बनाए, वह एक सफल व्यक्तित्व में परिणत हो जाता है।

डा. जाकिर हुसैन के ये विचार शिक्षा की यथार्थता, उसके महत्व व उसकी समस्याओं का सूक्ष्य विवेचन करते हैं। मनोविज्ञान के गूढ़ सिद्धातों व अनुभवों का उनके शब्दों में बड़ा स्थान है। लगता है इन्होंने बच्चो के हृदय और मस्तिष्क को बड़ी सावधानी से पढ़ा है। उनकी तुतलाहट को, झिझक को समझा है, उनकी मौन पुकार को सुना है। ये विचार आज के संदर्भो मे प्रभावी दिखते हैं। आज के अध्यापक, छात्र, अभिभावक व व्यवस्थापक अच्छे निर्देश पाकर बच्चों की शिक्षा मे प्रभावी प्रयोग कर सकते हैं। ❑❑

जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, धर्मशाला
कांगड़ा , हिमाचल प्रदेश

number If, however, the beginner is a zero, in other words, no one makes the beginning, multiplicity of zeros will also produce zero value Time and paper occupied in writing zeros will be so much waste

This socialism is as pure as crystal It, therefore, requires crystal-like means to achieve it Impure means result in an impure end Hence the prince and the peasant will not be equalized by cutting off the prince's head, nor can the process of cutting off equalize the employer and the employed One cannot reach truth by untruthfulness Truthful conduct alone can reach truth. Are not non-violence and truth twins ? The answer is an emphatic 'no' Non-violence is embedded in truth and *vice versa*. Hence has it been said that they are faces of the same coin. Either is inseparable from the other Read the coin either way. The spelling of words will be different The value is the same. This blessed state is unattainable without perfect purity Harbour impurity of mind or body and you have untruth and violence in you

Therefore, only truthful, non-violent and pure-hearted socialists will be able to establish a socialistic society in India and the world To my knowledge there is no country in the world which is purely socialistic Without the means described above the existence of such a society is impossible

(Translated from the original in Gujarati)

New Delhi, 6-7-'47
Harijan, 13-7-1947

169

SOCIALISM

II

Truth and *ahimsa* must incarnate in socialism. In order that they can, the votary must have a living faith in God. Mere mechanical adherence to truth and *ahimsa* is likely to break down at the critical moment. Hence have I said that truth is God. This God is a living Force. Our life is of that Force. That Force resides in, but is not the body. He who denies the existence of that great Force, denies to himself the use of that inexhaustible Power and thus remains impotent. He is like a rudderless ship which, tossed about here and there, perishes without making any headway. The socialism of such takes them nowhere, what to say of the society in which they live.

If such be the case, does it mean that no socialist believes in God? If there be any, why have they not made any visible progress? Then again, many godly persons have lived before now; why have they not succeeded in founding a socialistic state?

It is difficult completely to silence these two doubts. Nevertheless, it is possible to say that it has perhaps never occurred to a believing socialist that there is any connection between his socialism and belief in God. It is equally safe to say that godly men as a rule never commended socialism to the masses.

Superstitions have flourished in the world in spite of godly men and women. In Hinduism itself untouchability has, till of late, held undoubted sway.

The fact is that it has always been a matter of strenuous research to know this great Force and its hidden possibilities.

My claim is that in the pursuit of that search lies the discovery of Satyagraha. It is not, however, claimed that all the laws of Satyagraha have been laid down or found. This I do say, fearlessly and firmly, that every worthy object can be achieved by the use of Satyagraha. It is the highest and infallible means, the greatest force. Socialism will not be reach-

ed by any other means Satyagraha can rid society of all evils, political, economic and moral.

(Translated from the original in Gujarati)

New Delhi, 13-7-'47
Harijan, 20-7-1947

170

THE ROOT CAUSE OF PARTITION

Many people come to Gandhiji and express their dissatisfaction over the partition of India They know that Gandhiji has always been opposed to it Why does he not give tangible form to his opposition ? they ask It is wrong for him to say that he is a spent bullet or that the country is not behind him "Give us the lead and you will see for yourself whether the country is behind you or not" Gandhiji is sometimes amused by such talk Against whom is he to give the lead ? It was not the British who had partitioned the country. It had been done with the consent of the Congress howsoever reluctantly. There was only one way to avoid the calamity and that was by the non-violence of the brave But how could the people develop it overnight ? Talking to some friends on this subject he said that the leaders had agreed to the partition as the last resort They did not feel that they had made a mistake Rather than let the whole country go to the dogs, they agreed to the partition, hoping to give the country a much needed rest He felt differently He had said that he would rather let the whole country be reduced to ashes than yield an inch to violence But non-violence was his creed It was not so with the Congress The Congress had accepted non-violence as a policy Badshah Khan was the only leader who believed in non-violence as a creed. Even he had not imbibed the doctrine through and through

"I have admitted my mistake," he continued "I thought our struggle was based on non-violence, whereas in reality it was no more than passive resistance which essentially is a weapon of the weak It leads naturally to armed resistance whenever possible." In South Africa the English Chairman of his

meeting, the late Mr Hosken, had said that he (Gandhiji) was fighting for the cause of the weak. Therefore he was resorting to passive resistance. Gandhiji had contradicted the statement. He had said that they were not weak in the sense the Chairman meant. The struggle in the Transvaal was not passive resistance. It was based on non-violence. The source of their strength was soul force, not physical force.

Intoxicated with his success in South Africa, he came to India. Here too the struggle bore fruit. But he now realized that it was not based on non-violence. If he had known so then, he would not have launched the struggle. But God wanted to take that work from him. So He blurred his vision. It was because their struggle was not non-violent that they today witnessed loot, arson and murder.

A friend interposed that Gandhiji had always maintained that our struggle was based on non-violence, though of the weak.

Gandhiji said that his was a mistaken statement. There was no such thing as non-violence of the weak. Non-violence and weakness was a contradiction in terms. He had never experienced the dark despair that was today within him. He was a born fighter who did not know failure. But he was groping today.

"But why should you feel despondent?" persisted the friend. "I see clearly," replied Gandhiji, "that if the country cannot be turned to non-violence it will be bad for it and the world. It will mean goodbye to freedom. It might even mean a military dictatorship. I am day and night thinking how non-violence of the brave can be cultivated.

"I said at the Asiatic Conference that I hoped the fragrance of the non-violence of India would permeate the whole world. I often wonder if that hope will materialize."

New Delhi, 18-7-'47
Harijan, 27-7-1947

171

DIVISION OF THE ARMY

Gandhiji referred with intense feeling to the division of the army He could not understand why they could not remain united for the object of facing foreign aggression The present mode of division might even lead to internal warfare between the two armies who might look upon themselves as rivals That would be a tragedy too deep for tears. As a matter of fact division of the army was a factor which would weaken the defence forces It was up to them to ponder deeply over this He hoped that even if they had not learnt the lesson of *ahimsa* during the last 30 years, they had at any rate learnt not to live as slaves of anyone — not only of the British If they had, what need of armies anywhere? This was the lesson he was trying to teach the Hindus in Noakhali and the Muslims in Bihar. If they had the personal courage he would not mind if they resisted opression even violently Naturally, he would always plead for non-violent resistance because the latter meant that God was their sole Protector Violent resistance invariably meant the aid of the sword which was at best a poor weapon of defence

New Delhi, 14-7-'47
Harijan, 27-7-1947

ARMY AND FREEDOM

A friend had asked if the division of the army and the retention of British Officers had Gandhiji's approval The friend should first ask whether Gandhiji approved of the army at all. As it was, the military expenditure in free India would probably be more, not less, than before Gandhiji could never be a party to it He viewed the military with apprehension Could it be that India would also have to pass through the stage of military rule? For years they had said that they did not want any army He stood by that statement even today, but the others did not A new generation had set in Congressmen were not bound by what they had done during India's bondage No blame could be imputed to them for the change He had mistaken passive resistance for non-violence. There was violence in people's hearts The British Government's imminent withdrawal had set free the bottled violence which was finding free vent against their own kith and kin Almost every province wanted military assistance. If they did not wake up betimes, there was even danger of military dictatorship being established. Was that freedom?

New Delhi, 23-7-'47
Harijan, 3-8-1947

173

THE FUNDAMENTAL DIFFERENCE

Gandhiji said in his after-prayer speech :

It is said that my speeches nowadays are depressing. Some even suggest that I should not speak at all This multitude of advisers reminds me of a painter who had exposed his painting in a shop window without glass inviting critics to mark the parts they did not like The result was a daub The painter had simply tried to show that it was impossible to please all parties He was, therefore, satisfied that he had painted a good picture His business was to produce a work which satisfied his artistic taste Mine is a similar case I hope I never speak for the sake of speaking I speak because I feel that I have something to say to the people. It is true that I do not agree with what many of my closest friends have done or are doing Whilst I am in Delhi and I have an opinion about some current events, I cannot help giving that opinion And what are the differences that matter ? If you analyse them you would find only one fundamental difference to which all the others could be traced Non-violence is my creed It never was of the Congress With the Congress it has always been a policy A policy takes the shape of a creed whilst it lasts, no longer The Congress had every right to change it when it found it necessary A creed can never admit of any change Now though according to the Congress constitution the policy abides, the practice has undoubtedly altered the policy Technicians may quarrel with the fact You and I cannot, must not Why should not the makers of the present Congress change their policy in fact ? The law will take care of itself It should also be noted that in the constitution the word *peaceful* is used, not *non-violent*

In Bombay when the Congress met in 1934 I tried hard to have the word *peaceful* replaced by *non-violent* and I failed. Therefore, it is open to give the word *peaceful* a meaning probably less than that of *non-violent* I see none But my opinion is irrelevant It is for the *savants* to determine the difference, if any. All that you and I need to realize is that the

Congress practice is not non-violent today in the accepted sense of the term. If the Congress was pledged to the policy of non-violence, there would be no army supported by it. But she sports an army which may eat up the civilians and establish military rule in India unless the people listen to me Am I to give up all hope of their ever listening to me? I cannot do it whilst there is breath left in me And if the people do not wish to listen to my non-violent dirge, there is no reason for critics to dissuade me from speaking to the public

Let me make one thing clear I have frankly and fully admitted that what we practised during the past thirty years was not non-violent resistance but passive resistance which only the weak offer because they are unable, not unwilling, to offer armed resistance If we knew the use of non-violent resistance which only those with hearts of oak can offer, we would present to the world a totally different picture of free India instead of an India cut in twain, one part highly suspicious of the other, and the two too much engaged in mutual strife to be able to think cogently of the food and clothing of the hungry and naked millions who know no religion but that of the one and only God who appears to them in the guise of the necessaries of life Not for them the sanguinary strife or the cinema pictures showing them how efficiently to cut one another's throats!

New Delhi, 15-7-'47
Harijan, 27-7-1947

174

A DIFFICULT QUESTION

A friend came to Gandhiji the other day and placed his difficulties before him The Congress governments were being warned not to trust the Muslims The latter might act as saboteurs and fifth columnists Jinnah Saheb had congratulated the Muslims of the non-Pakistan areas for their labours and sacrifices which had made Pakistan a reality Some members of the Muslim League were openly saying that they would not be content with the truncated Pakistan that had been secured Their eyes were on Delhi, Agra, Ajmer, Aligarh. Some even dreamt of dominating the whole of India It was a vain dream, yet what guarantee was there that the Muslims in the Union of India would not use their energies and influence towards the realization of that dream? Was it right on the part of the Congress governments to take the risk of trusting them?

Gandhiji's reply was clear and decisive The Congress governments could not discriminate against anyone on grounds of religion "My eldest son has often come to me saying, 'I will be good in future. I will not touch wine' I tell him, 'Though I do not trust you, I shall give you a chance' He has not been able to keep to his word so far Yet if he comes again, I will not turn him out and I shall hope that he will be as good as his word, until I know that he has come back only to deceive me We must trust the Muslims in the same way and, at the same time, be vigilant."

"But if we have suspicion in our minds, will it not be reflected in our actions?" asked the friend

"No," said Gandhiji. "You must not act on suspicion Look at the British. How much harm they have done to India! I confess that I am not yet wholly free from suspicion I wonder if they can really change completely. I trust Lord Mountbatten. The world cannot go on without trust The minorities must realize that they have to be loyal to the State under which they live If they prove unworthy, the State can take necessary action. But you must not prejudge them Why die before death?"

"We must, however, be prepared to fight the danger," persisted another friend

"Yes," said Gandhiji "The real preparation lies in purging ourselves of our inherent weaknesses—selfishness and disunity"

New Delhi, 18-7-'47
Harijan, 27-7-1947

175

PUNISHMENT FOR EVIL-DOERS

A correspondent writes "You regard yourself as a practical idealist What is happening today is inhuman Will you tell me how your practical *ahimsa* can work against these evil-doers?"

I must plead guilty to having called myself a practical idealist I have tried ever to practise as I have preached, be it ever so imperfectly Who are the evil-doers of your conception? Are they as described by the Sage Manu? All these are not today done to death Today there is a movement on foot in the world for the abolition of capital punishment. Indeed an attempt, worthy in my opinion, is being made to convert prisons into hospitals and reformatories for the treatment of criminals as if they were diseased persons The upshot of all I want to convey is that every work labelled as scripture is not necessarily so Moreover a scripture to be scientific lends itself to emendations as the times may really require They must progress with the times if they are to live in the lives of the people The changeless and universal fundamentals are always very few They do not require learned treatises to be described. The treatises are built upon these immovable rocks

Further, it is not everyone who is entitled to punish evil-doers In a decent society it is always reserved for the State. It enacts laws and appoints judges to judge in accordance with them If such were not the case, we would all bid fair to become evil-doers The assassinations in Burma were truly fearful. Now we know for certain that the motive behind them was political I am quite sure that the assassins believed that they were doing a virtuous act in murdering those patriots

whom they regarded as evil-doers Did not our terrorists think likewise? They told me that they sincerely believed that those whom they did to death were evil-doers of Manu's description These friends never thought until they had seen new light, that they had done anything wrong in shooting their victims Hence have I argued that those who take the law into their own hands and presume to judge others are themselves the guilty ones Departure from *ahimsa* is possible, if at all, when justice is awarded by properly constituted impartial tribunals What is happening today comes under the definition of evil

New Delhi, 22-7-'47

Harijan, 3-8-1947

176

GOONDAISM, CRUDE AND SUBTLE

Gandhiji devoted the whole of his prayer address at Sodepur to the situation in Calcutta His destination, he said, was Noakhali but he had been listening the whole day long to the woes of Calcutta. Some Muslim friends and also some Hindus complained that they (Hindus) seemed to have gone mad, not that the Muslims had become wiser But now that the Muslim police and officials were almost withdrawn and replaced by Hindus, the Hindus had begun to believe that they were now free to do what they liked as the Muslims were reported to have done under the League Ministry He was not going to examine what was done under the League Ministry His purpose was undoubtedly to know what his co-worker Dr Ghosh's Ministry was doing Was it true that the Muslims were living in terror? If it was at all true, it was a severe reflection on the Congress Ministry He was rightly asked before he went up to Noakhali to tarry in Calcutta to 'pour a pot of water over the raging fire' that was burning Calcutta. He would love to give his life if thereby he could contribute to the quenching of mob fury He would never be able to subscribe to the theory that the doings in Calcutta were the result of *goondaism* He held that the crude open *goondaism* was a reflection of the subtle *goondaism* they were harbouring within Hence, it was the duty of the Gov-

ernments to hold themselves responsible for the acts of the *goondas* so-called. He hoped that Calcutta would not present the disgraceful spectacle of hot *goondaism* when they were entering upon full responsibility

Sodepur, 10-8-'47
Harijan, 24-8-1947

177

MIRACLE OR ACCIDENT ?

Shaheed Saheb Suhrawardy and I are living together in a Muslim *manzil* in Beliaghata where Muslims have been reported to be sufferers We occupied the house on Wednesday the 13th instant and on the 14th it seemed as if there never had been bad blood between the Hindus and the Muslims In their thousands they began to embrace one another and they began to pass freely through places which were considered to be points of danger by one party or the other. Indeed, Hindus were taken to their *masjids* by their Muslim brethren and the latter were taken by their Hindu brethren to the *mandirs* Both with one voice shouted 'Jai Hind' or 'Hindu-Muslims ! Be One'. As I have said above, we are living in a Muslim's house and Muslim volunteers are attending to our comforts with the greatest attention. Muslim volunteers do the cooking Many were eager to come from the Khadi Pratishthan for attendance, but I prevented them. I was determined that we should be fully satisfied with whatever the Muslim brothers and sisters were able to give for our creature comforts and I must say that the determination has resulted in unmixed good Here in the compound numberless Hindus and Muslims continue to stream in shouting the favourite slogans. One might almost say that the joy of fraternization is leaping up from hour to hour.

Is this to be called a miracle or an accident ? By whatever name it may be described, it is quite clear that all the credit that is being given to me from all sides is quite undeserved, nor can it be said to be deserved by Shaheed Saheb This sudden upheaval is not the work of one or two men. We are toys in the

hands of God He makes us dance to His tune. The utmost, therefore, that man can do is to refrain from interfering with the dance and that he should tender full obedience to his Maker's will. Thus considered, it can be said that in this miracle He has used us two as His instruments and as for myself I only ask whether the dream of my youth is to be realized in the evening of my life

For those who have full faith in God, this is neither a miracle nor an accident A chain of events can be clearly seen to show that the two were being prepared, unconsciously to themselves, for fraternization In this process our advent on the scene enabled the onlooker to give us credit for the consummation of the happy event.

Be that as it may, the delirious happenings remind me of the early days of the Khilafat Movement The fraternization then burst on the public as a new experience. Moreover, we had then the Khilafat and Swaraj as our twin goals Today we have nothing of the kind We have drunk the poison of mutual hatred and so this nectar of fraternization tastes all the sweeter and the sweetness should never wear out

In the present exuberance one hears also the cry of 'Long Live Hindustan and Pakistan' from the joint throats of the Hindus and the Muslims I think it is quite proper Whatever was the cause for the agreement, three parties accepted Pakistan. If then the two are not enemies one of the other, and here evidently they are not, surely there is nothing wrong in the above cry. Indeed, if the two have become friends, not to wish long life to both the States would probably be an act of disloyalty.

(Adapted from the original in Gujarati)

Beliaghata, 16-8-'47
Harijan, 24-8-1947

178

SECULAR

Reverend Kellas, Principal of the Scottish Church College, came to see Gandhiji yesterday with some members of his staff. The principal question discussed was in connection with the relation between education, religion and the State Gandhiji expressed the opinion that the State should undoubtedly be secular. Everyone living in it should be entitled to profess his religion without let or hindrance, so long as the citizen obeyed the common law of the land There should be no interference with missionary effort, but no mission could enjoy the patronage of the State as it did during the foreign regime

While discussing these matters with Principal Kellas, Gandhiji incidentally remarked that although we had thrown overboard British political supremacy, we had not yet been able to throw overboard the cultural one In his characteristic style, he said, "We have discarded foreign power, not the unseen foreign influence" What he would like the new India of his dream to do was to lay the foundation of a new life in keeping with its natural surroundings In every State in the world today, violence, even if it were for so-called defensive purposes only, enjoyed a status which was in conflict with the better elements of life "The organization of the best in society", was the aim to which new India should dedicate herself; and this could be done only if we succeeded in demolishing the status which had been given to *goondaism* today

One of the scientist members of the staff then asked Gandhiji what scientific men should do if they were now asked by the free Indian Government to engage in researches in furtherance of war and the atom bomb? Gandhiji promptly replied, "Scientists to be worth the name should resist such a State unto death"

Calcutta, 17-8-'47
Harijan, 24-8-1947

179

NON-VIOLENCE AND FREE INDIA

There was a small gathering of local students the other day in Gandhiji's camp at Beliaghata Gandhiji first asked them if any of them had taken part in the riots, to which they replied in the negative Whatever they had done was in self-defence, hence it was no part of the riot.

This gave Gandhiji an opportunity of speaking on some of the vital problems connected with non-violence He said that mankind had all along tried to justify violence and war in terms of unavoidable self-defence. It was a simple rule that the violence of the aggressor could only be defeated by superior violence of the defender All over the world, men had thus been caught in a mad race for armaments, and no one yet knew at what point of time the world would be really safe enough for turning the sword into the plough Mankind, he stated, had not yet mastered the true art of self-defence

But great teachers, who had practised what they preached, had successfully shown that true defence lay along the path of non-retaliation It might sound paradoxical; but this is what he meant. Violence always thrived on counter-violence The aggressor had always a purpose behind his attack, he wanted something to be done, some object to be surrendered by the defender. Now, if the defender steeled his heart and was determined not to surrender even one inch, and at the same time to resist the temptation of matching the violence of the aggressor by violence, the latter could be made to realize in a short while that it would not be paying to punish the other party and his will could not be imposed in that way This would involve suffering It was this unalloyed self-suffering which was the truest form of self-defence which knew no surrender

Someone might ask that if through such non-resistance the defender was likely to lose his life, how could it be called self-defence? Jesus lost his life on the Cross and the Roman Pilate won Gandhiji did not agree Jesus had won, as the world's history had abundantly shown. What did it matter if the body

was dissolved in the process, so long as by the Christ's act of non-resistance, the forces of good were released in society ?

This art of true self-defence by means of which man gained his life by losing it, had been mastered and exemplified in the history of individuals. The method had not been perfected for application by large masses of mankind India's Satyagraha was a very imperfect experiment in that direction Hence, during the Hindu-Muslim quarrel it proved a failure on the whole.

Two or three days ago, before this meeting with the students, Gandhiji unburdened his heart in this respect to Professor Stuart Nelson, who had come to see him before he left for his college in America Professor Nelson asked him why it was that Indians who had more or less successfully gained independence through peaceful means, were now unable to check the tide of civil war through the same means ? Gandhiji replied that it was indeed a searching question which he must answer. He confessed that it had become clear to him that what he had mistaken for Satyagraha was not Satyagraha but passive resistance — a weapon of the weak Indians harboured ill-will and anger against their erstwhile rulers, while they pretended to resist them non-violently Their resistance was, therefore inspired by violence and not by regard for the man in the British, whom they should convert through Satyagraha

Now that the British were voluntarily quitting India, apparent non-violence had gone to pieces in a moment The attitude of violence which we had secretly harboured, in spite of the restraint imposed by the Indian National Congress, now recoiled upon us and made us fly at each other's throats when the question of the distribution of power came up. If India could now discover a way of sublimating the force of violence which had taken a communal turn, and turning it into constructive, peaceful ways, whereby differences of interests could be liquidated, it would be a great day indeed

Gandhiji then proceeded to say that it was indeed true that many English friends had warned him that the so-called non-violent non-cooperation of India was not really non-violent It was the passivity of the weak and not the non-violence of the stout in heart who would never surrender their sense of human unity and brotherhood even in the midst of conflict of interests,

who would ever try to convert and not coerce their adversary.

Gandhiji proceeded to say that this was indeed true He had all along laboured under an illusion. But he was never sorry for it He realized that if his vision were not covered by that illusion, India would never have reached the point which it had today

India was now free, and the reality was now clearly revealed to him Now that the burden of subjection had been lifted, all the forces of good had to be marshalled in one great effort to build a country which forsook the accustomed method of violence in order to settle human conflicts whether it was between two States or between two sections of the same people He had yet the faith that India would rise to the occasion and prove to the world that the birth of two new States would be, not a menace, but a blessing to the rest of mankind It was the duty of Free India to perfect the instrument of non-violence for dissolving collective conflicts, if its freedom was going to be really worth while

Calcutta, 20-8-'47
Harijan, 31-8-1947

180

HOW TO SAVE THE COW ?

There is serious ignorance about the place of the cow in Hinduism and in the economy of Indian life At the same time that India has become independent of foreign rule, by common consent it has been cut into twain so as to induce the untenable belief that one part is popularly described as Hindu India and the other part as Muslim India Like all superstitions, this of Hindu and Muslim India will die hard The fact is that the Indian Union and Pakistan belong equally to all who call themselves and are, sons of the soil, irrespective of their creed or colour.

Nevertheless, a large number of vocal Hindus have begun to believe the superstition that the Union belongs to the Hindus and that, therefore, they should enforce their belief by law even among non-Hindus. Hence an emotional wave is sweeping

the country, in order to secure legislation prohibiting the slaughter of cows within the Union.

In this state, which I hold, is based on ignorance, claiming to be a knowing lover and devotee, second to none in India of the cow, I must try in the best manner I can to dispel the ignorance

Let us at the outset realize that cow worship in the religious sense is largely confined to Gujarat, Marwad, the United Provinces and Bihar Marwadis and Gujaratis being enterprizing merchants, have succeeded in making the greatest noise without at the same time devoting their business talent to the solution of the very difficult question of conserving the cattle wealth of India

It is obviously wrong legally to enforce one's religious practice on those who do not share that religion

In so far as the pure economic necessity of cow protection is concerned, it can be easily secured if the question was considered on that ground alone In that event all the dry cattle, the cows who give less milk than their keep, and the aged and unfit cattle would be slaughtered without a second thought This soulless economy has no place in India, although the inhabitants of this land of paradoxes may be, indeed, are guilty of many soulless acts

Then how can the cow be saved without having to kill her off when she ceases to give the economic quantity of milk or when she becomes otherwise an uneconomic burden? The answer to the question can be summed up as follows

1 By the Hindus performing their duty towards the cow and her progeny If they did so, our cattle would be the pride of India and the world The contrary is the case today

2 By learning the science of cattle breeding Today there is perfect anarchy in this work

3 By replacing the present cruel method of castration by the humane method practised in the West

4. By thorough reform of the *pinjarapoles* of India which are today, as a rule, managed ignorantly and without any plan by men who do not know their work.

5 When these primary things are done, it will be found that the Muslims will, of their own accord, recognize the necessity, if only for the sake of their Hindu brethren, of not slaughtering cattle for beef or otherwise.

The reader will observe that behind the foregoing requirements lies one thing and that is *ahimsa*, otherwise known as universal compassion If that supreme thing is realized, everything else becomes easy. Where there is *ahimsa*, there is infinite patience, inner calm, discrimination, self-sacrifice and true knowledge Cow protection is not an easy thing. Much money is wasted in its name Nevertheless, in the absence of *ahimsa* the Hindus have become destroyers instead of saviours of the cow. It is even more difficult than the removal of foreign rule from India.

Calcutta, 22-8-'47

[*Note* The average quantity of milk that the cow in India yields is said to be roughly 2 lbs per day, that of New Zealand 14 lbs, of England 15 lbs, of Holland 20 lbs. The index figure for health goes up in proportion to the increase in the yield of milk.

23-8-'47 —M. K. G]

Harijan, 31-8-1947

181

NON-VIOLENT LABOUR AS MAGNET

Gandhiji said that the present was his second visit to Motiaburz The first was when Maulana Saheb Abul Kalam Azad and he visited them years ago because there was a fight between Hindu and Muslim workmen Fortunately when they reached the scene of trouble, it was almost over but they got undeserved credit The present was a happy occasion The Hindus and the Muslims had adjusted their differences and had become friends He hoped that this was a lasting friendship He wanted to say a few words to the workmen in the working men's locality He hoped that there was no distinction between the Hindus and the Muslims in labour They were all labourers If the communal canker entered the labour ranks, both would weaken labour and therefore, themselves and the country Labour was a great leveller of all distinctions If they realized that truth, he would like them to go a step further Labour, because it chose to remain unintelligent, either became subservient or insolently believed in damaging capitalists' goods and machinery or even in killing capitalists He was a labourer by conviction and a *bhangi*. As such his interests were bound with those of labour As such he wished to tell them that violence would never save them. They would be killing the goose that laid the golden egg What he had been saying for years was that labour was far superior to capital Without labour gold, silver and copper were a useless burden It was labour which extracted precious ore from the bowels of the earth. He could quite conceive labour existing without metal Labour was priceless, not gold He wanted marriage between capital and labour They could work wonders in co-operation But that could happen only when labour was intelligent enough to co-operate with itself and then offer co-operation with capital on terms of honourable equality Capital controlled labour because it knew the art of combination Drops in separation could only fade away, drops in co-operation made the ocean which carried on its broad bosom ocean greyhounds. Similarly,

if all the labourers in any part of the world combined together, they could not be tempted by higher wages or helplessly allow themselves to be attracted for, say, a pittance. A true and non-violent combination of labour would act like a magnet attracting to it all the needed capital Capitalists would then exist only as trustees When that happy day dawned, there would be no difference between capital and labour The labour will have ample food, good and sanitary dwellings, all the necessary education for their children, ample leisure for self-education and proper medical assistance

Calcutta, 28-8-'47
Harijan, 7-9-1947

182

INFALLIBLE AHIMSA

Q You have often stated while you were in Noakhali that failure of your mission there, would be the failure of your own *ahimsa* and not of *ahimsa* itself In the light of what has been achieved here (Calcutta), do you think that your *ahimsa* has succeeded or is on the way to success ?

A It is a correct statement that has been attributed to me *Ahimsa* is always infallible When, therefore, it appears to have failed, the failure is due to the inaptitude of the votary I have never felt that my *ahimsa* has failed in Noakhali, nor can it be said that it has succeeded It is on its trial And when I talk of my *ahimsa* I do not think of it as limited to myself It must include all my co-workers in Noakhali Success or failure would, therefore, be attributable to the aggregate of the activities of my co-workers and myself

What I have said about Noakhali applies to Calcutta. It is too early to state that the application of *ahimsa* to the communal problem in this great city has succeeded beyond doubt As I have already remarked, it is wrong to contend that the establishment of friendliness between the two communities was a miracle Circumstances were ready and Shaheed Saheb and I appeared on the scene to take the credit for what has happened.

Anyway, it is premature to predicate anything about the application. The first thing naturally is that we, the two partners, have one mind and are believers in *ahimsa*. That being assured, I would say that if we know the science and its application, it is bound to succeed.

Calcutta, 31-8-'47
Harijan, 7-9-1947

183

THE NATIONAL FLAG

The *Chakra* figuring in India's National Flag has been widely described as the *Ashoka-Chakra*. But this description is not historically quite correct. It was not Ashoka who invented this *Chakra*. It was first conceived by his great *Guru*, the Buddha, who called it the *Dhamma-Chakka* in his first teaching at Sarnath which is known in Pali as the *Dhamma-Chakka-Pabattana-Sutta*. The meaning of this term is the inauguration of the Kingdom (*Chakka*) of Righteousness, the Rule of Right as against Might — what Gandhiji would call *Rama Rajya*, the ideal for which India stands. The Buddha's *Dhamma-Chakka*, again, is the successor of Vishnu's *Sudarshana Chakra*, the Cosmic Circle, within which is comprehended all that is, animate or inanimate (*Akhanda mandalakaram vyaptam yena chara-charam* — अखण्डमण्डलाकार व्याप्त येन चराचरम् ।). Thus the *Chakra* is possessed of a deep spiritual meaning. It was Ashoka's part to translate into stone in terms of visible form the Buddha's great ideal of *Dhamma-Chakka* at the place where it was first presented by him. Finally, the *Chakra* may be taken in Gandhiji's sense as a *Charkha*, the symbol of India's traditional economic system through the ages.

Radha Kumud Mookerji

[Professor Radha Kumud Mookerji brought the above note personally and on my drawing attention to the popular meaning of the *Sudarshana Chakra* as a symbol of violence, he said it was wholly wrong.

Calcutta, 31-8-'47 —M. K. G.]
Harijan, 7-9-1947

184

PRESS STATEMENT

I regret to have to report to you that last night some young men brought to the compound a bandaged man He was reported to have been attacked by some Muslims The Prime Minister had him examined and the report was that he had no marks of stabbing, which he was said to have received The seriousness of the injury, however, is not the chief point What I want to emphasize is that these young men tried to become judges and executioners

This was about 10 p m Calcutta time They began to shout at the top of their voices. My sleep was disturbed but I tried to lie quiet, not knowing what was happening I heard the window panes being smashed I had lying on either side of me two very brave girls They would not sleep, and without my knowledge, for my eyes were closed, they went among the small crowd and tried to pacify them Thank God, the crowd did not do any harm to them The old Muslim lady in the house endearingly called Bi Amma and a young Muslim stood near my matting, I suppose, to protect me from harm

The noise continued to swell Some had entered the central hall, and began to knock open the many doors I felt that I must get up and face the angry crowd I stood at the threshold of one of the doors Friendly faces surrounded me and would not let me move forward My vow of silence admitted of my breaking it on such occasions and I broke it and began to appeal to the angry young men to be quiet. I asked the Bengali granddaughter-in-law to translate my few words into Bengali All to no purpose. Their ears were closed against reason.

I clasped my hands in the Hindu fashion nothing doing More window panes began to crack The friendly ones in the crowd tried to pacify the crowd There were police officers Be it said to their credit that they did not try to exercise authority. They too clasped their hands in appeal A *lathi* blow missed me and everybody round me. A brick aimed at me hurt a

Muslim friend standing by The two girls would not leave me and held on to me to the last Meanwhile the Police Superintendent and his officers came in They too did not use force They appealed to me to retire Then there was a chance of their stilling the young men After a time the crowd melted

What happened outside the compound gate I do not know except that the police had to use tear gas to disperse the crowd Meanwhile, Dr P C Ghosh, Ananda Babu and Dr Nripen walked in and after some discussion left Happily, Shaheed Saheb had gone home to prepare for tomorrow's proposed departure for Noakhali In view of the above ugly incident, which no one could tell where it would lead to, I could not think of leaving Calcutta for Noakhali

What is the lesson of the incident ? It is clear to me that if India is to retain her dearly-won independence all men and women must completely forget lynch law What was attempted was an indifferent imitation of it If Muslims misbehaved, the complainants could, if they would not go to the ministers, certainly go to me or my friend, Shaheed Saheb The same thing applies to Muslim complainants There is no way of keeping the peace in Calcutta or elsewhere if the elementary rule of civilized society is not observed Let them not think of the savagery of the Punjab or outside India The recognition of the golden rule of never taking the law into one's own hands has no exceptions.

My Secretary, Dev Prakash, in Patna, wires . 'Public agitated Punjab happenings Feel statement necessary impressing duty of public and the Press' Shri Dev Prakash is never unduly agitated There must be some unguarded word by the Press If that is so, at this time when we are sitting on a powder magazine, the Fourth Estate has to be extra-wise and reticent Unscrupulousness will act as a lighted match I hope every editor and reporter will realize his duty to the full

One thing I must mention. I have an urgent message calling me to the Punjab I hear all kinds of rumours about recrudescence of trouble in Calcutta I hope they are exaggerated, if not quite baseless The citizens of Calcutta have to reassure me that there would be nothing wrong in Calcutta and that peace, once restored, will not be broken.

From the very first day of peace, that is August 14th last, I have been saying that the peace might only be a temporary lull. There was no miracle. Will the foreboding prove true and will Calcutta again lapse into the law of the jungle? Let us hope not, let us pray to the Almighty that He will touch our hearts and ward off the recurrence of insanity.

Since the foregoing was written, i.e., about 4 o'clock, during silence, I have come to know fairly well the details of what has happened in various parts of the city. Some of the places which were safe till yesterday have suddenly become unsafe. Several deaths have taken place. I saw two bodies of very poor Muslims. I saw also some wretched-looking Muslims being carted away to a place of safety. I quite see that last night's incidents so fully described above, pale into insignificance before this flare-up. Nothing that I may do in the way of going about in the open conflagration could possibly arrest it.

I have told the friends who saw me in the evening what their duty is. What part am I to play in order to stop it? The Sikhs and the Hindus must not forget what the East Punjab has done during these few days. Now the Muslims in the West Punjab have begun the mad career. It is said that the Sikhs and the Hindus are enraged over the Punjab happenings.

I have adverted above to an urgent call for me to go to the Punjab. But now that the Calcutta bubble seems to have burst, with what face can I go to the Punjab? The weapon which has hitherto proved infallible for me is fasting. To put an appearance before an yelling crowd does not always work. It certainly did not last night. What my word in person cannot do, my fast may. It may touch the hearts of all the warring elements in the Punjab if it does in Calcutta. I therefore, begin fasting from 8-15 to-night to end only if and when sanity returns to Calcutta. I shall, as usual permit myself to add salt and soda bicarb to the water I may wish to drink during the fast.

If the people of Calcutta wish me to proceed to the Punjab and help the people there, they have to enable me to break the fast as early as may be.

Calcutta, 1-9-'47
Harijan, 14-9-1947

185

IN CALCUTTA

After a period of nearly six months I had the privilege of seeing once again the old, familiar face, of hearing the sound of his old familiar voice when with my friend and colleague Shri Charubhushan Chowdhary I came down to Calcutta to apprise Gandhiji of the situation that was developing in Noakhali and to seek his advice. Although Calcutta was apparently in an ecstasy of communal amity, his mind, uncannily sensitive to the hidden lie in the soul, was anything but restful. After some hesitation he decided to go to Noakhali in spite of the alarming news which continued to pour from the Punjab. "Shall I start tomorrow morning or the day after tomorrow?" he asked those around him and the latter day was fixed for departure. That evening, He who keeps watch when humanity's vision fails, gave the warning signal. "My resolve to go to Noakhali has collapsed after this evening's happenings," he told me when I saw him that night. "I cannot go to Noakhali or for that matter anywhere when Calcutta is in flames. Today's incident to me is a sign and a warning from God. You have for the time being, therefore, to return to Noakhali without me. You can tell the people of Noakhali that if my colleagues for any reason cannot be there, they will find me, surely, in their midst."

And then casually he hinted that if the conflagration spread, he would have no alternative but to fast. "Have I not often said that there is yet another fast in store for me?" The next day was his day of silence. Ugly news continued to pour in. Several deputations waited on him in the course of the day to consult him as to what they should do to quench the fire. "Go in the midst of the rioters and prevent them from indulging in madness or get killed in the attempt. But do not come back alive to report failure. The situation calls for sacrifice on the part of top rankers. So far the unknown, nameless rank and file alone have been the victims of the holocaust with the one exception of the late Ganesh Shankar Vidyarthi. That is not enough."

Even as he uttered these words, he was cogitating within himself, as to whether he came into the picture which he was presenting to them For he added, "Of course, I cannot do today what I have told them to do I will not be permitted to I saw that yesterday Everybody will protect me from harm if I went in the midst of the maddened crowd I may drop down from sheer physical exhaustion — that is nothing It won't do for a soldier to be exhausted in the midst of battle" But inaction in a crisis is not in Gandhiji's nature. When a dear old friend saw him that night his mind was already made up "You don't expect me to approve of your proposed step," remarked the friend with his usual affectionate banter as he perused Gandhiji's statement setting forth his reasons for going on a fast which the latter had kept ready against his arrival Together they took stock of the situation thrashing out the question in the minutest detail.

"Can you fast against the *goondas* ?" argued the friend

"The conflagration has been caused not by the *goondas* but by those who have *become goondas*. It is we who make *goondas* Without our sympathy and passive support, the *goondas* would have no legs to stand upon I want to touch the hearts of those who are behind the *goondas*"

"But must you launch your fast at this stage ?" finally argued the friend "Why not wait and watch a little ?"

To this Gandhiji's reply was that the fast had to be now or never "It would be too late afterwards The minority Muslims cannot be left in a perilous state My fast has to be preventive if it is to be any good"

"I know I shall be able to tackle the Punjab too if I can control Calcutta," he continued. "But if I falter now, the conflagration may spread and soon, I can see clearly, two or three Powers will be upon us and thus will end our short-lived dream of independence."

"But supposing you die, the conflagration would be worse," argued the friend.

"At least I won't be there to witness it I shall have done my bit More is not given a man to do," replied Gandhiji.

The friend capitulated.

"But why add sour lemon juice to water, if you are to put yourself entirely in God's hands ?" he (the friend) permitted

himself to think aloud as he read that part of the statement where Gandhiji had allowed himself that latitude

"You are right," quickly replied Gandhiji. "I allowed it out of my weakness It jarred on me even as I wrote it. A Satyagrahi must hope to survive his conditional fast by a timely fulfilment of the condition "

And so the portion referring to the addition of sour lime juice to water to be taken during the fast was scored out and the unadulterated venture of faith commenced.

This was on Monday night Two days later a prominent member of the Calcutta Muslim League waited on him to plead with him to give up the fast. "Your very presence in our midst is an asset to us It is the guarantee of our safety Do not deprive us of it," he added

"My presence did not check the rowdies the other day. My word seemed to have lost all efficacy so far as they were concerned My fast will now be broken only when the conflagration ends and the pristine peace of the last fifteen days returns If the Muslims really love me and regard me as an asset, they can demonstrate their faith by refusing to give way to the instinct of revenge and retaliation even if the whole of Calcutta goes mad In the meantime, my ordeal must continue "

The friend retired with a heavy heart Added Gandhiji after he had left, "Let the evil-doers desist from evil, not to save my life, but as a result of a true heart change. Let all understand that a make-believe peace cannot satisfy me I do not want a temporary lull to be followed by a worse conflagration In that event I shall have to go on an *unconditional* fast unto death."

Then the miracle happened As the leaden hours crept by and drop by drop strength ebbed out of the frail little man on the fasting bed, it caused a deep churning up in the hearts of all concerned, bringing the hidden lie to the surface People came to Gandhiji and confessed to him what they would not have uttered to any living ear Hindus and Muslims combined in an all-out effort to save the precious life that was being offered as ransom for disrupted peace between brother and brother Mixed processions, consisting of all communities, issued forth and paraded through the affected parts of the city

to restore communal harmony A group of about fifty people, credited with the power to control the turbulent elements in the city, saw Gandhiji on the 4th instant and gave an undertaking that they would immediately bring the trouble-makers under check They told Gandhiji that they had already traced and put under restraint the ringleaders who had organized the rowdyism in his camp on Sunday last, including the person who had hurled the stick that had narrowly missed hitting him They would all surrender themselves to him and take whatever punishment might be meted out to them Would not Gandhiji on the strength of that assurance now break his fast, so that they might be able to go to work unburdened by the oppression of the fast? they asked If not, what was his condition for breaking the fast? In reply Gandhiji told them that he would break his fast only when they could assure him that there would never again be recrudescence of communal madness in the city even though the whole of West Bengal and, for that matter, India might go forth into a blaze and the Muslims themselves would come and tell him that they now felt safe and secure and, therefore, he need not further prolong his fast He did not expect, he proceeded to explain, to be able to control all the *goondas* in the city, though he would love to, as he had not the requisite degree of purity, detachment and steadfastness of mind But if he could not even make them purge themselves of the communal virus, he would feel that life was not worth living and he would not care to prolong it They had referred to the oppression of his fast He could not understand that Why should they have a feeling of oppression if what they had told him came right from their hearts? If a single step is taken under pressure of the fast, not from conviction, it would cause oppression, but there should be no oppression if there was complete co-operation between the head and the heart "The function of my fast is to purify, to release our energies by overcoming our inertia and mental sluggishness, not to paralyse us or to render us inactive"

"My fast isolates the forces of evil; the moment they are isolated they die, for evil by itself has no legs to stand upon I expect you, therefore," he concluded, "to work with even greater vigour under the instigation of my fast, not to feel its oppression."

The deputation went back realizing that it was not fair to ask him to give up his fast unless they could deliver the goods Later in the afternoon a number of those who had led the disturbances in his camp on Sunday night, came to him and made their surrender with what to all intents appeared to be genuine contrition

That evening, another deputation of prominent citizens of Calcutta representing all communities, including Shaheed Saheb, Shri N C Chatterjee and Sardar Niranjan Singh Talib, waited on him They told him that they had been to all the affected parts of the city and there was quiet everywhere They had every reason to hope that there would be no recrudescence of trouble which was not communal really but was the work of the *goondas* They requested him to break his fast. Gandhiji mildly rebuked them for the habit of taking refuge behind moral alibis by blaming it all on the *goondas* It was a dangerous expedient He showed by citing personal experiences of the days of his boyhood how it is the cowardice or passive sympathy of the average citizen or the "man with a stake" that gives the so-called *goondas* the power to do mischief. "My fast should make you more vigilant, more truthful, more careful and precise in your speech," he remarked

Taking up next their request to break his fast, he asked them two straight questions Could they in all sincerity assure him that there would never be any more recrudescence of communal madness in Calcutta? Could they say that there was a genuine change of heart among the citizens of Calcutta so that they would no longer foster or tolerate communal frenzy? They should let him continue his fast if they could not give him that guarantee for, in the event of the present communal outbreak being followed by another, he would have to undertake an irrevocable fast unto death "But supposing there is another communal outbreak in spite of your assurances, since you are not omniscient," he resumed, "would you give your word of honour that you would in that event suffer to the uttermost before a hair of the minority community is injured, that you would die in the attempt to put out the conflagration but not return alive to report failure? And I want this from you in writing" If they could give that guarantee, he would break his fast "But mind you," he added, "my blood will be upon

your head if you say one thing and mean another, rather than thoughtlessly hurry, let me prolong my fast a little longer. It would not hurt me When a man fasts it is not the gallons of water he drinks that sustains him, but God."

He spoke with deep passion A pin-drop silence followed. Shaheed Saheb broke the ice. Gandhiji had said that he would break the fast when Calcutta would return to sanity That condition had been fulfilled Was he not imposing fresh conditions by asking them to sign that declaration? To this "legal argument" Gandhiji replied that there was no fresh condition imposed All that was there implied in the original terms of the fast "What I have spoken now is only a home truth to make you know what is what If there is complete accord between your conviction and feeling, there should be no difficulty in signing that declaration It is the acid test of your sincerity and courage of conviction. If, however, you sign it merely to keep me alive, you will be encompassing my death"

Everybody realized the solemnity of the warning Rajaji and Acharya Kripalani, who had arrived during the latter part of the discussion, proposed that they might leave Gandhiji alone a little while and retire to the adjoining room to confer together Shaheed Saheb endorsed the suggestion They were about to retire when an appeal signed by about 40 representatives of the Hindus and Mussalmans, residents of Narkel Danga, Sitlatala, Manicktola, and Kankirgathi areas was brought in In that appeal, the signatories swore that they would not allow any untoward event or incident in that locality which was the worst affected during the previous riots, and earnestly prayed to Gandhiji to break his fast. "It may also be reported," continued the signatories, "that no incident occurred in this mixed area since 14th of August 1947" "So our effort has not been in vain," remarked Shaheed Saheb, as he read out the appeal. "Yes, the leaven is at work," Gandhiji added.

Shaheed Saheb resumed, "Now that even the Muslims have joined in the appeal, won't you break your fast? This shows that they have fully accepted your peace mission although they are the aggrieved party in the present riots It is all the more strange because at one time they looked upon you as their arch enemy But their hearts have been so touched by the services

you have rendered them that today they acclaim you as their friend and helper"

It was a graceful thing, gracefully uttered Rajaji, not to be beaten in a tournament of chivalry, quickly added, "If I may vary the language, I would say that he is safer today in the hands of the Muslims than in those of the Hindus"

Gandhiji followed with interest this contest of chivalry and picked out for his comments only the portion of Shaheed Saheb's remarks in which he had referred to the Muslims as the aggrieved party He did not like the "aggrieved party" language. "Do not think of Muslims as the aggrieved party," he remarked. "The essence of our present peace mission is that we are to forget the past I do not want the Muslims to feel that in West Bengal they are the underdog Unless we can forget the distinction, we will not have done solid work"

They then all retired to the next room and Gandhiji who had an attack of weakness and nausea during the latter part of the talk was left alone to rest

In the deliberations that took place in the adjoining room Shaheeb Saheb was cautious and circumspect, which only showed his sincerity and sense of responsibility Acharya Kripalani was cynical and full of sardonic humour as ever; Rajaji, tactful and persuasive and full of practical wisdom, concealing his emotion under a mask of ratiocination The discussion was brief but unhurried Rajaji dictated the draft of the pledge which was signed by Shri N C Chatterjee first, then by Shri Deven Mukerjee followed by Shaheed Saheb Suhrawardy, Shri R K Jaidka, and Sardar Niranjan Singh Talib to be followed later by others A car load of hand grenades and arms had in the meantime arrived to be surrendered to Gandhiji as a token of repentance on the part of those who had taken part in the savagery of reprisals and counter-reprisals. Without any loss of time the signatories then returned to Gandhiji with the document

"But, sir, is it any good my signing this document?" remarked Shaheed Saheb to Gandhiji, "I may any time be called to Pakistan and then what happens to my pledge?"

"You must in that event have confidence that those whom you leave behind will deliver the goods," replied Gandhiji. "Moreover, you can come back."

"I have no desire to hoodwink you and I never will do so deliberately," remarked Shaheed Saheb in reply, explaining his extreme cautiousness, which Gandhiji greatly appreciated.

"Well, I will break this fast now," said Gandhiji at last, "and leave for the Punjab tomorrow. I shall now go there with far greater strength and confidence than I could have three days back"

Shaheed Saheb interposed, "You cannot leave tomorrow Your presence is necessary here at least for a couple of days yet to consolidate the peace" Others supported him They did not tell him what was uppermost in their minds besides, that they were deeply concerned at his undertaking a railway journey in his present state of health. The unruly crowds in Bihar and all along the line would tear him to pieces in their blind adoration

So, Saturday was provisionally fixed for his departure

Dr. Dinshah Mehta had in the meantime hurried away to get orange juice ready Before breaking the fast Gandhiji, according to his usual practice, had prayer recited The singing of the Poet's song ·

"When life is dry and parched up,

Descend Thou in a shower of mercy" followed by *Ramadhun* filled the air

Calcutta and Dacca,
5th and 6th September, 1947
Harijan, 14-9-1947

THE FAST

Gandhiji began his fast for allaying the communal frenzy and restoration of sanity in Calcutta at 8-15 p m on the 1st of September, 1947, and broke it at 9-15 p m on the 4th instant with a glass of sweet lime juice which Mr Suhrawardy served to him

It is necessary to go back into the history of the fast, in order to prepare the background of the story as to how and under what conditions it was finally broken.

From the 14th of August till the 31st peace reigned. That evening there was a demonstration against Gandhiji's peace mission On the following morning communal frenzy, in a very intense form, once more swept over several parts of the city. There were already indications in the morning that Gandhiji might fast, but the final decision was taken at eleven in the evening when, according to him, friends had failed to show any satisfactory reason why he should not take the contemplated step The last sweet drink was taken at 7 p m He made the provisional decision at 8-15 p m

Any way, the fast was taken and perhaps partly on account of it and partly also because the common citizen, who had tasted peace after one year's life in the trenches, did not want the recrudescence, the riots rapidly cooled down, so that on the 4th the Government as well as the public could come and report to Gandhiji that not one incident had taken place during the last twentyfour hours Parties after parties came to Gandhiji either with reports or with promises, and in spite of his weak state, he insisted on speaking in his feeble voice to every batch of interviewers Dr Sunil Bose, the celebrated physician and brother of Netaji, came to Gandhiji with a request that he must take plenty of rest and not talk at all But Gandhiji told him he could not exclude relevant talk Such necessary loss of energy was inevitable He was certainly desirous of living, but not at the cost of work that duty demanded "I can't interrupt the work," he said to Dr Bose, "which has made me fast and which

makes me live It my life ebbs away in the process, I would feel happy"

This was at half past eleven in the morning A few minutes afterwards a batch of twentyseven friends belonging to Central Calcutta came to see him During the communal disturbance of the last year, resistance groups had grown up here and there, and the present party represented such a group in Central Calcutta which had become the locus of the recrudescence on Monday They had come to Gandhiji with the promise that henceforth there would be no more incidents in their part of the city and he should, therefore, break his fast now, otherwise all of them were prepared to go on a sympathetic fast with him Gandhiji argued long with them, and what he said in substance was this The present occasion was not one in which there was scope for a sympathetic fast Hindus and Mussalmans had fought for one whole year, at the end of which the major parties had agreed that India should be divided into two States Both had Hindu and Muslim subjects It was now time for every one to create the sense of common citizenship, to rebuild the land so that men might taste the fruits of freedom To this end all should work Gandhiji said that if the friends had come to him only for the sake of saving his life, it was nothing

Referring to the Poona Fast which ended with the desired amendment of the Communal Award, it was suggested by some that though the amendment was not to their desire, they accepted it for the sake of saving his life This was a wholly wrong approach Such fasts were intended to stir the conscience and remove mental sluggishness Truth could not be sacrificed even for the sake of saving a life, however precious it was Gandhiji, therefore, warned the present company that they should create real Hindu-Muslim unity by educating the people in a sense of common citizenship of the State, where every single man enjoyed perfect equality of rights which flowed from duty performed If they worked with this aim in view, and succeeded after a few days' effort in making the Muslims in Calcutta feel safe where they now did not, it would be time for him to break the fast Gandhiji was clearly of opinion that although his work was now confined to Calcutta, yet his one aim with respect to the Hindu-Muslim question was that the solution would be complete only when the minority, whether in the In-

dian Union or in Pakistan, felt perfectly safe even if they were in the minority of one. There would be no favoured and no depressed community anywhere. All should forget their religious affiliations. He was working to this end. He was working in such a manner that the majority community in each State should go forward and create the necessary conditions of freedom.

Some one asked him: Was it possible that his fast would have any effect on the anti-social elements in society? Today, i.e., during the present recrudescence, it was this element which had gained the upper hand. Could their hearts be converted by Gandhiji's crucifixion? Gandhiji's answer was very clear and emphatic. He said that *goondas* were there because we had made them so. During one year of past anarchy, it was understandable how these elements in society had gained respectability. But the war between Pakistanis and those for Undivided India had ended. It was time for peace-loving citizens to assert themselves and isolate *goondaism*. Non-violent non-co-operation was a universal remedy. Good was self-existent, evil was not. It was like a parasite living on and round good. It would die of itself when the support that good gave was withdrawn. The heart of the anti-social elements may or may not be changed, it would be enough if they were made to feel that the better elements of society were asserting themselves in the interests of peace and in the interests of normality.

To the interviewers from Central Calcutta Gandhiji's advice, therefore, was that they should desist from a sympathetic fast, go forth among the oppressed in each quarter, assure them that they were safe, and rebuild life so that safety would be a permanent feature of the new State of India. He would personally have loved to move about from quarter to quarter in Calcutta in order to place his views before the various bodies, but his physical condition would not permit it. If others worked, how could he rest? Yet he was bound to make his contribution. He felt that it should be in the shape of a fast.

The friends from Central Calcutta were followed by others. There came a deputation from the Bar Association of Calcutta with the promise that its members would do all that lay within their power to restore peace. Friends from Belliaghata, who had

a few weeks back looked upon Gandhiji's peace mission with suspicion, had been electrified by the fast They had appreciated now the full significance of the mission and had, with all their energy, set about the task of rehabilitating the deserted Muslim *bustees*. Pressmen who had met the evacuees who had returned home testified to the sincerity and solicitude with which those who had driven them away a few weeks back, now treated them All this was good news for Gandhiji, but yet he did not reach the point when the fast could be broken

Towards evening, Sjt N C Chatterjee, President of the Hindu Mahasabha, Debendra Nath Mookerjee, its Secretary, Sardar Niranjan Singh Talib, Editor of the *Desh Darpan*, Dr G. Jilani of the Muslim League, Dr Abdur Rashid Chowdhury and Mohibur Rahaman of the Pakistan Seamens' Union came accompanied by some other friends to report on the quiet and with their request to Gandhiji to break his fast Rajaji, the Governor of West Bengal, Acharya Kripalani, Dr P C Ghosh and Mr H S Suhrawardy were also there They had a long discussion with Gandhiji which left him rather worn out Gandhiji heard what they said and did most of the talking This is what he had to say

He said that ever since the 14th of August although he had relished the fraternization between the Hindus and the Mussalmans, yet he looked on the ebullition of emotion with caution and reserve If the feeling was due entirely to friendship new found, to the sense of brotherhood through common citizenship newly attained, there would be more signs of it e g , in intensified efforts for rehabilitation That sign was lacking The recrudescence had then come Therefore, Gandhiji felt he must fast God had at least given him the capacity to work and die for communal peace If there were anti-social elements in society, where a rowdy or a *goonda* plundered or killed a man whether Hindu or Muslim, his fast might not affect him He knew his limitations He fasted for the restoration of communal harmony The sanity that had been in evidence for the last twentyfour hours was not enough for him. If the present company was going to assure him that it was a sincere affair and was going to be permanent, he would expect them to give him something in writing It must state that supposing Hindu-Muslim riots broke out once more in Calcutta, they should assure him

that they would give their lives in the attempt to quell the riots. If they agreed, that would be enough They must so work from tomorrow that real peace and common citizenship was created as a feature of Calcutta life, no matter what happened elsewhere. Communal peace should be their prime occupation. Their other occupations or avocations must henceforth occupy a second place

There was another matter, but that was a condition which automatically attached itself to the situation As in Bihar, as in Noakhali, so also in Calcutta, he wanted to tell the friends who were making themselves responsible for the break of his fast, that if communal frenzy broke out in Calcutta again, he might have to go on an *irrevocable* fast The present fast was meant to activize the better, peace-loving and wise elements in society, to rescue them from mental sluggishness and make goodness active

Realizing their responsibility, the friends retired to another room Free and frank discussions took place between them. Suspicions were freely expressed, fears that the signatories might not rise to the heights demanded of them were discussed in an atmosphere of frankness, and finally came the decision to sign the document with all its implications

Gandhiji felt glad He took the signatories at their word, prayed that God might give them the courage and strength to implement their promise in daily life from the following morning, and with that prayer on his lips, he broke his fast last night. A heavy responsibility now lies upon the people of Bengal who have to implement the promise made sacred in Gandhiji's presence May we have the requisite wisdom, strength and perseverence to see it through

Calcutta, 5-9-'47
Harijan, 14-9-1947

187

IMPLICATIONS OF FASTING

A friend writes

> "It seems to me that to put your life in jeopardy has become the final and natural remedy for you Be that as it may, I cannot help thinking that the remedy is akin to keeping a patient alive by administering injections or oxygen to him"

The above reflection proceeds from pain due to affection. Nevertheless, I must say that the writer has not given much thought to his criticism Many other well-wishers probably entertain the same hasty opinion Hence this public discussion

The critic's simile is inapplicable Administration of injections or oxygen are outward remedies, calculated merely to prolong bodily existence Therefore, they are properly described as of momentary value Nothing will be lost if those remedies were not applied A physical body cannot be made immortal. All that medical skill can do is to prolong the existence for a while. This temporary prolongation confers no lasting benefit

On the other hand, fasting is never intended to affect another's body It must affect his heart Hence it is related to the soul And in this sense the effect, such as it is, cannot be described as temporary It is of a permanent character Whether the fasting person is spiritually fit for the task and whether he has properly applied the remedy is a different matter, irrelevant to the present purpose

Of all the fasts of which I have recollection, of one only it can be said that though there was no fault in the conception, it was alloyed with external remedy with contra indication Had this mistake not been made, I have no doubt that its natural, beneficial result would have flown from it as in the others. I refer to the fast I had undertaken in Rajkot against the late Thakore Saheb. I saw my mistake, retraced my step and averted a dangerous crisis The last was in Calcutta in the current month of September Admittedly, the result was as it should have been Having reference to the spirit, I regard it as

permanent Time alone would show whether the effect was of a lasting character or not It must depend upon the purity of the fasting person and the accuracy of his perception That enquiry would be irrelevant here Moreover, the fasting man is not competent to undertake the enquiry It can only be done by a properly equipped impartial person and that too after my death

New Delhi, 25-9-'47

(Adapted from the original in Gujarati)

Harijan, 5-10-1947

188

WHY FAST ?

Q Why does Gandhiji resort to a fast when he faces extreme difficulties ? What is the effect of this action on the life of the public of India ?

A Such a question has been put to me before but never, perhaps, precisely in the same terms The answer, however, is easy It is the last weapon in the armoury of the votary of *ahimsa* When human ingenuity fails, the votary fasts This fasting quickens the spirit of prayer, that is to say, the fasting is a spiritual act and, therefore, addressed to God The effect of such action on the life of the people is that when the person fasting is at all known to them their sleeping conscience is awakened But there is the danger that the people through mistaken sympathy may act against their will in order to save the life of the loved one This danger has got to be faced One ought not to be deterred from right action when one is sure of the rightness It can but promote circumspection Such a fast is undertaken in obedience to the dictates of the inner voice and, therefore, prevents haste.

New Delhi, 10-12-'47
Harijan, 21-12-1947

189

ANGER IS SHORT MADNESS

While deploring the sad happenings in the N W.F P, however, Gandhiji impressed on the audience in his post-prayer address that anger was not going to lead them anywhere Anger bred revenge and the spirit of revenge was today responsible for all the horrible happenings there and elsewhere What good will it do the Muslims to avenge the happenings in Delhi or for the Sikhs and the Hindus to avenge cruelties on their co-religionists in the Frontier and West Punjab ? If a man or a group of men went mad, should everyone follow suit ? Gandhiji warned the Hindus and the Sikhs that by killing and loot and arson they were destroying their own religions He claimed to be a student of religion and he knew that no religion taught madness Islam was no exception He implored them all to stop their insane actions at once. Let not future generations say that you lost the sweet bread of freedom because you could not digest it Remember that unless you stop this madness the name of India will be mud in the eyes of the world

Harijan, 21-9-1947

190

CURB ANGER

Turning to the burning question of the day Gandhiji said in his post-prayer address that he was prepared to understand their resentment and the consequent impatience But if they deserved their independence, they would learn to subdue their resentment and trust their Government to do the best He was presenting to them not his own way of non-violence, much as he would like to He knew that he was out of court today. He suggested to them the adoption of the path that all democratic nations had adopted In democracy the individual will was governed and limited by the social will which was the State, which was governed by and for democracy If every individual took the law into his own hands there was no State, it became anarchy, i e , absence of social law or State That way lay destruction of liberty Therefore, they should subdue their anger and let the State secure justice In his opinion, if they permitted the State to do its duty, he had no doubt that every Hindu and every Sikh refugee would return to his home with honour and dignity He was free to admit that they had suffered much in Pakistan, many homes had become desolate, lives had been lost, girls had been abducted, there had been forcible conversions If they had self-control and did not allow their anger to get the better of their reason, girls would be returned, forcible conversions would be null and void and their properties returned to them But this could not be done if they interfered with the even course of justice and thus spoiled their own case They could not expect these things if they expected that their Muslim brothers and sisters should be driven out of India He regarded any such thing as a monstrous proposition They could not have the cake and eat it too Moreover whilst it was true that the minorities, i e , the Hindus and the Sikhs were badly treated in Pakistan, it was equally true that the East Punjab has also treated its minority, the Muslims, likewise Guilt could not be weighed in golden scales He had no data to measure the guilt on either side. It was surely sufficient to know that both the sides were guilty. The universal way to have proper adjustment was for both the States to make a frank and full confession

of guilt on either side and come to terms, failing agreement to resort to arbitration in the usual manner The other and crude way was that of war The thought repelled him But there was no escape from it if there was neither agreement nor arbitration Meanwhile, he hoped that wiser counsels would prevail and the Muslims who had not of their own free will chosen to migrate to Pakistan, should be asked by the neighbours to return to their homes with a perfect feeling of safety This could not come about with the aid of the military It could be done by return to sanity by the people concerned He had made his final choice He had no desire to live to see the ruin of India through fratricide His incessant prayer was that God would remove him before any such calamity descended upon their fair land And he asked the audience to join in the prayer

Harijan, 28-9-1947

191

DO NOT TOLERATE INJUSTICE

Gandhiji said in his post-prayer speech that he had been an opponent of all warfare. But if there was no other way of securing justice from Pakistan, if Pakistan persistently refused to see its proved error and continued to minimize it, the Indian Union Government would have to go to war against it War was not a joke No one wanted war That way lay destruction But he could never advise anyone to put up with injustice If all the Hindus were annihilated for a just cause, he would not mind it If there was a war, the Hindus in Pakistan could not be fifth columnists there No one would tolerate that If their loyalty lay not with Pakistan, they should leave it. Similarly, the Muslims whose loyalty was with Pakistan should not stay in the Indian Union To secure justice for the Hindus and the Sikhs was the function of the Government The people could make the Government do their will As for Gandhiji himself, his way was different. He worshipped God, which was Truth and *Ahimsa*

Birla House, New Delhi, 27-9-'47
Harijan, 5-10-1947

192

FIRM FAITH WEAKENED?

Gandhiji said in his post-prayer speech that newspapers had displayed his remarks about war in such a way that there was an enquiry from Calcutta whether he had really begun to advocate war He was wedded to non-violence for all time and could never advocate war In a State run by him there would be no police and no military But he was not running the Government of the Indian Union He had merely pointed out the various possibilities India and Pakistan should settle their differences by mutual consultations and failing that fall back upon arbitration But if one party persisted in wrong doing and would accept neither of the two ways mentioned above, the only way left open was that of war They should know the circumstances that prompted his remark In almost all his prayer speeches in Delhi, he had to tell the people not to take the law into their own hands, but let their Government secure justice for them He put before them the logical steps which excluded lynch law The latter would make decent government impossible That did not mean that his faith in non-violence had weakened in the least degree

Birla House, New Delhi, 28-9-'47

Harijan, 5-10-1947

193

WRONG INTERPRETATION

Gandhiji, in his post-prayer speech said . My reference to the possibility of a war between the two sister dominions seems, I am told, to have produced a scare in the West I do not know what reports were sent outside by newspaper correspondents Summaries are always a dangerous enterprise except when they truly reflect the speaker's opinion. An unwarranted summary of a pamphlet I had written about South Africa in 1896 nearly cost me my life It was so hopelessly unwarranted that within twentyfour hours of my being lynched European opinion in South Africa was turned from anger into contrition that an innocent man was made to suffer for no fault that he had committed The moral I wish to draw from the foregoing version is that no one should be held responsible for what he has not said or done

I hold that not a single mention of war in my speeches can be interpreted to mean that there was any incitement to or approval of war between Pakistan and the Union unless mere mention of it is to be taboo. We have among us the superstition that the mere mention of a snake ensures its appearance in the house in which the mention is made even by a child I hope no one in India entertains such superstition about war

I claim that I rendered a service to both the sister States by examining the present situation and definitely stating when the cause of war could arise between the two states This was done not to promote war but to avoid it as far as possible I endeavoured, too, to show that if the insensate murders, loot and arson by people continued, they would force the hands of their Government Was it wrong to draw public attention to the logical steps that inevitably followed one after another ?

India knows, the world should, that every ounce of my energy has been and is being devoted to the definite avoidance of fratricide culminating in war When a man vowed to non-violence as the law governing human beings dares to refer to

war, he can only do it so as to strain every nerve to avoid it. Such is my fundamental position from which I hope never to swerve even to my dying day.

Birla House, New Delhi, 29-9-'47
Harijan, 12-10-1947

194

MY PRAYER

Gandhiji in his post-prayer speech said that there were about 50,000 Muslim refugees in the *Purana Quila* and some more on the Humayun's tomb grounds. The conditions of life were none too pleasant there To justify their suffering by stating the sufferings of the Hindu and the Sikh refugees in Pakistan and even in the Indian Union was wrong The Hindus and the Sikhs had suffered no doubt and suffered heavily It was for the Government of the Indian Union to secure justice for them Lahore was famous for its various educational institutions They had been founded by private enterprise The Punjabis were industrious They knew how to earn money and how to spend it in charity There were first-class hospitals raised by the Hindus and the Sikhs in Lahore All those institutions and private property had to be restored to the rightful owners. It could not be done by seeking private revenge. It was the duty of the Union Government to see that Pakistan Government did its duty as it was that of Pakistan to ensure justice by the Union. They could not secure justice by copying the evil ways of one another If two men go out riding and one falls down, was the other to follow suit ? That would merely result in breaking the bones of both Supposing the Muslims would not be loyal to the Union, nor would they surrender arms, were they to continue murder of innocent men, women and children on that account ? It was for the Government to see that the traitors were dealt with properly By taking to savagery the people in both the States had tarnished the fair name that India had earned in the world They were thereby bargaining for slavery and destruction of their great religions They were free to do so But he who had staked his life to gain the

independence of India did not wish to be a living witness to its destruction With every breath he prayed to God either to give him the strength to quench the flames or remove him from this earth

Birla House, New Delhi, 2-10-'47
Harijan, 12-10-1947

195

MESSAGE OF THE SIKH GURUS

Gandhiji began his discourse this evening by referring to a conversation he had during the course of the day with Baba Sardar Kharak Singh's Secretary, Sardar Santokh Singh This friend told him that Guru Govind Singh had said exactly the same as he had quoted from Guru Arjun Dev Most people imagined, quite wrongly — and on this score many Sikhs also were very ignorant — that Guru Govind Singh had taught his followers to kill the Mussalmans The 10th *Guru*, whose *bhajan* Gandhiji read out, had said that it mattered little how, where, or by what name man worshipped God He was the same, for everyone and what is more, man was the same, i e, he was of the same genus Guru Govind Singh said that humanity could not be differentiated Individuals differed in temperament or appearance but all were built in the same mould They had the same feelings They all die and are mingled with the dust Air and sun were the same for all men The Ganga would not refuse her refreshing waters to a Muslim Clouds showered their rain on all alike. It was unregenerate man alone who differentiated between himself and his fellow If, therefore, the message of the great Sikh *Gurus* and other religious leaders was true for them, they should realize that it was wholly wrong for anyone to say that the Indian Union should be purely a Hindu State composed of none but the Hindus.

The Right Use of the Kirpan

Gandhiji went on to say that by this he did not mean that the Sikhs were wedded to non-violence. They were not. But the Sardar told him that in Guru Govind Singh's day the Muslims

had gone away from their religion and, therefore, he ordered his followers to fight them The *kirpan*, which the Sikhs carried, was a weapon for the defence of the innocent It was meant to fight against tyranny, never to kill the innocent, or women and children, or old or disabled persons Even during the war against the Muslims the code was to tend the wounded of both sides But today the *kirpan* was often used for totally wrong purposes and he who used it wrongly was really not fit to carry it

Birla House, New Delhi, 3-10-'47
Harijan, 12-10-1947

196

NO DEPRESSION

This is from one of the many messages of birthday congratulations

> "May I suggest that the present situation should not depress you? In my opinion this is the final attempt of the forces of evil to foil the divine plan of India's contribution to the solution of the world's distress by way of non-violence You are today the only instrument in the world to further the divine purpose"

This is a telegram sent more out of personal affection than knowledge Let us see

It is perhaps wrong to describe my present state of mind as depression I have but stated a fact I am not vain enough to think that the divine purpose can only be fulfilled through me. It is as likely as not that a fitter instrument will be used to carry it out and that I was good enough to represent a weak nation, not a strong one May it not be that a man purer, more courageous, more far-seeing is wanted for the final purpose? This is all speculation No one has the capacity to judge God. We are drops in that limitless ocean of mercy

Without doubt the ideal thing would be neither to wish to live 125 years nor to wish to die now Mine must be a state of complete resignation to the Divine Will The ideal ceases to be that when it becomes real. All we can do is to make as near an

approach to it as possible This I am doing with as much energy as I can summon to my assistance

If I had the impertinence openly to declare my wish to live 125 years, I must have the humility under changed circumstances, openly to shed that wish. And I have done no more, no less. This has not been done in a spirit of depression. The more apt term perhaps is helplessness In that state I invoke the aid of the all-embracing Power to take me away from this "vale of tears" rather than make me a helpless witness of the butchery by man become savage, whether he dares to call himself a Muslim or Hindu or what not Yet I cry — "Not my will but Thine alone shall prevail" If He wants me, He will keep me here on this earth yet awhile

New Delhi, 5-10-'47
Harijan, 12-10-1947

197

TWO AMERICAN FRIENDS' CONSOLATION

Of the many letters that come to me from American friends whom I do not know, the following extracts from two such friends are worth quoting ·

> "Your great distress due to the unhappy situation in your country demands that I intrude upon your contemplations of the painful events now taking place in India, to remind you that your beautiful words have taken root in all the corners of the earth
>
> "That you should feel a degree of disillusionment because of these sad happenings is natural That that disillusionment should be measured and certainly not turn into discouragement is the purpose of my letter
>
> "Never does the seed turn directly into a beautiful fragrant flower without first going through certain phases of growth and development And, if at some stage of its development — or growth — it falters, the presence of the gardener is more than ever required In the complete absorption of the selfless task of nursing the ailing plant, the gardener perhaps cannot fully observe the growth of other plants in his garden, to join with him in his compassion for their stricken brother
>
> "I plead with you to give consideration to the countless numbers of people in all countries on earth, of all classes, races

and creeds, who are now also praying for peace These people, whose hopes you have so well expressed and who took fresh courage from these victories which you did achieve with the Science of Peace, must now join me in prayer that the Master bless you and preserve you to continue your noble work, so much of which is still to be done"

What they say may prove true and that the senseless blood-bath through which India is still passing, though the original fury seems to have abated, may be nothing unusual as history goes. What India is passing through must be regarded as unusual If we grant that such liberty as India has gained was a tribute to non-violence as I have repeatedly said, the non-violence of India's struggle was only in name, in reality it was passive resistance of the weak. The truth of the statement we see demonstrated by the happenings in India.

New Delhi, 6-11-'47
Harijan, 16-11-1947

198

"DO NOT LOSE HEART"

The following is from Madame Edmond Privat's letter, dated 27th August, 1947, to Gandhiji

"Today I feel I must tell you how very deeply we have been moved by the late great events occurring to India, I mean her liberation and how we rejoiced over it

"Yes, we know that you are not happy about it all—we read your article in the *Harijan*, but O Bapu ! do not lose heart, think, O *do* think of the significance it means for us in the Occident That India did her revolution without shedding the blood of her opponent and was liberated, is an immense progress on the past, it is a point reached in history without precedent on such a scale

"O Bapu ! For us in the Occident, just emerging from a terrific bath of blood, cannot you see how bright luminous, divine appears to us the new dawn in India !

"Do be consoled, encouraged, braced up by our joy, our wonderful hope, you whom we regard not only as our spiritual leader, but also an example of a man who has lived his faith fully in the daily life without losing his sense of proportion or humour After all, is it not you who have taught us this precious message of your religion, to work with all our heart without expecting any result, leaving the rest in God's care ? Well, you

did what you did with all your faith and courage and now God shows us what can be achieved by non-violence as a wonderful hope, the only means for us to save our civilization from destruction That the non-violence used was not always perfect was perhaps the case, but certainly the sincere efforts of your good people inspired by you, was there, I am convinced

"Let us hope that we shall be worthy of this message and use it here to its full possibility

"It is true, only a few people here understand its real meaning, but the soil is ready to receive it

'Let us work heart within and God overhead!'

"Your article* in *Harijan* of 27th July, 1947, to which I was alluding at the beginning of this letter, is going to appear, translated by Edmond in the next *Essor* (In fact the whole number is on India)

"I am glad for the readers of *Essor* that they should see once more this point emphasized by you and their attention drawn energetically to it, i e the fundamental difference between passive resistance and non-violence

"The more I think about it the more I am convinced that people do not grasp, cannot grasp this difference. They use passive resistance and, not succeeding, they get discouraged, though yet they may be perfectly sincere in their endeavours

"Often the fact is that people *unconsciously* lie to themselves

"That is why lately I have been trying to get a little knowledge about psycho-analysis Formerly one used to explain to people that one had to be aware of the great guile of Satan in his working in our heart

"Nowadays people want more scientific methods to reach at truth and, apart from therapeutic means to cure neurosis, psycho-analysis can help normal people to get clear with the mechanisms of their feelings and attain thus fuller consciousness which enables them, if they are sincere, to use really non-violence"

To this letter Gandhiji replied .

"I see that you have grasped the fundamental difference between passive resistance and non-violent resistance Resistance both forms are, but you have to pay a very heavy price when your resistance is passive, in the sense of the weakness of the resister Europe mistook the bold and brave resistance full of wisdom by Jesus of Nazareth for passive resistance, as if it was of the weak As I read the New Testament for the first time, I detected no passivity, no weakness about Jesus as depicted in the four gospels, and the meaning became clearer to me when

* This appears as chapter 170 above

I read Tolstoy's *Harmony of the Gospels* and his other kindred writings Has not the West paid heavily in regarding Jesus as a Passive Resister? Christendom has been responsible for the wars which put to shame even those described in the old Testament and other records, historical or semi-historical. I know that I speak under correction for I can but claim very superficial knowledge of history — modern or ancient.

"Coming to my personal experience, whilst we undoubtedly got through passive resistance our political freedom, over which lovers of peace like you and your good husband of the West are enthusiastic, we are daily paying the heavy price for the unconscious mistake we made or better still, I made in mistaking passive resistance for non-violent resistance Had I not made the mistake, we would have been spared the humiliating spectacle of weak brother killing his weak brother thoughtlessly and inhumanly

"I am only hoping and praying and I want all the friends here and in other parts of the world to hope and pray with me that this blood-bath will soon end and out of that, perhaps, inevitable butchery, will rise a new and robust India -- not warlike, basely imitating the West in all its hideousness, but a new India learning the best that the West has to give and becoming the hope not only of Asia and Africa, but the whole of the aching world.

"I must confess that this is hoping against hope, for, we are today swearing by the military and all that naked physical force implies Our statesmen have for over two generations declaimed against the heavy expenditure on armaments under the British regime, but now that freedom from political serfdom has come, our military expenditure has increased and still threatens to increase and of this we are proud! There is not a voice raised against it in our legislative chambers In spite, however, of the madness and the vain imitation of the tinsel of the West, the hope lingers in me and many others that India shall survive this death dance and occupy the moral height that should belong to her after the training, however imperfect, in non-violence for an unbroken period of thirty-two years since 1915."

New Delhi, 29-11-'47
Harijan, 7-12-1947

199

IS IT DESERVED ?

In the course of a long letter which Reverend Dr John Haynes Holmes had written to me before leaving the hospitable shore of India, he writes

> "Of course you have been sad, well nigh overborne, by the tragedies of recent months, but you must never feel that this involves any breakdown of your life work Human nature cannot bear too much — it cracks under too great a strain — and the strain in this case was as terrific as it was sudden But your teaching remained as true and your leadership as sound as ever Single handed you saved the situation, and brought victory out of what seemed for the moment to be defeat I count these last few months to be the crown and climax of your unparalleled career You were never so great as in these dark hours"

I wonder if the claim can be proved That much more than Dr. Holmes observed can be proved of *ahimsa*, I have not the slightest doubt My difficulty is fundamental Have I attained the requisite qualification for exhibiting the virtues of *ahimsa*, even as Dr Holmes has said ? Knowing as I do the working of *ahimsa*, however imperfectly, I see every reason for the utmost caution in advancing claims that cannot be proved beyond doubt.

New Delhi, 3-1-'48
Harijan, 11-1-1948

200

AHIMSA NEVER FAILS

The following correspondence between a European friend and Gandhiji is published for general information

The European friend writes

> "After carefully studying Roy Walker's thrilling story of your admirable work (*Sword of Gold*) I was satisfied that, life-long as your struggle for non-violence had been, your unlimited devotion had met with success, at least as far as India's leaders and masses were concerned, and the fact that Britain retired from India in apparent goodwill and friendship, seemed to bear out the hope that appreciation of non-violence was no longer restricted to your own country. The first breach into the thick walls of violence seemed made, and the prospects for humanity seemed to have grown more lucid than ever
>
> "All the more depressing were your recent confessions, as reported in the last edition of *Peace News* by George Ll Davis It grieves me to the heart to read that you had never experienced the dark despair that was today within you And though it is certainly true that God does not demand success but truth and love from a man, it is a sad sight to behold mankind as deeply entangled by violence as not to yield to the vast extent of soul-force and self-sacrifice given by you and your few friends during a long life
>
> "However, willingly admitting as I do that you are in a far better position to look into the heart of things than I am, I cannot believe that your heroic efforts should be lost upon mankind, that the good seed you have so untiringly sown in all your surroundings, by your words as well as by your example, should be wasted
>
> "Be that as it may, I for one (and I am sure I speak the heart of untold millions) feel it my bounden duty to express my deepest gratitude to you for giving the whole of your life to what you felt to be the one way to salvation for mankind"

Gandhiji's reply runs thus

"I have not seen the report you refer to In any case, whatever I have said does not refer in any way to the failure of *ahimsa*, but it refers to my failure to recognize, until it was too late, that what I had mistaken for *ahimsa* was not *ahimsa*,

but passive resistance of the weak, which can never be called *ahimsa* even in the remotest sense The internecine feud that is going on today in India is the direct outcome of the energy that was set free during the thirty years' action of the weak. Hence, the proper way to view the present outburst of violence throughout the world is to recognize that the technique of unconquerable non-violence of the strong has not been at all fully discovered as yet Not an ounce of non-violent strength is ever wasted I must not, therefore, flatter myself with the belief — nor allow friends like you to entertain the belief — that I have exhibited any heroic and demonstrable non-violence in myself All I can claim is that I am sailing in that direction without a moment's stop This confession should strengthen your belief in non-violence and spur you and friends like you to action along the path "

New Delhi, 1-1-'48
Harijan, 11-1-1948

201

WHERE AHIMSA, WHERE KHADI ?

A correspondent from Kathiawad writes

> "Like as in many districts or provinces so in Kathiawad people are fast withdrawing their faith in *khadi* and *ahimsa*. Many Congressmen and Gandhites seem to argue how non-violence can work in matters political "

The writer of the letter enters into a number of arguments giving illustrations I have, however satisfied myself with giving the dominant sentences in the letter In them are embedded three errors

I have been explaining of late that neither in Kathiawad nor in other parts of India had people real faith in non-violence or *khadi* It is true that I deceived myself into the belief that people were being wedded to non-violence with *khadi* as its symbol As a matter of fact in the name of non-violence people observed the outward peace of the impotent They had never even attempted to drive violence from their hearts. He who runs can see for himself the verification of this fact It had become patent to everyone, when I went to Rajkot in connec-

tion with the Rajkot imbroglio, that there was no *Rama* in Rajkot and, therefore, Kathiawad Hence, it is hardly apt to say that their faith is on the wane now-a-days

It is equally improper to question now the efficacy of non-violence in matters political What was the people's fight against the foreign power, if it was not a political matter ? Indeed, the disgraceful fight between brother and brother that we are witnessing today is much less political Today, irreligion is stalking the country in the name of religion Even the outward peace that we were able to observe in the fight against the foreign power is conspicuous by its absence today

The third error consists in the distinction the correspondent makes between Congressites and Gandhites It has no foundation in fact If there is one Gandhite, it must be me I hope, however, that I am humble enough not to arrogate any such claim Gandhite means a worshipper of Gandhi There must be a God to worship But I have never arrogated to myself any such claim Hence, there can be no devotee of mine Moreover, how can it be said that those who call themselves Gandhites are not also Congressites ? There are innumerable servants of the Congress although they are not four anna members with their names registered in a Congress register The reader should know that I myself belong to that category. Hence, it is contended that the distinction made by my correspondent is meaningless

I have repeatedly said that I have neither part nor say in many things that are going on in the country today It is no secret that the Congress willingly said goodbye to non-violence when it accepted power Again, I firmly believe that the method of rationing of food and clothing is highly injurious for the country If I had my way, I would not buy a grain of foodstuff from outside India It is my firm belief that even today there is enough foodstuff in the country Only the villagers have felt compelled to conceal the cereals and pulses under the insufferable control. Again, if people follow me, there would be no deadly quarrel between the Hindus, the Sikhs and the Muslims The plain matter of fact is that I am not the current coin that, I had fancied, I once was. Mine is a voice in the wilderness.

As for *khadi*, it has a kind of a place if we tear it from its root which is *ahimsa*. It no longer occupies the proud place of being the symbol par excellence of *ahimsa*. Those who being in the political field support *khadi* do so because it has attained that vogue. Today three cheers belong not to *khadi* but to mill cloth for we labour under the delusion that but for the manufactures from our mills, millions would have to go naked Can there be a greater hallucination than this ? We grow enough cotton in the country We have any number of handlooms and spinning wheels India is not unused to the art of hand-spinning and hand-weaving, but somehow or other the fear has seized us that the millions will not take to hand-spinning and weaving hand-spun yarn for their own needs A haunted man will detect fear even when there is no cause for it And do we not know that many more die of fright than of the actual disease, the very name of which has given them the fright ?

New Delhi, 25-10-'47

(Translated from the original in Gujarati)

Harijan, 2-11-1947

202

WORKING OF AHIMSA

This evening when as usual before the prayer meeting the audience was asked if there was any objector to the *Quran* verses being recited as part of the prayer, one member spoke up and persisted in his objection Gandhiji had made it clear that if there was such objection, he would neither have public prayer nor the after-prayer speech on current events Consequently, he sent word that there would be neither prayer nor speech before the public But the gathering would not disperse without seeing Gandhiji He, therefore, went to the rostrum and said a few words on the reason for abstention and the working of *ahimsa* as he understood it He said that it was unseemly for anyone to object to the prayer, especially, when it was on a private lawn Nevertheless, his *ahimsa* warned him against disregarding even one objector when an overwhelming majority were likely to overawe one person into silence It would be otherwise

if the whole audience objected It would then be his duty to have the prayer even at the risk of being molested. There was also the further consideration that the majority should not be disappointed for the sake of one objector The remedy was simple If the majority restrained themselves and entertained no anger against, or evil design on, the solitary objector, it would be his duty to hold the prayer The possibility, however, was that if the whole audience was non-violent in intention and action, the objector would restrain himself Such he held was the working of non-violence He further held that truth and non-violence were not the monopoly of a few adepts All universal rules of conduct known as God's commandments were simple and easy to understand and carry out if the will was there They only appeared to be difficult because of the inertia which governed mankind Man was a progressive being. There was nothing at a standstill in nature Only God was motionless for, He was, is and will be the same yesterday, today and tomorrow, and yet was ever moving We need not, however, worry ourselves over the attributes of God We had to realize that we were ever progressing Hence, he held that if mankind was to live, it had to come growingly under the sway of truth and non-violence It was in view of these two fundamental rules of conduct that he and the audience had to work and live

Birla House, New Delhi, 30-10-'47
Harijan, 9-11-1947

203

FIRM ON NON-VIOLENCE

A correspondent rebuked Gandhiji for having dared to advise Mr Winston Churchill, Hitler, Mussolini and the Japanese, when they were about to lose their all, that they should adopt his technique of non-violence The writer of the letter then went on to say that if he could give that advice when it was safe for him to do so, why did he abandon his non-violence when his own friends in the Congress Government had forsaken it and even sent armed assistance to Kashmir? The letter concluded by inviting Gandhiji to point out definitely how the raiders were to be opposed non-violently by the Kashmiris

Replying Gandhiji said that he was sorry for the ignorance betrayed by the writer The audience would remember that he had repeatedly said that he had no influence in the matter over his friends in the Union Cabinet He held on to his views on non-violence as firmly as ever, but he could not impose his views on his best friends, as they were, in the Cabinet He could not expect them to act against their convictions and everybody should be satisfied with his confession that he had lost his original hold upon his friends The question put by the writer was quite apposite Gandhiji's answer was simple His *ahimsa* forbade him from denying credit, where it was due, even though the creditor was a believer in violence Thus, though he did not accept Subhas Bose's belief in violence and his consequent action, he had not refrained from giving unstinted praise to him for his patriotism, resourcefulness and bravery Similarly, though he did not approve of the use of arms by the Union Government for aiding the Kashmiris and though he could not approve of Sheikh Abdulla's resort to arms, he could not possibly withhold admiration for either for their resourceful and praiseworthy conduct, especially, if both the relieving troops and the Kashmiri defenders died heroically to a man He knew that if they could do so, they would perhaps change the face of India But if the defence was purely non-violent in intention and action, he would not use the word 'perhaps', for, he would be sure of change in

the face of India even to the extent of converting to the defender's view the Union Cabinet, if not even the Pakistan Cabinet

The non-violent technique, he would suggest, would be no armed assistance to the defenders Non-violent assistance could be sent from the Union without stint But the defenders, whether they got such assistance or not, would defy the might of the raiders or even a disciplined army in overwhelming numbers And defenders dying at their post of duty without malice and without anger in their hearts against the assailants, and without the use of any arms including even their fists would mean an exhibition of heroism as yet unknown to history Kashmir would then become a holy land shedding its fragrance not only throughout India, but the world Having described non-violent action he had to confess his own impotence, in that his word lacked the strength, which perfect mastery over self as described in the concluding lines of the second chapter of the *Gita*, gave He lacked the *tapashcharya* requisite for the purpose He could only pray and invite the audience to pray with him to God that if it pleased Him, He might arm him with the qualifications he had just described

Birla House, New Delhi, 5-11-'47
Harijan, 16-11-1947

204

SHERWANI'S MARTYRDOM

Gandhiji quoted from a note given to him by an eyewitness of the story of exemplary bravery .

"Mir Maqbool Sherwani was a young brave leader of the National Conference in Baramula. He was in the early thirties

"On learning that he was an important leader of the National Conference, the invaders tied him up to two posts in a place near the Nishat Talkies They beat him first and then asked him to repudiate the All Jammu and Kashmir National Conference and its leader Sher-e-Kashmir Sheikh Abdulla They asked him to swear allegiance to the so-called Azad Kashmir provisional government which had its headquarters in Palandari.

"Sherwani stoutly refused to repudiate his national organization and told the invaders to their face that the Sher-e-Kashmir was at the head of affairs now, that Indian Union troops had arrived and that the invaders would be driven out in a few days

"This enraged and frightened the invader gangs who riddled him with fourteen bullets They cut off his nose and disfigured his face and stuck a notice on his body with the words

'This is a traitor.
His name is Sherwani
This is the fate all traitors will get'

"But within 48 hours of this cold-blooded murder and sadistic terror Sherwani's prophecy came true and the invaders ran pell-mell out of Baramula, with Indian Union troops hot in pursuit"

This was a martyrdom, said Gandhiji, of which anyone, be he a Hindu, Sikh, Muslim or any other, would be proud

Harijan, 30-11-1947

205

A PSYCHOLOGICAL EXPLANATION

The following is from Mr. Richard B Gregg, whom many readers of the *Harijan* know as an American friend who used to live in Shantiniketan as also with me in Sabarmati years ago.

> "Though because of my ignorance I am hesitant, yet I venture to send you an idea that seems to me not only to explain with perhaps less moral blame a part of the recent communal violence in India but also to offer hope for the future
>
> 'It seems to me probable that much of this violence is an expression not so much of inter-communal suspicion and hatred, but rather, and more deeply and originally, of the long pent-up resentments of the masses because of their oppression The oppression was not only by foreign political rule but by foreign modern social, economic and financial ways which are contrary to the ancient habits of *dharma* which were a very part of the nature of the masses By foreign ways I mean such things as the English land-holding system, usurious money lending, heavy taxes payable not in kind but in money, and other interferences with long established village life common to all Indian communities.
>
> "Psychological studies have shown clearly that severe frustrations suffered during the childhood of an individual generate resentments which are suppressed and remain suppressed long after the person who caused the original frustration has died, but later some occasion pulls a trigger, as it were, and releases the pent-up energy of the old resentment which then pours forth in violence upon some perfectly innocent person This explains many crimes of violence, and perhaps some of the cruelties against the Jews in Europe In India the establishment of religious electorates created a channel into which it was easy for this energy to flow, but I believe the fearful energy of the explosion of wrath comes from the older cause I have mentioned Such an idea as this would help explain why in all countries all through history a major change of political power results in more or less violence and disorder The masses always suffer some oppression and, therefore, have resentments which flare up upon a shift of control or may be exploited by selfish leaders
>
> "If this surmise is true, it suggests that the suspicion and hatred of one community towards another is not so deep as now appears It also means that as soon as the masses can be guided back into their ancient ways of life with the chief

emphasis on religion and small organizations — village *panchayats* and communal family systems — the energy of the people will be turned from violence into creative channels. I would expect that *khadi* work among the refugees might help start such a diversion of energy into sound channels In such a development I see hope

"Forgive me if this seems to be presumptuous I write it only in the hope that an humble outsider, just because he is outside, may see a gleam of encouragement that is not so easy to see in the dust and distraction of the struggle Anyhow, I love you and India"

Though many psychologists have recommended a study of psychology, I am sorry, I have not been able, for want of time to study the subject Mr. Gregg's letter does not mend matters for me It does not fill me with any impelling enthusiasm for undertaking the study Mr. Gregg gives an explanation which mystifies the mind instead of clearing it. "Hope for the future" I have never lost and never will, because it is embedded in my undying faith in non-violence What has, however, clearly happened in my case is the discovery that in all probability there is a vital defect in my technique of the working of non-violence There was no real appreciation of non-violence in the thirty years' struggle against British *Raj*. Therefore, the peace, the masses maintained during that struggle of a generation with exemplary patience, had not come from within The pent-up fury found an outlet when British *Raj* was gone. It naturally vented itself in communal violence which was never fully absent and which was kept under suppression by the British bayonet. This explanation seems to me to be all-sufficing and convincing In it there is no room for failure of any hope. Failure of my technique of non-violence causes no loss of faith in non-violence itself On the contrary, that faith is, if possible, strengthened by the discovery of a possible flaw in the technique

New Delhi, 11-11-'47
Harijan, 23-11-1947

RELIGION ADMITS OF NO COERCION

Gandhiji said in his post-prayer speech that freedom, without equality for all irrespective of race or religion, was not worth having for the Congress In other words, the Congress and any government representative of the Congress must remain a purely democratic, popular body leaving every individual to follow that form of religion which best appealed to him without any interference from the State There was so much in common between people living in the same State under the same flag owing undivided allegiance to it There was so much in common between man and man that it was a marvel that there could be any quarrel on the ground of religion Any creed or dogma which coerced others into following one uniform practice was a religion only in name, for a religion worth the name did not admit of any coercion Anything that was done under coercion had only a short lease of life It was bound to die It must be a matter of pride to them whether they were four anna Congress members or not that they had in their midst an institution without a rival which disdained to become a theocratic State and which always believed and lived up to the belief that the State of their conception must be a secular, democratic State having perfect harmony between the different units composing the State When he, the speaker, thought of the plight of the Muslims in the Union, how in many places ordinary life had become difficult for them and how there was a continuing exodus of the Muslims from the Union, he wondered whether the people who were responsible for creating such a state of things could ever become a credit to the Congress He, therefore, hoped that during the year that had just commenced, the Hindus and the Sikhs would so behave as to enable every Muslim, whether a boy or a girl, to feel that he or she was as safe and free as the tallest Sikh or Hindu.

Harijan, 23-11-1947

207

DEATH — COURAGEOUS OR COWARDLY

A Bengali friend writes a long letter in Bengali on the exodus from East Pakistan Its purport is that though workers like him understand and appreciate my argument and distinction between death — courageous and cowardly — the common man detects in my statement a not too hidden advice in favour of migration "If death is to be the lot in any case, courage becomes of no count, for man lives but to escape death," he says

This argument seems to beg the question Man does not live but to escape death If he does so, he is advised not to do so He is advised to learn to love death as well as life, if not more so A hard saying, harder to act up to, one may say Every worthy act is difficult Ascent is always difficult Descent is easy and often slippery Life becomes livable only to the extent that death is treated as a friend, never as an enemy To conquer life's temptations, summon death to your aid In order to postpone death a coward surrenders honour, wife, daughter and all A courageous man prefers death to the surrender of self-respect When the time comes, as it conceivably can, I would not leave my advice to be inferred, but it will be given in precise language That today my advice might be followed only by one or none does not detract from its value. A beginning is always made by a few, even one

New Delhi, 23-11-'47
Harijan, 30-11-1947

208

NO LIMITATIONS

A correspondent says in substance:

> "Individual *ahimsa* I can understand. Corporate *ahimsa* between friends is also intelligible. But you talk of *ahimsa* towards avowed enemies. This is like a mirage. It will be a mercy if you give up this obstinacy of yours. If you do not, you will forfeit the esteem you enjoy. What is worse, you, being considered a *Mahatma*, mislead many credulous persons to their own and society's harm."

That non-violence which only an individual can use is not of much use in terms of society. Man is a social being. His accomplishments to be of use must be such as any person with sufficient diligence can attain. That which can be exercised only among friends is of value only as a spark of non-violence. It cannot merit the appellation of *ahimsa*. 'Enmity vanishes before *ahimsa*', is a great aphorism. It means that the greatest enmity requires an equal measure of *ahimsa* for its abatement. Cultivation of this virtue may need long practice, even extending to several births. It does not become useless on that account. Travelling along the route, the pilgrim will meet richer experiences from day to day so that he may have a glimpse of the beauty he is destined to see at the top. This will add to his zest. No one is entitled to infer from this that the path will be a continuous carpet of roses without thorns. A poet has sung that the way to reach God accrues only to the very brave, never to the faint-hearted. The atmosphere today is so much saturated with poison that one refuses to recollect the wisdom of the ancients and to perceive the varied little experiences of *ahimsa* in action. 'A bad turn is neutralized by a good', is a wise saying of daily experience in practice. Why can we not see that if the sum total of the world's activities was destructive, it would have come to an end long ago? Love, otherwise *ahimsa*, sustains this planet of ours.

This much must be admitted. The precious grace of life has to be strenuously cultivated, naturally so because it is uplifting. Descent is easy, not so ascent. A large majority of us being un-

disciplined, our daily experience is that of fighting or swearing at one another on the slightest pretext

This, the richest grace of *ahimsa* will descend easily upon the owner of hard discipline

New Delhi, 8-12-'47
Harijan, 14-12-1947

209

INDIA S HERITAGE

Gandhiji in his post-prayer address said that the Prime Minister of Burma had been to see him He was full of humility Gandhiji told him that though India was a great country geographically and its culture was ancient, today there was nothing for Burma to learn from India although India had given birth to Guru Nanak who taught love and tolerance for all The Sikhs were to be friends with the Hindus, the Muslims and everybody It was wrong to make a difference between the Sikhs and the Hindus Master Tara Singh had compared the Hindus and the Sikhs to the nail and the nailbed No one, he said, could separate the two Gandhiji was glad to hear it Who was Guru Nanak, if not a Hindu? The *Guru Granth* was full of the teachings of the *Vedas* Hinduism was like a mighty ocean which received and absorbed all religious truths It was a tragedy that India and the Hindus seemed to have forgotten their heritage They seemed to be engaged in fratricidal strife today He did not want Burma to learn strife from India They should forget the ugly present, which he hoped was temporary, and remember that India had won her freedom without bloodshed He had admitted that it was not non-violence of the brave that India had practised But, whatever it was, it had enabled a mighty nation of forty crores to shake off the foreign yoke without bloodshed It was the freedom of India that had brought freedom to Burma and Ceylon A nation that had won freedom without the force of arms should be able to keep it too without the force of arms This he said in spite of the fact that India had an army, a navy in the making and an air force and these were being developed still further He was convinced that unless India

developed her non-violent strength, she had gained nothing either for herself or for the world Militarization of India would mean her own destruction as well as of the whole world He reminded the Burmese friends that they had got their Buddhism too from India He had come in touch with their monks Let Burma take the best of Buddhism from India In his opinion the quality of the original had suffered from migration He wanted Burma and Ceylon to rise to their highest heights This they could do only by copying its best from India and omitting its obvious shortcomings

Birla House, New Delhi, 4-12-'47
Harijan, 14-12-1947

210

THE DOCTRINE OF MERGER

Merger, as used here, has no legal significance People of some States in the Deccan Union are reported to have expressed an intense desire for the extinction of their princely houses and their absorption in their provinces This has been described as merging in British India (as it was called during British rule), as distinguished from Princely India or States

In a society based on non-violence, there should be no impatient destruction compassed by man of another, for, every evil-doer unless he mends his ways, is bound to destroy himself Evil can never be self-existent Therefore, the Congress policy has always been to mend princely rule, not to end it, and to induce the princes to become trustees and servants in reality of their people In pursuance of that policy the Congress Government has tried and in the main succeeded in inducing the States to accede to the Union instead of planning the destruction of princely rule and absorption of their States as an integral part of the Union provinces concerned Therefore, merger can take place only under two conditions, viz if the misrule of a particular prince is self-evident and is irremediable, the people will have the right, as it will be their duty, to seek absorption or merger in their province The second condition would be when a prince and the people of his State both desire merger It is suggested

that any one State or its people, whether powerful or insignificant, should not seek merger unless all the States or the majority desire it I do not think so Misrule cannot wait to be ended before there is equal misrule in other States Nor can a prince, who does not wish for any princely power be expected or be made to wait till the other princes are ready Each case will have to be decided on its merits by the Central Government

New Delhi, 13-12-'47
Harijan, 21-12-1947

211

AN ALL-IN FAST

One cannot forget the moral indignation with which, talking about the accession of an Indian State, Gandhiji told a Muslim leader that if it involved the sacrifice of any moral principle he would not care if,— leave alone that State — the whole of the Princely order acceded to Pakistan in preference to the Indian Union

An India reduced in size but purged in spirit might still be the nursery of the non-violence of the brave and take up the moral leadership of the world, bringing a message of hope and deliverance to the oppressed and exploited races But an unwieldy, soulless India would merely be an imitation, and a third rate imitation at that, of the Western military States, utterly powerless to stand up against their onslaught He had no desire to outlive the India of his dreams

"We are steadily losing hold on Delhi," he remarked to another friend, expressing his concern about the communal situation in Delhi "If Delhi goes, India goes and with that the last hope of world peace" It was intolerable to him that a person like Dr Zakir Hussain, for instance, or for that matter Shaheed Suhrawardy should not be able to move about in Delhi as freely and with as much safety as himself When a deputation of the Muslims of Delhi waited upon him setting forth to him their grievances, he immediately arranged a meeting between them and important Cabinet mem-

bers in his presence, and later the police chief saw them and promised them the fullest redress But his agony continued

That did not mean that he was indifferent to the sufferings of the minority community in the other Dominion On the contrary, their sufferings only accentuated his impatience He would have liked to be able to go to their succour — in Sind, in the Western Punjab, in the N W F P But with what face, with what confidence could he go there when he could not guarantee full redress to the Delhi Muslims? He felt helpless and helplessness he has never put up with in all his life

And so from the depths of his anguish came his decision to fast Unlike some of his previous fasts, it is an all-in fast As he has already stated it came to him in a flash It left no room for argument, so much so that he gave no inkling of what was passing in his mind to Sardar Patel and Pandit Nehru who saw him only a couple of hours before the announcement of the fast yesterday

"I have a lot to say against your undertaking the present fast," wrote a correspondent in a note addressed to him on getting the news of his decision to fast, "but I have had no previous warning My main concern and my argument against your fast is that you have at last surrendered to impatience, whereas the mission which you have undertaken is essentially one of infinite patience You do not seem to have realized what a tremendous success you have achieved by your inexhaustible and patient labour It has already saved lakhs upon lakhs of lives and could save many more still But your patience seems to have suddenly snapped By dying you will not be able to realize what you would have realized by conserving your life I would therefore, beseech you to pay heed to my entreaty and give up your fast"

To this Gandhiji replied "I am not prepared to concede that my decision to undertake the fast was hasty It was quick no doubt The statement was of the nature of heartsearching and prayer Therefore, it cannot be dubbed as "hasty" in any sense of the term

"I did not need to hear any arguments as to the propriety of the fast The fact that I did listen to arguments only bespeaks my patience and humility .

"Your worry as well as your argument are of no use You are, of course, my friend and a high-minded friend at that Your concern is natural and I esteem it, but your argument only betrays impatience and superficial thinking I regard this step of mine as the last word on patience Would you regard patience that kills its very object, as patience or folly ?

"I cannot take credit for the results that have been achieved since my coming to Delhi It would be self-delusion on my part to do so Mere man cannot judge as to how many lives were really saved by my labours Only the Omniscient and All-Seeing God can do that Does it not betray sheer ignorance to attribute sudden loss of patience to one who has been as patience personified right from the beginning of September last ?

"It was only when in terms of human effort, I had exhausted all resources and realized my utter helplessness that I put my head on God's lap That is the inner meaning and significance of my fast. If you read and ponder in your mind the epic of *Gajendra Moksha*,* you might be able properly to appraise my step.

"The last sentence of your note is a charming token of your affection But your affection is rooted in ignorance or infatuation. Ignorance does not cease to be ignorance because of its repetition among persons, no matter how numerous they are

'So long as we hug life and death it is idle to claim that it must be preserved for a certain cause 'Strive while you live' is a beautiful saying, but there is a hiatus in it. Striving has to be in a spirit of detachment

"Now you will understand why I cannot accept your counsel God sent me the fast He alone will end it if and when He wills In the meantime it behoves us all to believe that whether He preserves my life or ends it, it is equally to the good and we should act accordingly Let our sole prayer be that God may vouchsafe me strength of spirit during the fast so that the temptation to live may not lead me into a hasty or premature termination of the fast"

On a previous occasion when the late Ali brothers had complained and asked him if it was not a breach of loyalty to

* The reference is to the story of an elephant, who when all support failed prayed to God and obtained help —Ed

his colleagues not to have consulted them before deciding to go on a twentyone days' fast, his reply was that it was not, for had not he and his colleagues pledged their loyalty to God? How could he be guilty of disloyalty to them while keeping his covenant with God? But both the Sardar and Pandit Nehru in the present case were far more understanding and full of sympathetic insight Neither they, nor the Maulana Saheb and other friends and colleagues who saw him later, tried to strive with him but set about to tackle the problem constructively

"Brave deeds and not vain laments — should be our motto," remarked Gandhiji to a sister who came to seek guidance Equally characteristic was his reply to a Sikh friend, who saw him soon after the commencement of the fast yesterday "My fast is against no one party, group or individual exclusively and yet it excludes nobody It is addressed to the conscience of all, even the majority community in the other Dominion If all or any one of the groups respond fully, I know the miracle will be achieved For instance, if the Sikhs respond to my appeal as one man, I shall be wholly satisfied I shall go and live in their midst in the Punjab for they are a brave people and I know they can set an example in non-violence of the brave which will serve as an object lesson to all the rest."

New Delhi, 14-1-'48
Harijan, 18-1-1948

212

TO THE PEOPLE OF GUJARAT

To

The Men and Women of Gujarat,

I am dictating this from my bed early on Wednesday morning It is the second day of the fast though twenty-four hours have not been completed since the fast commenced It is the last day of posting for this week's *Harijan* Hence, I have decided to address a few words in Gujarati to the peope of Gujarat

I do not regard this fast as an ordinary fast I have undertaken it after deep thought and yet it has sprung not from reasoning but God's will that rules men's reason It is addressed to no particular section or individual and yet it is addressed equally to all There is no trace of anger of any kind behind it nor the slightest tinge of impatience But behind it is the realization that there is a time for everything and an opportunity, once missed, never returns Therefore, the only thing that now remains is for every Indian to think as to what his or her duty in the present hour is Gujaratis are Indians So, whatever I write in Gujarati is addressed equally to all the people of India

Delhi is the Metropolis of India If, therefore, we really in our hearts do not subscribe to the two-nation theory, in other words, if we do not regard the Hindus and the Muslims as constituting two distinct nations, we shall have to admit that the picture that Delhi presents today is not what we have envisaged always of the capital of India Delhi is the Eternal City, as the ruins of its forerunners — Indraprastha and Hastinapur testify It is the heart of India Only a nit-wit can regard it as belonging to the Hindus or the Sikhs only It may sound harsh but it is the literal truth From Kanya Kumari to Kashmir and from Karachi to Dibrugarh in Assam, all Hindus, Muslims, Sikhs, Parsis, Christians and Jews who people this vast subcontinent and have adopted it as their dear motherland, have an

equal right to it No one has a right to say that it belongs to the majority community only and that the minority community can only remain there as the underdog Whoever serves it with the purest devotion must have the first claim Therefore, anyone who wants to drive out of Delhi all Mussalmans as such must be set down as its enemy No 1 and therefore, enemy No 1 of India We are rushing towards that catastrophe It is the bounden duty of every son and daughter of India to take his or her full share in averting it

What should we do then? If we would see our dream of *Panchayat Raj*, i e true democracy realized, we would regard the humblest and lowest Indian as being equally the ruler of India with the tallest in the land This presupposes that all are pure or will become pure if they are not And purity must go hand-in-hand with wisdom No one would then harbour any distinction between community and community, caste and outcaste Everybody would regard all as equal with oneself and hold them together in the silken net of love No one would regard another as untouchable We would hold as equal the toiling labourer and the rich capitalist Everybody would know how to earn an honest living by the sweat of one's brow and make no distinction between intellectual and physical labour To hasten this consummation, we would voluntarily turn ourselves into scavengers No one who has wisdom will ever touch opium, liquor or any intoxicants Everybody would observe *swadeshi* as the rule of life and regard every woman, not being his wife, as his mother, sister or daughter according to her age, never lust after her in his heart He would be ready to lay down his life when occasion demands it, never want to take another's life If he is a Sikh in terms of the commandment of the Gurus he would have the heroic courage to stand single-handed and alone—without yielding an inch of ground—against the "one lakh and a quarter" enjoined by them Needless to say, such a son of India will not want to be told what his duty in the present hour is

New Delhi,
Makar Sankranti, 14-1-'48
Harijan, 18-1-1948

Yours etc,
M K GANDHI

(From the Gujarati)

213

MY FAST AS A PROTEST

One fasts for health's sake under laws governing health, fasts as a penance for a wrong done and felt as such In these fasts, the fasting one need not believe in *ahimsa*. There is, however, a fast which a votary of non-violence sometimes feels impelled to undertake by way of protest against some wrong done by society, and this he does when he as a votary of *ahimsa* has no other remedy left Such an occasion has come my way

When on September 9th, I returned to Delhi from Calcutta, It was to proceed to the West Punjab But that was not be Gay Delhi looked a city of the dead As I alighted from the train I observed gloom on every face I saw Even the Sardar, whom humour and the joy that humour gives never desert, was no exception this time The cause of it I did not know He was on the platform to receive me He lost no time in giving me the sad news of the disturbances that had taken place in the Metropolis of the Union At once I saw that I had to be in Delhi and 'do or die' There is apparent calm brought about by prompt military and police action But there is storm within the breast It may burst forth any day This I count as no fulfilment of the vow to 'do' which alone can keep me from death, the incomparable friend I yearn for heart friendship between the Hindus, the Sikhs and the Muslims It subsisted between them the other day Today it is non-existent It is a state that no Indian patriot worthy of the name can contemplate with equanimity Though the Voice within has been beckoning for a long time, I have been shutting my ears to It, lest it may be the voice of Satan otherwise called my weakness I never like to feel resourceless, a Satyagrahi never should Fasting is his last resort in the place of the sword — his or other's I have no answer to return to the Muslim friends who see me from day to day as to what they shoud do My impotence has been gnawing at me of late It will go immediately the fast is undertaken. I have been brooding over it for the last three days The final conclusion has flashed upon me and it makes me

happy. No man, if he is pure, has anything more precious to give than his life. I hope and pray that I have that purity in me to justify the step.

Worthy of Blessing

I ask you all to bless the effort and to pray for me and with me. The fast begins from the first meal tomorrow. The period is indefinite and I may drink water with or without salts and sour limes. It will end when and if I am satisfied that there is a reunion of hearts of all the communities brought about without any outside pressure, but from an awakened sense of duty. The reward will be the regaining of India's dwindling prestige and her fast fading sovereignty over the heart of Asia and therethrough the world. I flatter myself with the belief that the loss of her soul by India will mean the loss of the hope of the aching, storm-tossed and hungry world. Let no friend, or foe if there be one, be angry with me. There are friends who do not believe in the method of the fast for the reclamation of the human mind. They will bear with me and extend to me the same liberty of action that they claim for themselves. With God as my supreme and sole counsellor, I felt that I must take the decision without any other adviser. If I have made a mistake and discover it, I shall have no hesitation in proclaiming it from the housetop and retracing my faulty step. There is little chance of my making such a discovery. If there is clear indication, as I claim there is, of the Inner Voice, it will not be gainsaid. I plead for all absence of argument and inevitable endorsement of the step. If the whole of India responds or at least Delhi does, the fast might be soon ended.

No Softness

But whether it ends soon or late or never, let there be no softness in dealing with what may be termed as a crisis. Critics have regarded some of my previous fasts as coercive and held that on merits the verdict would have gone against my stand but for the pressure exercised by the fasts. What value can an adverse verdict have when the purpose is demonstrably sound? A pure fast, like duty, is its own reward. I do not embark upon it for the sake of the result it may bring. I do so because I must. Hence, I urge everybody dispassionately to

examine the purpose and let me die, if I must, in peace which I hope is ensured Death for me would be a glorious deliverance rather than that I should be a helpless witness of the destruction of India, Hinduism, Sikhism and Islam That destruction is certain if Pakistan ensures no equality of status and security of life and property for all professing the various faiths of the world, and if India copies her Only then Islam dies in the two Indias, not in the world But Hinduism and Sikhism have no world outside India Those who differ from me will be honoured by me for their resistance however implacable Let my fast quicken conscience, not deaden it Just contemplate the rot that has set in in beloved India and you will rejoice to think that there is an humble son of hers who is strong enough and possibly pure enough to take the happy step If he is neither, he is a burden on earth The sooner he disappears and clears the Indian atmosphere of the burden the better for him and all concerned

I would beg of all friends not to rush to Birla House nor try to dissuade me or be anxious for me I am in God's hands. Rather, they should turn the searchlights inwards, for this is essentially a testing time for all of us Those who remain at their post of duty and perform it diligently and well, now more so than hitherto, will help me and the cause in every way The fast is a process of self-purification

Birla House, New Delhi, 12-1-'48
Harijan, 18-1-1948

214

BLAME NOBODY FOR FAST

Gandhiji attended the prayers as usual this evening A question was asked as to whom he considered blameworthy for the fast He blamed no individual or community He did believe, however, that if the Hindus and Sikhs insisted on turning out the Muslims from Delhi, they would be betraying India and their own faiths And that hurt him

Some people had taunted him that he had sympathy for the Muslims only and that he had undertaken the fast for their sake They were right But all his life he had stood, as everyone should stand, for minorities or those in need Pakistan had resulted in depriving the Muslims of the Union of pride and self-confidence It hurt him to think that this was so It weakened a State which kept or allowed any class of people who had lost self-confidence. His fast was against the Muslims too in the sense that it should enable them to stand up to their Hindu and Sikh brethren In terms of the fast Muslim friends had to work no less than the Hindus and the Sikhs Thus they were in the habit of singling out Pandit Nehru and him for praise and by contrast blaming Sardar Patel Some twitted the Sardar for his remark that Muslim Leaguers could not become friends overnight They shoud not blame him, as he did not, for the remark Most Hindus held this view What he wanted his Muslim League friends to do was to live down the Sardar's remark and by their conduct, not declarations, disprove it Let it be remembered that Panditji though he had not the same method and manner as the Sardar claimed him as his valued colleague If the Sardar was an enemy of the Muslims, Panditji could ask him to retire The Sardar had not ceased to be his (Gandhiji's) esteemed friend though he was no longer his "yes man" as he was once popularly and affectionately nicknamed His friends should also know the character of the Cabinet It was responsible for every official act of every member of the Cabinet He expected a thorough cleansing of hearts That being assured, there would be mutual respect and trust

They were all of the Union and by right it beonged to them He could not break the fast for less They must dethrone Satan from their hearts and enthrone God.

Duty of the Hindus and Sikhs

What was the duty of the Hindus and Sikhs? They had just heard Gurudev's favourite song, "If no one responds to your call, walk alone, walk alone," He liked it very much and it was sung almost every day during his walking pilgrimage in Noakhali He would repeat with his last breath that the Hindus and the Sikhs should be brave enough to say that whatever happened in Pakistan, they would not raise their little finger against a single Muslim in the Union They would never again indulge in cowardly acts, however great the provocation

Delhi on Trial

If Delhi became peaceful in the real sense of the term, he would then break the fast Delhi was the capital of India. The ruin or downfall of Delhi he would regard as the ruin of India and Pakistan. He wanted Delhi to be safe for all Muslims, even for one like Shaheed Suhrawardy, who was looked upon as the chief of *goondas* Let all proved *goondas* be rounded up But he (Gandhiji) was witness to the fact that Shaheedsaheb had worked for peace in Calcutta in all sincerity He had pulled out the Muslims from Hindu houses which they had forcibly occupied He was living with him He would willingly join the prayer but Gandhiji would not expose him to the risk of being insulted He wanted him, as he did every Muslim to feel as safe in Delhi as the tallest of them

He did not mind how long it took for real peace to be established Whether it took one day or one month, it was immaterial No one should say or do anything to lure him into giving up his fast prematurely. The object should not be to save his life It should be to save India and her honour He would feel happy and proud when he saw that India's place was not lowered as it had become by the recent happenings which he had no wish to recall

Birla House, New Delhi, 13-1-'48
Harijan, 18-1-1948

215

MY DREAM

Gandhiji had dictated a message to be read out to the prayer audience this afternoon, but later on he decided to go to the meeting and address the gathering He said that he had come in spite of the doctor's objections But from the next day he would probably not be able to walk to the prayer ground He had the strength that day and he used it though the doctors had advised him to conserve it He was in God's hands If He wanted him to live he would not die He did not want his faith in God to weaken

Spate of Messages

Continuing his speech without any reference to the dictated notes, Gandhiji said, "Cablegrams and telegrams are pouring in from far and near Some, in my opinion weighty and congratulating me on my resolve and entrusting me to God Some others in friendliest terms appealing to me to abandon the fast and assuring me that they would befriend their neighbours irrespective of caste and creed and try to carry out the spirit of my message that accompanied the fast I am asking Shri Pyarelalji to give a few selections, from the abundance which is hourly increasing, to the Press They are from Hindus, Muslims, Sikhs and others If those who have given me assurances—some of the senders represent associations and groups—carry them out faithfully, they will certainly have contributed largely to the hastening of the stoppage of the fast, Shrimati Mridulaben asks the following question from Lahore, where she is in touch with the Pakistan authorities as also the common Muslims "There are friends here who are very anxious about Gandhiji's health and are eager to know what Gandhiji would like them to do on this side and what he expects from his Muslim friends in Pakistan, including those who are in political parties and in Governmental service" It is pleasing to think that there are Muslim friends who are anxious about my health and more so to know that they are eager for the information that Shrimati Mridulaben seeks To all senders of

the messages and to the seekers in Lahore, I wish to say that the fast is a process of self-purification and is intended to invite all who are in sympathy with the mission of the fast themselves to take part in the process of self-purification, whether they are in the service of the Pakistan Government or whether they are members of political parties or others

A Word to Pakistan

"You have heard of the cowardly attack on the Sikhs in Karachi Innocent men, women and children were butchered, looted and others have had to flee Now comes the news of an attack on a refugee train at Gujarat The train was carrying non-Muslim refugees from the Frontier Province Large numbers are reported to have been killed and women abducted It distresses me How long can the Union put up with such things? How long can I bank upon the patience of the Hindus and Sikhs in spite of my fast? Pakistan has to put a stop to this state of affairs. They must purify their hearts and pledge themselves that they will not rest till the Hindus and Sikhs can return and live in safety in Pakistan.

"Supposing that there is a wave of self-purification throughout India, Pakistan will become *pak*. It will be a State in which past wrongs will have been forgotten, past distinctions will have been buried, the least and the smallest in Pakistan will command the same respect and the same protection of life and property that the Qaid-e-Azam enjoys Such a Pakistan can never die Then and not till then shall I repent that I ever called it a sin, as I am afraid I must hold today, it is I want to live to see that Pakistan not on paper, not in the orations of Pakistani orators, but in the daily life of every Pakistani Muslim Then the inhabitants of the Union will forget that there ever was any enmity between them, and if I am not mistaken, the Union will proudly copy Pakistan, and if I am alive I shall ask her to excel Pakistan in well-doing. The fast is a bid for nothing less Be it said to the shame of those of us who are in the Union that we have readily copied Pakistan's bad manners

My Dream

"Before I ever knew anything of politics in my early youth, I dreamt the dream of communal unity of the heart. I shall

jump in the evening of my life, like a child, to feel that the dream has been realized in this life The wish for living the full span of life portrayed by the seers of old and which they permit us to set down at 125 years, will then revive Who would not risk sacrificing his life for the realization of such a dream? Then we shall have real Swaraj Then though legally and geographically we may still be two States, in daily life no one will think that we were separate States The vista before me seems to me to be, as it must be to you, too glorious to be true Yet like a child in a famous picture, drawn by a famous painter, I shall not be happy till I have got it I live and want to live for no lesser goal Let the seekers from Pakistan help me to come as near the goal as it is humanly possible. A goal ceases to be one, when it is reached The nearest approach is always possible What I have said holds good irrespective of whether others do it or not It is open to every individual to purify himself or herself so as to render him or her fit for that land of promise I remember to have read, I forget whether in the Delhi Fort or the Agra Fort, when I visited them in 1896, a verse on one of the gates, which when translated reads 'If there is paradise on earth, it is here, it is here, it is here' That Fort with all its magnificence at its best, was no paradise in my estimation But I shoud love to see that verse with justice inscribed on the gates of Pakistan at all the entrances In such paradise, whether it is in the Union or in Pakistan, there will be neither paupers nor beggars, nor high nor low, neither millionaire employers nor half-starved employees, nor intoxicating drinks or drugs There will be the same respect for women as vouchsafed to men and the chastity and purity of men and women will be jealously guarded Where every woman except one's wife, will be treated by men of all religions, as mother, sister or daughter according to her age Where there will be no untouchability and where there will be equal respect for all faiths. They will be all proudly, joyously and voluntarily bread labourers I hope everyone who listens to me or reads these lines will forgive me if stretched on my bed and basking in the sun, inhaling life-giving sunshine, I allow myself to indulge in this ecstasy Let this assure the doubters and sceptics that I have not the slightest desire that the fast should be ended as quickly as possible It matters little if the ecstatic wishes of a fool like me are never

realized and the fast is never broken I am content to wait as long as it may be necessary, but it will hurt me to think that people have acted merely in order to save me I claim that God has inspired this fast and it will be broken only when and if he wishes it No human agency has ever been known to thwart, nor will it ever thwart Divine Will"

Birla House, New Delhi, 14-1-'48
Harijan, 18-1-1948

216

FROM THE POST-PRAYER SPEECHES—I

Gandhiji was too weak to walk to the prayer ground this evening In his spoken message at the radio microphone by his bed he appealed to the people not to bother as to what the others were doing Each one of them should turn the searchlight inwards and purify his or her heart as far as possible He was convinced that if the people sufficiently purified themselves they would help India and help themselves and also shorten the period of his fast None should be anxious for him They should think out how best they could improve themselves and work for the good of the country All must die some day No one could escape death Then why be afraid of it ? In fact death was a friend which brought deliverance from sufferings

Killing by Inches

In his dictated message Gandhiji said

"Newspaper men sent me a message two hours after my prayer speech of last evening, asking to see me, as they had some doubts to be cleared After a heavy day's work I felt disinclined out of some exhaustion to see them for discussion I, therefore, told Shri Pyarelalji to inform them to excuse me and further tell them that they should put down their questions in writing and send them to me next morning They did so This is the first question

'Why have you undertaken the fast when there was no disturbance of any kind in any part of the Indian Dominion ?'

"What was it if it was not a disturbing disturbance for a crowd to make an organized and a determined effort to take forcible possession of Muslim houses? The disturbance was such that the Police had reluctantly to resort to tear gas and even to a little shooting if only overhead, before the crowd dispersed. It would have been foolish for me to wait till the last Muslim had been turned out of Delhi by subtle undemonstrative methods, which I would describe as killing by inches"

The Sardar

"The second question is

'You have stated that you could not give any reply to the Muslims who came to you with their tale of fear and insecurity and who have complained that Sardar Patel, who is in charge of Home Affairs, is anti-Muslim You have also stated that Sardar Patel is no longer a "yes-man" as he used to be These factors create the impression that the fast is more intended to bring about a change of heart in the Sardar and thereby amounts to a condemnation of the policy of the Home Ministry It would be helpful if you can clear the position'

"As to this I feel that my reply was precise, not admitting of more interpretation than one The suggested interpretation never crossed my mind If I had known that my statement could bear any such interpretation, I should have dispelled the doubt in anticipation Many Muslim friends had complained of the Sardar's so-called anti-Muslim attitude I had, with a degree of suppressed pain, listened to them without giving any explanation The fast freed me from this self-imposed restraint and I was able to assure the critic that they were wrong in isolating him from Pandit Jawaharlal Nehru and me, whom they gratuitously raise to the sky. This isolation did them no good The Sardar had a bluntness of speech which sometimes unintentionally hurt, though his heart was expansive enough to accommodate all Thus my statement was meant deliberately to free a life-long and faithful comrade from any unworthy reproach Lest my hearers should go away with the idea that my compliment carried the meaning that I could treat the Sardar as my 'yes-man' as he was affectionately described, I balanced the compliment by adding the proviso that he was too masterful

to be anybody's 'yes-man' When he was my 'yes-man', he permitted himself to be so named because whatever I said instinctively appealed to him Great as he was in his own field and a very able administrator, he was humble enough to begin his political education under me because as he explained to me he could not take to the politics in vogue at the time I began my public career in India When power descended on him, he saw that he could no longer successfully apply the method of non-violence which he used to wield with signal success I have made the discovery that what I and the people with me had termed non-violence was not the genuine article but a weak copy known as passive resistance. Naturally, passive resistance can avail nothing to a ruler Imagine a weak ruler being able to represent any people He would only degrade his masters who, for the time being, had placed themselves under his trust I know that the Sardar could never betray or degrade his trust.

Object of the Fast

"I wonder if with a knowledge of this background to my statement, anybody would dare call my fast a condemnation of the policy of the Home Ministry If there is any such person, I can only tell him that he would degrade and hurt himself, never the Sardar or me Have I not before now said emphatically that no outside power can really degrade a man? He only can degrade himself Though I know that this sentence is irrelevant here, it is such a truth that it bears repetition on all occasions My fast, as I have stated in plain language, is undoubtedly on behalf of the Muslim minority in the Union, and therefore it is necessarily against the Hindus and the Sikhs of the Union and the Muslims of Pakistan It is also on behalf of the minorities in Pakistan as in the case of the Muslim minority in the Union This is a clumsy compression of the idea I have already explained. I cannot expect the fast taken by a very imperfect and weak mortal, as I truly confess I am, to have the potency to make its proteges proof against all danger. The fast is a process of self-purification for all It would be wrong to make any insinuation against the purity of the step"

No Room for Distortion

"The third question is

'Your fast has been undertaken on the eve of the meeting of the United Nations Security Council and soon after the Karachi riots and the Gujarat massacre What publicity the latter incidents received in the foreign Press is not known But undoubtedly, your fast has overshadowed all other incidents And Pakistan representatives would not be worth their reputation if they do not seize the opportunity to declare that the Mahatma has undertaken the fast to bring sanity among his Hindu followers, who have been making the life of the Muslims in India impossible Truth takes a long time to reach the four corners of the globe But in the meantime your fast may have the unfortunate effect of prejudicing our case in the eyes of the United Nations'

"This question does not demand or need any elaborate answer From all I have known of the powers and peoples outside India, I make bold to say that the fast has created only a healthy impression Outsiders who are able to take an impartial and unbiassed view of what is happening in India cannot distort the purpose of the fast, which is meant to bring sanity to all those who inhabit both the Union and Pakistan It is impossible to save the Muslims in the Union if the Muslim majority in Pakistan do not behave as decent men and women. Happily for the cause, the Muslims of Pakistan, as Shrimati Mridulaben's enquiry of yesterday made clear, have become wide awake to a sense of their duty The United Nations know that my fast aids them to come to a right decision and to give the right guidance to the newly made two Dominions"

Birla House, New Delhi, 15-1-'48

Grace of God

Before Gandhiji's dictated message was read out to the prayer audience, he addressed them on the microphone from his bed He said that he had not expected that he would be able to speak to them that day but they would be pleased to learn that if anything, his voice was less feeble that day than the day before He could not explain it except for the grace

of God. He had never felt so well on the fourth day of the fast in the past. If all of them continued to participate in the process of self-purification, he would probably have the strength to speak to them till the end. He was in no hurry to break the fast. Hurry would spoil matters. He did not want anyone to come and tell him that things had been set right while the process was incomplete. If Delhi became peaceful in the real sense of the term, it would have its repercussions all over the country. He had no wish to live unless peace reigned in the two Dominions.

Unmixed Goodwill

In his message to the prayer gathering Gandhiji said:

"It is never a light matter for any responsible Cabinet to alter a deliberate settled policy. Yet our Cabinet, responsible in every sense of the term, has with equal deliberation yet promptness unsettled their settled fact!* They deserve the warmest thanks from the whole country, from Kashmir to Cape Camorin and from Karachi to the Assam frontier. And I know that all the nations of the earth will proclaim this gesture as one which only a large-hearted Cabinet like ours could rise to. This is no policy of appeasement of the Muslims. This is a policy, if you like, of self-appeasement. No Cabinet worthy of being representative of a large mass of mankind can afford to take any step merely because it is likely to win the hasty applause of an unthinking public. In the midst of insanity, should not our best representatives retain sanity and bravely prevent a wreck of the ship of State under their management? What then was the actuating motive? It was my fast. It changed the whole outlook. Without the fast they could not go beyond what the law permitted and required them to do. But the present gesture on the part of the Government of India is one of unmixed goodwill. It has put the Pakistan Government on its honour. It ought to lead to an honourable settlement not only of the Kashmir question, but of all the differences between the two Dominions. Friendship should replace the present enmity. Demands of equity supersede the letter of law. There is a homely maxim of law which has been in practice for

* The Government of India had decided to implement the financial agreement between India and Pakistan, only after the Kashmir dispute had ended. This annoyed the Government of Pakistan greatly, which wanted the agreement put into effect at once. When Gandhiji began his fast to bring about communal unity, the Government of India changed its earlier policy, as a gesture of goodwill to Pakistan, and decided to implement the agreement immediately in accordance with Pakistan's demand. —Ed.

centuries in England that when common law seems to fail, equity comes to the rescue Not long ago there were even separate courts for the administration of law and of equity Considered in this setting, there is no room for questioning the utter justice of this act of the Union Government If we want a precedent, there is a striking one at our disposal in the form of what is popularly known as the MacDonald Award That Award was really the unanimous judgment of not only the members of the British Cabinet, but also of the majority of the members of the Second Round Table Conference It was undone overnight as a result of the fast undertaken in Yeravda prison

Fittest Answers to Fast

"I have been asked to end the fast because of this great act of the Union Government I wish I could persuade myself to do so I know that the medical friends who, of their own volition and at considerable sacrifice, meticulously examine me from day to day are getting more and more anxious as the fast is prolonged Because of defective kidney function they dread not so much my instantaneous collapse as permanent after-effects of any further prolongation I did not embark upon the fast after consultation with medical men, be they however able My sole guide, even dictator, was God, the Infallible and Omnipotent If He has any further use for this frail body of mine, He will keep it in spite of the prognostications of medical men and women I am in His hands Therefore, I hope you will believe me when I say that I dread neither death nor permanent injury, even if I survive But I do feel that this warning of medical friends should, if the country has any use for me, hurry the people up to close their ranks And like brave men and women, that we ought to be under hard-earned freedom, we should trust even those whom we may suspect as our enemies Brave people disdain distrust The letter of my vow will be satisfied if the Hindus, Muslims and Sikhs of Delhi bring about a union, which not even a conflagration around them in all the other parts of India or Pakistan will be strong enough to break Happily, the people in both the Dominions seem to have instinctively realized that the fittest answer to the fast should be a complete friendship between the two Dominions, such that members of all communities should be able to go to either

Dominion without the slightest fear of molestation. Self-purification demands nothing less It will be wrong for the rest of the two Dominions to put a heavy strain upon Delhi After all, the inhabitants of the Union are not superhuman In the name of the people, our Government have taken a liberal step without counting the cost What will be Pakistan's counter gesture ? The ways are many if there is the will Is it there ?"

Birla House, New Delhi, 16-1-'48

Cleansing of Hearts

"I repeat what I have said before — nothing is to be done under pressure of the fast I have observed before that things done under pressure of a fast have been undone after the fast is over If any such thing happens, it would be a tragedy of the highest degree There is no occasion for it at any time. What a spiritual fast does expect is cleansing of the heart The cleansing, if it is honest, does not cease to be when the cause which induced it ceases The cleansing of a wall seen in the form of a whitewash does not cease when the dear one has come and gone This material cleansing is bound to require renovation after some time Cleansing of the heart once achieved only dies with one s death Apart from this legitimate and laudable pressure, the fast has no other function which can be described as proper.

A Word to Pakistan

"The number of telegrams coming from Rajas, Maharajas and the laity continues to increase There are telegrams from Pakistan too They are good so far as they go But as a friend and well wisher I must say to all those who reside in Pakistan and mould its fortune that they will fail to make Pakistan permanent if their conscience is not quickened and if they do not admit the wrongs for which Pakistan is responsible

"This does not mean that I do not wish a voluntary reunion, but I wish to remove and resist the idea that Pakistan should be re-united by force of arms I hope that this will not be misunderstood as a note of discord, whilst I am lying on what is truly a deathbed I hope all Pakistanis will realize that I would be untrue to them, and to myself if, out of weakness and for fear of hurting their feelings, I failed to convey to them what I truthfully feel If I am wrong in my estimate, I should be

so told and if I am convinced, I promise that I shall retract what I have said here. So far as I know, the point is not open to question

Happy in Fasting

"My fast should not be considered a political move in any sense of the term It is in obedience to the peremptory call of conscience and duty It comes out of felt agony. I call to witness all my numerous Muslim friends in Delhi Their representatives meet me almost every day to report the day's events Neither the Rajas and Maharajas nor the Hindus and Sikhs or any others would serve themselves or India as a whole, if at this, what is to me a sacred juncture, they mislead me with a view to terminating my fast Let them know that I feel never so happy as when I am fasting for the spirit This fast has brought me higher happiness than hitherto No one need disturb this happy state, unless he can honestly claim that in his journey he has turned deliberately from Satan towards God"

Birla House, New Delhi, 17-1-'48
Harijan, 25-1-1948

217

FROM THE POST-PRAYER SPEECHES—II

The Task Ahead

Speaking on the microphone from his bed at 5-20 p m on Sunday, Gandhiji said that he had earlier dictated a message for the prayer audience which would be read out to them

It was a happy day for him and for all of them He was glad that due to their kindness he could break his fast on the auspicious day of Guru Govind Singh's birthday anniversary He could never forget the kindness which was daily being showered on him by the inhabitants of Delhi, the Pakistan sufferers and the Government and administrative authorities, since the fast began He had experienced the same love at Calcutta He could not forget the help that he had received from Shaheed Saheb in restoring peace in Calcutta But for him, he (Gandhiji) would not have stopped in Calcutta People had

many suspicions about Shaheed Saheb's *bona fides* still. They should forget the past and learn the duty of having friendly feelings towards all and being inimical to none. The crores of Muslims were not all angels nor were all the Hindus and the Sikhs. There were good and bad specimens among all communities. Would they be less than friendly towards the so-called criminal tribes amongst them?

Muslims were a numerous community scattered all over the world. There was no reason why they, who stood for friendship with the whole world, should not be friends with the Muslims. He was not a fortune-teller, but God had given him intellect and understanding enough to know that if for some reason or other they could not be friends with the Muslims of the Union, the Muslims of the whole world would be antagonized and they would lose India. Then India including both the Dominions, would once again pass under foreign domination.

He had received the good wishes and blessings of numberless men and women. He had been assured that the Hindus, Muslims, Sikhs, Parsis, Jews, Christians and others who lived in Delhi would all live together as brothers. They would never quarrel among themselves again and in this assurance sufferers from Pakistan had also joined. This was no small matter. If the auspicious beginning was continued, it was bound to ensure peace in India and thence in Pakistan. This was not one man's work, but all, young and old, men and women, had to co-operate sincerely in the effort. If this was not the meaning of the breaking of his fast, he had not done well in breaking it. Then they would have fulfilled the letter and killed the spirit. What was possible in Delhi was possible in the rest of the Union and if communal peace reigned in the whole of the Union, Pakistan was bound to follow suit. They should shed all fear. Every Muslim child should feel safe among the Hindus and Sikhs. Up till now our face was turned towards Satan, now he hoped it would be turned Godward. If they did so, the Union would lead the way to world peace. He did not wish to live for any other purpose. Mere lip-service was no good. They must install God in their hearts. God was one, whatever the name given to Him. The realization of this truth should end all enmity and intolerance.

Let the Hindus decide once for all that they would not quarrel He would advise the Hindus and the Sikhs to read the *Quran* as they read the *Gita* and the *Granth Saheb* To the Muslims he would say that they should read the *Gita* and the *Granth Saheb* with the same reverence with which they read the *Quran* They should understand the meaning of what they read and have equal regard for all religions This was his life-long practice and ideal He claimed to be a *sanatani* Hindu, though he was not an idolator in the accepted sense But he could not despise those who worshipped idols The idol worshipper saw God in the stone image God was omnipresent If it was wrong to seek God in a stone how was it right to seek Him in a book called the *Gita*, the *Granth Saheb* or the *Quran*? Was not that also idol worship? By cultivating tolerance and respect they would be able to learn from all Then they would forget the communal differences and live together in peace and amity The disgraceful incidents where men and women were thrown out of moving trains, would then cease to occur People would freely and fearlessly move about in the Union He would never be at peace with himself till Pakistan was just as safe for the Hindus and Sikhs and the Pakistan sufferers could return to their homes with honour and dignity, and the Muslims to theirs in the Union

Breaking of the Fast

In his written message Gandhiji said

"I embarked on the fast in the name of Truth whose familiar name is God Without living Truth God is nowhere In the name of God we have indulged in lies, massacres of people without caring whether they were innocent or guilty, men or women, children or infants We have indulged in abductions, forcible conversions and we have done all this shamelessly I am not aware if anybody has done these things in the name of Truth With that same name on my lips I have broken the fast The agony of our people was unbearable Rashtrapati Dr Rajendra Babu brought over hundred people representing the Hindus, Muslims, Sikhs, representatives of the Hindu Mahasabha, the Rashtriya Swayam Sevak Sangh and representatives of refugees from the Punjab, the Frontier Province and Sind In this very representative company were present Zahid

Hussain Saheb, the High Commissioner for Pakistan, the Chief Commissioner of Delhi and the Deputy Commissioner, General Shah Nawazkhan, representing the Azad Hind Fauj (I N A). Pandit Nehru, sitting like a statue, was of course there, as also Maulana Saheb. Dr. Rajendra Babu read a document in Hindustani signed by these representatives, asking me not to put any further strain on them and end the agony by breaking the fast. Telegrams after telegrams have come from Pakistan and the Indian Union urging me to do the same. I could not resist the counsel of all these friends I could not disbelieve their pledge that come what may, there would be complete friendship between the Hindus, Muslims, Sikhs, Christians, Parsis and Jews, a friendship not to be broken. To break that friendship would be to break the nation.

Spirit of the Vow

"As I write, comforting telegrams are deluging me How I wish that God will keep me fit enough and sane enough to render the service of humanity that lies in front of me! If the solemn pledge made today is fulfilled, I assure you that it will revive with redoubled force my intense wish and prayer before God that I should be enabled to live the full span of life doing service of humanity till the last moment. That span according to learned opinion is at least one hundred and twentyfive years, some say one hundred and thirtythree. The letter of my vow has been fulfilled early beyond expectation, through the great goodwill of all the citizens of Delhi, including the Hindu Mahasabha leaders and the Rashtriya Sevak Sangh. The result could not be otherwise when I find that thousands of refugees and others have been fasting since yesterday. Signed assurances of heart friendship have been pouring in upon me from thousands Telegraphic blessings have come from all over the world Can there be a better sign of God's hand in this act of mine? But beyond the letter of fulfilment of my solemn vow lies its spirit without which the letter killeth. The spirit of the vow is sincere friendship between the Hindus, Muslims and Sikhs of the Union and a similar friendship in Pakistan. If the first is assured, the second must follow, as sure as day follows night If there is darkness in the Union, it would be folly to expect light in Pakistan But if the night in the Union is dispelled

beyond the shadow of a doubt, it cannot be otherwise in Pakistan, nor are signs wanting in that direction. Numerous messages have come from Pakistan, not one of dissent. May God, who is Truth, guide us as He has visibly guided us during all these six days"

Birla House, New Delhi, 18-1-'48

Congratulations and Concern

"My thanks go out to the senders of numerous wires from all over the world from Indians and non-Indians expressing their goodwill and anxiety. These show the correctness of the step I had taken Not that I had the slightest doubt about it I had none about this as I never have had about the reality that God Is and that His most graphic name is Truth. Now has begun a stream of wires of congratulations heaving relief These friends will forgive me for not sending personal acknowledgments It is physically impossible to do so I hope too that no such acknowledgment is expected by the senders I feel constrained to single out two — one from the Premier of the West Punjab and the other from the Nawab Saheb of Bhopal They are today labouring under grave distrust Let the extracted passages speak for themselves If the senders were not sincere, they would have spared themselves and me on the solemn occasion that the fast was.

Here is the one from the Nawab Saheb of Bhopal·

> "Your appeal for a reunion of hearts of all communities cannot fail to find support from all people of goodwill in both Dominions as will also any appeal for an understanding and friendly relations between India and Pakistan. We in Bhopal have been able happily to face our troubles during the past year in a spirit of concord, amity and goodwill between all communities with the result that not a single untoward incident has occurred to mar the peace of the State We assure you that we shall strive to further this friendly spirit with all our strength at our command"

I give the full text of the wire from the Premier of the West Punjab

> "The West Punjab Ministry expresses deep admiration and sincere appreciation for your great gesture for the furtherance of a noble cause This Ministry has always stood for the principle of doing everything possible to protect the lives, honour

and property of the minorities, and giving them equal rights of citizenship We assure you that this Ministry will follow this policy with redoubled vigour We are anxious to see an immediate improvement in the situation throughout the Indian subcontinent which may enable you to break your fast No efforts will be spared in this province to help in saving a life as precious as yours"

A Warning

"In this age of senseless imitation my warning is that it would be foolish for anybody to embark on such a fast expecting identical results in an identically short space of time If anyone does, he will face severe disappointment and will discredit what is a hoary and infallible institution Two severe qualifications are necessary — a living faith in God and a felt peremptory call from Him I am tempted to add a third, but it is superfluous A peremptory call from God within presupposes the rightness, timeliness and propriety of the cause for which the fast is taken It follows that a long previous preparation is required Let no one, therefore, lightly embark on such a fast

Task before Them

"The citizens of Delhi and the refugees have a heavy task in front of them Let them seek occasions for meeting together as often as possible in perfect mutual trust It was a soul stirring sight for me to meet Muslim sisters in large numbers yesterday Girls in my party told me that the sisters were sitting in Birla House uncertain whether they could come to me They were in purdah, most of them I asked them to be brought in and they came I suggested that they would not have the purdah before their fathers or brothers Why should they think me less? And off went the purdah without exception This is not the first time that the purdah has disappeared before me I mention the incident to illustrate what genuine love, as I claim mine to be, is able to do Hindu and Sikh women should go to the Muslim sisters and establish friendship with them They should invite them on ceremonial occasions and be invited Muslim girls and boys should be attracted to common schools, not communal They should mix in sports Not only should there be no boycott of Muslims but they should be induced to resume their previous occupations Delhi is poorer for the disappearance of the exquisite workmanship of the Muslims.

It is a miserable and miserly thing for the Hindus and the Sikhs to wish to take away from them their means of livelihood On the one hand there should be no monopoly and on the other there should be no attempt at deprivation In this great country of ours there is room for all The Peace Committees that have been formed must not go to sleep as many committees unfortunately do in all countries The condition of keeping me in your midst is that all the communities in India live at peace with one another, not by force of arms but that of love than which there is no better cement to be found in the world"

Birla House, New Delhi, 19-1-'48
Harijan, 25-1-1948

218

THE BREAKING OF THE FAST

The feverish anxiety into which the whole city of Delhi and the country at large had been plunged was terminated when Gandhiji broke his fast at Birla House, New Delhi, today at 12-45 p m with due solemnity Earlier in the day, representatives of all the important groups and organizations in the city, including representatives of the refugees and from the three worst affected parts of the city, namely, Karol Bagh, Sabzi Mandi and Paharganj, had assembled under the chairmanship of Dr Rajendra Prasad at the latter's residence and put their signatures to a seven-point declaration covering the conditions laid down by Gandhiji for breaking his fast The document was recorded in both the Persian and Devanagari scripts at Gandhiji's special insistence At the meeting were also present Maulana Azad Saheb and Major General Shah Nawazkhan Delhi Muslims were represented by Maulanas Hifzur Rahman and Ahmed Saeed of the Jamiat-ul-Ulema and Maulana Habib-ur-Rahman Goswami Shri Ganesh Datt, Shri Basantlal and Shri Narain Das represented the Rashtriya Sevak Sangh and the Hindu Mahasabha There were too the representatives of the various Sikh organizations They then all repaired (numbering over 100) to Birla House, where they assembled in Gandhiji's room, to request him to break the fast Maulana Saheb and Pandit Jawaharlalji had arrived there already and

Janab Zahid Hussain Saheb, the Pakistan's High Commissioner, came in a little later.

Dr Rajendra Prasad opened the proceedings by narrating to Gandhiji how they had all assembled on the previous night at the former's residence and after full discussion decided to sign the declaration then and there But as representatives of some organizations were not present in that meeting, they felt that they should not go to Gandhiji immediately with the signed document but wait till the remaining signatures were obtained They had accordingly met again in the morning when all those who were absent during the previous night's meeting came and gave their signatures It was found in the course of the morning meeting, Dr. Rajendra Prasad reported, that even those who had some lingering doubts on the previous night were now confident that they could ask Gandhiji with a full sense of their responsibility to break the fast As the President of the Congress, Dr Rajendra Prasad said that he had signed the document in view of the guarantee which they had all jointly and severally given Janab Khurshid, the Chief Commissioner, and Shri Randhawa, Deputy Commissioner of Delhi, who were present, had signed the document on behalf of the administration It had been decided to set up a number of committees to implement the pledge. Dr. Rajendra Prasad hoped that Gandhiji would now terminate his fast

Shri Deshabandhu Gupta, speaking next, described some touching scenes of fraternization between the Hindus and Muslims which he had witnessed when a procession of about 150 Muslims was taken out that morning in Sabzi Mandi and was received with ovation and offered fruit and refreshments by the Hindu inhabitants of that locality

Gandhiji replying said that what they had told him had touched him deeply. They had given him all that he had asked for But if their words meant that they held themselves responsible for communal peace in Delhi only and what happened in other places was no concern of theirs, then their guarantee was nothing worth and he would feel and they too would one day realize that it was a great blunder on his part to have given up his fast As an illustration he referred to the report of the happenings in Allahabad that had appeared in the Press. Repre-

sentatives of both the R S S and the Hindu Mahasabha were among the signatories to the seven-point declaration If they were sincere in their professions, surely, they could not be indifferent to outbreaks of madness in places other than Delhi It would be a fraud upon God if they did so Delhi was the heart of the Indian Dominion and they (the representatives gathered there) were the cream of Delhi. If they could not make the whole of India realize that the Hindus, Sikhs and Muslims were all brothers, it would bode ill for the future of both the Dominions What would happen to Hindustan if they quarrelled with one another ?

Here Gandhiji broke down owing to overwhelming feeling as he explained on resumption. What he had said was repeated aloud by one or two friends sitting near him

Resuming his remarks after the interval, Gandhiji again appealed to them to search well their hearts so that they might not take any step which they would have to regret afterwards The occasion demanded of them bravery of the highest order They should clearly realize the implications of their pledge It was nothing less than that what they had achieved in Delhi had to be realized in the whole of India That did not mean that the ideal could be realized in a day. But it did mean that whilst in the past they had turned their face towards Satan, they had now resolved to turn it Godward If, in their hearts, they did not accept what he had placed before them or if they had made up their minds that it was beyond them, they should plainly tell him so

There could be nothing more wrong on their part, continued Gandhiji, than to hold that Hindustan belonged only to the Hindus and the Muslims could have no place in it, or on the reverse that Pakistan belonged to the Muslims only and the Hindus and Sikhs could have no place in it He wanted the refugees to understand that if they set things right in Delhi, as he had suggested, that was the only way to set things right in Pakistan too He reminded them that he was not a man to shirk another fast, should he afterwards discover that he had been deceived or had deceived himself into breaking it prematurely They should, therefore, act with circumspection and cent per cent sincerity He invited the representatives of Mussalmans

who had been meeting him frequently to tell him whether they were satisfied that the conditions in Delhi were now such as to warrant breaking the fast on his part

Addressing next a few words to the Muslims especially, he asked if there was any ground for the suspicion that the Muslims did not regard India as their country They lived in it in the midst of the Hindus because they could not help it, but one day they had to part company He hoped that that suspicion was baseless Similarly, if there was a Hindu who regarded the Muslims as *yavanas* or *asuras* incapable of realizing God, he was guilty of the worst blasphemy, which could possibly have no room in the covenant which they had signed

He then referred to a book which a Muslim friend had lovingly presented him at Patna In that book the writer had propounded that according to the *Quran, kafirs* (i e Hindus) were worse than poisonous reptiles and fit only to be exterminated Not only was there no sin in using every conceivable variety of force or fraud to compass that end, it was meritorious in the eyes of God He was sure that no God-fearing Muslims could subscribe to or even secretly sympathize with that creed Some dubbed Hindus as image worshippers, proceeded Gandhiji But it was not the stone image which they worshipped but the God within, without Whom not a particle of matter existed If a devotee saw God in an image, it was not a thing for anyone to cavil at Granting that his belief was a delusion, it deluded nobody but himself It required magnanimity and breadth of outlook to understand and appreciate the religious convictions and practices of others It was the same thing if they considered the *Quran* or the *Granth Saheb* as God.

Concluding, Gandhiji remarked that if they fully accepted the implications of their pledge, they should release him from Delhi so that he might be free to go to Pakistan In his absence they should welcome such refugees from Pakistan as might want to return to their homes The latter were none too happy over there just as the Hindus in the Indian Dominion were none too happy to lose large numbers of Muslim artisans and craftsmen It was not easy to reproduce in a day traditional skill that had been acquired through generations It was a loss on both sides which no sane people would like willingly to perpetuate

Gandhiji ended by once more asking them to turn the searchlight inward and not to deceive themselves or others by asking him to give up his fast, if what he had said did not find a responsive echo in their hearts.

Maulana Saheb Abdul Kalam Azad, being next asked to say something, remarked that so far as the guarantee of communal peace was concerned it could be given only by the representatives of the citizens of Delhi He, however, did not want to leave unchallenged the Muslim friends' observation to which Gandhiji had referred, as it referred to the teachings of Islam He had no hesitation in characterizing it as a libel on Islam He quoted a verse from the *Quran* which was to the effect that all mankind are brethren, irrespective of their race or religion The remarks to which Gandhiji had referred were abhorrent to the teachings of Islam They were only indicative of the insanity that had of late, seized some sections of the people

He was followed by Maulana Hifzur-Rahman Saheb, who categorically repudiated the allegation that his co-religionists did not regard India as their country which claimed their full and undivided allegiance, but only as a place where they were forced to live by expediency and by the compulsion of circumstances Their thirty years' unbroken record of service of the nationalist cause gave the lie to that charge They regarded it as an insult to their nationalism to be asked to reiterate their loyalty to India He recalled how during the recent disturbances at one stage their Congress friends and colleagues had offered to provide a safe asylum to them outside Delhi as they were not sure that they would be able to give them adequate protection in Delhi But they had declined that offer and had preferred to stay in and go about the city without any police escort, trusting to God alone Speaking of the Jamiat, he could say that its members were staunch followers of Maulana Azad Saheb and the Congress Those who had left for Pakistan had done so out of fear for their lives and worse They all wanted to remain in India as citizens of India with self-respect and honour, in their own right, not on the mercy or sufferance of anybody He asserted that if India were to be attacked they would all defend it to the last man as their country They had

plainly said on more than one occasion that those who were not prepared to do so should leave India and go to Pakistan

Describing next the change that had come over the city as a result of Gandhiji's fast, he said that they regarded it as a happy augury and a presage of things to come. They were satisfied that the tide had definitely turned and was now fast flowing in the direction of communal harmony and peace when previously bitterness and hatred ran riot Now that the administration had underwritten the assurance given by the representatives of the people, they were satisfied that they would be implemented, though it might take some time He, therefore, joined Dr. Rajendra Prasad in his appeal that Gandhiji should break the fast

After Shri Ganesh Datt had on behalf of the Hindu Mahasabha and the R S S reiterated that appeal Janab Zahid Hussain Saheb addressed a few words to Gandhiji He was there, he said, to convey to Gandhiji how deeply concerned the people in Pakistan were about him and how they were daily inundating him wtih anxious inquiries about his (Gandhiji's) health It was their heart's desire that circumstances might soon prevail which would enable him to break the fast If there was anything that he could fittingly do towards that end he was ready and so were the people of Pakistan

Janab Zahid Hussain Saheb was followed by Janab Khurshid and Shri Randhawa who on behalf of the administration reiterated the assurance that all the conditions mentioned in the citizens' pledge would be duly implemented, and no effort would be spared to restore to the Indian capital its glorious old tradition of communal harmony and peace.

Sardar Harbans Singh endorsed on behalf of the Sikhs what his predecessors had said Gandhiji then expressed his readiness to break the fast, which was done with the usual ceremony of prayer at which texts from the Japanese, Muslim and Parsi scriptures were recited followed by the *mantra*

> "Lead me from untruth to truth,
> From darkness to light,
> From death to immortality" ..

A Hindustani hymn and the Christian hymn "When I survey the wondrous cross", were then sung by the girl inmates of the

ashram followed by *Ramadhun* A glass of fruit juice was handed by Maulana Saheb and Gandhiji broke the fast after fruit was distributed to and partaken by all present

New Delhi, 18-1-'48
Harijan, 25-1-1948

219

FROM THE LAST POST-PRAYER SPEECHES

A Plea for Sanity

Gandhiji said that Delhi had done a great thing and he hoped that the signatories to the Peace Pledge had given their signature with God in the form of Truth as their witness He had heard that there was a repudiation of the pledge on behalf of an official of the Hindu Mahasabha He was sorry If the inhabitants of Delhi and the refugees in the capital would remain steadfast and not be swayed by happenings elsewhere, they would save India and also Pakistan Delhi was an ancient city If Delhi acted truthfully and non-violently, the effects of its action would be felt all the world over If they would carefully read the Sardar's speech at Bombay, they would realize that there was no difference in outlook between the Sardar, Panditji and himself They were all working for the same end although they might express it differently. None of them was the enemy of the Mussalmans Enmity towards the Muslims amounted to enmity towards India The least he expected them to do was not to take the law into their own hands and commit inhuman acts That would mean the end of society They were bound as respectable citizens to leave justice in the hands of their chosen Government They and their newspapers were never tired of condemning in unmeasured terms the acts of those Americans as barbarous who lynched Negroes Did similar acts on their part become less barbarous ?

Gandhiji next referred to his statement that he might now proceed to Pakistan But that, he said, could only happen if the Pakistan Government were convinced that he (Gandhiji) was a man of peace and a friend of the Muslims and would,

therefore, like him to go to Pakistan He would, however, in any case, have to wait till the doctors declared him fit to undertake the journey

Prime Minister's Noble Gesture

Referring to the sufferings of the Hindu and Sikh refugees Gandhiji said that Pandit Jawaharlal Nehru was doing all that was possible in order to bring them speedy relief His heart bled for them He was a man who would offer his own bedding to one in distress and pace up and down the whole night in order to keep himself warm His house was full Being the Prime Minister of India he had to accommodate guests, both Indians and foreigners Still he had expressed a wish to offer one or two rooms in his house to lodge refugees He expected other Ministers, officials and men of means to do likewise He (Gandhiji) was convinced that this act of self-sacrifice on the part of India's foremost leader would be appreciated all the world over and put a speedy end to the sufferings of the homeless refugees It should gladden their hearts to note that this beautiful land of theirs had produced such great men, endowed with such a wonderful spirit of service and self-sacrifice Jawahar was a real *jawahar* (gem) and there were others, only not so lustrous perhaps. If their leaders were doing all this for the people, it behoved them not to hurt their Muslim brethren To hurt them was to hurt their leaders

The Kashmir Issue

Gandhiji referred to a telegram that he had received from Lahore The sender had signed himself as President, Kashmir Freedom League, and had written as follows ·

> "Highly appreciate your magnanimous gesture for Hindu-Muslim unity Kashmir is the root cause of the present tension and a stumbling block in way of any rapprochement Must receive top priority if peace actually desired Withdrawal of aggressive Indian troops from Kashmir and handing it over to whomever it rightfully belongs is the only satisfactory solution of the problem"

It hurt him If the Kashmir issue was not settled, would the Muslims continue to look upon the Hindus and Sikhs as their enemies and *vice versa*? The army of the Indian Union had not entered Kashmir on their own So far as he was aware,

they had gone there at the call of the ruler of the State and the leader of the Kashmir Muslims, Sheikh Abdullah If the invaders, tribesmen and others would withdraw, and the issue was left to the rebels in Poonch and the rest of Kashmir, and they did not secure any aid from outside, it would be time to ask the Indian Union to withdraw its troops The suggestion that Kashmir should go to whomsoever it rightfully belonged was perfectly true And, who were the rightful owners of Kashmir? The Maharaja was there and the Indian Government could not ignore him Ultimately it was for the people of Kashmir to decide their own fate Hence the idea of referendum

Gwalior Muslims

Next Gandhiji read out a telegram that some Gwalior Muslim had sent to him from Ratlam It said

> "We Muslim inhabitants Jahangirpur, District Ujjain, Gwalior, request your honour that on 15th and 16th instant our village was surrounded by Hindu party who beat us seriously Several injured, one died Our crops and houses destroyed Officer of State not taking any action We are in danger Kindly arrange urgently"

If the report was correct, it was a matter of sorrow for them All breach of communal peace in any corner of India should make them and their Government hang their heads in shame.

Birla House, New Delhi, 20-1-1948

Bomb at the Prayer

Speaking after prayers on Wednesday evening, Gandhiji referred to the previous day's bomb explosion in the Birla House compound He had been receiving anxious enquiries and praise for being unruffled at the accident He thought that it was military practice and, therefore, nothing to worry about He had not realized till after the prayers that it was a bomb explosion and that the bomb was meant against him God only knew how he would have behaved in front of a bomb aimed at him and exploding Therefore, he deserved no praise He would deserve a certificate only if he fell as a result of such an explosion and yet retained a smile on his face and no malice against the doer. What he wanted to say was that no one

should look down upon the misguided youth who had thrown the bomb He probably looked upon Gandhiji as an enemy of Hinduism After all, had not the *Gita* said that whenever there was an evil-minded person damaging religion, God sent some one to put an end to his life? That celebrated verse had a special meaning The youth should realize that those who differed from him were not necessarily evil The evil had no life apart from the toleration of good people. No one should believe that he or she was so perfect that he or she was sent by God to punish evil-doers, as the accused seemed to flatter himself he was

He (Gandhiji) had heard that the youth had without permission occupied a *masjid* for lack of other accommodation and now that the police were getting all mosques evacuated, he resented the act It was a wrong thing on his part to have occupied the *masjid* in the first place and it was doubly wrong to defy the authorities, who asked him to vacate it

Ill Serving Hinduism

To those who were at the back of the youth, he would appeal to desist from such activity That was not the way to save Hinduism Hinduism could be saved only by Gandhiji's method. Gandhiji had practised Hinduism from early childhood His nurse had taught him to invoke Rama when he feared evil spirits. Later on he had come in contact with Christians, Muslims and others and, after making a fair study of other religions, had stuck to Hinduism He was as firm in his faith today as in his early childhood He believed God would make him an instrument of saving the religion that he loved, cherished and practised In any case, one had to have constant practice and acquaintance with the fundamentals of religion before being qualified for becoming God's instrument.

Pity the Bomb Thrower

Continuing Gandhiji said that some Sikh friends came and said that he (Gandhiji) should not think that the Sikhs had anything to do with the deed He knew that the youth was not a Sikh But what did it matter whether he was a Sikh or a Hindu or a Muslim? He wished well to all perpetrators He had told the Inspector General of Police also, not to harass him

in any way They should try to win him over and convert him to right thinking and doing He hoped that the youth and his guides would realize their error For, it was a wrong done to Hinduism and the country At the same time Gandhiji warned his hearers against being angry with the accused. He did not know that he was doing anything wrong They should pity him. If they harboured resentment against Gandhiji's fast and had still pledged themselves to maintain peace in order to save an old servant of the nation, the guilt was theirs, not that of the young man who had thrown the bomb If, on the other hand, they had signed the Peace Pledge whole-heartedly, persons like the young man were ultimately bound to come to their way of thinking

Gandhiji said that he expected the audience to go on with the prayers in spite of bomb explosions or a shower of bullets He was glad to learn that a poor unlettered woman was the cause of the arrest of the miscreant If the heart was sound, if there was right thought, lack of letters was not of any consequence He congratulated the unlettered sister on her simple bravery

Bahawalpur and Sind

Next he referred to a note from the Bahawalpur sufferers He had not forgotten them Even that very day he had received a telegram from the Nawabsaheb of Bahawalpur saying that he was doing everything possible for the welfare of the non-Muslims in his State He (Gandhiji) was pursuing the matter in his own way

Gandhiji narrated a telegram that he had received from the Sindhi Sikh refugees at Bombay They said that 15,000 Sikhs scattered about in Sind were in danger of extermination Their life, religion and culture were in danger Arrangements should be made for their speedy evacuation Gandhiji could never tolerate the extermination of the Sikhs and would do for them all that was possible for one man to do Pandit Jawaharlal Nehru's Government was also fully alive to their responsibility He called upon the Sind Government and the Pakistan Government to reassure the Sikh residents there that they would protect them with their own lives If they could not guarantee their protection, they should gather them in one place and make

arrangements for their speedy and safe evacuation The Sikhs were a brave community They should know that everyone's honour and religion were safe only in one's own hands No one else could rob one of these Parsi friends of his had gone to Sind that day.

A Misleading Analogy

Gandhiji then referred to a letter written to him during his fast The writer had said that while Gandhiji was in jail in 1942, the country had somewhat taken to violence If Gandhiji died of the fast, there would be such a violent upsurge in the country that it would stagger humanity Therefore, the writer had argued that for the sake of humanity he should give up his fast Gandhiji said that while it was true that the people had resorted to violence when he was locked up in jail, he did not think that his death under a fast should have the feared result But he had rehearsed before embarking on the fast the possibility of a wide fratricide The Yadavas had destroyed each other before Lord Krishna's death But he (Gandhiji) was too insignificant a mortal, to produce such an effect However, if the people had become indolent and vicious like the Yadavas and God saw that there was no way out but extermination, he might make even an ordinary person like him, the instrument of such a catastrophe Having left himself in God's hands, he worried no more about the consequences What, however, he saw during the fast nerved him to hope that India had no such self-destruction in store for her

Lastly, he expressed satisfaction at the way the Muslims were freely moving about in Delhi He wanted them to continue the process of self-purification and convert their hearts into temples of the living God of Truth

Birla House, New Delhi, 21-1-1948

For the first time after the fast Gandhiji was able to walk to the prayer ground this evening He said in his post-prayer speech that he was slowly gaining strength and God willing hoped to return to his normal health before long

Poverty No Shame

A difficulty to which his attention was drawn was that while the Congress had been in the wilderness it had set before the

people the ideal of service, self-denial and simplicity In those days it was difficult to collect even a lakh of rupees Today, the Congress Government was in charge of crores of rupees and could raise as much as it liked Were they to spend it as if there was no change from foreign rule to indigenous rule? Some people seemed to think that India's leaders and ambassadors must live and spend money in a style befitting their independent status and vie with independent America and England in stylishness They thought that such expenditure was necessary in order to uphold India's prestige in foreign countries Gandhiji did not think so There was no merit in hiding our poverty. India's status in the world depended upon her moral supremacy which her passive resistance had brought her In this she had no rival as yet, for the other nations, great or small, were proud of their armaments and military valour That was their capital India possessed only her moral capital, which increased with the spending On any other condition the Congress claim to revolutionize values, when they came into power, would be forfeited People criticized the Ministers for accepting high salaries and not bringing the artificial British standard down to the natural Indian standard These critics knew nothing of the private life of their Ministers But the fashion was for Congressmen and others to expect high emoluments wholly out of keeping with what one was making out of office One who managed to live on Rs 150 per month would not hesitate to demand and expect Rs 500 Such persons felt that they would not be appreciated unless they demanded high salaries and lived in the old Civil Service style and dressed up as such That was not the way to serve India They should not forget that a man's value did not depend upon the amount of money that he earned The process of self-purification, which they all must share, demanded right thought and action

Birla House, New Delhi, 22-1-'48

Netaji's Birthday

Today being the anniversary of Subhasbabu's birthday Gandhiji referred to it in his post-prayer speech He said that he generally did not remember such dates, nor did he attach much value to dates of birth and death He did not know whe-

ther it was right or wrong for him to be so indifferent. But he was just reminded of the day and he was glad that there was special reason to take note of Subhasbabu's birthday in spite of the fact that the deceased patriot had believed in violence, while he (Gandhiji) believed in non-violence But he would not forget at this time that it was Subhasbabu who knew no provincialism nor communal differences He had in his brave army men and women drawn from all over India without distinction, and evoked affection and loyalty which very few have been able to evoke A lawyer friend asked him for a good definition of Hinduism Though he was a *sanatani* Hindu, he was unable to define Hinduism. Gandhiji replied that he had forgotten his law for years Nor was he learned in the science of religion But as a lay man he could say that Hinduism regarded all religions as worthy of respect Subhasbabu was, in his opinion, such a Hindu. In memory of that great patriot, they should cleanse their hearts of all communal bitterness

A Plea for Caution

Proceeding Gandhiji referred to what he had said about communal trouble in a Gwalior village He had been investigating the matter and had just received a telegram from one who had personally visited the village in question, saying that the information conveyed to him regarding looting, arson and killing of the Muslims in the village of Jehangirpur was quite wrong. It was true that there was a personal private quarrel which could not be stretched into a communal question And in no case was there arson or loss of life Gandhiji said that the telegram gladdened him He advised his Muslim friends to be most careful about sending complaints They should meticulously avoid all exaggeration. The golden rule in life was to exaggerate one's own faults and belittle those of others. That was the only way to self-purification Those who indulged in exaggeration would discredit their community

How to Deal with Traitors

Gandhiji had received a telegram from Meerut It said that they had no ill feelings against the Nationalist Muslims, but they did not believe that those League Muslims who, until yesterday, had been collecting arms and even now intended to help Pakis-

tan, could ever be loyal to the Union He (Gandhiji) would have to repent if he put his trust in them They also said that religion and politics were quite separate and non-violence could never work in politics.

It was rather late in the day to tell him, he said, that non-violence could not work in politics In politics they could not begin with distrust. Those in charge of the Government were men of great courage and self-sacrifice They would deal with traitors when the occasion came Traitors might be found in any community and not only among the Muslims They had decided to live with the Muslims as brothers and he wanted them to stick to their resolve All Leaguers were not bad They should report against those who indulged in questionable activities and let the Government deal with them as severely as it liked They must on no account take the law into their own hands That would be barbarous.

Birla House, New Delhi, 23-1-'48

Exchange of Prisoners — Abductees

Gandhiji then read from a letter received by him complaining that while the inter-Dominion agreement for the restoration of abducted women prisoners was duly honoured in the earlier stages, it was not being implemented now He was informed that the West Punjab Government had demanded as a condition precedent that the States should also fall in line Gandhiji had no objection to such a wish, but if it was a fresh condition, it was not proper Friendship demanded that all prisoners and women should be returned to either Dominion without regard to their number The number of abducted women kept in the West Punjab might be larger, but so long as there was one such sister in the East Punjab, it would be sinful to withhold her from her kith and kin Why should there be a competition in wrong behaviour ? Gandhiji suggested that there should be complete forgetting of the past if there was a thorough inward cleansing He had noticed with much pain that each Dominion accused the other of bad faith If they were to give a good account of themselves, this thing had to stop.

Birla House, New Delhi, 24-1-'48

All Quiet in Delhi

Gandhiji proceeded to say that assurances were daily pouring in that all was well with Delhi and that there was nothing to worry so far as the communal situation in the city was concerned It gladdened his heart to be told by his Hindu and Muslim friends that a reunion of hearts was in the course of being established, and that the people were waking up to the truth that it would not be possible for them to pursue their normal avocation if they continued quarrelling among themselves. Having regard to the improved situation he suggested that they might go a step further and that each Hindu and Sikh should make it a point to bring with him at least one Muslim to the prayer gathering

Urs at Mehrauli

Gandhiji next referred to the annual celebration of the *urs* at Bakhtiar Chishti's *dargah* at Mehrauli which was to commence from the next day During the riots the *dargah* had been damaged by miscreants and some of the stone lattice work was removed Efforts had been made during the last few days to effect the repairs so far as it was possible. Previously, both Mussalmans and Hindus used to visit it and take part in the *urs* If the Hindus could still go there in the same spirit of peace and devotion, it would be a great thing He hoped that such Muslims as might want to take part in it would be assured the completest security and safety from insult or molestation and that too with the minimum assistance of the police He would rather that they should all constitute themselves into police for the purpose The eyes of the whole world were on them, continued Gandhiji. Telegrams were pouring in from all quarters of the globe—from China, from Africa, from Europe, and from America expressing deep appreciation and admiration of what they had done in Delhi He hoped that they would all so act as to come up to the expectations that had been aroused The transfer of power on the 15th of August as a result of their passive resistance struggle was a unique event in the history of the world But then they fell from grace, and Hindus and Muslims and Sikhs behaved towards one another like barbarians It was, however, he hoped, only a temporary distemper Their hearts were sound. The fast seemed to have served to throw

he distemper He hoped that the cure would be permanent out the possibility of a relapse

ıla House, New Delhi, 25-1-'48

Independence Day

This day, 26th January, is Independence Day. This obser-ʼe was quite appropriate when we were fighting for inde-lence we had not seen nor handled Now! We have handled ıd we seem to be disillusioned At least I am, even if you not.

What are we celebrating today? Surely not our disillu-ment. We are entitled to celebrate the hope that the worst ver and that we are on the road to showing the lowliest of villager that it means his freedom from serfdom, and that he ɔ longer a serf born to serve the cities and towns of India but he is destined to exploit the city dwellers for the advertise-ıt of the finished fruits of well thought out labours, that he ıe salt of the Indian earth, that it means also equality of all ses and creeds, never the domination and superiority of the or community over a minor, however insignificant it may be ıumber or influence Let us not defer the hope and make heart sick Yet what are the strikes and a variety of law-ness but a deferring of the hope? These are symptoms of sickness and weakness Let labour realize its dignity and ngth Capital has neither dignity nor strength compared to ɔur These the man in the street also has In a well-order-democratic society there is no room, no occasion for lawless-s or strikes In such a society there are ample lawful means vindicating justice. Violence, veiled or unveiled, must be oo Strikes in Cawnpore, coal mines or elsewhere mean ma-ıal loss to the whole society not excluding the strikers them-ves I need not be reminded that this declamation does not well in the mouth of one like me who has been responsible so many successful strikes If there be such critics they ght not to forget that then there was neither independence the kind of legislation we have now I wonder if we can re-in free from the fever of power politics or the bid for power ıch afflicts the political world, the East and the West Before ving this topic of the day, let us permit ourselves to hope that

though geographically and politically India is divided into two, at heart we shall ever be friends and brothers helping and respecting one another and be one for the outside world

Birla House, New Delhi, 26-1-'48

Harijan, 1-2-1948

Urs at Mehrauli

Gandhiji described his morning visit to the *Dargah Sharif* at Mehrauli The *urs* had attracted a large concourse of Muslims and what gladdened Gandhiji was to find an equal number of Hindus and Sikhs Due to some wild and misleading rumours, however, the attendance of Muslims was thinner than in the previous years. It was a matter of shame that man should have to be afraid of man Gandhiji was also distressed to see the costly marble trellis damaged It was no answer to say that similar or worse things had happened in Pakistan Had we fallen so low as to stoop to such acts of vandalism ? Granting that such incidents had occurred on a larger scale in Pakistan, it would be improper to institute comparisons in evil doing. Even if the whole world did wrong, should we do likewise ? If today Gandhiji took to evil courses, would it not distress them ? For him it would be worse than death Similarly, they had reason to feel ashamed at the damage done to the *Dargah* The friend in charge had related to the audience the history of the shrine and Gandhiji felt that it behoved them all to show to such a holy place the veneration due to it

More Murders in N.W.F P.

Gandhiji then referred to the news of one hundred and thirty innocent Hindus and Sikhs having been killed at the Para-chinar refugee camp in Peshawar by raiders from tribal areas Anger at such events would be understandable but nevertheless wrong Gandhiji had warned the congregation at the fair that if there was any secret wish for retaliation, it would be a breach of the solemn pact entered into in their name It was up to the Dominion Governments to take appropriate action in such matters, but so far as the public was concerned, they should remain unmoved

Mirpur Victims

Finally, Gandhiji spoke of the plight of the men and women carried away by the raiders in Mirpur — a district of Kashmir.

The captives included young girls who were molested by the raiders and many of whom were reported to have been removed to Pakistan There should be some code of decency even for raiders and abductions could have no place therein He appealed to the Pakistan authorities to right the obvious wrong assuming that a correct version was given to him Pandit Jawaharlalji himself felt sore at heart and the Union Government was doing what was possible. He knew from his study of Islam that it did not countenance such acts Government machinery moved slow Dictates of humanity brooked no delay

Birla House, New Delhi, 27-1-'48

Satyagraha in South Africa

Gandhiji referred to the Satyagraha launched by the Indian community in South Africa Indians in South Africa were not permitted free entry into the various provinces. In defence of their honour as men and women, the Satyagrahis had marched to Volkurst and then motored to Johannesburg where they held a meeting This was a courageous step and if the people as a whole became Satyagrahis in the right spirit, victory was sure to crown their efforts In the question of the march the Government had shown a degree of tolerance and not effected any arrests But with the progress of the movement, it was feared that arrests would follow So long, however, as the movement was conducted peacefully, there was no reason for the Government to resort to persecution Why should Whites consider it *infra dig* to talk matters over with non-Whites ? Gandhiji suggested that the authorities should contact the Satyagraha leaders and satisfy their reasonable demands Today, India and Pakistan, just become new Dominions, were entitled to expect friendly treatment from sister Dominions of the Commonwealth. But if the South African Government still treated Indians as inferiors on the score of colour, he had no hesitation in declaring that they would be putting themselves in the wrong It was unthinkable that Dominions should quarrel among themselves

Birla House, New Delhi, 28-1-'48

Their Servant

Gandhiji next spoke of a deputation of about forty refugees from Bannu, who had called on him in the afternoon. Poor

men, they were in an afflicted state and he prized their *darshan*. As he had other engagements, they were good enough at his request to have their statements recorded by Shri Brijkrishna. One of them, however, exclaimed that they owed their miseries to him and angrily asked him to leave them alone and retire to the Himalayas. Gandhiji asked him at whose bidding he should go. Some were annoyed and a few went to the length of abusing him, while many eulogized his efforts. The only course, therefore, open to him was to follow the dictates of God who spoke to men in the inmost chamber of the heart. There were women too in the company. He regarded them as his brothers or sisters. God was our one true friend. We were entirely in His hands. He would not care to go and enjoy the peace of the mountains but would be content with what peace he could extract from the surrounding turmoil. He, therefore, preferred to stay in their midst, adding that if they all went to the Himalayas, he might follow them as their servant.

Bread Labour

Proceeding Gandhiji referred to the complaints brought to him that the refugees, though provided with food, shelter and clothing, were averse to any work. If a man was in distress, the key to his happiness lay in labour. God did not create man to eat, drink and make merry. The *Gita* taught that one should perform *yagna* (bread labour) and partake of the fruits of that labour. Millionaires who ate without work were parasites. Even they should eat by the sweat of their brow or should go without food. The only permissible exception was the disabled for whom society provided. There was a variety of work for the refugees to do, such as maintaining sanitation including cleaning of latrines, spinning and other crafts. They should learn to make the best of the situation in which they found themselves.

Kisans

Gandhiji then spoke about peasants. If he had his say, our Governor-General and our Premier would be drawn from the *kisans*. In his childhood he had learnt from school books that the *kisans* were heirs to the kingdom of the earth. This applied to those who laboured on the land and ate from what they pro-

duced. Such *kisans* to be worthy of high offices might be illiterate provided they had robust common sense, great personal bravery, unimpeachable integrity and patriotism above suspicion As real producers of wealth, they were verily the masters while we had enslaved them It had been suggested to Gandhiji that the higher secretariat posts should also be manned by *kisans* He would endorse this suggestion provided they were suitable and had knowledge of the work expected of them When *kisans* of this type were forthcoming, he would publicly ask Ministers and others to make room for them

Birla House, New Delhi, 29-1-'48
Harijan, 8-2-1948

220

THE URS AT MEHRAULI

Gandhiji's visit to the *urs* at Mehrauli on Wednesday, the 24th January was redolent of old days Famed in history as the ancient capital of Prithviraj, Mehrauli is a small, unostentatious village situated amidst idyllic surroundings, seven miles to the south of Delhi It is the seat of the *Dargah Sharif* of Khwaja Syed Qutbuddin Bhukhtiar — a shrine, ranking in holiness and sanctity second only to the world famous Dargah of Khwaja Mohayuddin Chishty at Ajmer. A great religious fair — *urs* — used to be held here every year which was attended not only by the Muslims from all over India but by the Hindus too, thus reflecting in its own way the catholicity and religious tolerance for which Sufism stands During the recent disturbances, like many other places, Mehrauli too fell a victim to communal frenzy It witnessed many a heart-breaking occurrence and the *Dargah Sharif* itself did not escape the violence of sacrilegious hands, the marks of which it still bears Owing to disturbed conditions it was feared that the annual *urs* might not be held this year But as a result of Gandhiji's efforts, who had made holding of the *urs* as before, one of the conditions for breaking his fast, all the obstacles were successfully overcome and the *urs* was held with due ceremony on the fixed date *Sanatani* Hindus and militant Sikhs vied with each other in extending goodwill to the Muslims They fraternized with them, offering

them flowers and opening free tea-stalls. It was a sight too to see Hindu and Sikh volunteers standing shoulder to shoulder with Muslim volunteers in a common endeavour for social service. The local administration had, in response to Muslim request, made arrangements for running a special bus service to carry the prospective visitors to the *urs* and an all out effort was made to clean up the *Dargah Sharif* itself and its precincts, repairs being effected wherever it was possible.

Never before since the palmy days of the Khilafat struggle was such a vast, fraternal crowd of Hindus, Muslims and Sikhs seen in the capital city. Hundreds of Hindu women too were present and the general atmosphere was one of returning confidence and trust. Gandhiji was taken right into the *sanctum sanctorum* and though women are, as a rule, rigidly excluded from the innermost shrine, obviously an exception was made in the case of girl inmates of the Ashram who accompanied Gandhiji, and the party were requested to recite the *Quranic* verses that are daily recited at Gandhiji's evening prayer. Gandhiji was deeply moved at the sight of the wanton damage to the lovely marble screens enclosing the inner shrines, and later in the evening made a feeling reference to it in his post-prayer address.

In a brief address Khwaja Hilal Qutbi who claims to be a lineal descendant of Khwaja Syed Qutbuddin Bukhtiar of the *Dargah Sharif* described how under the benevolent teachings of Sufism, Delhi rulers became votaries of universal toleration and egalitarianism for which Sufism stands and we had the unique phenomenon of the founding of a slave dynasty Sufism teaches that the measure of a man's love of God is his love and service of His creation At a time when India had become a cockpit of warring races, cultures, and creeds, Sufism held aloft the banner of an eclecticism that rose superior to the common prejudices based on race, creed or colour Shamsuddin Altamash was a disciple of Khwaja Saheb Qutubuddin His religious preceptor had enjoined on him in the name of Islam that on the Judgment Day God would demand to know if he had meted out even-handed justice to all his Hindu and Muslim subjects and promoted their welfare alike, because the kingdom he ruled over was not his own for enjoyment but a sacred trust from God. If he betrayed that trust in any way or was

guilty of unfair dealings, God would call him to account for it He was charged to keep before him Hazrat Omar's saying that if the leg of a goat by the bank of the river Nile was wantonly broken, he would be answerable for it to God Ma'ni Saheb, who is himself Sajjadda Nashin of Ajmer *Dargah Sharif*, while expressing gratitude to Gandhiji for his efforts which made the holding of the *urs* possible, hoped that it would mark the restoration of the era of communal goodwill and harmony to the capital city and enable thousands of Muslims, who had to flee, to return to their homes in the near future.

Gandhiji who had hardly imagined that he would be required to deliver an address on that occasion was deeply touched by the spectacle before him. He had come there on pilgrimage, not to make speeches, he said Ever since he had heard that it might not be possible to hold the *urs* at Mehrauli as in previous years, he had been deeply distressed over it It, therefore, gave supreme satisfaction that the citizens of Delhi had risen to the occasion and given a lie to those fears If the Hindus, Muslims and Sikhs of Delhi thoroughly cleansed their hearts and made up their minds never again to allow fratricidal strife to raise its head, India and Pakistan united in a brotherly bond would together command the respect and regard of the world instead of becoming the butt of the world's ridicule One could understand division of patrimony as between blood brothers But did it mean that thereafter they must become enemies ? His reply was, no If they did, the world would set them down as fools He would go even further and call them uncivilized. When he broke his fast they had pledged themselves to live together in amity and peace — like blood brothers. They should now renew and confirm that pledge. All religions were at bottom one, though they differed in detail and outward form, even like the leaves of a tree Each leaf has a separate and distinct existence but they are all sprung from and are organically related to the trunk Again, no two leaves are alike. Yet they never quarrel among themselves. Instead, they dance to the same breeze and emit a sweet symphony together. "I want you to take a vow that you will never again listen to the voice of Satan and abandon the way of brotherliness and peace. Personally I have never known what it is to be communal To unite all sections and communities that people this vast land of

ours has been my dream ever since my early childhood, and till that dream is realized my spirit can know no rest" He warned them against being carried off their feet by the news of the attack on the Parachinar refugee camp by the trans-border tribals They must regard it as a test of their faith It had shocked him. But they must not allow even such incidents to rekindle in their hearts the sentiment of retaliation or revenge. They should instead proclaim to themselves and all concerned that they were out not to demand blood for blood — that was the way to suicide — but to confront with love even the murderer. "It might appear difficult," concluded Gandhiji. "But I do not think so That is why when I broke my fast I remarked that if only the people of Delhi thoroughly purified their hearts and kept the same pure, Delhi could solve the problem of India. If, on the other hand, they did things which they did not mean, only to prolong the life of an old man like myself, they would verily encompass my death while deluding themselves into the belief that they were saving my life"

New Delhi, 9-2-'48
Harijan, 15-2-1948

221

HIS LAST WILL AND TESTAMENT

[The following is the constitution, drafted by Gandhiji, for the Congress on the day of his assassination His intention was to show how the Congress which was till now mainly concerned with achieving political independence may convert itself into an Association for the Service of the People (Lok Sevak Sangh), and work for the establishment of a non-violent society —Ed]

Though split into two, India having attained political independence through means devised by the Indian National Congress, the Congress in its present shape and form, i e as a propaganda vehicle and parliamentary machine, has outlived its use India has still to attain social, moral and economic independence in terms of its seven hundred thousand villages as distinguished from its cities and towns. The struggle for the ascendency of civil over military power is bound to take place in India's progress towards its democratic goal It must be kept out of unhealthy competition with political parties and com-

munal bodies. For these and other similar reasons, the A I.C C. resolves to disband the existing Congress organization and flower into a Lok Sevak Sangh under the following rules with power to alter them as occasion may demand

Every Panchayat of five adult men or women being villagers or village-minded shall form a unit

Two such contiguous Panchayats shall form a working party under a leader elected from among themselves.

When there are one hundred such Panchayats, the fifty first grade leaders shall elect from among themselves a second grade leader and so on, the first grade leaders meanwhile working under the second grade leader. Parallel groups of two hundred Panchayats shall continue to be formed till they cover the whole of India, each succeeding group of Panchayats electing a second grade leader after the manner of the first. All second grade leaders shall serve jointly for the whole of India and severally for their respective areas The second grade leaders may elect, whenever they deem necessary, from among themselves a chief who will, during pleasure, regulate and command all the groups

(As the final formation of provinces or districts is still in a state of flux, no attempt has been made to divide this group of servants into Provincial or District Councils, and jurisdiction over the whole of India has been vested in the group or groups that may have been formed at any given time. It should be noted that this body of servants derive their authority or power from service ungrudgingly and wisely done to their master, the whole of India)

1 Every worker shall be a habitual wearer of Khadi made from self-spun yarn or certified by the A I.S A and must be a teetotaller If a Hindu, he must have abjured untouchability in any shape or form in his own person or in his family and must be a believer in the ideal of inter-communal unity, equal respect and regard for all religions and equality of opportunity and status for all irrespective of race, creed or sex

2. He shall come in personal contact with every villager within his jurisdiction

3 He shall enrol and train workers from amongst the villagers and keep a register of all these.

4. He shall keep a record of his work from day to day.

5 He shall organize the villages so as to make them self-contained and self-supporting through their agriculture and handicrafts

6. He shall educate the village folk in sanitation and hygiene and take all measures for prevention of ill health and disease among them.

7. He shall organize the education of the village folk from birth to death along the lines of *Nayee Talim*, in accordance with the policy laid down by the Hindustani Talimi Sangh.

8 He shall see that those whose names are missing on the statutory voters' roll are duly entered therein

9 He shall encourage those who have not yet acquired the legal qualification, to acquire it for getting the right of franchise

10 For the above purposes and others to be added from time to time, he shall train and fit himself in accordance with the rules laid down by the Sangh for the due performance of duty.

The Sangh shall affiliate the following autonomous bodies:

*1 A I S A
**2 A I V I. A
***3. Hindustani Talimi Sangh
†4. Harijan Sevak Sangh
‡5 Goseva Sangh

Finance

The Sangh shall raise finances for the fulfilment of its mission, from among the villagers and others, special stress being laid on collection of the poor man's pice

New Delhi, 29-1-'48
Harijan, 15-2-1948

* All India Spinners Association
** All India Village Industries Association
*** Society for Basic Education
† Society for service of "untouchables"
‡ Society for Cow Protection and Improvement.

INDEX